MAPSY 03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

Cognitive Psychology: Basic Processes

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान: मौलिक प्रक्रियाएं

MAPSY 03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

संरक्षक	**अध्यक्ष**
प्रो. अशोक शर्मा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर**
कुलपति	निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

** **संयोजक**	* **संयोजक**
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ) एल.आर. गुर्जर	**प्रो. एच. बी. नंदवाना**
निदेशक (अकादमिक)	निदेशक, सतत शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. विजयलक्ष्मी चौहान (सेवानिवृत्त)	**प्रो.आशा हिंगर (सेवानिवृत्त)**
मनोविज्ञान विभाग	मनोविज्ञान विभाग
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर	राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
प्रो. दामीना चौधरी (सेवानिवृत्त)	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. कीर्ति सिंह**
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा
डॉ. पतंजलि मिश्र	**डॉ. अखिलेश कुमार**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

*डॉ. रजनी रंजन सिंह ,सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 13.06.2015 तक

** डॉ. अनिल कुमार जैन, सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 14.06.2015 से निरन्तर

समन्वयक एवं सम्पादक मण्डल

समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार जैन
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

विषय वस्तु एवं भाषा संबंधी सम्पादन

प्रो. विजयलक्ष्मी चौहान
सेवानिवृत्त आचार्य,
मनोविज्ञान विभाग
मोहनलाल सुखाडिया
विश्वविद्यालय, उदयपुर

डॉ. पतंजलि मिश्र
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखन

1 **डॉ.कल्पना जैन (इकाई 1,2,3,4,5,6,7)**
विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग,
एमएलएस यूनिवर्सिटी, उदयपुर (राजस्थान)

2 **डॉ.अजय चौधरी (इकाई 8,9,10,11)**
मनोविज्ञान विभाग
मीरा गवर्नमेंट गर्ल्स पीजी कॉलेज, उदयपुर

3 **डॉ.अल्पना सिंह (इकाई 12,13,14,15)**
मनोविज्ञान विभाग, एमएलएस यूनिवर्सिटी,
उदयपुर (राजस्थान)

4 **डॉ.शिप्रा लवानिया**
(इकाई 16,17,18)
विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग
मीरा गवर्नमेंट गर्ल्स पीजी कॉलेज, उदयपुर

5 **डॉ. अनिल कुमार जैन (इकाई 19)**
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

6 **डॉ.मधु सिंह (इकाई 20)**
शिक्षा विभाग
सेंट जेवियर्स कॉलेज पटना (बिहार)

7 **डॉ. वीना यादव (इकाई सं.21)**
सहायक आचार्य
महाराणा प्रताप टी.टी. कालेज, कोटा

आभार

प्रो. विनय कुमार पाठक
पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो .एल.आर .गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. करण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

उत्पादन 2015, ISBN : 978-81-8496-507 -0

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि.वि., कोटा, की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व.म.खु.वि.वि., कोटा के लिए कुलसचिव, व.म.खु.वि.वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MAPSY 03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज नं.
1	संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिदृश्य	1
2	संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र	12
3	संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ	20
4	मनोभौतिकी का अर्थ, वेबर तथा फेकनर के नियम	28
5	देहली का संप्रत्यय, देहली का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण	41
6	देहली का प्राचीन सिद्धांत, संकेत संज्ञाप्त सिद्धांत	47
7	मनोभौतिकी विधियाँ - प्राचीन तथा आधुनिक	58
8	अवधान	74
9	प्रत्यक्षीकरण	90
10	गहराई प्रत्यक्षीकरण एवं पैटर्न प्रत्यभिज्ञान	113
11	भ्रम	130
12	अधिगम एवं शाब्दिक अधिगम	138
13	क्लासिकी एवं नैमित्तिक अनुबन्धन	155
14	स्मृति का स्वरूप एवं प्रकार	176
15	पृष्ठोन्मुख अवरोध स्वरूप एवं सिद्धान्त	190
16	चिन्तन की प्रकृति एवं प्रकार, चिन्तन में वृत्ति या तत्परता का महत्व, भाषा एवं चिन्तन	202
17	चिन्तन के सिद्धान्त	216
18	निगमनात्मक एवं आगमनात्मक तर्कण, समस्या समाधान के उपाय, कक्षाकक्ष समस्या समाधान, समस्या समाधान के चरण	226
19	बुद्धि की प्रकृति और सिद्धान्त, मानसिक आयु का संप्रत्यय और बुद्धि लब्धि	241
20	संवेग का स्वरूप एवं सिद्धांत, संवेग में शारीरिक परिवर्तन, संवेगात्मक बुद्धि	263
21	उत्तेजन और समस्थिति, अन्तर्नोद- न्युनीकरण सिद्धांत; संज्ञानात्मक निस्सहायता	277

इकाई 1

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिदृश्य

Historical Perspective of Cognitive Psychology

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संज्ञान का अर्थ

1.3.1 संज्ञान की परिभाषा

1.3.2 संज्ञान का अध्ययन क्यों

1.4 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की परिभाषा

1.5 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की प्रकृति

1.6 संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की विशेषताएं

1.7 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का इतिहास

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक नवीन तथा उदीयमान शाखा है, जिसमें संज्ञान अर्थात् मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में संज्ञान का अर्थ संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की परिभाषा, प्रकृति एवं इतिहास का विस्तृत अध्ययन करेगें।

1.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- संज्ञान तथा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान को परिभाषित करसकेंगे।

- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान प्रकृति बता सकेंगे।
- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विशेषता बता सकेंगे।
- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिदृश्य बता सकेंगे।

1.3 संज्ञान का अर्थ

संज्ञान को संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के तुल्य माना जाता है, जिससे तात्पर्य मानसिक क्रियाओं से होता है। ज्ञान कैसे ग्रहण करते हैं, उसे संचित करते हैं, उसका स्मरण या पुनः प्राप्ति करते हैं तथा उसका उपयोग करते हैं, आदि सभी मानसिक प्रक्रियाएं संज्ञान में सम्मिलित होती हैं।

1.3.1 संज्ञान की परिभाषाएँ

एटकिन्सन स्मिथ तथा हिलगार्ड (1985): ''संज्ञान से तात्पर्य सूचना संसाधन, स्मृति एवं प्रत्यक्षण की मानसिक प्रक्रियाओं से होता है, जिसके सहारे व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति करता है, समस्या का समाधान करता है तथा भविष्य की योजना बनाता है।''

माटलिन (1995): ''संज्ञान अथवा मानसिक क्रिया में अर्जन, संग्रहण, पुनः प्राप्ति एवं ज्ञान के उपयोग की प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में अनेक मानसिक प्रक्रियाएँ जैसे प्रत्यक्षीकरण स्मृति, प्रतिमा, भाषा, समस्या समाधान, तर्कणा एवं निर्णय की प्रक्रियाएं सम्मिलित होती है।

कभी कभी संज्ञान का उपयोग मनोविज्ञान के एक विशेष उपागम के रूप में किया जाता है। संज्ञानात्मक उपागम एक सैद्धान्तिक उन्मुखता है, जो मानसिक संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं पर आधारित सिद्धान्तों को बतलाता है। संज्ञानात्मक उपागम तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों में असंगति पाई जाती है, क्योंकि जहां व्यवहारवादी उपागम निरीक्षण योग्य व्यवहारों पर, विश्लेषणवादी उपागम अचेतन संवेगों पर तथा मानवतवादी उपागम व्यक्तिगत संवृद्धि तथा अन्तर्वैयक्तिक संबंधों पर बल देते है, वहीं संज्ञानवादी उपागम उन मानसिक प्रक्रियाओं पर बल देते है, जो प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, समस्या समाधान, तर्कना आदि से संबंधित है।

1.3.2 संज्ञान का अध्ययन का महत्व

मनोविज्ञान के विद्यार्थियों का संज्ञान के बारे में अध्ययन के कुछ प्रमुख कारण है। प्रथम यह है कि संज्ञान मानव मनोविज्ञान के अधिकतम भाग से संबंधित है। दूसरा संज्ञात्मक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण का प्रभाव मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों जैसे समाज मनोविज्ञान (निसबेट एवं रोस, 1980 सेम्पसन 1981), व्यक्तित्व क्षेत्र (फोइगस एवं शुलमैन, 1979), शिक्षा मनोविज्ञान (रीड एवं हेर्नोस्को, 1981) पर अच्छा पड़ा है। जीन पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त का प्रभाव विकासात्मक मनोविज्ञान पर भी काफी है।

संज्ञान अध्ययन का तीसरा कारण व्यक्तिगत है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन प्रत्येक क्षण संज्ञान का उपयोग करके ही किसी खास निर्णय पर पहुँचता है और व्यवहार करता है। इसके अभाव में व्यक्ति का कोई

भी व्यवहार न तो उपयुक्त होता है और न ही सही। अतः संज्ञान का अध्ययन करके संज्ञानात्मक मनोविज्ञान एक महत्वपूर्ण शाखा के रूप में उभरकर आया है।

1.4 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की परिभाषा (Defination of Cognitive Psychology)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। उसका लक्ष्य प्रयोग करना तथा ऐसे सिद्धांतों को विकसित करना होता है जिनसे यह व्याख्या हो सके कि मानसिक प्रक्रियाओं को संगठित कैसे किया जाता है तथा वे किस प्रकार कार्य करती हैं। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की परिभाषा अनेक मनोवैज्ञानिकों ने प्रस्तुत की हैं:-

- **निस्सर (1967):** ''संज्ञानात्मक मनोविज्ञान उन समस्त प्रक्रियाओं की ओर संकेत करता है, जिसके द्वारा सांवेदिक निवेश परिवर्तित होता है, न्यूनीकृत होता है, संचित होता है, उसकी पुर्नप्राप्ति होती है और प्रयुक्त होता है।''
- **वुड तथा वुड (1996):** ''संज्ञानात्मक मनोविज्ञान एक विशिष्टता है जो मानसिक प्रक्रियाओं, जैसे स्मृति, समस्या समाधान, संप्रत्यय निर्माण, तर्कना, निर्णय प्रक्रिया, भाषा एवं प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन पर केन्द्रित करता है।''
- **एटकिन्सन, स्मिथ तथा हिलगार्ड (1985):** ''संज्ञानात्मक मनोविज्ञान संज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन है। इसका उद्देश्य (Objective) ऐसे प्रयोगों को सम्पन्न करना तथा सिद्धांत विकसित करना है, जो मानसिक प्रक्रियाओं के संगठन प्रकार्य की व्याख्या कर सके।''
- **सोलसो (2004):** ''संज्ञानात्मक मनोविज्ञान चिन्तन मन (Thinking Mind) का वैज्ञानिक अध्ययन है। यह इससे संबंधित होता है कि हम संसार के बारे में किस तरह से सूचना प्राप्त करते हैं तथा उस पर ध्यान देते हैं, वैसी सूचनाएं किस तरह से संबंधित होती है और मस्तिष्क द्वारा संसाधित होती है और हम लोग किस तरह से समस्याओं के बारे में सोचते है, उनका समाधान करते हैं तथा भाषा का निर्माण करते हैं।

इन परिभाषाओं के विश्लेषण से निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं:-

(1) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान संज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन है।

(2) इसमें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं जिनमें प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, समस्या समाधान, संप्रत्यय निर्माण, तर्कणा, निर्णय प्रक्रिया, भाषा उपयोग आदि प्रमुख है, का अध्ययन किया जाता है।

(3) संज्ञानात्मक प्रक्रिया की शुरुआत संवेदी निवेश से होती है। व्यक्ति वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों को सबसे पहले प्रत्यक्षीकरण करता है और तब उसके प्रति अनुक्रिया करता है। प्रत्यक्षीकरण एवं अवधान के माध्यम से संवेदी निवेश प्रक्रिया होती है।

(4) संवेदी निवेश को फिर परिवर्तित किया जाता है। ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मस्तिष्क उद्दीपकों से प्राप्त सूचनाओं को घटा-बढ़ा कर उनका रूप परिवर्तित कर देते है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक के

शब्दों में भौतिक उत्तेजनाओं को तंत्रकीय घटनाओं में कूटसंकेतन कर दिया जाता है तथा मस्तिष्क द्वारा उन्हें संसाधित किया जाता है।

(5) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का मूल लक्ष्य प्रयोग करके इन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है तथा उनके बारे में कुछ ऐसे सिद्धांत विकसित करना है, जिनके माध्यम से इस बात की व्याख्या की जाती है कि मानसिक प्रक्रियाओं (Mental Process) को किस प्रकार संगठित किया जाता है तथा वे किस तरह से कार्य करती है। इस संदर्भ में सूत्र भी विकसित किये जाते है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि संज्ञात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह शाखा मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण कर उनके संगठन तथा कार्य की व्याख्या करता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में---------- का अध्ययन किया जाता हैं।

1.5 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की प्रकृति (Nature of Cognitive Psychology)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। इसमें प्रयोग विधि व अन्य वैज्ञानिक विधियों द्वारा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से किस प्रकार व्यक्ति भौतिक उर्जा को तंत्रकीय उर्जा में बदलता है और उसका विशेष अध्ययन करता है। इन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, समस्या समाधान, तर्कणा, संप्रत्यय निर्माण, भाषा आदि प्रमुख है। अन्य विज्ञान की तरह इस में भी विश्वसनीयता जांचनीयता, सामान्यीकरण की क्षमता, सार्वभौमिकता के गुण पाए जाते हैं।

1.6 संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की विशेषताएँ (Characterstics of Cognitive Processes)

संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की प्रमुख विशेषताएं (सिंह, 2008) निम्नाकिंत हैं:-

1. **संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ एक दूसरे से संबंधित है न कि एक दूसरे से पृथक:** संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के विभिन्न तत्वों के बीच एक जटिल अंत:क्रिया या संबंध होता है। उदाहरण के लिए जब हम किसी उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण करते हैं तो उसमें कोई एक ही प्रक्रिया नहीं घटित होती है, वरन् उसमें अनेक प्रक्रियाएँ जैसे संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, प्रतिमा निर्माण, साहचर्य निर्माण, भाषा उपयोग, तर्कना एवं निर्णय प्रक्रिया का योगदान होता है।
2. **संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं सक्रिय होती हैं न कि निष्क्रिय:** व्यवहारवादी उपागम में व्यक्ति को एक निष्क्रिय प्राणी समझा जाता है जो वातावरण में उद्दीपक आने पर उसके प्रति अनुक्रिया करता है। संज्ञानात्मक उपागम के अनुसार व्यक्ति वातावरण में विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्राप्त करने के लिए सक्रिय और उत्सुक रहता है। वह नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए निरंतर क्रियाशील रहता है।

3. **संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं सक्षम और परिशुद्ध होती है:** व्यक्ति किसी मानसिक प्रक्रिया को संपादित करने के लिए विशेष योजना बनाता है, अशुद्धियों के पाए जाने पर उनमें सुधार लाता है और अपनी योजना को संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के माध्यम से सफल बनाने का प्रयास करता है। मानव सूचना संसाधन की कुछ सीमाएं लाभकारी भी हो जाती है जैसे, हम लोग कभी कभी यह सोचकर दुख का अनुभव करते है कि सूचनाओं को देर तक मस्तिष्क में नहीं रख पाए है, किंतु यदि सभी सूचनाओं को हमेशा के लिए याद रख पाते है तो हमारी स्मृति सूचना अतिभार से दब जाती और उसका लाभ हम नहीं उठा पाते।

4. **संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं द्वारा धनात्मक सूचनाओं का संचालन:** ऋणात्मक सूचनाओं की तुलना में अधिक उत्तम तरीके से होता है, उदाहरण के लिए यदि कोई वाक्य सकारात्मक है जैसे राम अच्छा विद्यार्थी है तो उसे नकारात्मक वाक्य ''राम खराब विद्यार्थी नहीं है'' की तुलना में अधिक सरलता से समझा जा सकता है। इसी तरह संप्रत्यय अधिगम में भी उस समय निष्पादन उत्तम होता है जब वे संप्रत्यय का उदाहरण होते हैं न कि उस समय जब वे संप्रत्यय का उदाहरण नहीं होते। तर्कना में भी उस समय निष्पादन उत्तम होता है जब कार्य में धनात्मक सूचनाओं का समावेश ऋणात्मक सूचनाओं की तुलना में अधिक होता है। सांवेगिक रूप से धनात्मक (सुखद) कार्यों का निष्पादन ऋणात्मक (दुखद) कार्यों की तुलना में बेहतर होता है।

5. **संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं सामान्यतः प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षणीय नहीं होती है:** संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का स्वरूप सामान्यतः ऐसा होता है कि हम उन्हें सीधे प्रेक्षण नहीं कर सकते। जैसे किसी व्यक्ति को निर्णय करते, या पाठ याद करते या निर्णय करते हुए देखते हैं, तो मात्र देखकर उनमें निहित संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के बारे मे अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के बारे में जो सूचनाएं एकत्रित करते हैं, उनके आधार पर विशेष मानसिक क्रिया के लिए तैयार की गई व्याख्याओं में से कुछ को अस्वीकृत कर देते हैं परंतु कुछ को स्वीकृत भी करना पड़ता है। इसी कारण एक ही मानसिक क्रिया जैसे विस्मरण की व्याख्या करने के लिए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का स्वरूप ऐसा होता है कि किसी एक सिद्धांत को स्वीकृत कर अन्य सिद्धातों को अस्वीकृत करना कठिन होता है।

संक्षेप में, संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की अपनी विशेषताएं होती है जिनका ध्यान इन प्रक्रियाओं के अध्ययन में रखना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न: 1

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की प्रकृति ---------- होती है।
2. संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं द्वारा धनात्मक सूचनाओं का संचालन ऋणात्मक सूचनाओं की तुलना में ---------- होता है।

1.7 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का इतिहास (History of Cognitive Psychology)

संज्ञानात्मक क्रियाओं का संबंध इस प्रश्न से जुड़ा है कि ज्ञान का निरुपण किस प्रकार होता है। इसी से जुड़े अन्य प्रश्नों का संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में अध्ययन किया जाता है- जैसे ज्ञान का अर्जन, संचयन, विस्तारीकरण या न्यूनीकरण तथा उपयोग कैसे किया जाता है। चेतना क्या है, विचारों की उत्पत्ति कैसे होती है, स्मृति, चिंतन का स्वरूप क्या है, उनसे संबंधित क्षमताओं का विकास किस प्रकार होता है इत्यादि। इन्हीं प्रश्नों के अध्ययन के प्रयास से संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की उत्पत्ति जुड़ी हुई है। इन प्रश्नों के उत्तर सामान्य रूप से दो तरह से दिए जाते हैं:-

1. अनुभववादियों के अनुसार व्यक्ति में ज्ञान का अर्जन उनकी अनुभूतियों से होता है।
2. सहजवादियों (Nativitist) के अनुसार ज्ञान का अर्जन व्यक्ति के मस्तिष्क की जन्मजात विशेषताओं पर आधारित है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोनों विचारधाराओं की पुष्टि संभव नहीं है, किंतु यह अवश्य है कि अनुभूतियों से सूचनाएं उत्पन्न होती हैं और अनुभूतियों को संगठित होने के लिए ग्रहण करने योग्य मस्तिष्क चाहिए, जो अनुभूतियों से उत्पन्न विचारों से एक अर्थ निकालता है। तब ज्ञान का स्मृति में संचयन व संगठन होता है। संचयन पक्ष अनुभूतियों पर बल देता है और संगठन पक्ष तंत्रिका तंत्र में पहले से मौजूद संरचनात्मक क्षमता को बल देता है। इस तरह से ज्ञान की इस व्याख्या से दोनों की संतुष्टि होती है।

ज्ञान के मौलिक प्रश्नों पर ग्रीक दार्शनिकों ने भी मंथन किया है। जैसे अरस्तू का विचार था कि ज्ञान व्यक्ति के हृदय में होता है, प्लूटों का मत था कि ज्ञान मस्तिष्क में अवस्थित होता है। 18 वीं शताब्दी में कुछ दार्शनिक मनोवैज्ञानिकों जैसे जॉर्ज बर्केली, डेविड ह्यूम, जेम्स मिल, स्टुआर्ट मिल ने मत दिया कि ज्ञान का आंतरिक निरूपण तीन प्रकार का होता है- 1. प्रत्यक्ष संवेदी घटनाएं या प्रत्यक्षीकरण की वास्तविकता है 2. स्मृति में संचित घटनाओं की धुंधली नकल तथा 3. इन धुंधली नकल का रुपान्तर। आंतरिक निरूपण तथा रूपान्तरण का यह संप्रत्यय स्पष्ट करता है कि यह परिभाषित नियमों के अनुसार होता है और इसमें समय तथा प्रयास भी लगते हैं। इस तरह की पूर्वकल्पना संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में किए जाने वाले अनुसंधानों का आधार है। जैसे व्यक्ति के प्रतिक्रिया काल को आंतरिक निरुपण तथा रुपान्तर निर्माण में लगे प्रयास तथा समय का माप समझा जाता है।

19 वीं शताब्दी में दैहिक शास्त्रियों व मनोवैज्ञानिकों जैसे फेकनर, हेल्महोल्ट्ज, विलहेल्म वुण्ट, जी. इ. मूलर, कुल्पे, इबिंगहॉस, गाल्टन, टिचनर, विलियम जेम्स के प्रयासों के कारण मनोविज्ञान को दर्शनशास्त्र से अलग स्वतंत्र शाखा के रूप में आने का प्रयास होने लगा।

1879 में विल्हेल्म वुण्ट ने जर्मनी के लिपजिंग विश्वविद्यालय में मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए एक प्रयोगशाला की सर्वप्रथम स्थापना की और मनोविज्ञान अन्य विज्ञानों से भिन्न स्वतंत्र शास्त्र के रूप में स्थापित हुआ। वुण्ट, टिचनर तथा उनके सहयोगी मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन अंतनिर्रीक्षण विधि से करते थे। अन्तर्दर्शन में प्रशिक्षित निरीक्षकों द्वारा अपने संवेदनाओं एवं अनुभवों पर सावधानी से ध्यान देना था और वस्तुनिष्ठता से उनके बारे में सूचित करना था (गार्डनर, 1985,

पोसनर, 1986)। इन प्रेक्षकों को इस बात के लिए उत्साहित किया जाता था कि वे उद्दीपक का वर्णन न करें और अनुभव की हुई संवेदना, विचारों, प्रतिमाओं के बारे में उन्हें बिना अर्थ दिए हुए बताएं। वुण्ट की यह विधि कई पक्षों पर आधुनिक संज्ञानात्मक शोध विधियों से मिलती जुलती है। वुण्ट ने यह स्पष्ट किया था कि उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएं जैसे चिंतन, भाषा तथा समस्या समाधान आदि का अध्ययन अंतर्दर्शन विधि द्वारा नहीं हो सकता। इस विचार को आंस्वाल्ड कुल्पे ने ऊर्ज बर्ग विश्वविद्यालय में शोध करके गलत ठहराया और कहा कि किसी समस्या समाधान के दौरान प्रयोज्यों के मन में किसी तरह की कोई प्रतिमा नहीं आती जिसे उन्होनें प्रतिमारहित चिंतन कहा। वुण्ट द्वारा किए गए मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का आधार बने। जैसे- अवधान संज्ञान का महत्वपूर्ण भाग है। मानसिक घटनाएँ एक दूसरे से सम्बंधित होती है (सिंह, 2008)। आधुनिक समय में अर्थगत स्मृति के क्षेत्र में किए गये शोधकार्यो के लिए ये महत्वपूर्ण रहे हैं। वुण्ट द्वारा किए गए अनुसंधानों में प्रासंगिक नियंत्रण का उपयोग, प्रयोगों की पुनरावृत्ति का मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के लिए दृढ़ नियंत्रण विधियों का आधार बने और विभिन्न मॉडलों के विकास के लिए प्रेरणा बिंदु बने।

वुण्ट के सभी सहयोगियों ने अन्तर्दशन विधि को नहीं अपनाया। एबिंगहास (1913) ने मानव स्मृति के अध्ययन के लिए विशेष प्रविधि तथा निरर्थक पदों की रचना की। अमेरिकन मनोवैज्ञानिक अन्तर्दर्शन को वैज्ञानिक विधि के रूप में अपनाने पर आपत्ति कर रहे थे। विलियम जेम्स ने इसी समय एक अधिक अनौपचारिक विधि के उपयोग पर बल देते हुए मानव अनुभूतियों के अध्ययनों को अपनी पुस्तक ''प्रिसीपंल्स ऑफ साइकोलॉजी'' में प्रकाशित किया। उनके स्मृति के क्षेत्र में प्रस्तुत सिद्धांत संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान माने गए। उन्होनें स्मृति के दो प्रकार बताए- ''प्राथमिक तथा गौण स्मृति'' जिन्हें आजकल क्रमशः लघुकालीन स्मृति तथा दीर्घकालीन स्मृति कहा जाता है। विलियम जेम्स ने इस बात पर बल दिया कि मानव मस्तिष्क सक्रिय और अन्वेषक होता है। उन्होंने प्रत्यक्षीकरण, अवधान, तर्कना आदि का पूर्वाभास कराया जिसने आधुनिक मनोवैज्ञानिकों को प्रभावित किया।

अमरीकी मनोवैज्ञानिक जे.बी. वाटसन द्वारा व्यवहारवाद का प्रतिपादन हुआ जिसमें वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण तथा प्रयोगात्मक विधि को ही वैज्ञानिक विधि माना गया। व्यवहारवादियों ने अन्तर्दर्शन को अवैज्ञानिक विधि माना और कहा कि चेतना अत्यधिक अस्पष्ट है जिसके अध्ययन के लिए उपयुक्त अनुसंधान की आवश्यकता है। उन्होनें मानसिक प्रक्रियाओं को संकेत करने वाले शब्दों जैसे प्रतिमा, विचार या चिंतन को अस्वीकृत किया। चिंतन को व्यवहारवादियों ने उपमुखरित संभाषण माना, अर्थात् चिंतन में व्यक्ति अपने आप में बातचीत करता है जिसे अन्य व्यक्तियों द्वारा नहीं सुना जा सकता है। व्यवहारवादियों ने शब्दों के परिभाषाकरण एवं प्रायोगिक नियंत्रण को महत्वपूर्ण माना जो संज्ञानात्मक मनोविज्ञान विधियों के विकास का आधार बना। व्यवहारवादियों ने पशुओं पर किए गये प्रयोगों के आधार पर सिर्फ प्रयोगशाला प्रयोगों पर बल डाला जिसे संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा अपनाया गया। यद्यपि निस्सर (1976) आदि ने कहा कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का शोध ऐसा होना चाहिए जिसका संबंध उन मानसिक प्रक्रियाओं के भी अध्ययन से भी होना चाहिए जो दिन प्रतिदिन की जिदंगी में घटित होते है।

व्यवहारवाद अमेरिका में पनप रहा था किंतु यूरोपीय मनोवैज्ञानिक इससे कम प्रभावित हुए और यूरोप में एक नवीन संप्रदाय, गेस्टाल्टवाद का जन्म हुआ। गेस्टाल्टवादियों जिनमें कोहलर, कोफ्का तथा

वर्दाइमर प्रमुख थे, ने अन्तर्दर्शन प्रविधि के अनुभव का विभिन्न घटकों में विश्लेषण करने का विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि मानव में अनुभवों को संगठित करने की मौलिक प्रवृत्ति पाई जाती है तथा संपूर्ण अनुभूति इनके अलग-अलग तत्वों के योग से अधिक होती है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान में सूझ की भूमिका को बताया। समस्या समाधान में आरंभ में समस्या के सभी अंश एक दूसरे से असंबंधित दिखते है, किंतु अचानक वे एक दूसरे से मिलकर समस्या का समाधान बन जाते हैं। इन सभी कार्यो का महत्व संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अमेरिका में व्यवहारवाद तथा यूरोप में गेस्टाल्टवाद प्रभावी था। इसी समय ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक फ्रेडरिक सी. बार्टलेट (1932) ने स्मृति के क्षेत्र में अनुसंधान किये और पुस्तक ''रिमेम्बरिंग: एन एक्सपेरिमेंटल एंड सोसियल स्टडी'' का प्रकाशन किया। इन्होनें स्मृति संबंधी प्रयोगों के लिए सार्थक सामग्रियों जैसे लम्बी कहानियों का उपयोग किया और पुनःस्मरण पर मानसिक वृत्ति के प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होनें स्मृति को पुनर्रचनात्मक प्रक्रिया के रूप में माना जिसमें व्याख्या और रुपातंरण पाया जाता है (केण्डलरए 1987)।

- **समकालीन संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का आविर्भाव (Evolution of Contemporary Cognitive Psychology)**

1950 तथा 1960 के दशक में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में मनोवैज्ञानिकों द्वारा काफी अभिरुचि दिखलायी गई। मैसेच्यूटस इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में 1956 में आयोजित गोष्ठी में अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने संज्ञानात्मक क्षेत्र में अनुसंधान के प्रति उत्साह प्रदर्शित किया और इसकी विधियों, उपागमों एवं अभिवृत्तियों के प्रति लोगों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखा गया। इन्हीं दिनों निस्सर (1967) की ''कॉगनिटिव साइकॉलोजी'' पुस्तक का प्रकाशन हुआ। इस उत्साह को कुछ लोगों ने संज्ञानात्मक आन्दोलन की संज्ञा दी। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की लोकप्रियता में अनेक कारकों का योगदान था जो निम्नाकिंत है।

1. व्यवहारवादी दृष्टिकोण में मनोवैज्ञानिकों को निराशा हुई क्योंकि जटिल मानव व्यवहार की व्याख्या पारंपरिक व्यवहारवादी अधिगम सिंद्धात के घटको उद्दीपक, अनुक्रिया तथा पुनर्बलन के आधार पर नहीं की जा सकती। व्यवहारवादियों ने स्वयं को केवल निरीक्षण योग्य व्यवहार तक ही सीमित रखा जिससे अनेक मानसिक क्रियाओं का निरीक्षण संभव नहीं था।

2. मनोवैज्ञानिकों जैसे नोम चोमस्की (Naom Chomsky) ने स्कीनर की इस बात को ठोस प्रयोगात्मक सबूत के साथ अस्वीकृत कर दिया कि व्यक्ति अन्य क्रिया प्रसूत व्यवहारों की तरह भाषा सीखता है। चोमस्की ने कहा कि भाषा सीखने में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं महतवपूर्ण होती हैं। उन्होनें कहा कि मनुष्यों में भाषा सीखने की क्षमता जन्मजात होती है। यह व्यवहारवादियों के मत से भिन्न है कि भाषा अर्जित होती है। चोमस्की की विचारधारा संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों को भाषा ग्रहण की प्रक्रिया पर शोध करने में सहायक हुई।

3. 1950 के अंत में स्मृति के क्षेत्र में अनेक अनुसंधान हुए, जिनमें वॉघ और नॉरमेन (1965), एटकिन्सन एवं शिर्फिन (1968), मुर्डोक (1970) प्रमुख है। इन्होनें स्मृति के विभिन्न प्रकारों की संभावना बताई, स्मृति की संगठन प्रक्रियाओं पर बल दिया और स्मृति के विभिन्न तरह

के मॉडल का निर्माण किया। इन सभी की व्याख्या व्यवहारवादी संप्रत्ययों, नियमों से नहीं हो सकी।

4. स्विट्जरलैण्ड के मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे (Jean Piaget) ने विकासात्मक मनोविज्ञान के एक नवीन सिद्धांत का प्रतिपादन किया और देखा कि बच्चों में किस प्रकार वृद्धि के साथ संज्ञानात्मक विकास होते है। संज्ञान का अध्ययन करने वाले प्रमुख उपागम जिसे सूचना संसाधन उपागम कहते है, में मूलतः वयस्कों के चिंतन प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है। कुछ को जैसे कलाहर एवं वालेस (1976) को छोड़कर सूचना संसाधन उपागम में इस बात की व्याख्या नहीं की गई कि बच्चों में विकास के साथ संज्ञान किस तरह परिवर्तित होते है। अतः पियाजे का सिद्धांत महत्वपूर्ण माना जाता है।

5. कम्प्यूटर विज्ञान तथा संचार विज्ञानों से सूचना संसाधन जैसे संप्रत्यय का विकास हुआ जिसे संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के लिए महत्वपूर्ण समझा गया। सूचना उपागम के अनुसार सूचनाओं से विभिन्न अवस्थाओं के एक निश्चित क्रम में निपटा जाता है। हमारें संवेदी ग्राहकों द्वारा पहले सूचनाओं को ग्रहण किया जाता है, जो विभिन्न अवस्थाओं के निश्चित क्रम से गुजरता है तथा परिवर्तित होता है और अंत में हम लोग उसके प्रति अनुक्रिया करते हैं या इस सूचना को स्मृति में संचित कर लेते हैं। एटकिन्सन तथा शिर्फिन के सूचना संसाधन मॉडल में सूचना तीन तरह के स्मृति संसाधन अवस्थाओं अर्थात् संवेदी, लघुकालीन तथा दीर्घकालीन स्मृति से होकर गुजरती है।

मिलर, गालान्टर एवं प्रिबाम (1960) ने मानव व्यवहार का ''टेस्ट ऑपरेटर मॉडल TOTE '' बनाया जिसमें व्यक्ति को न केवल एक सूचना संसाधक के रूप में प्रदर्शित किया बल्कि फीडबैक के संप्रत्यय को भी उसमे संयोजित किया है। इस मॉडल की शुरुआत एक वांछित अवस्था से होती है। जैसे एक धूलकण पलक पर गिरता है जिसे तुरंत हटाना चाहेगें। इसके लिए पहले आरंभिक जाँच होगी कि वह अपने आप हट तो नहीं गया। यदि ऐसा नहीं है तो एक विशेष संक्रिया (जैसा पलक झपकाना, मटमटना आदि) करेगें ताकि वांछित अवस्था प्राप्त हो सके। इसके बाद पुनः एक एक जाँच करेगें कि वांछित अवस्था प्राप्त हुई या नहीं। यदि वांछित अवस्थामिल गई तो व्यक्ति का ध्यान दूसरी क्रियाओं की ओर चला जाता है। TOTE मॉडल ने मनुष्य की भूमिका सूचना संसाधक के रूप में स्थापित की। सूचना संसाधन उपागम अततः कम्प्यूटर सादृशता पर आधारित है। मानव एक कम्प्यूटर के समान होता है जो सूचनाएं ग्रहण करता है, संसाधित करता है और अनुक्रिया करता है।

निष्कर्षत (Conclusion): यह कहा जा सकता है कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का विकास व्यवहारवादी उपागम के हास तथा सूचना संसाधन उपागम के विकास के परिणामस्वरूप हुआ। कम्प्यूटर विज्ञान, संचार विज्ञान तथा भाषा विज्ञान की भूमिका भी संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण है। मानव स्मृति तथा विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए गये शोध भी इसमें महत्वपूर्ण रहे।

अभ्यास प्रश्न 3

1. ---------- विधि में प्रशिक्षित निरीक्षकों द्वारा स्वयं के संवेदनाओं, अनुभवों विचारों के वर्णन के आधार पर मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

2. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण और कठोर प्रायोगिक नियंत्रण ---------- की देन है।

1.8 सारांश (Summary)

- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जिसमें मानसिक प्रक्रियाओं जैसे स्मृति, समस्या समाधान, संप्रत्यय निर्माण, तर्कणा, निर्णय प्रक्रिया, भाषा उपयोग, प्रत्यक्षीकरण आदि का अध्ययन किया जाता है।
- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है।
- संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में मनुष्य की प्रारम्भ से ही रूचि रही है। विलहेल्म वुण्ट प्रयासों से मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र तथा शरीर क्रिया विज्ञान से पृथक हो एक विज्ञान के रूप में स्थापित हुई। बाद में इबिंगहास, विलियम जेम्स, व्यवहारवाद, गेस्टाल्ट स्कूल द्वारा संज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण दिशा मिली। 1960 तथा 1970 के दशकों में तथा तकनीकियों के विकास विशेषरूप से कम्प्यूटर तथा संचार विज्ञान ने संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के वर्तमान स्वरूप में अपना विशिष्ट योगदान दिया।

1.9 शब्दावली (Glossary)

संज्ञान (Cognition) - मानसिक प्रक्रियाएँ जैसे प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, प्रतिमा, भाषा उपयोग, समस्या समाधान, तर्कणा, निर्णय लेना इत्यादि।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास उत्तर 1.

1. मानसिक प्रक्रियाओं

अभ्यास उत्तर 2.

1. वैज्ञानिक 2. अधिक

अभ्यास उत्तर 3.

1. अन्तर्दशन 2. व्यवहारवादियों

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type questions)

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता क्यों हैं?
3. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के इतिहास पर प्रकाश डालिए।
4. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की परिभाषा एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के प्रादुर्भाव के कारकों को स्पष्ट कीजिए।

लघुरात्मक प्रश्न

1. संज्ञान का अर्थ स्पष्ट कीजिए |
2. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की परिभाषा लिखिए|

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- एटकिन्सन, एटकिन्सन, स्मिथ तथा हिलगार्ड (1985) साइकोलोजी,एच-बी-जे-, यू.के.।
- केलोग, आर.टी.(2012). कोग्निटिव साइकोलोजी, सेज पब्लिकेशन, इंडिया प्रा.लि., नई दिल्ली ।
- निस्सर (1967) कोग्निटिव साइकोलोजी, सउल, मेकलेड, मेनचेस्टर।
- सिंह, अरूण कुमार (2008) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्रीवास्तव, बीना, आनन्द, वर्षा, तथा बानी आनन्द (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड दिल्ली।
- वुड तथा वुड (1996) द वर्ल्ड ऑफ साइकोलोजी,एलिन एण्ड बेकन, न्यूयार्क ।

इकाई - 2

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र

Scope of Cognitive Psychology

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2. उद्देश्य

2.3 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र

2.3.1 प्रत्यक्षीकरण

2.3.2 अवधान

2.3.3 चेतना

2.3.4 पैटर्न पहचान

2.3.5 स्मृति

2.3.6 चिंतन एवं संप्रत्यय निर्माण

2.3.7 भाषा

2.3.8 ज्ञान का निरूपण

2.3.9 प्रतिमावली

2.3.10 संज्ञानात्मक तंत्रिक विज्ञान

2.3.11 विकासात्मक मनोविज्ञान

2.3.12 मानव बुद्धि एवं कृत्रिम बुद्धि

2.4 सारांश

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.6 निबंधात्मक प्रश्न

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान एक अन्तर्राविज्ञानीय विज्ञान है जिसके क्षेत्र में मनोविज्ञान, दर्शन, भाषा विषयक, कृत्रिम बुद्धि, तंत्रिका विज्ञान, मानवशास्त्र इत्यादि के क्षेत्र सम्मिलित हैं। कुछ विद्वानों ने

इसमें समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र को भी जोड़ा है। इस प्रकार संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र अत्यंत ही विस्तृत है।

प्रस्तुत अध्याय में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्रों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

2.2 उद्देश्य (Objective)

- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र के बारे में बता सकेंगे।

2.3 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र (Field of Cognitive Psychology)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र विस्तृत है, क्योंकि यह विभिन्न क्षेत्रों से प्रविधियों एवं सिद्धान्तों के उपयोग संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में करता है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र निम्नलिखित है-

2.3.1 प्रत्यक्षीकरण (Perception)

आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में प्रत्यक्षीकरण एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। उद्दीपकों का तात्कालिक अनुभव प्रत्यक्षीकरण कहलाता है। प्रत्यक्षीकरण के क्षेत्र में किये गए प्रयोगों से विभिन्न तरह के संवेदी संकेतों के प्रति मनुष्यों की संवेदनशीलता तथा उन संकेतों की व्याख्या करने का तरीकों का पता चलता है। इन अध्ययनों से संज्ञानात्मक मनोविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँच सकने में समर्थ हुए हैं कि विभिन्न तरह के प्रत्यक्षीकरण पर व्यक्ति के अवधान का सक्रिय होना महत्वपूर्ण होता है तथा किसी भी उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण तभी हो पाता है, जब उद्दीपक की तीव्रता एक विशेष देहली पर या उससे ऊपर की देहली पर हो। इसमें दृष्टि भ्रम की प्रक्रिया से संबंधित अध्ययन भी किए जाते हैं।

2.3.2 अवधान (Attention)

अवधान संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों का अन्य एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। व्यक्ति सिर्फ सूचना इकट्ठा करने वाला एक जीव ही नहीं होता है, बल्कि वह किसी भी समय बहुत सारे सूचनाओं में से कुछ ही सूचना को चुनकर उस पर ध्यान देने में समर्थ होता है। इस प्रकार अवधान सूचनाओं के चयन से संबंधित है। व्यक्ति द्वारा सूचनाओं को संसाधित करने की क्षमता सचमूच में दो स्तरों पर सीमित होता है- संवेदी स्तर तथा संज्ञानात्मक स्तर। ऐसा देखा गया है कि व्यक्ति के सामने बहुत सारे संवेदी संकेत यदि एक साथ उपस्थित किये जाते है, तो वह अतिभारित हो जाता है और उनमें से कुछ को चयनित करके उनपर ध्यान दे पाता है। उसी तरह से व्यक्ति यदि स्मृति में बहुत सारे सूचनाओं को संसाधित करता है तो वह अतिभारित हो जाता है और तब वह कुछ पर ही ध्यान देकर अंतिम रूप में उन्हें संसाधित करता है। प्रयोगों में यह देखा गया कि जिन सूचनाओं पर व्यक्ति अवधान देता है केवल उन्हीं सूचनाओं को ही रिपोर्ट कर पाता है।

2.3.3 चेतना (Consciousness)

चेतना का अध्ययन संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए काफी महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि इन अध्ययनों से व्यक्ति के कई संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को समझने में मदद मिलती है। चेतना से तात्पर्य

बाह्य या आंतरिक परिस्थितियों के वर्तमान बोध या जानकारी से होता है। जिस किसी उद्दीपक की उपस्थिति आपकी जानकारी में है वह आपकी चेतना में होगी। चेतना का विशेष रूप से अध्ययन करके संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा तात्कालिक स्मृति, स्पष्ट संज्ञान, आदि को समझने में पर्याप्त मदद मिलती है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक चेतना को दो वर्गों में बांटकर अध्ययन करते हैं - चेतन वर्ग तथा अचेतन वर्ग। चेतन वर्ग में तो उक्त चीजों तथा तात्कालिक स्मृति, स्मरण, घोषणात्मक स्मृति आदि का अध्ययन किया जाता है तथा अचेतन वर्ग में अध्ययन कर मूलतः दीर्घकालीन स्मृति, कार्यविधि स्मृति, अर्थगत स्मृति, अवचेतन उत्तेजना आदि को समझने में मदद मिलती है।

2.3.4 पैटर्न पहचान (Identification of Pattern)

प्रतिरूप पहचान का क्षेत्र संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र है। व्यक्ति अपने वातावरण के उद्दीपकों को एक एकाकी संवेदी घटना के रूप में कम ही प्रत्यक्षीकरण करता है बल्कि वह उन उद्दीपकों को वह एक जटिल प्रतिरूप के रूप में प्रत्यक्षित करता है। इस तरह प्रतिरूप पहचान के क्षेत्र में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने विशेष प्रयोग करके उन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को समझने की कोशिश की है, जिनके माध्यम से व्यक्ति जटिल उद्दीपक प्रतिरूप को समझता है तथा उसे वर्गीकृत करता है अथवा किस प्रकार उद्दीपकों को प्रतिरूप में समझता है।

2.3.5 स्मृति (Memory)

स्मृति संचयित सूचनाओं के पुनःप्राप्ति में सहायक होती है। स्मृति एक क्षेत्र है, जिसमें संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक सक्रिय रहे हैं। इन मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि स्मृति तथा प्रत्यक्षीकरण एक साथ कार्य करते है तथा व्यक्ति के संज्ञानात्मक क्षमता को मजबूत करते है। मुख्य रूप से स्मृति के दो प्रकार हैं- लघुकालीन स्मृति एवं दीर्घकालीन स्मृति। दीर्घकालीन स्मृति में व्यक्ति सूचनाओं को लम्बे समय तक या स्थायी तौर पर संचित करके रखता हैं लघुकालीन स्मृति में व्यक्ति करीब 30 सैकंड़ तक ही सूचनाओं को संचित रख पाता है। दीर्घकालीन स्मृति में संचित सूचनाओं के माध्यम से व्यक्ति उचित ढंग से किसी घटना की व्याख्या कर पाता है। दीर्घकालीन स्मृति की क्षमता तथा अवधि की सीमा नहीं होती। इन दोनों स्मृतियों के अतिरिक्त एक अन्य स्मृति जिसे कार्य स्मृति (Working memory) कहा जाता है, संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए महत्वपूर्ण है। ऐसी स्मृति से तात्पर्य एक ऐसे तंत्र से होता है, जिनमें सूचनाओं को अल्पकालीन अवधि के लिए संचित की जाती है परंतु इन सूचनाओं को व्यक्ति विभिन्न का संज्ञानात्मक कार्य करते समय उसमें कुछ जोड़-तोड़ भी करता हैं। इस तरह से कार्य स्मृति एक ऐसा कार्यस्थल होता हे, जिसमें नयी एवं पुरानी सूचनाओं को लगातार संयोजित एवं परिवर्तित किया जाता है। इस तरह से कार्य स्मृति इस विचार को नहीं मानता कि लघुकालीन स्मृति में सूचनाओं को निष्क्रिय रूप से संचित किया जाता है बल्कि यह बताता है कि कार्य स्मृति अन्य संज्ञानात्मक क्रियाओं को संचालित करने में मदद करती है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक इस बात पर भी केन्द्रित करते हैं कि स्मृति और संज्ञान में क्या संबंध है या किस प्रकार व्यक्ति सूचनाओं की पुनर्प्राप्ति करता है। पहचान तथा प्रत्याहान की मानसिक प्रक्रियाओं में क्या अंतर होता है इत्यादि पर भी संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में अध्ययन किया जाता है।

2.3.6 चिंतन एक संप्रत्यय निर्माण(Thinking: Concept Formation)

चिंतन एवं संप्रत्यय निर्माण दो संबंध क्षेत्र है जहाँ संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक अत्यधिक सक्रिय रहे हैं। जिसके माध्यम से प्राणी विभिन्न तरह की मानसिक प्रक्रियाओं जैसे निर्णय प्रक्रिया, तर्कणा, कल्पना करना तथा समस्या समाधान इत्यादि की अंतक्रियाओं से एक नया मानसिक प्रतिनिधित्व निर्मित करता हैं। संप्रत्यय निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं या विचारों के वर्ग से एक सामान्य गुण का पता लगाता है। इन दोनों क्षेत्रों में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक प्रयोगात्मक अध्ययन किये गए हैं, जिनसे विभिन्न क्रियाओं मानसिक अधिगम, साहचर्य, परिकल्पना जाँच आदि को समझने में सहायता मिलती है।

2.3.7 भाषा (Language)

संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए भाषा संचार एक ऐसा तंत्र है, जिसमें चिंतन आवाजों या संकेतो के माध्यम से संचारित होता है। उन संज्ञानात्मक क्रियाओं में भाषा महत्वपूर्ण है, जिनमें चिंतन प्रत्यक्षण, उच्च क्रम संज्ञान तथा संचारी कौशल आदि उपयोगी है। आरम्भ में अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि बायें प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध में कुछ केन्द्र हैं जो संभाषण की उत्पति तथा भाषा बोध जैसे महत्वपूर्ण क्रियाओं का नियंत्रण करते हैं। भाषा विकास के क्षेत्र में तीन विचारधाराएँ दी गई है। पहली विचारधारा चौमस्की की है, जिनके अनुसार भाषा एक जन्मजात प्रक्रिया होती है। दूसरी विचारधारा के अनुसार भाषा ग्रहण पुनर्बलन के माध्यम से अर्जित होता है। यह एक जन्मजात प्रक्रिया नहीं है। तीसरी विचारधारा के अनुसार भाषा विकास जैविक परिपक्वता तथा वातावरण के साथ अतः क्रिया का परिणाम होता है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए भाषा का अध्ययन अनेक कारणों से महत्वपूर्ण माना जाता है-

- भाषा सीखना व समझना एक जटिल प्रक्रिया है। बालक प्रारम्भ के वर्षों में भाषा अर्जित करता है।
- मानव भाषा विकास द्वारा एक अनोखे प्रकार का अमूर्तिकरण या पृथक्करण का विकास होता है, जो संज्ञानात्मक विकास के लिए आवश्यक है।
- संचार का मुख्य साधन भाषा होती है।
- भाषा व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है, जो संज्ञान का एक महत्वपूर्ण भाग है। व्यक्ति अपने वातावरण को किस तरह से प्रत्यक्षण करता है, यह उसके द्वारा प्रयुक्त की गई भाषा से भी प्रभावित होता है।
- मानव चिंतन तथा समस्या समाधान व्यवहार प्रक्रिया में भाषा सन्निहित होती है।
- शब्द, संभाषण तथा अर्थ में कई विशिष्ट प्रमस्तिकीय क्षेत्र सम्मिलित होते हैं और इस तरह से भाषा एवं तंत्रिका संरचनात्मकता के बीच एक अर्थपूर्ण संबंध स्थापित होता है।

इन अनेक कारणों से भाषा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र है। भाषा संक्रिया प्रमुखतः भाषा विज्ञान से संबंधित है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में भाषा संक्रिया का अध्ययन अन्य विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायक है।

2.3.8 ज्ञान का निरुपण या संसाधन (Expression of Knowledge & Resources)

सभी तरह के संज्ञान के लिए ज्ञान का निरुपण को संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा महत्ता दी गयी है। ज्ञान के निरुपण से तात्पर्य इस बात से होता है कि सूचनाओं का संकेतीकरण किस तरह से होता है और मस्तिष्क में संचित सूचनाओं के साथ वे किस तरह से संयोजित होती है। संज्ञात्मक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस तरह के संज्ञान के दो पहलू होते हैं- मन में ज्ञान का संप्रत्यात्मक संकेतीकरण तथा वह तरीका जिसके माध्यम से सूचनाएं मस्तिष्क में संचित तथा संसाधित होती हैं। ज्ञान के निरुपण के अनुसंधानों में विशेष अभिरुचि शब्दों तथा भाषाओं को अध्ययन में रही है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि मनुष्यों में शाब्दिक विकास अन्य प्रजातियों की तुलना में काफी श्रेष्ठ रहा है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इसका दूसरा कारण यह है कि इस अर्थगत संरचना सें हमें यह पता चल पाता है कि मन में किस तरह की सूचनाओं को संचित किया जा सकता है और किस तरह से एक संचित सूचना मन के अन्य पहलूओं से संबंधित होता है। व्यक्ति क्यों मातृभाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा सीखने में कठिनाई महसूस करता है इत्यादि प्रश्न भी संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए महत्वपूर्ण रहे हैं।

2.3.9 प्रतिमावली

संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए प्रतिमावली एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र है। किसी अनुपस्थित वस्तु या घटना का मानसिक चित्रण करना मानसिक प्रतिमावली कहलाता है। मानसिक प्रतिमावली का अध्ययन इस तथ्य से संबंधित है कि स्मृति में सूचनाओं का चित्रण किस तरह से होता है। इस तरह के अध्ययन से संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों की स्मृति व चिंतन स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है। स्मृति या चिंतन या मानसिक प्रक्रियाओं में सूचनाओं के चित्रण से संबंधित अध्ययनों के परिणामफलस्वरूप एक महत्वपूर्ण प्राक्कल्पना सामने आयी है जिसे द्वै-कूटसंकेत प्राक्कल्पना कहा जाता है। इसके अनुसार सूचनाओं को स्मृति में शाब्दिक तथा काल्पनिक में से किसी रूप में या दोनों ही रूप में संचित किया जा सकता है। व्यवहार तथा तंत्रकीय आंकड़े इस प्राकल्पना का समर्थन करते हैं।

2.3.10 संज्ञानात्मक तंत्रिकाविज्ञान (Cognitive Neuro Science)

तंत्रिका विज्ञान तथा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के मिलने से तंत्रिका मनोविज्ञान या संज्ञानात्मक तंत्रिका विज्ञान बना है। संज्ञानात्मक तंत्रिका विज्ञान, तंत्रिका विज्ञान तथा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान विशेषतः स्मृति, संवेदन प्रत्यक्षीकरण, समस्या समाधान, भाषा संसाधन आदि से संबंधित सिद्धान्तों एवं उनके जैविक आधारों की व्याख्या स्पष्ट करता है। तंत्रिका मनोवैज्ञानिकों के प्रयास के फलस्वरूप स्मृति के प्रकार तथा भाषा संसाधन जैसे संप्रत्ययों का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से हो पा रहा है। मस्तिष्क की सूक्ष्मदर्शनीय संरचना विभिन्न संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं अर्थात् स्मृति, प्रत्यक्षीकरण, समस्या समाधान आदि से प्रत्यक्ष रूप से संबद्धित दिखते है। इस प्रकार संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक तंत्रिका विज्ञान के क्षेत्र में भी अध्ययन करते हैं।

2.3.11 विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental Psychology)

अधिगम तथा विकास संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की प्रक्रियाओं में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। व्यक्ति ज्ञान व सूचनाओं को अर्जित करता है। नवजात शिशु न्यून अथवा बिना ज्ञान के पैदा होता है और वे शीघ्र ही चलना, बोलना और पहचानना सीख लेते हैं। अधिगम और विकास में हुए शोध इन प्रक्रियाओं को जानने का प्रयास करते हैं और जिसमें संज्ञानात्मक मनोविज्ञान रूचि रखते हैं। विकासात्मक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में किये गये प्रयोगों एवं अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्ति की संज्ञानात्मक संरचना किस तरह से विकसित होती है। पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति का बौद्धिक वर्द्धन जैविक रूप से निर्धारित होता है और दो महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं द्वारा संचालित होता है- अनुकूलन जिसमें वातावरण के साथ संज्ञानात्मक समायोजन शामिल होता है तथा इसमें आत्मीकरण तथा समायोजन जैसी प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती है। पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ होती हैं- संवेदी पेशीय, प्राक्संक्रियात्मक, ठोस संक्रियात्मक तथा औपचारिक संक्रियात्मक। संज्ञानात्मक विकास किसी एक अवस्था में गुणात्मक तथा रेखीय परिवर्तन तथा चारों अवस्थाओं के दौरान होने वाले गुणात्मक परितर्वनों का परिणाम होता है। इस सिद्धान्त के आधार पर संज्ञानात्मक विकास के बारे में बहुत सारे पूर्वकथन करने में मदद मिलती है तथा इसका फायदा बाल विकास के साथ ही शिक्षा मनोवैज्ञानिकों को भी होता है। संज्ञानात्मक विकास की एक अन्य व्याख्या बाईगोटस्की ने की है, जिन्होंने जैविक कारक को संज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण निर्धारक नहीं माना है। उनके अनुसार विकास में व्यक्ति के प्रशिक्षण तथा अधिगम महत्वपूर्ण होते हैं। चिन्तन एवं भाषा की उत्पत्ति स्वतंत्र रूप से होती है, जिसमें चिंतन जैविक रूप से प्रभावित होता है किंतु भाषा सामाजिक रूप से अर्जित की जाती है। इस प्रकार संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक इस प्रश्न पर अध्ययन करते है कि संज्ञानात्मक विकास किस प्रकार जैविक या अर्जित प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है।

2.3.12 मानव बुद्धि एवं कृत्रिम बुद्धि(Human Intelligence & Artificial Intelligence)

मानव बुद्धि एक प्रमुख संज्ञानात्मक प्रक्रिया है, जिनमें कई तरह की मानसिक क्षमताएं सम्मिलित होती हैं। सचमुच में यह एक सार्वभौमिक क्षमता है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समायोजन करता है तथा विवेकशील चिन्तन करता है। मानव बुद्धि ठोस एवं अमूर्त संप्रत्ययों को समझने, विचारों एवं वस्तुओं के संबंध को समझने तथा ज्ञान को अर्थपूर्ण ढंग से उपयोग करने की क्षमता होती है। इस तरह से इसमें कई तरह के संज्ञानात्मक क्षमताएं सम्मिलित होती हैं। यही कारण हैं कि संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए यह एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है जिसका गहन अध्ययन किया गया है।

कृत्रिम बुद्धि से तात्पर्य मशीन के संज्ञानात्मक परिघटनाओं के अध्ययन से है। उन सभी कम्प्यूटर उत्पन्न उत्पादकों से संबंधित होता है जिसे मानव द्वारा किया बुद्धिमता कार्य कहा जाता है। कृत्रिम बुद्धि कम्प्यूटर विज्ञान का ऐसा अंग है जिसका संबंध कम्प्यूटर के विकास तथा कम्प्यूटर कार्यक्रम से होता है तथा जो मानव संज्ञानात्मक कार्यो का अनुसरण करता है। कृत्रिम बुद्धि के माध्यम से संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षण, भाषा, समस्या समाधान, गणना, चिंतन आदि जैसी मानसिक प्रक्रियाओं का गहन अध्ययन करके उसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र विस्तृत है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों का यह प्रयास रहा है कि इन क्षेत्रों का गहन अध्ययन करके उनके स्वरूप को ठीक ढंग से समझा जाए तथा सामान्यीकरण किया जाये। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विस्तृत कार्यक्षेत्र के कारण इसकी शिक्षा मनोविज्ञान, समाज मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान, संगठनात्मक मनोविज्ञान, अपराध मनोविज्ञान इत्यादि में विशेष उपादेयता है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौनसा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र नहीं है?

   (अ) चिंतन (ब) संप्रत्यय निर्माण

   (स) कृत्रिम बुद्धि (द) सभी प्रकार की मशीनें

2. कौनसा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान से संबंधित नहीं है।

   (अ) वनस्पति विज्ञान (ब) तंत्रिका विज्ञान

   (स) विकासात्मक मनोविज्ञान (द) मानव बुद्धि

2.4 सारांश (Summary)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान एक अन्तराविज्ञानीय विज्ञान है, जिसका कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। प्रत्यक्षीकरण, अवधान, चिंतन, संप्रत्यय निर्माण, स्मृति, भाषा समाधन, ज्ञान का निरूपण, संज्ञानात्मक तंत्रिका विज्ञान, विकासात्मक मनोविज्ञान, कृत्रिम बुद्धि इत्यादि इसके प्रमुख क्षेत्र है।

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) द (2) अ

2.6 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र की विवेचना कीजिए।
2. मानव बुद्धि (Human Intelligence) एवं कृत्रिम बुद्धि (Artificial Intelligence) में क्या अंतर है ?

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

- एटकिन्सन, एटकिन्सन, स्मिथ तथा हिलगार्ड (1985) साइकोलोजी,एच-बी-जे-, यू.के.।
- केलोग, आर.टी.(2012). कोग्निटिव साइकोलोजी, सेज पब्लिकेशन, इंडिया प्रा.लि., नई दिल्ली।
- निस्सर (1967) कोग्निटिव साइकोलोजी, सउल, मेकलेड, मेनचेस्टर।

- सिंह, अरूण कुमार (2008), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्रीवास्तव, बीना, आनन्द, वर्षा, तथा बानी आनन्द (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड दिल्ली।
- वुड तथा वुड (1996) द वर्ल्ड ऑफ साइकोलोजी,एलिन एण्ड बेकन, न्यूयार्क।

इकाई - 3

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ

Methods of Cognitive Psychology

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के उपागम

3.3.1 सूचना संसाधन उपागम

3.3.2 संबंधवादी उपागम

3.4 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ

3.4.1 प्रयोगात्मक विधि

3.4.2 कम्प्यूटर आधारित विधि

3.4.3 परिस्थितिपरक वैधता

3.4.4 अन्य विधियाँ

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए अनेक विधियों का उपयोग किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के उपागम तथा दो प्रमुख विधियों का वर्णन किया जाएगा।

3.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के सूचना संसाधन तथा संबंधवादी उपागम के बारे में बता सकेंगे। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की प्रयोगात्मक विधि तथा कम्प्यूटर आधारित विधि के बारे में बता सकेंगे। परिस्थितिपरक वैधता के बारे में बता सकेंगे।

3.3 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के उपागम (Approaches of Cognitive Psychology)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए मुख्यतः दो तरह के उपागमों का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों उपागमों की जानकारी से संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियों को समझना सरल होगा। ये उपागम इस प्रकार है-

1. सूचना संसाधन उपागम (Information Processing Approach)
2. संबंधवादी उपागम (Connectivist Approach)

3.3.1 सूचना संसाधन उपागम (Information Processing Approach)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का एक प्रमुख उपागम सूचना संसाधन उपागम है। इस उपागम की उत्पत्ति का ही आधार कम्प्यूटर है। मनुष्य एक कम्प्यूटर के समान ही वातावरण से सूचनाओं का ग्रहण करता है, फिर उन्हें एक चरण से दूसरे चरण होते हुए एक क्रम से संसाधित करता है और अंत में किसी निर्णय पर पहुँचता है और एक खास अनुक्रिया करता है। सूचना संसाधन मनोवैज्ञानिकों के इस उपागम को 'कम्प्यूटर रूपक' कहा जाता है।

सूचना संसाधन उपागम को प्रायः एक अमूर्त्त विश्लेषण के रूप में स्पष्ट किया जाता है। अमूर्त्त विश्लेषण से अर्थ यहां यह है कि इस उपागम में तंत्रकीय घटनाओं की व्याख्या स्पष्टतः नहीं होती है। मानसिक एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ यद्यपि घटनाओं पर आधारित होती है परंतु वे अपने आप में तंत्रकीय घटना नहीं होती है। इस प्रकार संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ अमूर्त होती है।

सूचना संसाधन प्रक्रिया के दृष्टिकोण से संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों की तुलना एक कम्प्यूटर प्रोग्राम से की जा सकती है। कम्प्यूटर प्रोग्रामर एक ऐसा प्रोग्राम विकसित करता है जिसके सहारे मशीन कुछ खास तरह की गणनाएँ कर सके। प्रोग्राम तैयार करने में प्रोग्रामर मशीन के भीतर के भागों के बारे में नहीं सोचता है। वह कम्पयूटर को मशीन मानता हैं और आंकड़ों की संरचना और उनसे संबंधित गणनाओं के बारे में ही सोचता है। उनका तैयार किया गया यह कार्यक्रम मशीन पर निर्भर नहीं होता है। इसी तरह संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक किसी मानसिक प्रक्रिया में होने वाले तंत्रकीय आधारों से कोई ताल्लुकात नहीं रखते हैं, बल्कि उनका संबंध केवल इस बात से होता है कि विशिष्ट सूचना मिलने पर संज्ञानात्मक या मानसिक प्रक्रियाओं का संचालन किस तरह से होता है।

सूचना संसाधन मॉडल (Information Processing Model) में तीन अवधारणाएँ होती हैं-

1. संज्ञान को अवस्थाओं की एक श्रृंखला के रूप में समझा जा सकता है।
2. प्रत्येक अवस्था पर सूचनाओं की प्राप्ति पर विशिष्ट प्रक्रियाएँ होती हैं। इस मॉडल के अनुसार इन अवस्थाओं में संक्रियाओं के क्रम का परिणाम अंतिम अनुक्रिया होती है। इस संक्रियाओं में प्रत्यक्षण, सूचनाओं का कूट संकेतन, स्मृति से सूचनाओं का प्रत्याह्वान, संप्रत्यय निर्माण, निर्णय प्रक्रिया आदि प्रमुख होते हैं।
3. प्रत्येक अवस्था या चरण अपने गत चरणों या अवस्थाओं से सूचनाएँ प्राप्त करती है और तब अपने विशिष्ट कार्य करती है। इस मॉडल के अनुसार सभी तत्व एक-दूसरे से संबद्धित होते है, अतः आरंभिक अवस्था की शुरुआत की पहचान कठिन हो जाती है।

इस मॉडल द्वारा उन अवस्थाओं को पूर्णरूपेण स्पष्ट नहीं किया जा सका है कि जिनके सहारे सूचनाओं को संसाधित किया जाता है। मानव मन में सूचनाएँ किस रूप में यह भी स्पष्ट नहीं है।

मेसरों एवं कोवान (1993), पामर एवं किमची (1996) ने संज्ञानात्मक सूचना संसाधन उपागम के पाँच बिन्दुओं का विवरण दिया है-

1. **सूचनात्मक वर्णन -** इससे तात्पर्य यह होता है कि वातावरण जिसमें व्यक्ति रहता है तथा उसका मानसिक रूप से संसाधन दोनों का ही निर्धारण सूचनाएँ जो उनमें संचित होती है , के प्रकार तथा मात्रा से होता है।
2. **आवर्त्ती अपघटन -** संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ सरल से सरल मानसिक प्रक्रियाओं के रूप में एक पदानुक्रम में सुव्यवस्थित होती हैं तथा उच्च-स्तरीय प्रयोगों के माध्यम से उस पदानुक्रम को विभाजित कर देख सकते हैं।
3. **प्रवाह सततता -** प्रवाह सततता का नियम यह बतलाता है कि संसाधित सूचनाएँ निरंतर बढ़ती जाती है अर्थात् एक मानसिक प्रक्रिया से संसाधित होकर फिर दूसरी मानसिक प्रक्रिया से संसाधित होने के लिए आगे बढ़ते जाती है।
4. **प्रवाह गत्यात्मकता -** इसके अनुसार सभी मानसिक एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ तंत्रकीय तंत्र की रासायनिक एवं वैद्युतीय घटनाओं के साथ-साथ होती पायी जाती है। चूँकि इन स्नायविक या तंत्रकीय प्रक्रियाओं में समय लगता है, इसलिए कोई मानसिक प्रक्रिया तत्काल नहीं हो सकती है। यह समय एक सैंकड़ का हजारवाँ भाग भी हो सकता।
5. **दैहिक मूर्त्तरूप -** इसके अनुसार सभी संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ दैहिक तंत्र में अर्थात् एक स्नायविक तंत्र में संपन्न होती हैं। दैहिक तंत्र में सूचनाएँकिसी न किसी तरह के दैहिक घटनाओं द्वारा होती है। जैसे, यदि हम कोई आवाज सुनते है, तो उस शब्द का ज्ञान निश्चित रूप से अमूर्त्त होता है परंतु इस शब्द का ज्ञान निश्चित रूप से संज्ञानात्मक एवं स्नायविक तंत्रों में एक विशिष्ट तंत्रकीय घटनाओं द्वारा निरूपित होता है। इस तरह से ज्ञान को दैहिक तंत्र में निरूपण के माध्यम से रखा जाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सूचना संसाधन उपागम में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का एक अमूर्त्त एवं क्रमिक विश्लेषण होता है। इसके अनुसार संज्ञानात्मक तंत्र एक संगठन के रूप में कार्य करता हैं जिसमें कई अलग-अलग हिस्से होता है जो एक -दूसरे से भिन्न होता है और स्वतंत्र ढंग से किन्तु संबंधित होकर कार्य करते हैं।

3.3.2 संबंधवादी उपागम(Connectivist Approach)

संबंधवादी उपागम मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण तंत्रकीय घटनाओं तथा उनके आपसी संबंधों पर आधारित होता है। संबंधवादी उपागम द्वारा मस्तिष्कीय रूपक का दृष्टिकोण अपनाया जाता है। चर्चलैंड (1989) के अनुसार, संबंधवादी उपागम का आधार तंत्रकीय एवं गणितीय होता है। इस मॉडल के अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण तंत्रकीय घटनाओं के रूप में किया जा सकता हैं।

संबंधवादी उपागम के अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण क्रमिक न होकर समानान्तर संसाधन द्वारा होता है। समानान्तर संसाधन की प्रक्रिया में मानसिक प्रक्रियाएं एक साथ एक से

अधिक संज्ञानात्मक कूटसंकेत में परिवर्तित होती है न कि एक समय में एक ही संज्ञात्मक कूटसंकेत से जैसा कि क्रमिक संसाधन की प्रक्रिया में होता है। संबंधवादियों के अनुसार बहुत सी सार्थक संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ एक सेंकड के भीतर संपन्न की जा सकती है। एक न्यूरोन का अन्य न्यूरोन के साथ पदानुक्रमिक संबंध नहीं होता है। इनके संज्ञानात्मक तंत्र का स्वरूप मॉड्यूलर नहीं होता है अर्थात् उसे छोटे-छोटे भागों में नहीं बांटा जा सकता है। प्रत्येक संज्ञानात्मक कार्य में तंत्रकीय एवं संज्ञानात्मक तंत्र एक संपूर्ण इकाई के रूप में कार्य करता है न कि सहयोगी तत्वोंके तंत्र के रूप में। इस तरह से मानव मष्तिष्क तथा संज्ञानात्मक तंत्र एक पूर्ण इकाई के रूप में होकर एक समय में एक से अधिक कार्य करता है।

निष्कर्षतः संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण के लिए संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में दो तरह के उपागम मुख्यतः दिए गये हैं। संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ठीक ढंग से समझने के लिये इन दोनों उपागमों के तथ्यों पर विचार करना होगा।

अभ्यास प्रश्न 1

1. .....उपागम के अनुसार संज्ञान को क्रमिक अवस्थाओं की श्रृंखला के रूप में समझा जा सकता है।
2. संबंधवादी उपागम के अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण ..... संसाधन से होता है।

3.4 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ (Methods of Cognitive Psychology)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए मुख्यतः दो तरह की विधियों का उपयोग किया जाता है जो इस प्रकार है-

1. प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)
2. कम्प्यूटर आधारित विधि (Computer based Method)

3.4.1 प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

प्रयोग विधि में अनुसंधानकर्ता नियंत्रित परिस्थिति में कुछ चरों में परिवर्तन करते हैं और उस परिवर्तन के पड़ने वाले प्रभाव का अन्य चरों पर प्रेक्षण व अध्ययन करते हैं। जिन चरों में जोड़-तोड़ या परिवर्तन होता है, उसे स्वतंत्र चर तथा जिस चर पर उस परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है, उसे परतंत्र चर कहते हैं। प्रयोग व्यक्ति को कारण-प्रभाव संबंध स्थापित करने में सहायता करता है। प्रयोग विधि की आंतरिक वैधता उच्च होती है किन्तु सामान्यीकरण की क्षमता कम होती है। साधारणतया प्रयोगों में परतंत्र चर गति व शुद्धता, शारीरिक क्रिया (EEG, PET, FMRI) समाधानों की संख्या, अन्तक्रियाओं की बारबांरता इत्यादि होते हैं। संज्ञानात्मक मनोविज्ञानियों द्वारा तो अध्ययन किये जाने वाले परतंत्र चरों की संख्या अत्यधिक है, परंतु प्रायः दो तरह की घटनाओं पर वे अधिक बल महत्व देते हैं-

- त्रुटियों के प्रतिरूप
- जटिल उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया समय

संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेषतः यह जानने की कोशिश की जाती है कि संबंधित मानसिक प्रक्रिया को पूरा करने में व्यक्ति किस तरह की त्रुटि कर रहा है। जैसे फ्रोमकिन (1971) तथा गैरेट (1982) ने स्पष्ट करने के लिए इसे एक उदाहरण दिया है- मान लिया जाए कि कोई व्यक्ति को किसी संभाषण के एक अंश में कहना 'तर्तमान तर्क' चाहता है और उसके बदले में वह गलती से वर्तमान वर्क कहता है। इस त्रुटि से हमें संभाषण में सम्मिलित संज्ञानात्मक प्रक्रिया के बारे में महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। इस त्रुटि को ध्यान में रखकर तब यह कहा जा सकता है कि ऐसी त्रुटि पद 'व तथा त' के बदलने के कारण से हुई है। द्वितीय शब्द का प्रथम पद के शब्द के प्रथम पद के साथ मिल जाने से यह त्रुटि उत्पन्न हुई है। इस प्रेक्षण से तब इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि मानव मस्तिष्क शब्दों का निर्माण एक-एक पद को संयोजित करके करता है।

उपस्थित किये गए उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया समय का मापन करके भी संज्ञानात्मक प्रक्रिया के बारे में जाना जाता है। मेयर तथा स्केवानेवेल्डट के कार्यों में इसका उदाहरण मिलता है। इनकी प्राक्कल्पना यह थी कि अर्थ के दृष्टिकोण से संबंधित शब्दों की पहचान असंबंधित शब्दों की पहचान की अपेक्षा तेजी से होती है। अतः इसका प्रतिक्रिया समय अर्थात् संबंधित शब्दों का प्रतिक्रिया समय कम होगा। इस प्राक्कल्पना की जांच के लिये उन्होंने प्रयोज्यों को संबंधित शब्दों तथा असंबंधित शब्दों के युग्म को उपस्थित किया। प्रयोज्यों को शीघ्र ही यह बताना था कि युग्म के दोनों शब्द आपस में साहचर्चित हैं या नहीं। परिणाम में यह पाया गया कि संबंधित शब्दों को प्रयोज्यों ने उन शब्दों की तुलना में तेजी से पहचान कर लिया जो असंबंधित थे। इस परिणाम के आधार पर संज्ञानात्मक प्रक्रिया के बारे में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि किसी शब्द की पहचान से संबंधित शब्दों का पठन एवं पहचान में मदद मिलती है। इसका निष्कर्ष यह है कि शब्दों की पहचान कम से कम अंशतः अवश्य ही उनके संदर्भ के अनुसार होता है।

स्पष्ट हुआ कि संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक त्रुटियों के पैटर्न तथा प्रतिक्रिया काल जैसे सूचकांकों के आधार पर मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सक्षम हो पाते हैं

3.4.2 कम्प्यूटर आधारित विधि (Computer based Method)

इस विधि में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक कम्प्यूटर का उपयोग करके संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं एवं संबंधित तंत्रकीय प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं। इसका उपयोग सूचना संसाधन उपागम के समर्थक तथा संबंधवादी उपागम के समर्थक दोनों ही करते हैं। किसी समस्या के समाधान में सम्मिलित मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए कम्प्यूटर को विशेष निर्देश दिया जाता है और चूंकि कम्प्यूटर मानव मस्तिष्क के समान कार्य करता है अतः आसानी से हमें उस मानसिक प्रक्रिया के स्वरूप के बारे में पता चल जाता है।

इस विधि के प्रमुख दो गुण हैं - (1) इस विधि द्वारा अध्ययन में अनुसंधान अपने सिंद्धात को अधिक वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक तरीके से जांच कर पाते हैं। जब कोई मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को कम्प्यूटर प्रोगाम में बदला जाता है, तो स्पष्टतः उससे यह पता चल जाता है कि उसमें वस्तुनिष्ठता कितनी है।

(2) कभी कभी कुछ संज्ञानात्मक कार्य जो आपस में एक दूसरे से काफी भिन्न दिखते हैं, का अध्ययन कम्प्यूटर के वैसे प्रोगाम द्वारा आसानी से कर लिये जाते हैं जो प्रोग्राम के आंकड़ों की संरचना और उनके मौलिक संक्रियाओं के संदर्भ से समान होते हैं। इससे संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों को यह लाभदायक होता है कि संज्ञान का एक एकीकृत सिद्धांत के विकास की ओर वे ध्यान देने लगते हैं। इसकी पुष्टि लारकीन (2000) ने भी अपने अध्ययन से की है। इस विधि के कुछ दोष है- (1) कुछ संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं ऐसी हैं जिनके बारे में बहुत विस्तृत से कुछ पता नहीं है। अतः ऐसी प्रक्रियाओं का अध्ययन कम्प्यूटर प्रोग्राम से किया जाता है।

(2) कुछ आलोचकों का मत है कि यह मानना कम्प्यूटर स्मृति मानव स्मृति से बिल्कुल समान होता है उचित नहीं है। इन लोगों का मत है कि कम्प्यूटर सिर्फ वहीं करता है जो उसे करने के लिए कार्यक्रमित किया गया है परंतु मानव के साथ इस ढंग से कोई स्पष्ट बंधन नहीं होता है। β) मानव मस्तिष्क का दैहिक आधार अर्थात् मस्तिष्क कम्प्यूटर के वैद्युतीय क्षेत्र से काफी भिन्न होता है। मस्तिष्क एवं कम्प्यूटर दैहिक रूप से एक दूसरे से काफी भिन्न होते हैं |

स्पष्ट हुआ कि संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक कई तरह के विधियों का उपयोग करके अपने विषय वस्तु अर्थात् संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं |

3.4.3 परिस्थितिपरक वैधता (Situational Validity)

हालांकि संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक प्रायः प्रयोज्यों के मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन प्रयोगशाला में ही करते हैं, परंतु 1970 वाले दशक में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में किये गए शोधों की परिस्थितिपरक वैधता को बढ़ाने का प्रयास हुआ। पारिस्थितिकीय वैधता से तात्पर्य संज्ञान के सिद्धांतों के वैसे प्रयासों से होता है जिनके माध्यम से व्यक्तियों के ज्ञान का उपयोग दिन प्रतिदिन के वास्तविक तथा सांस्कृतिक रूप से सार्थक परिस्थितियों में किया जाता है। आधुनिक संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक इस ढंग से भी आंकडें इकट्ठा करते है तथा परिणाम को तैयार करते हैं जिनके माध्यम से यह स्पष्ट रूप से पता चलता हो कि व्यक्ति अपने दिन प्रतिदिन की वास्तविक जिदंगी में भी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उपयोग कर उनका फायदा उठाता है। जैसे प्रयोगशाला में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक द्वारा यह अध्ययन करना कि व्यक्ति असंबंधित शब्दों को किस तरह से याद करता है, के आधार पर मानव स्मृति की क्षमताओं के बारे में सही ढंग से पता नहीं चलता है क्योंकि अंसंबंधित शब्दों को व्यक्ति केवल एक अस्वाभाविक परिस्थिति में ही याद करता है। यहाँ यह जानना भी रूचिकर होता है कि लोग किस ढंग से अपने स्मृति तंत्र का उपयोग उन परिस्थितियों में करते हैं किसी अध्याय को व्यक्ति किस तरह से सीखता है, अध्ययन करता है तथा उसे याद करता है यह भी संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक वास्तविक परिस्थिति में अध्ययन करते हैं। इस प्रकार की विधियों की सामान्यीकरण की क्षमता अधिक होती है।

3.4.4 अन्य विधियाँ (Other Methods)

इन विधियों के अतिरिक्त संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक दूसरी विधियों का भी उपयोग करते हैं- जैसे अन्तदर्शन विधि, प्राकृतिक अवलोकन, नियंत्रित अवलोकन, क्लीनीकल साक्षात्कार, मस्तिष्क प्रतिमा (Imagining) इत्यादि। अन्तदर्शन विधि में व्यक्ति उसके स्वयं की मानसिक प्रक्रियाओं का अवलोकन करता है और तब वर्णन करता है। इस विधि की पारिस्थिति वैधता उच्च होती है, किन्तु इस विधि में प्रयोगात्मक नियंत्रण कम होता है और अवलोकनकर्ता के पक्षपात से यह प्रभावित हो

सकता है। चिंतन इत्यादि करते समय उन प्रक्रियाओं के बारे में जानना कठिन होता है। प्राकृतिक अवलोकन में प्रेक्षणकर्ता लोगों का उन्हीं के वास्तविक पृष्ठभूमि में अध्ययन करता है, किन्तु इसमें केवल बाह्य व्यवहार को ही जाना जा सकता है तथा प्रयोगात्मक नियंत्रण कम होता है। नियंत्रित अवलोकन तथा क्लीनीकल साक्षात्कार की पारिस्थितिक वैधता उच्च होती है, किन्तु केवल कुछ सीमा तक ही नियंत्रण हो पाता है। मस्तिष्क इमेजिंग में नई तकनीकी के माध्यम से विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं के दौरान मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों या गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है। इन विधियों में शरीर रचना के लिए CAT तथा MRI का प्रयोग, PET, MRI, EEG/ERP का प्रयोग मस्तिष्क क्रिया के अध्ययन के लिए किया जाता है। इस प्रकार संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में अनेक विधियों का उपयोग किया जा रहा है।

आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में अपने शोधों एवं प्रयोगों की परिस्थितिपरक वैधता को बढ़ाने का पूरा प्रयास किया जा रहा है ताकि इस मनोविज्ञान की उपयोगिता दिन प्रतिदिन की वास्तविक परिस्थिति में भी स्पष्ट रूप से साबित हो सके।

अभ्यास प्रश्न 2

1. .....विधि में नियंत्रित परिस्थिति में कुछ चरों में परिवर्तन करने का अन्य चरों पर प्रभाव का होने वाले प्रेक्षण किया जाता है।
2. प्रयोगशाला प्रयोग विधि में परिस्थितिक वैधता ..... होती है।
3. .....विधि में व्यक्ति स्वयं की मानसिक प्रक्रियाओं का प्रेक्षण कर रिपोर्ट करता है।

3.5 सारांश (Summary)

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में वर्णनात्मक, प्रयोगात्मक तथा शारीरिक रचना से संबंधित विधियों का उपयोग किया जाता है। इन विधियों में प्रमुख प्रयोग, कम्प्यूटर आधारित विधि, मस्तिष्क इमेजिंग, अन्तदर्शन इत्यादि है।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सूचना संसाधन उपागम
2. समानान्तर

अभ्यास प्रश्न 2

1. प्रयोग
2. निम्न या कम
3. अन्तदर्शन

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विभिन्न विधियों की विवेचना कीजिए।

2. सूचना संसाधन उपागम से आप क्या समझते हैं ?

3. संबंधवादी से आप क्या समझते हैं ?

4. सूचना संसाधन मॉडल की तीन अवधारणाये कौन –कौन सी है ?

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

- एटकिन्सन, एटकिन्सन, स्मिथ तथा हिलगार्ड (1985) साइकोलोजी,एच-बी-जे-, यू.के.।
- केलोग, आर.टी.(2012). क कोग्निटिव साइकोलोजी, सेज पब्लिकेशन, इंडिया प्रा.लि., नई दिल्ली।
- निस्सर (1967) कोग्निटिव साइकोलोजी, सउल, मेकलेड, मेनचेस्टर।
- सिंह, अरूण कुमार (2008) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्रीवास्तव, बीना, आनन्द, वर्षा, तथा बानी आनन्द (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड दिल्ली।।
- वुड तथा वुड (1996) द वर्ल्ड ऑफ साइकोलोजी,एलिन एण्ड बेकन, न्यूयार्क।

इकाई - 4

मनोभौतिकी का अर्थ, वेबर तथा फेकनर के नियम

Meaning of Psychophysics, Weber and Fechner law

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मनोभौतिकी का अर्थ

4.3.1 परिभाषा

4.4 मनोभौतिकी की समस्याएँ

4.4.1 अल्पतम उद्दीपक पहचान संबंधित समस्या

4.4.2 अल्पतम उद्दीपक अंतर की पहचान से संबंधित समस्या

4.4.3 उद्दीपकों के बीच संबंधों के निर्णय से संबंधित समस्या

4.4.4 अधिकतम उद्दीपक पहचान से संबंधित समस्या

4.4.5 संवेदनशीलता

4.4.6 आत्मपरक समानता बिंदु

4.4.7 परिवर्त्य त्रुटि

4.4.8 सतत त्रुटि

4.5 वेबर का नियम

4.5.1 वेबर के नियम का सूत्र

4.5.2 वेबर स्थिर

4.5.3 वेबर के नियम के योगदान

4.5.4 वेबर के नियम की आलोचना

4.6 फेकनर का नियम

4.6.1 फेकनर के नियम का सूत्र

4.6.2 पूर्वकल्पना

4.6.3 फेकनर के नियम का योगदान

4.6.4 फेकनर के नियम की आलोचना

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

भौतिक उद्दीपक तथा उससे उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों के मध्य मात्रात्मक संबंध की जानकारी मनोवैज्ञानिकों में जिज्ञासा का प्रश्न रहा है। प्रस्तुत अध्याय में आप मनोभौतिकी का अर्थ, परिभाषा, इसके अन्तर्गत अध्ययन की जाने वाली प्रमुख समस्याएँ, वेबर तथा फेकनर के नियमों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेगें।

4.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- मनोभौतिकी का अर्थ बता सकेगें।
- मनोभौतिकी की समस्याएँ बता सकेगें।
- वेबर के नियम को बता सकेगें।
- फेकनर के नियम की जानकारी दे सकेगें।

4.3 मनोभौतिकी का अर्थ (Meaning of Psycho-Physics)

मनोभौतिकी का प्रारम्भ जी.टी.फेकनर की पुस्तक ''एलिमेन्ट्स ऑफ साइकोफिजिक्स'' से हुआ। मनोभौतिकी का अंग्रेजी शब्द 'Psychophysics' है जो दो पदों 'Psycho+Physics' के मिलने से बना है। 'Physics' से तात्पर्य भौतिक उद्दीपक से है। अतः मनोभौतिकी में उद्दीपक तथा उससे उत्पन्न होने वाले अनुभवों या संवेदनाओं के मध्य मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

4.3.1 परिभाषाएँ (Defination)

इंग्लिश और इंग्लिश (1950); ''मनोभौतिकी उद्दीपक के भौतिक गुणों एवं संवेदना के परिमाणात्मक गुणों के संबंधों का अध्ययन करता है।''

चेपलिन (1975): ''मनोभौतिकी मनोविज्ञान की वह शाखा है जो उद्दीपक मात्राओं, उद्दीपक भिन्नताओं तथा उनके अनुरूप संवेदी प्रक्रियाओं के बीच संबंधों का अन्वेषण करता है।''

गिलफॉर्ड (1954): ''मनोभौतिकी वह विज्ञान है जो भौतिक घटनाओं तथा संबंधित मानसिक घटनाओं के मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन करता है।''

जेम्स ड्रेवर (1968): ''मनोभौतिकी प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की वह शाखा है जो भौतिक उद्दीपकों तथा सांवेदिक घटनाओं के बीच प्रकार्यात्मक तथा मात्रात्मक संबंधों का अन्वेषण करता है।'

इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि यह मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें उद्दीपकों तथा उससे उत्पन्न संवेदनाओं या अनुभूतियों के मध्य प्रकार्यात्मक एवं मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन किया जाता है। सरल शब्दों में मनोभौतिकी उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच प्रकार्यात्मक एवं मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन करता है। फेकनर ने इसे ऐसा विज्ञान माना है जो भौतिक विज्ञान तथा उससे संबंधित मनोवैज्ञानिक घटनाओं के मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन करता है।

अभ्यास प्रश्न:1

1. मनोभौतिकी का अंग्रेजी शब्द ---------- तथा ---------- से मिल कर बना है।
2. मनोभौतिकी में भौतिक उद्दीपक तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियों के मध्य ---------- संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

4.4 मनोभौतिकी की समस्याएँ (Problems of Psycho-physics)

मनोभौतिकी उद्दीपकों तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियों के मध्य मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन है। अन्य शब्दों में उद्दीपक की भौतिक मात्रा तथा उसके मनोवैज्ञानिक विमाओं के मध्य का प्रकार्यात्मक एवं मात्रात्मक संबंध मनोभौतिकी में किया जाता है। मनोभौतिकी में अनेक समस्याओं पर अध्ययन किया जाता है। जैसे- क्या उद्दीपक तीव्रता होने से अनुभूति में भी तीक्ष्णता आती है? यदि आती है तो किस अनुपात में? अनुभूति होने के लिए उद्दीपक की तीव्रता कितनी होनी चाहिए? इत्यादि इन सभी समस्याओं का अध्ययन मनोभौतिकी में किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि 100 वाट के बल्ब के स्थान पर 200 वाट का बल्ब जलाया जाए तो क्या प्रकाश की अनुभूति पहले की तुलना में दुगनी हो जाएगी आदि। मनोभौतिकी मनोवैज्ञानिक के साथ इंजीनीयर जो प्रकाश, ध्वनि की समस्याओं का सामना करते है; दैहिक शास्त्री जो औषधियों के प्रति प्राणी की सक्षमता का अध्ययन करते है, के लिए भी उपयोगी है।

मनोभौतिकी में प्रमुखत: निम्नांकित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है-

4.4.1 अल्पतम उद्दीपक की पहचान से संबंधित समस्या:

ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करने के लिए न्यूनतम तीव्रता स्तर के उद्दीपक की आवश्यकता होती है। यदि उद्दीपक इस न्यूनतम तीव्रता स्तर से कम होता है तो व्यक्ति उसकी पहचान नहीं कर पाता है। इस प्रकार के उद्दीपक को अवचेतन (सबलिमिनल) उद्दीपक कहते है। वह न्यूनतम उद्दीपक तीव्रता स्तर जिसकी प्राणी पहचान कर लेता है, उसे निरपेक्ष सीमान्त या उद्दीपक देहली कहते है। यदि उद्दीपक तीव्रता निरपेक्ष सीमांत से अधिक होती है तो उसे अधिसीम उद्दीपक (Supraliminal stimulus) कहते हैं। मनोभौतिकी में उस न्यूनतम उद्दीपक मात्रा का निर्धारण किया जाता है, जिसकी व्यक्ति पहचान या अनुभव कर सके। इन समस्याओं की जटिलता इसलिए बढ़ जाती है कि अनुक्रिया उत्पन्न करने के लिए उद्दीपक का न्यूनतम स्तर परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। साथ ही यह स्तर विभिन्न व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हो सकता है जिसका निर्धारण कठिन होता है।

4.4.2 अल्पतम उद्दीपक अंतर की पहचान से संबंधित समस्या

किसी संवेदी क्षेत्र में उद्दीपक की वह न्यूनतम मात्रा जिसे घटाने या बढ़ाने पर व्यक्ति उस उद्दीपक में अंतर को अनुभव करता है, का निर्धारण मनोभौतिकी की समस्या है। एक ही संवेदी क्षेत्र (जैसे दृष्टि क्षेत्र) के दो उद्दीपकों के मध्य वह कौन-सा न्यूनतम अंतर है जिसकी व्यक्ति पहचान कर सकता है, को विभेदक सीमान्त या विभेदक देहली (DL) कहते है। DL निर्धारण में समस्याएँ इस प्रकार होती है कि एक ही संवेदी क्षेत्र के दो उद्दीपकों के बीच वह कौनसा न्यूनतम गुणात्मक या मात्रात्मक अंतर है जिसे व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण कर सकता है? क्या उद्दीपक तीव्रता के प्रसार में अंतर होने से विभेदक सीमान्त में कमी या वृद्धि होती है? आदि। दो उद्दीपक का न्यूनतम अंतर एक परिस्थिति से दूसरी में भिन्न होता है और अलग-अलग व्यक्तियों में भी भिन्न-भिन्न होता है। इन कारणों से न्यूनतम अंतर पहचान की समस्या जटिल हो जाती है।

4.4.3 उद्दीपकों के बीच संबधों के निर्णय से संबंधित समस्या

एक ही संवेदी क्षेत्र के दो उद्दीपकों के न्यूनतम अंतर जिसकी व्यक्ति पहचान कर लेता है , के ऊपर के दोनों उद्दीपकों के बीच के संबंध से जुड़ी हुई कई समस्याएँ होती है। उदाहरण-जब व्यक्ति दो उद्दीपक को गुण या मात्रा के आधार पर तुल्य करने की कोशिश करता है तों इसमें कितनी त्रुटियाँ होती है, ये त्रुटियाँ किस-किस प्रकार की होती है? किस परिस्थिति में दो उद्दीपकों को बराबर होने का प्रत्यक्षीकरण करता है? आदि का अध्ययन मनोभौतिकी में किया जाता हैं।

4.4.4 अधिकतम उद्दीपक पहचान से संबंधित समस्या

किसी संवेदी क्षेत्र में उद्दीपक की वह अधिकतम मात्रा जिसकी संवेदना या अनुभूति प्राणी को स्पष्ट रूप से हो इसकी पहचान करना भी मनोभौतिकी का उद्देश्य (Objective) है। उदाहरण के लिए ध्वनि की तीव्रता स्तर एक निश्चित सीमा पर से बढ़ाई जाए तो व्यक्ति उस ध्वनि को स्पष्टता से अनुभव नहीं कर पाएगा। अतः उद्दीपक के उस अधिकतम तीव्रता स्तर जिसकी व्यक्ति स्पष्ट रूप से पहचान करता है अंतिम सीमांत (Terminal Limen) कहलाता है।

4.4.5 संवेदनशीलता (Sensitivity)

विभिन्न उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करने के लिए विभिन्न तरह की ज्ञानेन्द्रियाँ तथा ग्राहक कोशिकाएँ हमारे शरीर में है। जैसे स्पर्श के प्रति त्वचा, गंध के प्रति नाक, स्वाद के प्रति जिह्वा अनुक्रियाशील होती है। किंतु इन ज्ञानेन्द्रियों की एक सीमित क्षमता होती है जिसके कारण वे वातावरण में उपस्थित प्रत्येक उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया न कर चयनात्मक रूप से अनुक्रिया करते हैं। उदाहरण के लिए मानव कान केवल $20H_z$ से 20000 H_z की ध्वनि तरंगों के प्रति ही अनुक्रियाशील होता है। ज्ञानेन्द्रियों का उद्दीपकों के प्रति सीमित रूप से तथा चयनात्मक रूप से अनुक्रिया क्षमता को संवेदनशीलता कहते हैं। मनोभौतिकी व्यक्ति की निरपेक्ष तथा विभेदक संवेदनशीलता का अध्ययन करता है।

4.4.6 आत्मपरक समानता बिंदु (PSE)

जब व्यक्ति किसी उद्दीपक का आकलन करता है तो उसके निर्णय में अनेक त्रुटियाँ आती है। व्यक्ति उद्दीपक का अतिआकलन (Overestimation) या न्यूनआकलन (Underestimation) करता है।

अन्य शब्दों में व्यक्ति आत्मगत रूप से बाह्य उद्दीपक मान को अन्य उद्दीपक मान के तुल्य समझता है। इस आत्मगत तुल्य उद्दीपक मान को आत्मपरक समानता बिंदु कहते है। उदाहरण के लिए मूलर लायर भ्रम में व्यक्ति पंखवत रेखा (परिवर्त्य उद्दीपक) को तीरवत रेखा (मानक उद्दीपक) के बराबर करने की कोशिश करता है। पंखवत रेखा की वह लम्बाई जो उसे तीरवत् रेखा (मानक उद्दीपक) के बराबर प्रतीत होती है, आत्मपरक समानता बिंदु कहलाएगा। अतः PSE परिवर्त्य उद्दीपक का वह मान (Value) होता है जिसे व्यक्ति आत्मगत रूप से मानक उद्दीपक के बराबर समझता है (सिंह, 2012)। मानक उद्दीपक को बाह्यपरक समता बिंदु (Point of objective Equality) या POE भी कहते है।

4.4.7 परिवर्त्य त्रुटि (Variable Error)

यह देखा गया है कि व्यक्ति एक ही उद्दीपक की तीव्रता के बारे में समान प्रयोगात्मक परिस्थिति में भी भिन्न-भिन्न प्रयासों में अलग-अलग निर्णय देता है। उद्दीपक, परिस्थिति, व्यक्ति सभी एक ही हैं किन्तु निर्णय अलग-अलग होता है। निर्णय की इस भिन्नता को परिवर्त्य त्रुटि कहते है। उदाहरण के लिए दो वजन (उद्दीपक) 'अ' तथा 'ब' भौतिक रूप से समान है। व्यक्ति कभी इन दोनों को समान बताता है और कभी नहीं। कभी वह 'अ' को तो कभी 'ब' को अधिक भारी बताता है। निर्णय में अंतर का कारण परिवर्त्य त्रुटि होती है जिससे व्यक्ति उद्दीपक 'अ' का कभी अतिआकलन तो कभी न्यून आकलन करता है। इस त्रुटि की कोई दिशा नहीं होती परिवर्त्य त्रुटि के प्रमुख कारण निम्नलिखित है-

- व्यक्ति की संवेदनशीलता प्रत्येक समय समान नहीं होती।
- प्रयोगात्मक परिस्थिति के नियंत्रण के प्रयासों के बावजूद भी उद्दीपक के भौतिक गुणों में कुछ अंतर आ जाता है जिससे व्यक्ति का निर्णय एक प्रयास से दूसरे प्रयास में बदल जाता है।
- व्यक्ति की मनोवृत्ति, रूचि इत्यादि भी प्रत्येक समय समान नहीं होती है। इससे भी व्यक्ति के निर्णय परिवर्तित हो सकते हैं।

इस प्रकार परिवर्त्य त्रुटि का मापन, नियंत्रण उसके स्रोतों का अध्ययन आदि भी मनोभौतिकी में महत्वपूर्ण है।

4.4.8 सतत त्रुटि (Constant Error)

यह त्रुटि सदैव एक ही दिशा में होती है। सरल शब्दों में यदि व्यक्ति किसी उद्दीपक का अतिआकलन करता है तो वह ऐसा प्रत्येक प्रयास में करेगा और यदि न्यूनआकलन करता है तो ऐसा हर प्रयास में करेगा। मनोभौतिकी प्रयोगों में कई प्रकार की सतत त्रुटियाँ होते पाई जाती हैं जिसमें समय त्रुटि, स्थान त्रुटि, गति त्रुटि, आदत त्रुटि, प्रत्याशा त्रुटि इत्यादि प्रमुख है। यदि दो उद्दीपकों को एक विशेष समय अन्तराल के बाद उपस्थित किया जाता है तो दूसरे उद्दीपक को व्यक्ति प्रत्येक प्रयास में अति या न्यून आकलन करता है तो इसे समय त्रुटि कहा जाता है। स्थान त्रुटि उद्दीपक के स्थान (दायें या बायें) के कारण, गति त्रुटि उद्दीपक में अन्दर अथवा बाहर की ओर गति होने के कारण हो सकती है। इसी प्रकार व्यक्ति की एक ही प्रकार का निर्णय देने की प्रवृत्ति से आदत त्रुटि हो सकती है। प्रत्याशा त्रुटि

व्यक्ति के इस प्रत्याशा कि अब उद्दीपक में परिवर्तन हो गया है के कारण शीघ्र निर्णय बदलने से होती है। मनोभौतिक में इन त्रुटियों को कम करने का प्रयास भी मनोवैज्ञानिक करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य या असत्य है?

1. निरपेक्ष देहली वह अधिकतम उद्दीपक है जिसकी व्यक्ति पहचान करता है।
2. वह न्यूनतम उद्दीपक अंतर जिसकी व्यक्ति पहचान कर लेता है, -------- कहलाता है।

4.5 वेबर का नियम (Rules of Weber)

ई.एच.वेबर ने उन्नीसवीं शताब्दी में मनोभौतिकी के क्षेत्र में विभेदक सीमान्त की परिमाणात्मक व्याख्या को प्रस्तुत किया और अनेक प्रयोगों के परिणामों के आधार पर एक नियम प्रस्तुत किया। वेबर ने बताया कि विभेदक सीमान्त या विभेदक देहली अथवा न्यूनतम ज्ञेय अंतर (JND दो उद्दीपकों जो 1 विभेदक सीमान्त से अलग है के द्वारा उत्पन्न संवेदना में भिन्नता है) का मान किसी भी संवेदी क्षेत्र के लिए निश्चित नहीं होता बल्कि रेखीय ढंग से मानक उद्दीपक के मान में परिवर्तन होने के साथ-साथ परिवर्तित होता जाता है। सरल शब्दों में जब मानक उद्दीपक का मान बढ़ता है तो उसे तुलनात्मक उद्दीपक से भिन्न महसूस करने के लिए उद्दीपक में जो न्यूनतम परिवर्तन होता है, (अर्थात् DL या JND) वह भी बढ़ता है। अतः यदि मानक उद्दीपक अधिक होगा तो विभेदक सीमान्त भी अधिक होगा और मानक उद्दीपक कम होगा तो विभेदक सीमान्त भी छोटा होगा। वेबर के नियम को निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है- ''मानक उद्दीपक के मान तथा विभेदक सीमान्त (DL या JND) को उत्पन्न करने के लिए न्यूनतम मान के बीच एक निश्चित एवं सतत् अनुपात होता है जिसके अनुसार दोनों में परिवर्तन होता है।''

4.5.1 वेबर के नियम का सूत्र (Formula of Rule of Weber)

वेबर के नियम को निम्नांकित सूत्र में प्रदर्शित किया जा सकता है-

$\Delta R \propto R$

or $\frac{\Delta R}{R} = K$

ΔR = उद्दीपक की विभेदक देहली उत्पन्न करने वाली मानक उद्दीपक की मात्रा में वृद्धि (DL या JND)

R = मानक उद्दीपक

K = स्थिर

अन्य तरीके से वेबर सूत्र इस प्रकार है-

$$\frac{\text{विभेदक सीमांत}}{\text{मानक उद्दीपक}} = \text{स्थिर}$$

Discriminatory Limit = Constant

Standard Stimulus

वेबर के इस सूत्र से दो बातें स्पष्ट होती हैं-

(1) JND या DL का मान मानक उद्दीपक में वृद्धि होने से बढ़ता है तथा कमी होने से घटता हे। उदाहरण के लिए यदि 50 ग्राम भार का विभेदक सीमान्त 5 ग्राम है (5/50 = 0.1) तो 100 ग्राम भार के लिए विभेदक सीमान्त .10 ग्राम होगा और 25 ग्राम भार के लिए 2.5 ग्राम होगा।

(2) वेबर के नियम में सतत् या स्थिर हमेशा भिन्न (Fraction) में अभिव्यक्त होता है जिसे वेबर अनुपात या वेबर भिन्न कहते हैं। वेबर अनुपात से ज्ञात किया जा सकता है कि मानक उद्दीपक में किस अनुपात में वृद्धि या कमी की जाए कि व्यक्ति उद्दीपक से संवदेनशीलता में होने वाले परिवर्तन का सही प्रत्यक्षीकरण कर सके। उदाहरण के लिए 10 ग्राम मानक उद्दीपक के साथ 9 ग्राम का दूसरा उद्दीपक देने पर व्यक्ति दोनो उद्दीपकों में अंतर अनुभव करता है तो वेबर अनुपात (1/10= °1) इससे तात्पर्य यह है कि न्यूनतम ज्ञेय भेद उत्पन्न करने के लिए मानक उद्दीपक में (100 x .1 = 10) गुणा वृद्धि चाहिए। 100 ग्राम वजन के मानक उद्दीपक में न्यूनतम ज्ञेय भेद के लिए (100 x .1 = 10)10 की वृद्धि चाहिए। तब 100 ग्राम मानक उद्दीपक के साथ 90 ग्राम अथवा 100 ग्राम का भार उनकें अंतर का प्रत्यक्षण देगा। इससे स्पष्ट है कि DL का मान मानक उद्दीपक के मान के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। यदि 100 ग्राम वजन के मानक उद्दीपक के साथ 10 ग्राम से कम की वृद्धि या कमी की जाए तो व्यक्ति उनमें विभेद नहीं कर पाएगा और वे समान प्रतीत होंगे। इसी प्रकार 1000 ग्राम के मानक उद्दीपक के साथ न्यूनतम ज्ञेय भेद के लिए (100 x .1)100 ग्राम की वृद्धि होना आवश्यक है।

4.5.2 वेबर स्थिर (Weber Constant)

वेबर स्थिर भिन्न-भिन्न संवेदनाओं के लिए भिन्न-भिन्न होता हैं। वेबर ने अपने प्रयोग के आधार पर विभिन्न संवेदनाओं के लिए वेबर अनुपात ज्ञात किया है - उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

ज्ञानेन्द्रियाँ	**वेबर अनुपात**
तीव्र दबाव	1:77
उच्चता	1:11
तारत्व	1:333
उतोलित भार	1:53
रेखा की लम्बाई	1:33

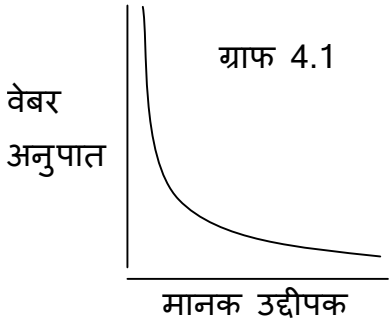

ग्राफ 4.1 में वेबर अनुपात तथा मानक उद्दीपक के मध्य संबंध को दर्शाया गया है। इससे स्पष्ट है कि मानक उद्दीपक के अत्यधिक कम या बहुत अधिक होने पर यह नियम उपयोगी नहीं होता है।

4.5.3 वेबर नियम का योगदान (Contribution of Rules of Weber)

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में संवेदनशीलता का अध्ययन करने के लिए उपयोगी पाया गया है। भिन्न-भिन्न संवेदी क्षेत्रों के वेबर अनुपात की तुलना भी आपस में सीधे ही की जा सकती है क्योंकि वेबर अनुपात की कोई भौतिक इकाई नहीं है।

4.5.4 वेबर नियम की आलोचना (Criticism of Rules of Weber)

1. वेबर के नियम की परिशुद्धता और यथार्थता उतेजना के मध्यम श्रेणी के संदर्भ में सत्य सिद्ध होती है। यह नियम तब उपयोगी नहीं होगा जब उद्दीपक तीव्रता बहुत अधिक या बहुत कम होती है, अर्थात् जब मानक उद्दीपक का मान किसी छोर के नजदीक पहुँच जाता है तब वेबर अनुपात की परिशुद्धता नहीं रह जाती। वेबर के नियम के अनुसार यदि उद्दीपक के विभिन्न मूल्यों पर वेबर स्थिर का मान ज्ञात किया जाए तथा वेबर स्थिर व उद्दीपक मूल्य के मध्य ग्राफ बनाया जाए तो एक सीधी रेखा प्राप्त होनी चाहिए। जबकि यह पाया गया कि कम मान के मानक उद्दीपकों का वेबर स्थिर तुलनात्मक रूप से अधिक होता है और मानक उद्दीपक के मान के बढ़ने के साथ तेजी से कम होता है।
2. जब व्यक्ति के समक्ष उद्दीपक प्रस्तुत करने का तरीका बदल दिया जाता है तो इससे वेबर अनुपात में अंतर पाया जाता है। जब मानक उद्दीपक के बाद तुलनात्मक उद्दीपक को दिया जाता है तो वेबर नियम की परिशुद्धता अधिक होती हैं। किन्तु यदि तुलनात्मक उद्दीपक को मानक उद्दीपक से पहले प्रस्तुत किया जा तो वेबर अनुपात में अंतर आ सकता है।
3. वेबर के नियम की वैद्यता पूर्णरूप से नियंत्रित तथा वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में ही सिद्ध होती है, साधारण प्रयोगशालाओं और साधारण प्रयोज्यों द्वारा प्रमाणित नहीं होती।
4. अनेक आलोचक वेबर नियम को मनोभौतिक का वास्तविक नियम नहीं मानते हैं क्योंकि इसका संबंध ΔR और R के मध्य सम्बन्धों से है न कि भौतिक सातत्य से।

अभ्यास प्रश्न-3

1. वेबर के नियम के अनुसार विभेदक सीमान्त तथा उद्दीपक की मात्रा (जिस पर विभेदक सीमान्त मापा जा रहा है) के मध्य संबंध ---------- होता है।

2. वेबर का नियम उपयोगी सिद्ध नहीं होता जब उद्दीपक का मान ---------- होता है।

4.6 फेकनर का नियम (Rules of Fechner)

फेकनर ने संवेदनशीलता के क्षेत्र में अनेक प्रयोग कर मनोभौतिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा फेकनर का नियम प्रतिपादित किया। यह नियम वेबर के नियम में सुधार लाने हेतु प्रयास था। फेकनर नियम DL/JND के सोपानों पर आधारित एक अप्रत्यक्ष विधि है जहां विभेदक सीमांत को समान अंतराल मापनी (Equal Interval Scale) की एक इकाई के रूप मे व्यक्त किया जाता है। फेकनर ने संवेदी अनुभवों की मापनी बनाने का प्रयास किया।

वेबर के नियम में उदाहरण के लिए किसी संवेदन के लिए वेबर अनुपात 0.2 (1/5) है इसका अर्थ यह है कि यदि एक उद्दीपक का मान 10 इकाई है तो न्यूनतम ज्ञेय भेद उत्पन्न करने के लिए दूसरे उद्दीपक को 10 का 1/5 अधिक होना चाहिये या 10+2=12 इकाई होना चाहिए। अगला सोपान पर न्यूनतम ज्ञेय भेद के लिए दूसरे उद्दीपक को 12×.2 = 2.4 इकाई से अधिक होना चाहिए या 12+2.4 = 14.4 होना चाहिए। इसी तरह तीसरे सोपान पर न्यूनतम ज्ञेय भेद के लिए उद्दीपक का 14.4×.2=2.88 इकाई अधिक अर्थात् 14-4+2.88= 17.28 इकाई का होना चाहिए। इस तरह उत्तरोत्तर कदम पर उद्दीपक को न्यूनतम ज्ञेय भेद उत्पन्न करने के लिए ठीक पहले कदम पर के उद्दीपक मान का .2 का गुणा अधिक होना चाहिए। अतः प्रत्येक उत्तरोत्तर कदम पर व्यक्ति की संवेदनशीलता में समान वृद्धि के लिए उद्दीपक के मान में अधिक वृद्धि की जरूरत होती है। फेकनर ने वेबर अनुपात को मूलभूत सूत्र माना। फेकनर ने कहा कि वेबर सूत्र संवेदना के मापन के बारे में भविष्यवाणी नहीं करता वरन् यह सापेक्षिक उत्तेजना में न्यूनतम वृद्धि तथा संवेदना में पाये जाने वाले संबंधों को प्रदर्शित करता है।

फेकनर ने संवेदन की मात्रा तथा भौतिक उद्दीपक की तीव्रता के मध्य संबंध स्थापित किया। फेकनर के अनुसार संवेदनाओं तथा उद्दीपक की मात्रा में लघुगणकीय संबंध होता है (चित्र-1)। इस आधार पर प्रत्येक उत्तरोत्तर कदम पर DL को एक सतत् गुणज द्वारा पता लगाया जा सकता है। इस आधार पर यदि उद्दीपक के मान में गुणा की प्रक्रिया या ज्यामितीय के रूप मे वृद्धि होती है किंतु इसके उद्दीपक संवेदन से जोड़ की प्रक्रिया या अंकगणितीय में वृद्धि होती है। 2,4,8,16 आदि ज्यामितीय वृद्धि के उदाहरण है, किन्तु 2,4,6,8,10 अंक गणितीय वृद्धि के उदाहरण है। जब दो चरों में से किसी में ज्यामितीय क्रम में वृद्धि हो तथा दूसरे अंकगणितीय ढंग से वृद्धि हो तो ऐसे संबंध को लघुगणकीय संबंध कहते है। फेकनर के नियम के अनुसार उद्दीपक की मात्रा तथा उससे उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं में इसी प्रकार का संबंध होता है। फेकनर नियम को निम्नलिखित सूत्र में प्रदर्शित किया जा सकता है।

4.6.1 फेकनर का सूत्र

चित्र 1

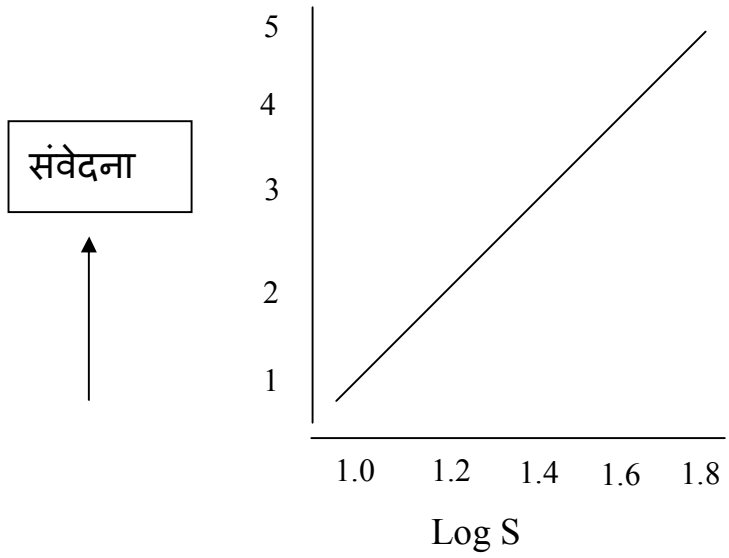

$R \propto \log S$

अथवा $R = K \log S$

R = संवेदन की मात्रा

K = वेबर का सतत्

S = उद्दीपक मान की मात्रा

4.6.2 फेकनर के नियम की प्रमुख पूर्वकल्पनाएँ निम्नांकित है

1. विभेदक सीमांत या उद्दीपक के चाहे जिस स्तर पर उत्पन्न हुई हो संवेदन में हमेशा समान गति से वृद्धि पाई जाती है।
2. संवेदना उन सभी विभेदक सीमान्तों या न्यूनतम ज्ञेय भेद का योग होता है जो संवेदन उत्पन्न करने के पहले प्रस्तुत किये जाते है।

फेकनर ने उद्दीपक देहली के रूप में उद्दीपक के मापन का प्रस्ताव दिया। फेकनर के अनुसार यदि उद्दीपक की मात्रा एक ग्राम है और अनुक्रिया शून्य प्राप्त होती है, तो उद्दीपक की मात्रा में वृद्धि करने पर अनुक्रिया में वृद्धि उसके लघुगणक के बराबर होगी। इस प्रकार संवेदना तथा उद्दीपक में लघुगणकीय संबंध होता है। न्यूनतम ज्ञेय भेद या विभेदक सीमांत संवेदना में समान वृद्धि के कारण पाई जाती है, इस पर उद्दीपक की मात्रा का प्रभाव नहीं पड़ता।

फेकनर ने वेबर के नियम का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार नये ढंग से किया, ''जब उद्दीपक में एक स्थाई अनुपात में वृद्धि पाई जाती है, तो उनसे उद्दीप्त संवेदनाओं में समान वृद्धि या सोपान पाई जाती है।''

(When Stimuli Increase by a constant ratio, the sensation around by them increase by equal increments or steps.) प्रस्तुत किये गये उद्दीपक और उसकी संवेदना दोनों में एक गति से वृद्धि नहीं पाई जाती। जब उत्तेजना में निरन्तर अनुपात के अनुसार वृद्धि की जाती है, तो उस अनुपात में संवेदना में वृद्धि नहीं पाई जाती है वरन् संवेदना में पाई जाने वाली वृद्धि का अपना एक निश्चित क्रम होता है।

4.6.3 फेकनर के नियम का योगदान (Contribution of Rules of Fechner)

फेकनर के न्यूनतम ज्ञेय भेद की संचयी विधि एक महत्वपूर्ण योगदान है। फेकनर ने वेबर नियम को संशोधित कर उसे अधिक वैज्ञानिक बनाया। व्यवहारिक स्तर पर यह लाभदायक सूचनाएँ उपलब्ध कराता है। उदाहरण के लिए ध्वनिक अभियंता ध्वनि उद्दीपकों की तीव्रता का वर्णन करने के लिए डेसीबल जैसे लघुगणकीय इकाइयों का प्रयोग करता है।

4.6.4 फेकनर नियम की आलोचना (Criticism of Rules of Fechner)

1. इस नियम के अनुसार न्यूनतम ज्ञेय भेद एक निश्चित इकाई है, जबकि अन्य मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति के उद्दीपक की मात्रा तथा समय के अनुसार इसमें (JND) अंतर पाया जाता है।
2. डेम्बर तथा वार्म (1979) के अनुसार वेबर नियम की ही तरह यह किसी उद्दीपक के आरम्भ तथा अंत से संबंधित न हो कर केवल मध्यवर्ती क्षेत्र से संबंधित है।
3. फेकनर ने संवेदना शून्य की पूर्वकल्पना को प्रस्तुत करते हुए कहा कि संवदेनाशून्य वह रिज देहली है जहाँ से संवेदना तीव्रता आरम्भ होती है। मनोवैज्ञानिक इससे सहमत नहीं है।
4. फेकनर नियम के उद्दीपक मात्रा और संवेदना के मनोभौतिकीय नियम को स्टीवेन्स व अन्य मनौवैज्ञानिकों ने परिशुद्ध नहीं पाया।
5. फेकनर ने अपने नियम में इस बात पर बल दिया है कि कई प्रारंभिक संवेदनाओं का योग एक बड़ी संवेदना के रूप में होता है। जबकि दूसरे मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि छोटी-छोटी संवेदनाओं के जुड़ने पर किसी बड़ी संवेदना का नहीं, वरन् एक नवीन अनुभव का आभास होता है।
6. फेकनर ने अपने नियम के प्रतिपादन में उद्दीपक देहली के स्वेच्छा बिन्दु (arbitrary point) को आधार माना है।
7. फेकनर ने सभी भिन्नता देहलियों को आत्मनिष्ठ स्तर पर समान माना है।
8. फेकनर ने अपने नियम में उद्दीपक परिमाण और आत्मनिष्ठ परिमाण के मनोभौतिकीय न्यूनतम अनुभूति सन्दर्भ में भिन्नता के योग का समावेश करके एक गम्भीर त्रुटि की है, जबकि स्टीवेन्स (1957) फेकनर के न्यूनतम अनुभूति भिन्नताओं को आत्मनिष्ठ रूप सेएक-दूसरे के समान नहीं मानते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. फेकनर के नियम के अनुसार संवेदना में अंकगणितीय वृद्धि के लिए उद्दीपक मात्रा में .....वृद्धि होनी चाहिए।

4.7 सारांश (Summary)

- मनोभौतिकी मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें उद्दीपक तथा उससे उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों के मध्य प्रकार्यात्मक तथा मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।
- मनोभौतिकी की प्रमुख समस्याएँ अल्पतम उद्दीपक की पहचान, अल्पतम उद्दीपक अंतर की पहचान, उद्दीपकों के बीच संबंधों की पहचान, तथा अधिकतम उद्दीपक पहचान से संबंधित है। आत्मपरक समानता बिंदु, संवेदनशीलता पहचान तथा एवं परिवर्त्य त्रुटियों की पहचान और इन त्रुटियों को कम करने के प्रयास से भी मनोभौतिकी संबंधित है।
- वेबर के नियम के अनुसार मानक उद्दीपक के मान तथा DL या JND उत्पन्न करने के लिए न्यूनतम मान के बीच निश्चित एवं स्थिर अनुपात होता है।
- फेकनर नियम के अनुसार उद्दीपक के मान तथा उससे उत्पन्न होने वाले संवेदन में लघुगणकीय संबंध होता है।

4.8 शब्दावली (Glossary)

- निरपेक्ष सीमान्त **AL :** उद्दीपक की वह न्यूनतम मात्रा जहाँ व्यक्ति को उद्दीपक की अनुभूति आरम्भ होती है।
- **विभेदक सीमान्त DL/JND :** एक ही संवेदी क्षेत्र के दो उद्दीपकों के बीच का अंतर जिसकी व्यक्ति अनुभूति करता है।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. Psycho तथा Physics 2. प्रकार्यात्मक तथा मात्रात्मक

अभ्यास प्रश्न-2

1. असत्य 2. विभेदक सीमान्त

अभ्यास प्रश्न-3

1. रेखीय या सीधा 2. छोरों पर/बहुत कम बहुत अधिक

अभ्यास प्रश्न-4

1. ज्यामितीय

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोभौतिकी की परिभाषा दीजिए।
2. वेबर नियम क्या हैं? उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए।

3. फेकनर के नियम की आलोचना कीजिए।

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- डी अमेटो, एम. आर. (1999) एक्सपेरीमेंटल साइकोलोजी, टाटा मेक्ग्रा-हिल पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- राजमनिक्कम, एम.(200). मार्डन साइकोफिजिकल एण्ड स्केलिग मेथडर्स एण्ड एक्सपेरिमेन्टेंशन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (2011) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्रीवास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस.तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपेरीमेंटल साइकोलोजी, आक्साफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

इकाई - 5

देहली का संप्रत्यय, देहली का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण

Concept of Threshold, Theoretical View of Threshold

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 देहली का संप्रत्यय

5.3.1 परिभाषा

5.5 देहली/सीमान्त के प्रकार

5.5.1 निरपेक्ष सीमान्त

5.5.2 विभेदक सीमान्त

5.5.3 अंतिम सीमान्त

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

मनोविज्ञान प्राणियों के व्यवहार का अध्ययन करता है। प्राणी उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करते हैं। प्राणी के बाह्य तथा आन्तरिक वातावरण मे उपस्थित भौतिक ऊर्जा में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। इस ऊर्जा परिवर्तन को, जिसे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके उद्दीपक कहते हैं। उद्दीपक की मात्रा तथा प्राणी के अनुभवों के बीच अन्त:क्रिया के फलस्वरूप ही व्यवहार प्रदर्शित होता है।

अनुक्रिया होने के लिए उद्दीपक की न्यूनतम मात्रा कितनी हो? क्या यह मात्रा सभी प्राणियों के लिए स्थिर है? इत्यादि प्रश्नों का अध्ययन मनोभौतिकी में होता है।

प्रस्तुत इकाई में देहली या सीमान्त अर्थात् उद्दीपक की मात्रा जिसकी प्राणी को अनुभूति होती है, की परिभाषा, उसका सैद्धांतिक दृष्टिकोण एवं प्रकारों का विस्तार से अध्ययन करेगें।

5.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- देहली का अर्थ व परिभाषा बता सकेगें।
- देहली के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकेगें।
- देहली के प्रकारों को बता सकेगें।

5.3 देहली या सीमान्त (Threshold)

देहली शब्द का अंग्रेजी रूपान्तरण ^^Threshold^^ है तथा लेटिन में यह ^^Limen^^ कहलाता है। देहली का अर्थ चौखट से होता है जिसके एक ओर घर का भीतरी और दूसरी और घर का बाहरी भाग होता है। इसी तरह देहली वह उद्दीपक बिंदुरेखा है जिसके दोनों ओर दो विभिन्न संवेदनाएँ होती हैं। देहली उद्दीपक की वह मात्रा है जिससे कम पर उसकी उपस्थिति का अनुभव नहीं होता है। देहली को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषित किया है।

- **वुडवर्थ तथा स्कलोशवर्ग (1956):** देहली उद्दीपक को अलग करने वाली सीमा है जो अनुक्रिया देने वाले उद्दीपक को भिन्न अनुक्रिया देने वाले उद्दीपक से अलग करती है।
- **स्टीवेन्स (1954):** ''देहली उद्दीपक की वह मात्रा है जिससे कम और अधिक पर भिन्न-भिन्न संवेदनाएं होती है।''
- **ब्राउन तथा कुक (1986):** ''देहली उद्दीपक तीव्रता के उस स्तर को कहते है, जिससे शारीरिक या मानसिक क्रिया उत्पन्न होती है।''
- **ऑसगुड (1953):** ''देहली एक भौतिक ऊर्जा है जो अपने रूप एवं मात्रा में उपयुक्त होती है, किन्तु यह निश्चित रूप से एक अल्पतम मात्रा होती है अथवा प्राणी के लिए निष्प्रभावी होती है।''
- **अण्डरवुड (1966):** ''देहली वह न्यूनतम भौतिक उद्दीपक मूल्य है जो 50% बार अनुक्रिया प्रकट कराता है।''
- **गिलफर्ड (1954):** उद्दीपक की वह न्यूनतम मात्रा देहली है जो 50% बार अनुक्रियाओं को जाग्रत करता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि उद्दीपक देहली वह उद्दीपक मात्रा है जो सूचित करने योग्य अनुक्रिया को 50% बार प्रकट कराती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्राणी उद्दीपक की सभी तीव्रता पर अनुक्रिया नहीं करता। कुछ उद्दीपक इतने कमजोर होते हैं कि व्यक्ति उनका प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाता, अतः उनके प्रति अनुक्रिया नहीं करता है। कुछ उद्दीपक की तीव्रता व्यक्ति में सदैव अनुक्रिया उत्पन्न करते है। देहली या सीमान्त से अधिक तीव्रता स्तर होने पर स्पष्टतः अनुक्रिया उत्पन्न होती है, किंतु सीमांत से कम उद्दीपक तीव्रता से व्यक्ति में अनुक्रिया नहीं होती। किसी भी देहली के मापन में अनेक प्रयास किए जाते हैं और उनका औसत प्राप्त किया जाता है क्योंकि देहली की सही स्थिति समय-समय पर बदलती है। इस तरह की चलनशीलता (Variability) प्रत्येक संवेदी क्षेत्र की संवेदनशीलता में पाई जाती है। इस कारण से देहली का मान हमेशा सांख्यिकीय रूप में लिया जाता है और उस उद्दीपक मान के रूप में परिभाषित किया जाता है जो 50 प्रतिशत प्रयासों में धनात्मक अनुक्रिया उत्पन्न करता है। संक्षेप में देहली उद्दीपक की वह न्यूनतम मात्रा है जो अनुक्रिया को 50 प्रतिशत बार प्रकट

कराती है। मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न संवेदी उद्दीपकों के लिए देहली या सीमान्त का निर्धारण किया है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. देहली शब्द लेटिन के --------- शब्द का पर्यायवाची है।
2. देहली वह उद्दीपक मात्रा है जिससे कम व अधिक पर ---------- संवेदना होती है।

5.4 देहली का सैद्धांतिक दृष्टिकोण (Theoritical Approach towards Threshold)

प्राचीन मनोभौतिकी में देहली का प्रत्यय अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके आधार पर मापन के शून्य बिंदू अर्थात् इकाइयों को निर्धारित किया जाता है। सैद्धांतिक रूप से यह वह बिंदु है जहाँ से व्यक्ति को उद्दीपक की उपस्थिति का अनुभव होता है। ऊर्जा की बहुत सी मात्राओं पर व्यक्ति अनुक्रिया प्रकट नहीं करता। अतः पहले मनोवैज्ञानिकों ने देहली को इस प्रकार परिभाषित किया कि ''देहली ऊर्जा की वह न्यूनतम मात्रा है जो अप्रत्यक्षीकरण से प्रत्यक्षीकरण के लिए आवश्यक होती है। यदि निरीक्षणकर्त्ता को उद्दीपक के होने या न होने पर हाँ या नहीं बताने के लिए कहें तो रेखाचित्र निम्नांकित प्रकार होगा-

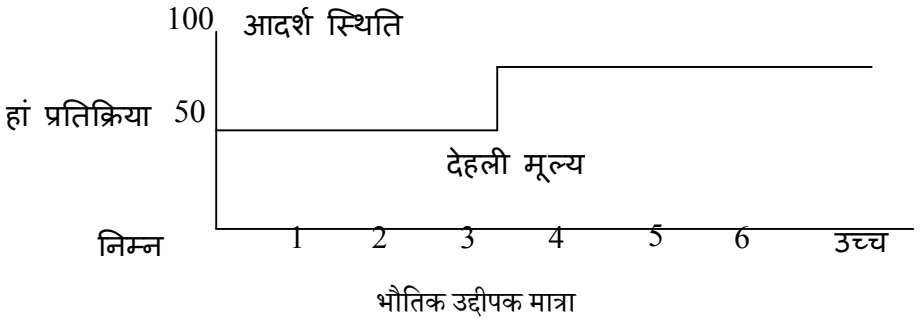

इस चित्र 1.1 में 'हाँ अनुक्रिया के प्रतिशत को उद्दीपक तीव्रता के प्रकार्य के रूप में प्रदर्शित किया है। इसे सोपान प्रकार्य (Step Function) कहते है। जिसमें हाँ अनुक्रियाओं का प्रतिशत शून्य से चल कर 100% हाँ अनुक्रियाओं को प्रदर्शित करता है, देहली का मान (Value) है। वास्तविकता में प्रयोगों में सोपान प्रकार्य के रूप में आंकड़े प्राप्त नहीं होते वरन् मसृण वक्र (Smoth curve) बनते हैं जिसमें ''हाँ'' का प्रतिशत हर प्रयास में बढ़ता जाता है।

इसे रेखाचित्र 1.2 में प्रदर्शित किया है।

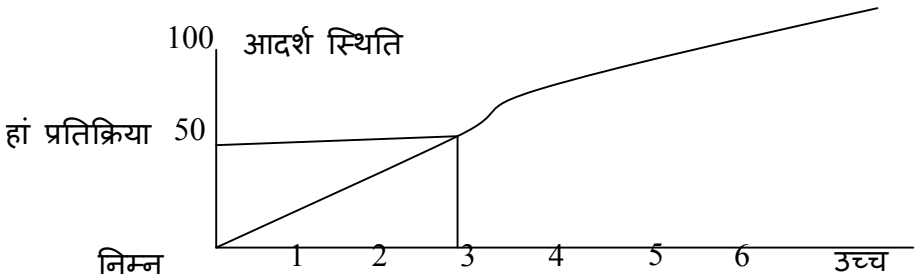

चित्र 1.2 भौतिक उद्दीपक मात्रा

इसे मनोभौतिकी प्रकार्य कहा जाता है और इसकी उत्पत्ति के अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे उद्दीपक ऊर्जा एक प्रयास से दूसरे प्रयास में परिवर्तित होती रहती है। जब ऊर्जा में उतार-चढ़ाव होता है तो आधार रेखा पर मूल्यों को प्रत्येक प्रयास में ठीक-ठीक दोहराना कठिन होता है परिणामस्वरूप उपर्युक्त चित्र प्राप्त होता है। प्रत्येक उद्दीपक प्रस्तुत करने पर संवेदी अंगों के अनुकूलन स्तर में भी परिवर्तन हो जाता है और प्रयोज्य के निर्णय को प्रभावित करता है। इस प्रकार के अनेक कारकों के कारण देहली के प्रयोग में वक्र चित्र 2 के अनुसार प्राप्त होता है, क्योंकि व्यक्ति किसी ऊर्जा के लिए कभी हाँ तो कभी नहीं अनुक्रिया करता है।

इसी कारण डेम्बर के अनुसार देहली को दो प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

(1) आदर्श रूप में (2) क्रियात्मक रूप में

क्रियात्मक रूप में देहली को संभावनाओं के रूप में परिभाषित किया है। किसी भी समय देहली अपने मूल्य के आधार पर निश्चित होती है अर्थात् कुछ निश्चित मात्रा में ऊर्जा का होना आवश्यक है, लेकिन यह कसौटी कम अधिक होते रहती है। अन्य शब्दों में जो देहली से निम्न होता है, वह दूसरे समय देहली से उच्च हो सकता है। अन्य महत्वपूर्ण बात है कि यह उतार चढ़ाव यादृच्छिक रूप से वितरित होता है जिसे प्रसामान्यवक्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। अतः मनोवैज्ञानिक देहली की क्रियात्मक परिभाषा को महत्व देते है और देहली को सांख्यिकी रूप में परिभाषित करते हैं।

5.5 देहली/सीमान्त के प्रकार (Types of Threshold)

सीमान्त या देहली तीन प्रकार की होती है-

(1) निरपेक्ष सीमान्त (Absolute threshold)

(2) विभेदक सीमान्त (Differential threshold)

(3) अंतिम सीमान्त (Terminal threshold)

5.5.1 निरपेक्ष सीमांत (Absolute Limen : AL)

इसे रिज लाईमेन (Reiz Limen / RL) भी कहते है। रिज सीमान्त या निरपेक्ष सीमान्त से तात्पर्य उद्दीपक के उस न्यूनतम मान से होता है, जिसके प्रति व्यक्ति अनुक्रिया करता है। एक व्यक्ति के लिए यह मान सदैव एक सा नहीं होता क्योंकि व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों की संवेदनशीलता मे कमी या अधिकता होती रहती है। अतः निरपेक्ष देहली को सांख्यिकीय रूप से परिभाषित किया गया कि निरपेक्ष देहली व उद्दीपक मान है जिसे उपस्थित करने पर व्यक्ति 50 प्रतिशत प्रयास में उसकी उपस्थिति अनुभव करता है और 50 प्रतिशत प्रयासों में उसकी उपस्थिति महसूस नहीं करता है। उदाहरण के लिए एक बहुत हल्का वजन प्रयोज्य की हथेली पर रखने पर वह कहेगा कि उसे भार महसूस नहीं होता लेकिन वजन को अगले प्रयासों में धीरे-धीरे बढ़ाने पर वह एक बिंदु पर पहुँचेगा जहाँ वह धनात्मक अनुक्रिया करेगा कि वह भार महसूस करता है। यह वजन का मूल्य निम्न देहली से अधिक है। ऐसा आवश्यक नहीं है कि प्रयोज्य प्रत्येक बार इस मान के भार को देने पर यही अनुक्रिया करे अतः प्रयोगकर्त्ता विभिन्न वजनों को प्रयोज्य की हथेली उपस्थित कर बताने के लिए कहेगा कि उसे भार महसूस होता है अथवा नहीं। जब वजन कम होगा तो उसे महसूस नहीं होगा किंतु जब वजन कुछ अधिक होगा तो प्रयोज्य को भार कभी महसूस होगा और कभी नहीं। यदि वजन का

मान और अधिक बढ़ा दिया जाए तो उसे भार स्पष्टतः महसूस होगा। इस तरह से प्रयोज्य के निर्णय कई प्रयासों में प्राप्त किए जाते है और उसका माध्य (Mean) ज्ञात किया जाता है और वही निरपेक्ष सीमान्त कहलाता है। वुडवर्थ (1971) के अनुसार निम्न देहली या रिज सीमांत उद्दीपक का वह मान है जो 50 प्रतिशत प्रयासों में धनात्मक अनुक्रिया उत्पन्न करता है।

विभेदक सीमान्त (Differential Limen)

उद्दीपक का वह न्यूनतम मान जिसे घटाने अथवा बढ़ाने पर निरीक्षणकर्त्ता उद्दीपक में अंतर का अनुभव करता है। पोस्टमैन तथा इगन (पोस्टमेन तथा इगन, 1949) ने DL को परिभाषित करते हुए कहा कि उस उद्दीपक अंतर जो 50% प्रयास में भिन्नता का निर्णय उत्पन्न करता है, विभेदक सीमांत कहते है। उदाहरण के लिए वजन के प्रयोग में किसी तुलनात्मक उद्दीपक को मानक वजन से धीरे-धीरे बढ़ाया जाए तो प्रारम्भ के प्रयासों में प्रयोज्य वजन में अंतर की पहचान नहीं कर पाएगा और उसकी प्रतिक्रिया होगी ''कोई अंतर नहीं''। किंतु एक सीमा तक वजन बढ़ाने पर उसे तुलनात्मक उद्दीपक भारी प्रतीत होगा। उद्दीपक अंतर की वह न्यूनतम मात्रा जिसकी पहचान निरीक्षणकर्त्ता सही करता है अर्थात् वह दोनों वजनों में अंतर महसूस करता है तो वह उसका विभेदक सीमांत कहलाता है। सांख्यिकीय रूप विभेदक सीमांत एक ही संवेदी क्षेत्र के दो उद्दीपकों का वह न्यूनतम अंतर है जो 50 प्रतिशत प्रयासों में पहचाना जाता है और 50 प्रतिशत प्रयासों में नहीं पहचाना जाता।

इस तरह से व्यक्ति द्वारा किए गए कई निर्णयों का एक माध्य ज्ञात कर लिया जाता है जो विभेदक सीमांत (DL) कहलाता है।

अंतिम सीमांत या अंतिम देहली (Terminal Limen)- वह अधिकतम उद्दीपक मान जिसकी पहचान निरीक्षणकर्त्ता करता है, अंतिम सीमांत कहलाता है। उद्दीपक का मान अंतिम सीमांत से अधिक बढ़ाने पर प्रयोज्य दर्द महसूस करता है न कि उद्दीपक की उपस्थिति। उदाहरण के लिए यदि किसी ध्वनि की तीव्रता को बढ़ाया जाए तो उस उद्दीपक मान, जहां प्रयोज्य ध्वनि की पहचान न हो सके, के नीचे अंतिम सीमांत होगा। अन्य शब्दों में अंतिम सीमांत वह अधिकतम उद्दीपक मान है जिसकी पहचान निरीक्षणकर्त्ता 50% प्रयास में करता है। निरीक्षणकर्त्ता द्वारा किए गये कई निर्णयों के माध्य (Mean) द्वारा इसकी गणना की जाती है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. निरपेक्ष देहली वह ..... उद्दीपक मान है जो व्यक्ति में 50 प्रतिशत अनुक्रिया उत्पन्न करता है।
2. ..... वह न्यूनतम उद्दीपक मान है जिसके अंतर की पहचान व्यक्ति 50 प्रतिशत प्रयास में करता है।

5.6 सारांश (Summary)

देहली उद्दीपक की वह मात्रा है जिससे कम या अधिक होने पर प्राणी अलग-अलग अनुक्रियाएँ करता है। देहली को सैद्धांतिक तथा क्रियात्मक रूप से प्रदर्शित किया जाता है। सैद्धांतिक रूप से अनुक्रिया तथा उद्दीपक मान के प्रकार्य का वक्र क्रमिक होता है किंतु वास्तविकता में यह वक्र आकार का प्राप्त होता है। अतः देहली को सांख्यिकीय रूप से परिभाषित किया जाता है।

- देहली के तीन प्रकार होते है-

1. निरपेक्ष देहली या सीमान्त से तात्पर्य उस न्यूनतम उद्दीपक मान है जो व्यक्ति में 50% प्रयास में अनुक्रिया उत्पन्न करता है।
2. विभेदक सीमान्त से तात्पर्य एक ही संवेदी क्षेत्र के दो उद्दीपकों के बीच का वह अंतर है जो 50% प्रयास में अनुक्रिया करता है।
3. अंतिम सीमान्त से तात्पर्य वह अधिकतम उद्दीपक मान है जो व्यक्ति में 50% प्रयास में अनुक्रिया उत्पन्न करता है।

5.7 शब्दावली (Glossary)

- RL& रिज सीमान्त
- AL & निरपेक्ष सीमान्त या निरपेक्ष देहली
- DL& विभेदक सीमान्त या विभेदक देहली
- TL& अंतिम सीमान्त या अंतिम देहली

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. लाइमन 2. भिन्न-भिन्न

अभ्यास प्रश्न 2

1. न्यूनतम 2. विभेदक सीमान्त

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. देहली के अर्थ व प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।
2. देहली के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को समझाइए।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

- डी अमेटो, एम. आर. (1999) एक्सपेरीमेंटल साइकोलोजी, टाटा मेक्ग्रा-हिल पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (2011) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्रीवास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस.तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपेरीमेंटल साइकोलोजी, आक्साफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

इकाई - 6

देहली का प्राचीन सिद्धांत, संकेत संज्ञापन सिद्धांत

Classical Theory of Threshold, Signal Detection Theory

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 देहली का प्राचीन सिद्धांत

6.4 संकेत संज्ञापन सिद्धांत

6.4.1 संवेदनशीलता के कारक

6.4.2 संवेदी प्रक्रिया व निर्णय प्रक्रिया उपाय

6.4.3 संकेत संज्ञापन प्रयोग प्रक्रिया

6.4.4 रिसीवर ऑपरेटींग केरेक्टरिस्टिक वक्र (ROC)

6.4.5 ROC वक्र की विशेषताएँ

6.4.6 ROC वक्र पर प्रत्याशा का प्रभाव

6.4.7 ROC वक्र पर अभिप्रेरणा का प्रभाव

6.4.8 सांवेदिक व्यवस्था एवं आदर्श प्रेक्षक

6.4.9 संकेत संज्ञापन सिद्धान्त की उपयोगिता

6.4.10 संकेत संज्ञापन की आलोचना

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत अध्याय में देहली के प्राचीन सिद्धांत तथा मनोभौतिकी की संकेत संज्ञापन सिद्धांत का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा।

6.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- मनोभौतिकी के देहली के सिद्धांत को बता सकेंगे।
- संकेत संज्ञापन सिद्धांत को स्पष्ट कर सकेंगे।

6.3 देहली का प्राचीन सिद्धान्त (The Old Theory of Threshold)

प्राचीन मनोभौतिकी में से भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक सातत्य की अवधारणा की गई। देहली के प्राचीन सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए इस अवधारणा को स्पष्ट करना आवश्यक है।

भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक सातत्य (Physical & Psychological Continum)

प्राचीन मनोभौतिकी में देहली (AL तथा DL) के निर्धारण के लिए दो विमाओं मनोवैज्ञानिक सातत्य तथा भौतिक सातत्य, जो पूर्णरूप से अलग-अलग होते है, को सम्मिलित किया जाता है। इन दोनों सातत्यों को चित्र 6.3.1 में सीधी रेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है। भौतिक सातत्य उद्दीपक से संबंधित होता है। उद्दीपक मनोवैज्ञानिक सातत्य पर संवेदी अनुक्रिया (Rs) संवेदना से संबंधित होता है। भौतिक सातत्य तथा मनोवैज्ञानिक सातत्य में विभेद करने के लिए साधारणतया उद्दीपक और उनसे उत्पन्न संवेदनाओं को भिन्न-भिन्न नाम दिये जाते है। उदाहरण के लिए आवाज की तीव्रता जिसे डेसीबल में मापा जाता है श्रवण उद्दीपक के भौतिक (गुण) उद्दीपक को प्रदर्शित करती है जिससे संबंधित संवेदना तेज आवाज (loudness) होती है। इसी प्रकार वजन (wieght) एक भौतिक उद्दीपक को प्रदर्शित करता है और भारीपन उससे संबंधित संवेदना को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार प्राचीन मनोभौतिकी में दो भिन्न-भिन्न सातत्यों की अवधारणा है।

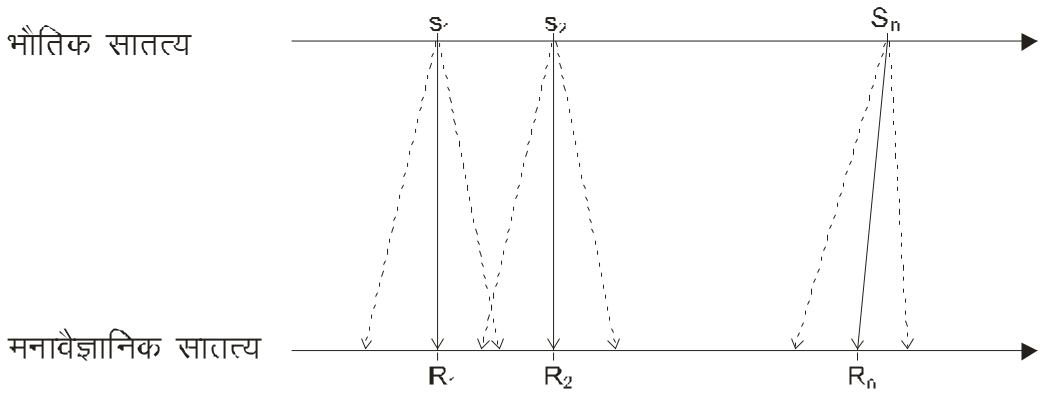

चित्र 6.3.1: भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक सातत्य

जैसा चित्र 6.3.1 में स्पष्ट है कि भौतिक उद्दीपक निरपेक्ष सीमान्त पर प्राणी में संवेदी अनुक्रिया आरम्भ करता है। निरपेक्ष सीमान्त के नीचे के उद्दीपक प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न नहीं करते। अतः निरपेक्ष सीमान्त से संबंधित संवेदी अनुक्रिया (R_0) को मनोवैज्ञानिक सातत्य का आरम्भ बिंदु या जीरो बिंदु माना जाता हैं व्यक्ति किसी भी उद्दीपक मूल्य के प्रति सदैव संवेदनशीलता प्रदर्शित करें और उसके नीचे के उद्दीपक मूल्यों के प्रति संवेदनशीलता प्रदर्शित न करे यह आदर्श स्थिति नहीं पाई जाती। अतः उस उद्दीपक मात्रा को निरपेक्ष सीमान्त माना जाता है जो 50 प्रतिशत बार संवेदी अनुक्रिया उत्पन्न करती है।

इसी प्रकार न्यूनतम ज्ञेय भेद (JND) का संप्रत्यय विभेदक सीमान्त (DL) से निकटता से संबंधित है। भौतिक सातत्य पर यदि उद्दीपक मूल्य को विभेदक सीमान्त मूल्य जितना परिवर्तन किया जाता है तो प्राणी को पहले उद्दीपक तथा दूसरे उद्दीपक में 50 प्रतिशत बार विभेद की संवेदना होती है उदाहरण के लिए यदि S_2 की मात्रा S_1 से विभेदक सीमान्त के मान से कुछ अधिक है तो प्राणी को S_2 50% से अधिक बार S_1 से अधिक की संवेदी अनुक्रिया उत्पन्न करेगा।

चित्र 6.3.1 में उद्दीपक S_1 जो भौतिक सातत्य पर है मनोवैज्ञानिक सातत्य पर R_1 की संवेदना उत्पन्न करता है। यदि S_2 जो S_1 से भौतिक सातत्य पर बड़ा है, वह संवेदी सातत्य पर R_2 की अनुक्रिया करता है अर्थात् R_1 से अधिक की संवेदी अनुक्रिया करता हैं। यदि भौतिक सातत्य पर S_2 तथा S_1 का अंतर विभेदक सीमान्त को प्रदर्शित करता है तो इनसे संबंधित संवेदना संवेदीसातत्य पर R_1 से R_2 होती है। R_2 तथा R_1 संवेदना का अंतर एक न्यूनतम ज्ञेय भेद को प्रदर्शित करता है। (डी आमेटो)

अतः न्यूनतम ज्ञेय भेद भौतिक उद्दीपक में अंतर को भौतिक सातत्य पर प्रदर्शित नहीं करता बल्कि यह संवेदी सातत्य को इंगित करता है। अतः यह कथन किया जाता है कि S_1 तथा S_2 उद्दीपक एक JND दूर है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन मनोभौतिकी प्रमुखतः उद्दीपक तथा उससे उत्पन्न संवेदना से संबंधित है। अतःप्राचीन म्नोभौतिकी से संबंधित प्रयोगों में प्रशिक्षित प्रयोज्यों का उपयोग किया जाता था जो पूर्णतया उनकी संवेदनाओं पर आधारित निर्णय देने के लिए सावधान रहते थे। इन प्रयोज्यों को निर्णयों को बाहरी कारकों जैसे प्रयुक्त उद्दीपक के बारे में सूचना इत्यादि से प्रभावित न होने देने के बारे में सावधान किया जाता था। इस प्रकार प्राचीन मनोभौतिकी में R_S - R_J संबंध का अध्ययन नहीं किया जाता। अन्य शब्दों में उद्दीपक से होने वाले उत्तेजना और निर्णय के बीच के कारकों पर ध्यान नहीं दिया जाता और उन्हें समान माना जाता है।

संकेत पहचान सिद्धांत में प्राचीन मनोभौतिकी सिद्धांत से परे R_S - R_J संबंध और प्रयोज्य संबंधी कारकों का भी अध्ययन किया जाता है।

6.3.1 मनोभौतिकी की अवधारणा (Concept of Psycho-physics)

आधुनिक मनोभौतिकी अनुसंधानों में तीन सातत्यों पर बल दिया।

- भौतिक सातत्य (Physical Continum)
- आत्मनिष्ठ सातत्य (Subjective Continum)
- निर्णय सातत्य (Decisive Continum)

भौतिक सातत्य - उद्दीपक में भौतिक गुणों में परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है जैसे वस्तु का भार, ध्वनि की आवृत्ति आदि।

आत्मनिष्ठ सातत्य - सांवेदिक अनुभव के किसी एक पक्ष को प्रदर्शित करता है। जैसे ध्वनि कितनी तेज है, वस्तु कितनी भारी है। इस सातत्य में उद्दीपकों में परिवर्तन के प्रति व्यक्ति की अनुक्रियाओं को रिकॉर्ड करते है।

निर्णय सातत्य में अनुक्रियाओं को प्रकट करना है। जैसे ''मुझे दो बिंदु का अनुभव हो रहा है। '' ऐसे शाब्दिक निर्णय या रिपोर्ट आत्मनिष्ठ अनुभवों पर निर्भर करता है जिसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। यह आत्मनिष्ठ अनुभव ही उद्दीपकों में परिवर्तन का सूचक है। मनोभौतिकी में शोधों में यह अवधारणा की जाती है कि आत्मनिष्ठ तथा निर्णय सातत्य में रेखीय संबंध होता है। लेकिन गिलफोर्ड के अनुसार यह संबंध इतना सरल व स्पष्ट नहीं होता है।

इन संबंधों में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है जिससे प्रत्यक्षीकरण के बारे में अनुमान लगाने की प्रक्रिया जटिल हो जाती है।

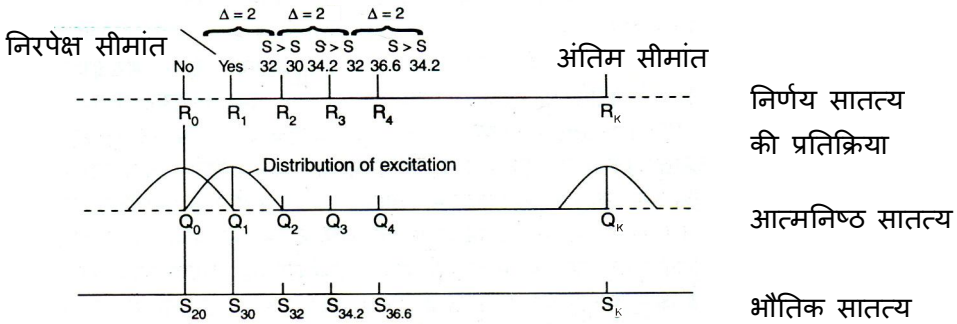

चित्र 6.3.2 मनोभौतिकी निर्णयों के लिए तीन सातत्यों की अवधारणा

मनोभौतिकी सातत्य लम्बा होता है क्योंकि हमारे संवेदी अंग जिनके माध्यम से वातावरण की सूचनाएँ प्राप्त करते है, ऊर्जा के विशिष्ट विस्तार के लिए ही है। उदाहरण के लिए हमारी संवेदना केवल विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम तक ही सीमित है, इसके बाहर के विकीरण जैसे कास्मिक किरणों आदि को हम ग्रहण नहीं कर पाते।

एक निश्चित प्रात्यक्षिक प्रक्रम के सक्षम होने के लिए ऊर्जा के एक विशेष मात्रा की आवश्यकता होती है। यह मात्रा समय-समय पर बदलती है। अतः समय के साथ-साथ देहली में भी परिवर्तन होता जाता है। जो उद्दीपक देहली के नीचे है वह दूसरे समय ऊपर भी हो सकता है।

देहली के मान में क्षणिक उतार-चढ़ाव का वितरण यादृच्छिक होता है। इस वितरण को प्रसामान्य वक्र द्वारा प्रदर्शित कर सकते है जिसका मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक समान होता है। इस प्रकार क्षणिक देहलियों के वितरण का औसत वह बिंदु होगा जिसके उपर व नीचे 50 प्रतिशत क्षणिक देहलियों के मूल्य होते है। अन्य शब्दों में एक अनुभूति के लिए ऊर्जा की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। न्यूनतम ऊर्जा का निर्धारण सांख्यिकीय रूप से ही होता सकता है। अतः व्यवहारिक तौर पर ऊर्जा की मात्रा जो प्रत्यक्षण के लिए आवश्यक है, को अनुक्रिया संभाव्तया की कसौटी पर साधारणतया .50 माना जाता है, इसी मूल्य को देहली कहते है।

इन अवधारणाओं के आधार पर कई जानकारियाँ प्राप्त होती है। चित्र में S_{29} प्रेक्षण के बाहर है। उसका व उसके नीचे के उद्दीपकों का संज्ञान व्यक्ति को नहीं होगा। S_{30} द्वारा जो उत्तेजना होती है, उसके वितरण का औसत आत्मनिष्ठ सातत्य से ऊपर होता है। इसका 50 प्रतिशत के प्रतिमान के आधार पर पहचान की जा सकती है। अन्य शब्दों में यह वह उद्दीपक मान है जिसके द्वारा अनुक्रिया के संज्ञापित होने की 50 प्रतिशत सम्भावनाएँ होती है। भौतिक मापनी दर S_{30} आत्मनिष्ठ मापनी के आरम्भ को प्रतिनिधित्व करता है।

विभेदक सीमान्त को किस प्रकार इस पर विभाजित किया जाए यह भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उद्दीपक की यह वह कम से कम मात्रा है जो उद्दीपक अंतर की पहचान के लिए आवश्यक होती है। जैसे S_{32} को 50 बार अधिक बताया है तो यह अंतर विभेदक सीमान्त को प्रकट करेगा। चित्र में विभेदक सीमान्त या देहली का मान 2 है और S_{32} एक JND को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार 34.2, 32 एक JND उच्च है। इस आधार पर आत्मनिष्ठ सातत्य ज्ञात किया जा सकता है।

इसी तरह से उद्दीपक मान Sk तक पहुँच जाते है जिसे अंतिम सीमान्त कहा जाता है। इसका अर्थ है कि वे सब उद्दीपक जो Sk से उच्च होंगे, की पहचान या संज्ञापन नहीं हो सकता। इसका कारण हमारी प्रत्यक्षीकरण क्षमता Sk से उच्च उद्दीपक मात्राओं को संज्ञापित करने योग्य नहीं है। अतः आधुनिक शोधों में आत्मनिष्ठ सातत्य पर भी अध्ययन करने का प्रयास किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. प्राचीन मनोभौतिकी में ..... सातत्य तथा मनोवैज्ञानिक सातत्य की अवधारणा की गई है।
2. देहली वह उद्दीपक मात्रा है जिससे अनुक्रिया होने की ..... प्रतिशत संभावना होती है।

6.4 संकेत संज्ञापन सिद्धान्त(Signal Detection Theory)

मनोभौतिकी के क्षेत्र में फेकनर के कार्यों के बाद संकेत संज्ञापन सिद्धांत को प्रमुख सैद्धान्तिक विकास माना जाता है। प्राचीन मनोभौतिक शास्त्रियों के अनुसार संवेदना का मापन हो सकता है किंतु देहलियों के मापन के लिए जिन विधियों का विकास हुआ उनके आधार पर सही मापन नहीं किया जा सकता। सैन्ट्रोक (2000) के अनुसार ''संकेत पहचान सिद्धान्त'' एक ऐसा सिद्धान्त है जो यह बतलाता है कि संवेदी उद्दीपकों के प्रति संवेदनशीलता प्रेक्षक के संवेदी क्षमताओं तथा उद्दीपक की भौतिक तीव्रता के अलावा विभिन्न कारकों पर निर्भर करता हैं। इन कारकों में वैयक्तिक तथा संदर्भात्मक परिवर्तन जैसे थकान, प्रत्याशा, परिस्थिति की अति आवश्यकता आदि सम्मिलित होते है।

6.4.1 संवेदनशीलता के कारक

जब कोई भी उद्दीपक या संकेत हमारे सामने उपस्थित किया जाता है तो इससे उत्पन्न संवेदनशीलता मूल रूप से दो बातों पर निर्भर करती है।

1. **संवेदी कारक:** इससे तात्पर्य संकेत या उद्दीपक से संबंधित ज्ञानेन्द्रिय जैसे आवाज है तो कान, देखने योग्य वस्तु है तो आंख इत्यादि की संवेदी क्षमता पर निर्भर करती है। यदि संवेदी क्षमता अधिक होती तो प्रत्यक्षीकरण स्पष्ट होगा।
2. **असंवेदी कारक या असंवेदी पूर्वाग्रह:** इसमें कई कारक एक साथ मिले हुए होते हैं। जैसे व्यक्ति की अभिप्रेरणा, ध्यान, आकांक्षा शोरगुल आदि जिन पर संवेदनशीलता निर्भर करती है।

संकेत संज्ञापन सिद्धान्त बतलाता है कि किसी संकेत के संज्ञापन से संबंधित निर्णय कहाँ तक संवेदी कारकों द्वारा प्रभावित होते है और कहाँ तक असंवेदी कारकों से प्रभावित होते है। यह सिद्धांत संवेदी

तथा असंवेदी कारकों को अलग करने की विधि के समान है। इस तरह प्राचीन मनोभौतिकी में एकाकी निरपेक्ष देहली पर बल डाला जाता है।

6.4.2 संवेदी तत्व तथा निर्णय प्रक्रिया उपाय (Signal detection Experiment Process)

संकेत संज्ञापन सिद्धांत में संवेदी पहचान मूलतः दो प्रक्रियाओं को महत्वपूर्ण मानता है- संवेदी तत्व और निर्माण प्रक्रिया उपाय। संवेदी कारक में दो बातें सम्मिलित होती है - उद्दीपक की तीव्रता तथा प्रयोज्य की संवेदनशीलता। निर्णय प्रक्रिया उपाय जिसे कसौटी भी कहा जाता है और β द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यह उन कारकों से संबंधित है जिनका उपयोग प्रेक्षक तब करता है जब वह उद्दीपक की उपस्थिति के बारे में निश्चित नहीं रहता है। इसमें प्रेक्षक की उम्मीद, अभिप्रेरणा उद्दीपक के प्रति विशेष अनुक्रिया करने पर मिलने वाला पुरस्कार आदि सम्मिलित हैं।

6.4.3 संकेत संज्ञापन प्रयोग प्रक्रिया

किसी भी संकेत संज्ञापन प्रयोग में प्रयोगकर्ता भिन्न-भिन्न प्रयासों में किये गये निर्णयों को सावधानी पूर्वक लिखता है और उसक विश्लेषण करता है। इन प्रयासों में उद्दीपक या संकेत कभी उपस्थित रहता है और कभी अनुपस्थित। जिस प्रयास में उद्दीपक अनुपस्थित रहता है उसे पकड़ प्रयास कहते है। इस तरह की परिस्थितियों में मुख्यतः चार प्रकार की अनुक्रियाएँ प्राप्त होती हैं जिन्हें तालिका 1 में भी दिखाया गया है।

तालिका 1: संकेत संज्ञापन प्रयोग की अनुक्रियाएँ

	उपस्थित	हाँ सही अनुमान .30	नहीं चूकना .70
संकेत Signal	अनुपस्थित	गलत अलार्म .15	सही अस्वीकार .85

1 सही अनुमान की अनुक्रिया: जब उद्दीपक या संकेत उपस्थित होता है और प्रयोज्य उसकी पहचान करने में सफल हो जाता है। उसे हिट या सही अनुमान की क्रिया कहते हैं।

2 चूक जाने की अनुक्रिया: जब उद्दीपक या संकेत उपस्थित होता है किंतु प्रयोज्य उसकी उपस्थिति की पहचान करने में चूक जाता है तो इसे चूक जाने की अनुक्रिया कहते हैं।

3 गलत अलार्म अनुक्रिया: जब किसी प्रयास में संकेत अनुपस्थित होता है किंतु प्रयोज्य को ऐसा महसूस होता है कि संकेत उपस्थित था तो इस गलत अलार्म अनुक्रिया कहा गया।

4 सही अस्वीकार की अनुक्रिया: जब किसी प्रयास में संकेत अनुपस्थित होता है और साथ ही साथ प्रयोज्य भी यही कहता है कि संकेत अनुपस्थित था तो इसे सही अस्वीकार की अनुक्रिया कहते है।

प्रयोगकर्ता इन चारों में केवल सही अनुमान की क्रिया और गलत अलार्म की अनुक्रिया का ही विश्लेषण करते हैं क्योंकि सही अनुमान तथा चूक जाने की अनुक्रिया एक दूसरे की पूरक हैं। इसी तरह गलत अलार्म व सही अस्वीकृति की अनुक्रिया भी एक दूसरे के पूरक है। केवल दो अनुक्रियाओं के विश्लेषण से ही संवेदी कारकों तथा असंवेदी कारकों को अलग करना संभव हो जाएगा।

6.4.4 रिसीवर ऑपरेटिंग कैरेक्टरिस्टिक वक्र

जब प्रयोगकर्ता इस बात का निर्णय कर लेता है कि उसे केवल सही (ठीक) अनुमान तथा गलत अलार्म अनुक्रिया का ही विश्लेषण करना है तो वह प्रयोज्य के निर्णय को भिन्न प्रयासों का एक समूह या ब्लॉक बनाकर प्राप्त करने की कोशिश करता है। यह समूह 50 से 150 कितनी भी प्रयासों का हो सकता है। एक ब्लॉक या समूह में संकेत मात्र 10 प्रतिशत प्रयास में जबकि अन्य ब्लॉक या समूह में संकेत 50 प्रतिशत, 70 प्रतिशत, 90 प्रतिशत प्रयासों में उपस्थित हो। इन विभिन्न समूहों में सही अनुमान अनुक्रिया के अनुपात तथा गलत अलार्म अनुक्रिया अनुपात का आलेख पर वक्र रेखा द्वारा प्रदर्शित किया हैं वक्र जो दोनों तरह के अनुपात को प्रदर्शित करते हैं रिसीवर ऑपरेटिंग कैरेक्टरिस्टिक वक्र कहलाते है। वक्र को चित्र 6.4.4 में दिखलाया गया है।

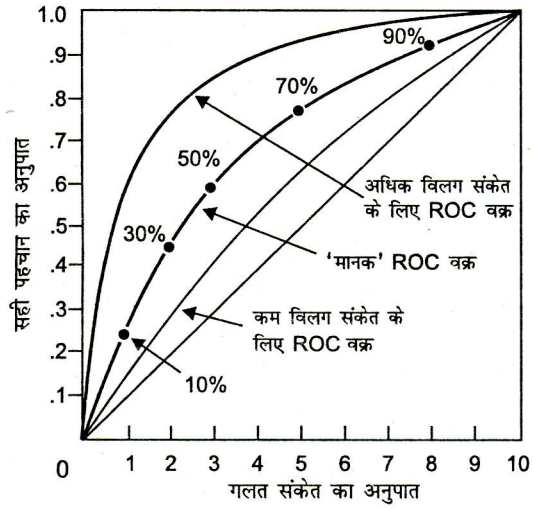

चित्र 6.4.4

प्रयोगों में उद्दीपक या संकेत को किसी खास स्तर पर कुछ प्रयासों में दिया जाता है तथा कुछ में नहीं तो ROC वक्र से प्रयोज्य में होने वाले क्रियात्मक गुणों का प्रदर्शन होता हैं इन ROC की कुछ विशेषताएँ होती है जो निम्नाकिंत है -

6.4.5 ROC की विशेषताएँ

1. आलेख की सीधी तिरछी रेखा इंगित करती है कि प्रयोज्य उद्दीपक या संकेत को नहीं पहचान पाता। वह केवल अनुमान के आधार पर ही निर्णय दे रहा है। क्योंकि सही अनुमान तथा गलत अलार्म अनुक्रियाओं का अनुपात बराबर है। यह रेखा शून्य संवेदनशीलता को इंगित करती है और उस समय भी प्राप्त होती है जब संकेत देहली से नीचे होता है। अन्य शब्दों में यदि बहरा व्यक्ति ध्वनि की तीव्रता के लिए कोई निर्णय दे तब भी इस प्रकार का वक्र प्राप्त होगा।

2. सीधी तिरछी रेखा के बायी और की वक्र रेखाओं द्वारा संकेत की तीव्रता में वृद्धि प्रदर्शित की गई है। इसके कारण प्रयोज्य के सही पहचान की अनुक्रिया में वृद्धि हुई हैं।

3. वक्र का अधिक धनुषाकार होना प्रयोज्य की अधिक संवेदनशीलता को इंगित करता है। सही अनुक्रिया का अनुपात गलत अलार्म अनुक्रिया अनुपात से अधिक होने पर वक्र में धनुष आकृति बनती है। जैसे-जैसे यह सही अनुक्रिया अनुपात गलत अनुक्रिया अनुपात से बढ़ता जाता है ROC वक्र के तिरछेपन में वृद्धि होती जाती है और सीधी रेखा और उसके अंदर का कुल क्षेत्र भी बढ़ता जाता है जिसे 'd' कहते हैं। 'd' का मान जितना अधिक होगा, व्यक्ति की संवेदनशीलता भी अधिक होगी।

4. जब प्रयासों का किसी बालक में संकेत की उपस्थिति का प्रतिशत कम होता है (जैसे मात्र 10 प्रतिशत) तो सही अनुमान अनुक्रिया तथा गलत अनुमान अनुक्रिया दोनों ही कम होते हैं किंतु सही अनुमान अनुक्रिया का अनुपात गलत अलार्म अनुक्रिया अनुपात की तुलना में अधिक होगा। जब प्रयासों के ब्लॉक में संकेत की उपस्थिति का प्रतिशत अधिक होता है (जैसे 70 प्रतिशत या 90 प्रतिशत) तो वैसी अवस्था में सही अनुमान की अनुक्रिया तथा गलत अलार्म की अनुक्रिया दोनों ही अधिक होते है। किंतु सही का अनुपात गलत अलार्म अनुपात की अपेक्षा कम होता है।

5. ROC द्वारा संकेत के किसी एक ही तीव्रता स्तर पर प्रयोज्य द्वारा दिए गए अनुक्रिया पैटर्न का पता लगता है। जब अधिक तीव्रता के उद्दीपक या संकेत दिया जाएगा तो प्रयासों के भिन्न-भिन्न ब्लॉक को मिलाती हुआ वक्र अधिक धनुषाकार होगा और जब कम तीव्रता का उद्दीपक दिया जाएगा तो ROC सीधी तिरछी रेखा के नजदीक होगा।

6.4.6 ROC वक्र पर प्रयोज्य की प्रत्याशा का कुछ मनोवैज्ञानिकों ने असंवेदी कारकों जैसे प्रयोज्य की प्रत्याशा तथा अभिप्रेरणा में परिवर्तन कर प्रयोज्य के अनुक्रिया के पैटर्न में होने वाले परिवर्तनों को अर्थात् प्रयोज्य द्वारा दी गई हाँ अनुक्रिया की संख्या में परिवर्तनों का अध्ययन किया। टैनर, स्वेट्स तथा ग्रीन (1956) ने एक प्रयोग में प्रयोज्यों को एक ध्वनि को .1 सैकण्ड के लिए ध्वनि नियंत्रित कक्ष में कुछ प्रयासों में दिया और कुछ में नहीं। प्रयोज्य को ध्वनि सुनाई देने पर एक बटन दबाकर और ध्वनि न सुनाई देने पर दूसरा बटन दबा कर अनुक्रिया करनी थी। प्रयोज्य का निर्णय कई ब्लॉक में प्राप्त किये गये। कुछ ब्लॉक में 50 प्रतिशत प्रयासों में किन्हीं में 10 प्रतिशत प्रयासों में किन्हीं में 90 प्रतिशत प्रयासों में ध्वनि अर्थात् संकेत उपस्थित किया गया। स्वाभाविक तौर पर जब 10 प्रतिशत प्रयास में ही संकेत दिया जाता था, तब प्रयोज्य की प्रत्याशा अर्थात् संकेत के उपस्थित होने की उम्मीद कम होती थी किंतु जब 90 प्रतिशत प्रयास में संकेत दिया जाता था तो प्रयोज्य को संकेत उपस्थित होने की उम्मीद भी अधिक होती थी। परिणाम में यह पाया गया कि उम्मीद अधिक होने पर गलत अलार्म की संख्या भी उस अवस्था से अधिक होती थी जब संकेत उपस्थिति की उम्मीद कम थी (जैसे 10 प्रतिशत)। टैनर, स्वेट्स तथा ग्रीन (1956) ने अध्ययन में 90 प्रतिशत संकेत उपस्थित होने की अवस्था में गलत अलार्म .80 और 10 प्रतिशत संकेत उपस्थित होने की अवस्था में चूक जाने की अनुक्रिया का अनुपात . 61 था या अन्य शब्दों में सही अनुमान अनुक्रिया का अनुपात मात्र.39 था। आगे दी गई तालिका में 90 प्रतिशत तथा 10 प्रतिशत उद्दीपक उपस्थिति की अवस्थाओं में चार तरह की अनुक्रियाओं का अनुपात दिखाया गया है।

उद्दीपक	अनुक्रिया	
	हाँ	नहीं
उपस्थित	.96	.04
अनुपस्थित	.80	.20

90% उद्दीपक उपस्थिति अवस्था में अनुक्रिया

उद्दीपक	अनुक्रिया	
	हाँ	नहीं
उपस्थित	.39	.61
अनुपस्थित	.05	.95

10% उद्दीपक उपस्थिति अवस्था में अनुक्रिया

अनुपात में इस तरह का परिवर्तन होने से ROC के आकार में उस समय की तुलना में परिवर्तन आ जाता है जब प्रयोज्य की उम्मीद सामान्य होती है। तालिका से यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट होता है।

6.4.7 ROC वक्र पर अभिप्रेरणा का प्रभाव (The effect of Motivation on ROC Curve)

स्वेट्स, टैनर तथा बर्डसल (1961) ने एक प्रयोग में व्यक्ति के अभिप्रेरण में परिवर्तन का अनुक्रिया के पैटर्न पर प्रभाव का अध्ययन किया। इन्होंने किसी विशिष्ट अनुक्रिया के महत्व को प्रेरणा को देकर (जैसे उस अनुक्रिया के बाद मुद्रा देकर) अधिक कर दिया। ये प्रत्येक सही अनुमान की अनुक्रिया के बाद प्रयोज्य को 10 सेंट देते थे और गलत अलार्म अनुक्रिया पर 5 सेंट वापस लेते थे। इस तरह की मेट्रिक्स को 'पे ऑफ मेट्रिक्स (Pay Off matrix)' कहा। परिणाम में यह पाया गया कि जिस तरह से प्रयोज्य की प्रत्याशा में परिवर्तन होने से ROC वक्र में परिवर्तन आ जाता है, उसी तरह खास अनुक्रिया को महत्वपूर्ण बनाने पर ROC में परिवर्तन आ जाता है। प्रयोज्य महत्वपूर्ण अनुक्रिया को अधिक करता है। इन मनोवैज्ञानिकों के प्रयोग में सही अनुमान की अनुक्रिया अनुपात गलत अलार्म अनुक्रिया के अनुपात से कही अधिक था। इन लोगों ने पाया कि इस तरह की परिस्थिति में प्रयोज्य का अधिकतर निर्णय ROC के बायी और नीचे की ओर सांद्रित होता है।

6.4.8 सांवेदिक व्यवस्था एवं आदर्श प्रेरक

यह प्रयोगों में पाया गया है कि किसी भी प्रयास में व्यक्ति के सामने उद्दीपक या संकेत उपस्थित नहीं किये जाने पर भी उसके संवेदी तथा प्रत्यक्षात्मक तंत्र क्रियाशील होते है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति को संवेदना उदाहरण आवाज की संवेदना होती है। इसे संवेदी व्यवस्था या संवेदी आवाज कहते है। जब कोई बाहर से उद्दीपक जैसे आवाज दिया जाता है तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति संवेदी तंत्रों को अधिक क्रियाशील कर संवेदी आवाज के स्तर को काफी बढ़ा देता है। फलस्वरूप व्यक्ति संकेत या उद्दीपक की पहचान आसानी कर लेता है। जब संकेत की तीव्रता का स्तर धीमा होता है, तो इससे उत्पन्न संवेदन तथा संवेदी आवाज से उत्पन्न संवेदन काफी समान होते है। परिणामतः प्रयोज्य का निर्णय करना कठिन होता है। इस समस्या के समाधान के लिए व्यक्ति अपने अनुभव, उम्मीद, प्रेरणा आदि के आधार पर एक खास संवेदन स्तर के लिए कसौटी निर्धारित करता है जिसे β बीटा कहते है। अगर संकेत से उत्पन्न संवेदन स्तर उस विच्छेद बिंदु से नीचे है तो व्यक्ति संकेत का प्रत्यक्षण नहीं

करता और 'नहीं' उत्तर देता है और यदि संवेदन स्तर विच्छेदन बिंदु से अधिक है तो संकेत का प्रत्यक्षण होता है। यदि कोई प्रयोज्य वास्तव में एक विच्छेद बिंदु का निर्धारण कर 'हाँ' या 'नहीं' में उत्तर देता है तो उसे **आदर्श प्रेक्षक** कहते है।

6.4.9 संकेत संज्ञापन सिद्धांत की उपयोगिता

इस तरह संकेत संज्ञापन सिद्वान्त में किसी उद्दीपक के प्रति व्यक्ति की संवेदनशीलता की माप की जाती है। व्यक्ति की संवेदनशीलता व्यक्ति के अभिप्रेरणा प्रत्याशा आदि से प्रभावित होती है, किंतु इस सिद्वान्त में उनके प्रभावों को अलग कर विशुद्व संवेदनशीलता का अध्ययन किया जाता है। विशुद्व संवेदनशीलता से तात्पर्य वैसी संवेदनशीलता से है जो केवल संकेत द्वारा ही व्यक्ति में उत्पन्न हो रहा है। इस सिद्वान्त का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में हुआ है। जैसे वकाहोट ने इस सिद्वान्त का उपयोग प्रत्यक्षदर्शी (गवाह) द्वारा अपराधी को व्यक्तियों की कतार से पता लगाने में किया है। पशु संबंधी अनुसंधानों में इस सिद्धान्त का महत्व है। ब्लाग (1969) ने पशुओं के उद्दीपक सामान्यीकरण प्रवणता में, ब्लाग व कोल (1967) ने विभेदन अधिगम में, सूबोस्की (1967) ने प्राचीन अनुबंधन में, प्राइस (1966) ने प्रत्यक्षीकरण और व्यक्तित्व क्षेत्र में, प्राइस व ड्रिकसन (1966) ने सामान्य व मनोविदलता के रोगियों के अध्ययन में, डी.अमेटो (1970) ने चयनात्मक अधिगम में उपयोगी पाया।

6.4.10 संकेत संज्ञापन सिद्धांत की आलोचना

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि इस सिद्धांत के आधार पर किसी उद्दीपक की पहचान करने के लिए लम्बी प्रक्रिया अपनायी जाती है जो जटिल भी होती है। किंतु वास्तविकता में संवेदी कारकों को दूर करने के लिए यह विधि उपयोगी है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. संकेत संज्ञापन सिद्धांत में संवेदी तथा असंवेदी कारकों को अलग-अलग किया जाता है। हाँ/नहीं

2. ROC वक्र की सीधी तिरछी रेखा ..... को इंगित करती है।

6.5 सारांश (Summary)

मनोभौतिकी अवधारणा के अनुसार प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम के सक्षम होने के लिए ऊर्जा की एक विशेष मात्रा की आवश्यकता होती है। यह देहली को इंगित करता है। देहली के मान का वितरण प्रसामान्य वक्र के रूप में होता हैं जिसका माध्य देहली को इंगित करता है। अतः देहली मान सांख्यिकी आधार पर ज्ञात किया जाता है।

संकेत संज्ञापन सिद्धांत से ज्ञात होता है कि संवेदी तथा असंवेदी कारकों से निर्णय प्रभावित होता है। इन दोनों कारकों को भिन्न कर संवेदनशीलता का मापन किया जा सकता है।

6.6 शब्दावली (Glossary)

- ROC वक्र - रिसीवर ऑपरेटिंग केरेक्टरिस्टिक वक्र

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अभ्यास प्रश्न 1

   (1) भौतिक (2) 50 प्रतिशत

2. अभ्यास प्रश्न 2

   (1) हाँ (2) असंवेदनशीलता

6.7 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. संकेत संज्ञापन सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
2. आदर्श प्रेक्षक क्या होता है?
3. देहली के सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए।

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

- डी. अमेटो (1979) एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी, टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।
- राजमनिक्कम, एम. (2000) मार्डन साइकोफिजिकल एण्ड स्केलिंग मेथडर्स एण्ड एक्सपेरियमेन्टेशन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (1999) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्री वास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस. तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपरीमेंटल साइकोलॉजी, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

इकाई - 7

मनोभौतिकी विधियाँ - प्राचीन तथा आधुनिक

Psycho-Physical Methods – Classical and Modern

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 प्राचीन मनोभौतिकी विधियाँ

7.4.1 औसत त्रुटि विधि

7.4.2 मूलर लायर भ्रम का प्रयोग

7.4.3 स्थान त्रुटि, गति त्रुटि, आत्मपरक समानता बिंदु (PSE), स्थिर त्रुटि

7.5 सीमा विधि

7.5.1 सीमा विधि द्वारा निरपेक्ष सीमांत का निर्धारण

7.5.2 सीमा विधि की त्रुटियाँ आदत त्रुटि, प्रत्याशा त्रुटि, उद्दीपक त्रुटि

7.5.3 सीमा विधि द्वारा विभेदक सीमान्त का निर्धारण

7.6 सतत उद्दीपक विधि

7.6.1 सतत उद्दीपक विधि द्वारा निरपेक्ष सीमांत का निर्धारण

7.6.1.1 रेखीय अन्तर्वेशन प्रक्रिया

7.6.1.2 अंसचयी वितरण का अंकगणितीय माध्य

7.6.1.3 योग विधि

7.6.2 सतत उद्दीपक विधि द्वारा विभेदक सीमान्त का निर्धारण

7.7 मनोभौतिकी की आधुनिक विधियाँ

7.7.1 मनोवैज्ञानिक मापनी विधियाँ

7.8 सारांश

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस अध्याय में मनोभौतिकी की विभिन्न समस्याओं के अध्ययन के लिए प्रयुक्त विधियों का वर्णन किया जाएगा।

7.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- मनोभौतिकी की औसत त्रुटिविधि की जानकारी दे सकेंगे।
- सीमा विधि को बता सकेंगे।
- स्थिर उद्दीपक विधि को बता सकेगें।
- मनोभौतिकी की प्रमुख आधुनिक विधियों को बता सकेंगे।

7.3 प्राचीन मनोभौतिकी विधियाँ (Old Psychophysics Methods)

जी.टी. फेकनर द्वारा स्थापित मनोभौतिकी को प्राचीन मनोभौतिकी कहा जाता है। फेकनर तथा उनके सहयोगियों ने तीन विधियों का वर्णन किया है।

7.4 औसत त्रुटि विधि (Average Error Method)

इस विधि को समायोजन विधि, पुनरूत्पादन विधि, तुल्य उद्दीपक विधि भी कहा जाता है। इस विधि में व्यक्ति एक चर उद्दीपक (तुलनात्मक उद्दीपक S_v) को घटा-बढ़ा कर दिए गए मानक उद्दीपक (S_t) के बराबर करता है। इस तरह के कई प्रयास लिए जाते है। मानक उद्दीपक तथा चर उद्दीपक के मान का अंतर त्रुटि को प्रदर्शित करता है। सभी प्रयासों में किए गये निर्णयों का औसत ज्ञात किया जाता है। प्राप्त निर्णयों का औसत आत्मपरक समानता बिंदु (PSE) कहलाता है। St तथा PSE का अंतर स्थिर त्रुटि (CE) को इंगित करता है। PSE का मान St से बड़ा होने यह त्रुटि होने धनात्मक होगी जो मानक उद्दीपक के अति आंकलन को इंगित करता है। PSE का मान St से कम होने पर CE ऋणात्मक होगा जो मानक उद्दीपक के न्यून आंकलन को दिखलाता है। औसत त्रुटि की प्रमुख विशेषता यह है कि चर उद्दीपक का नियंत्रण पूर्णतः प्रयोज्य के पास होता है और वह उसे अपनी इच्छा से कम अधिक करता है। इस विधि में परिवत्र्य त्रुटि तथा स्थिर त्रुटि की संभावनाएँ होती हैं, जिन्हें दूर करने के लिए निम्नांकित उपाय किये जाते है -

1. दिये जाने वाले प्रयासों में से आधे में Sv को मानक उद्दीपक से छोटा तथा आधे में बड़ा रखना चाहिए। इससे प्रयोज्य को Sv को St के बराबर करने में गति के कारण होने वाली त्रुटि नियंत्रित होगी।
2. आधे प्रयासों में Sv को St के दायें तथा आधे में बायीं और रखने से स्थान के कारण होने वाली त्रुटि नियंत्रित होगी।
3. Sv का मान परिवर्तित कर प्रस्तुत करना चाहिए जिससे प्रयोज्य को कोई संकेत न मिले।

7.4.2 मूलर-लायर भ्रम प्रयोग (Muller-Lyer Illusion Experiment)

तालिका 7.1: मूलर लायर मापन के विभ्रम के लिए काल्पनिक आंकड़े

क्र.स.	**Sv** बायीं और		**Sv** दायीं और	
	बाहर की ओर ¼L0½ मिमी में.	भीतर की ओर ¼LI½ मिमी में.	बाहर की ओर ¼R0½ मिमी में.	भीतर की ओर (RI) मिमी में.
1.	47	47	45	47
2.	46	45	50	49
3.	51	44	46	44
4.	44	49	44	49
5.	48	48	45	43
6.	47	51	45	45
7.	46	52	46	48
8.	49	51	45	49
9.	50	52	43	43
10.	49	49	46	44
11.	44	49	50	43
12.	47	51	46	45
13.	46	48	51	50
14.	44	44	45	45
15.	49	51	46	44
16.	50	45	45	43
17.	48	44	48	46
18.	47	49	46	44
19.	46	48	43	45
20.	48	47	46	47
योग	946	962	921	913

औसत	47.3	48.1	46.05	45.65

औसत त्रुटि विधि को मूलर लायर भ्रम के मापन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मूलर लायर भ्रम प्रयोग में पंखवत रेखा (Sv) को प्रयोज्य घटा-बढ़ा कर तीरवत रेखा के बराबर करता है। गति त्रुटि को नियंत्रित करने के लिए आधे प्रयासों में पंखवत रेखा को तीरवत रेखा से बड़ा तो आधे प्रयासों में छोटा रखा जाता है। गति त्रुटि वह त्रुटि होती है जो प्रयोज्य के चर उद्दीपक को अंदर तथा बाहर की और गति करने के कारण उत्पन्न होती है।

इसी प्रकार स्थान त्रुटि को नियंत्रित करने के लिए आधे प्रयासों में Sv को St के दायी और आधे प्रयासों में बायीं और रखकर प्रयोज्य से रेखाओं को बराबर करवाया जाता है। स्थान त्रुटि वह है जो चर उद्दीपक के दायें अथवा बायें होने के कारण होती है। सभी प्रयासों को यादृच्छिक रूप से लिये जाते हैं, जिससे प्रयोज्य को किसी प्रकार की आदत या प्रत्याशा न हो। तालिका 7.1 से यह स्पष्ट है कि औसत त्रुटि विधि में आंकड़े किस प्रकार प्राप्त होते है।

विभिन्न त्रुटियों की गणना इस प्रकार की जाती है -

7.4.3 स्थान त्रुटि (Space Error)

$$= \frac{(M_{LO} + M_{LI})}{2} - \frac{(M_{RO} + M_{RI})}{2} = \frac{(946 + 962)}{2} - \frac{(921 + 913)}{2}$$

954 - 917= 37 मिमी.

गति त्रुटि

$$= \frac{(M_{LO} + M_{RO})}{2} - \frac{(M_{LI} + M_{RI})}{2} = \frac{(946 + 921)}{2} - \frac{(962 + 913)}{2}$$

= 933.5-937.5 = -4 मिमी.

आत्मपरक समानता बिंदु (PSE)= सभी निणयों का औसत

$$= \frac{946 + 962 + 921 + 913}{80}$$

= 46.77 मिमी.

स्थिर त्रुटि (CE) = PSE - St

= 46.77-50 = 3.225

स्थिर त्रुटि का मान मूलर लायर भ्रम की मात्रा को प्रदर्शित करेगा।

औसत त्रुटि विधि के गुण

औसत त्रुटि विधि में सभी निर्णयों को गणना में प्रयुक्त किया जाता है। यह एक सरल विधि है। साथ ही प्रयोज्य स्वयं चर उद्दीपक का प्रहस्तन करता है। इस कारण प्रयोग में प्रयोज्य निर्णयों को देने में सक्रिय रहता है।

7.5 सीमा विधि (Limit Method)

मनोभौतिकी में सीमा विधि का उपयोग देहली या सीमान्त ज्ञात करने के लिए किया जाता है। इस विधि को सीमा विधि का नाम क्रेपलिन (1891) ने दिया क्योंकि इसमें व्यक्ति के सामने उद्दीपक उपस्थित किया जाना वहाँ समाप्त हो जाता है जहां वह अपना निर्णय स्पष्ट रूप से कर लेता है। इस विधि को न्यूनतम परिवर्तन विधि भी कहते है। क्योंकि इस विधि में उद्दीपकों में न्यूनतम परिवर्तन कर प्रयोज्य के सामने उपस्थित किया जाता है। इस विधि को न्यूनतम ज्ञेय भेद विधि या क्रमिक खोज विधि भी कहते है।

सीमा विधि में AL और DL का निर्धारण करने के लिए उद्दीपकों में न्यूनतम परिवर्तन करते हुए प्रयोज्य के सामने दो श्रृंखलाओं में उपस्थित किया जाता हैं आरोही तथा अवरोही श्रृंखला। अवरोही श्रृंखला में उद्दीपक तीव्रता का आरम्भ ऐसे बिंदु से किया जाता है जहां प्रयोज्य निश्चित तौर पर उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाता। उद्दीपक तीव्रता में न्यूनतम वृद्धि करते हुए उस प्रयास तक प्रयोज्य को उद्दीपक प्रस्तुत किये जाते है जहां वह उसका प्रत्यक्षीकरण कर लेता है। उसमें आगे के प्रयास इस श्रृंखला में नहीं दिये जाते। इसी प्रकार अवरोही श्रृंखला में पहले प्रयास में उद्दीपक इतनी अधिक तीव्रता का उपस्थित किया जाता है कि व्यक्ति को उसका स्पष्ट ज्ञान हो। तब उद्दीपक तीव्रता में न्यूनतम किसी करते हुए उस प्रयास तक उद्दीपक उपस्थित किया जाता है, जब प्रयोज्य को उद्दीपक उपस्थिति का ज्ञान नहीं होता, उससे आगे इस श्रृंखला में प्रयास नहीं दिये जाते हैं। इस तरह बारी-बारी से आरोही तथा अवरोही श्रृंखलाएँ प्रस्तुत करते हुए व्यक्ति से निर्णय प्राप्त किए जाते हैं। इस विधि में उद्दीपक में परिवर्तन प्रयोगकर्त्ता करता है।

7.5.1 सीमा विधि द्वारा निरपेक्ष सीमान्त (AL) का निर्धारण

इस विधि द्वारा AL ज्ञात करने का उदाहरण तालिका 7.2 में दिखाया गया है। इस तालिका में सीमा विधि द्वारा ध्वनि तीव्रता के लिए AL ज्ञात करने से संबंधित आंकड़ों को और फिर उसके आधार पर AL की गणना प्रदर्शित है।

तालिका 7.2 में " - " चिन्ह को ध्वनि न सुनने की अनुक्रिया के रूप में दिखलाया है तथा "+" चिन्ह को ध्वनि सुनाई देने की अनुक्रिया में दिखलाया गया है। तालिका में पांच आरोही व पांच अवरोही श्रृंखलाओं के प्रयासों में प्रयोज्य के निर्णय प्रदर्शित है। तालिका 1 के अंत में प्रत्येक श्रृंखला के सीमान्त की गणना की गई हैं सीमान्त उसी उद्दीपक मान को इंगित करता है जो ध्वनि सुनाई न देने तथा देने की अनुक्रिया उत्पन्न करता हैं। उदाहरण के लिए पहली श्रृंखला आरोही है जहां 6 इकाई तक प्रयोज्य ने न सुनाई देने की अनुक्रिया की है और 7 इकाई पर सुनाई देने की अनुक्रिया हैं। अतः इस श्रृंखला का सीमान्त 6.5 हुआ। सभी श्रृंखलाओं के सीमान्त की गणना कर उनका माध्य ज्ञात किया गया जो इस उदाहरण में 7.8 है। सभी आरोही तथा अवरोही श्रृंखलाओं का अलग-अलग माध्य 7.7 तथा 7.9 है।

तालिका 7.2: सीमा विधि द्वारा ध्वनि तीव्रता के लिए AL का निर्धारण करना

ध्वनि तीव्रता काल्पनिक इकाई में	A	D	A	D	A	D	A	D	A	D
15		+				+				+
14		+		+		+				+
13		+		+		+		+		+
12		+		+		+		+		+
11		+		+		+		+		+
10		+		+		+		+	+	+
9		+		+		+	+	+	-	
8		+	+	+		+	-	-	-	
7	+	+	-	-	+	-	-		-	
6	-	-	-		-		-		-	
5	-		-		-		-		-	
4	-		-		-		-		-	
3	-		-		-		-		-	
2	-		-		-		-		-	
1	-		-		-		-		-	
सीमान्त	6.5	6.5	7.5	7.5	6.5	7.5	8.5	8.5	9.5	9.5

आरोही श्रृंखला का माध्य $= \frac{6.5 + 7.5 + 6.5 + 8.5 + 9.5}{5} = 7.70$

अवरोही श्रृंखला का माध्य $= \frac{6.5 + 7.5 + 7.5 + 8.5 + 9.5}{5} = 7.90$

निरपेक्ष सीमान्त ¼AL½ $= \frac{7.7 + 7.9}{2} = 7.80$

7.5.2 सीमा विधि की त्रुटियाँ - आदत त्रुटि, प्रत्याशा त्रुटि, उद्दीपक त्रुटि

आदत त्रुटि - यह त्रुटि किसी श्रृंखला में प्रयोज्य के समान निर्णय को लगातार देने की प्रवृत्ति के कारण होती है। अन्य शब्दों में प्रयोज्य की एक ही अनुक्रिया को करने की आदत से आदत या

अभ्यसन त्रुटि होती है। सरल शब्दों में यद्यपि उद्दीपक की तीव्रता में इतना स्पष्ट परिवर्तन हो जाता है कि उसे वह अनुक्रिया कर दूसरी अनुक्रिया करनी चाहिए थी। तब भी वह वही अनुक्रिया दोहराता है। जैसे आरोही श्रृंखला में बार-बार नहीं तथा अवरोही श्रृंखला में बार-बार हाँ कहने की आदत से आरोही श्रृंखला का माध्य अवरोही श्रृंखला की तुलना में अधिक होता है।

प्रत्याशा त्रुटि - यह त्रुटि प्रयोज्य की इस उम्मीद के कारण होती है कि उद्दीपक तीव्रता में परिवर्तन हो गया होगा। इस उम्मीद के कारण अवलोकनकर्ता अपनी अनुक्रिया में जल्दी परितर्वन कर देता हैं। यदि प्रत्याशा कारक आदत कारक से अधिक होता है तो अवरोही श्रृंखला का माध्य आरोही श्रृंखला की तुलना में अधिक होता हैं। उपर दिए गए उदाहरण में अवरोही श्रृंखला का माध्य (7.9) अवरोही श्रृंखला के माध्य (7. 7) से अधिक है जो प्रत्याशा त्रुटि को इंगित करता है। यद्यपि 0.2 मात्रा की त्रुटि बहुत कम है। प्रत्याशा त्रुटि तथा आदत त्रुटि दोनों एक दूसरे की विपरीत होती हैं। आरोही तथा अवरोही दोनों श्रृंखलाओं के उपयोग से ये दोनों त्रुटियाँ एक दूसरे के प्रभाव को कैंसल कर देती है।

उद्दीपक त्रुटि - प्रक्रिया का पूर्ण ज्ञान में कुछ अन्य त्रुटियों की ओर टिचनर बोरिंग ने बल दिया है। यदि प्रयोज्य को यह ज्ञान है किउसे अत्यधिक तीव्रता का या बहुत कम तीव्रता का उद्दीपक दिया जा रहा है तो यह ज्ञान प्रयोज्य निर्णय को प्रभावित कर सकता है और वह अनुमान को लगाने की कोशिश करता है कि अब निर्णय बदलना है। इस त्रुटि को नियंत्रित करने के लिए प्रस्तावित किया कि श्रृंखलाओं के आरंभिक बिंदुओं में परिवर्तन कर इस त्रुटि को नियंत्रित किया जा सकता है।

7.5.3 सीमा विधि द्वारा विभेदक सीमान्त का निर्धारण

इस विधि से विभेदक सीमान्त ज्ञात करने का उदाहरण तालिका 7.3 में दिया गया है। इस उदाहरण में उत्तोलित वजन के लिए DL का निर्धारण किया है। DL ज्ञात करने के लिए दो तरह के उद्दीपक लिए जाते हैं।

पहला उद्दीपक मानक उद्दीपक (St) होता है जिसका मान सदैव समान रहता है। इस प्रयोग में (तालिका 7.3) मानक उद्दीपक का मान 50 ग्राम है। दूसरा उद्दीपक तुलनात्मक उद्दीपक (Sv) होता है जिसे प्रत्येक प्रयास में प्रयोज्य के सामने बदल-बदल कर रखा जाता है। प्रस्तुत प्रयोग में तुलनात्मक उद्दीपक का मान 36 ग्राम से 64 ग्राम तक 2 ग्राम से परिवर्तित होता है।

प्रयोज्य को तालिका 7.3 में बताए क्रम के अनुसार मानक उद्दीपक तथा तुलनात्मक उद्दीपक दोनों प्रस्तुत किए जाते है। प्रयोज्य को बारी-बारी से उन्हें उठा कर बताना होता है कि तुलनात्मक उद्दीपक मानक उद्दीपक की तुलना में भारी है या बराबर अथवा हल्का है। तालिका में बराबर उत्तर को ^=* से, भारी को ^+* से तथा हल्के को ^-+* से इंगित किया गया है। इस प्रकार आरोही तथा अवरोही श्रृंखलाओं में प्रयास लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए पहली श्रृंखला जो अवरोही है, में पहले प्रयास में प्रयोज्य ने तुलनात्म्क उद्दीपक जो 65 ग्राम का है, को प्रयोज्य ने मानक उद्दीपक (St) जो 50 ग्राम का है, से भारी बताया है। अतः इस उत्तर को ^+* से अंकित किया है। इसी श्रृंखला में 54 ग्राम के तुलनात्मक वजन को प्रयोज्य ने 50 ग्राम के मानक वजन के बराबर बताया अतः इसे "=" से प्रदर्शित किया है। इसी प्रकार आगे के प्रयासों में 48 ग्राम के तुलनात्मक वजन को मानक वजन की तुलना में हल्का बताया है जिसे ^-* इंगित किया है। अन्य श्रृंखलाओं में इसी तरह से प्रयासों को लिया गया जिसके आँकड़े तालिका 7.3 में दिखाए गये है।

विभेदक सीमान्त (DL) की गणना के लिए पहले प्रत्येक श्रृंखला के लिए उपरी सीमान्त (UT) तथा निचले सीमान्त (LT) की गणना की जाती है। उपरी सीमान्त तुलनात्मक उद्दीपक की वह मात्रा है जहां प्रयोज्य अवरोही श्रृंखला में भारी से बराबर में अपना उत्तर परिवर्तन करता है और आरोही श्रृंखला में बराबर से भारी में अनुक्रिया परिवर्तित करता है। इसी प्रकार निचला सीमान्त (LT) उद्दीपक की वह मात्रा है जहां प्रयोज्य अवरोही श्रृंखला में अपना उत्तर बराबर से हल्का में बदलता है तथा आरोही श्रृंखला में हल्के से बराबर में उत्तर परिवर्तित करता है। गणना को देखने से स्पष्ट है कि उपरी सीमान्तों का माध्य 53 ग्राम है और निचली सीमान्तों का माध्य 48 ग्राम है।

तालिका – 7.3 उत्तोलित वजन के लिए सीमा विधि द्वारा विभेदक सीमान्त का निर्धारण

तुलनात्मक उद्दीपक ग्राम में	1	2	3	4	5	6	7	8
	D	A	D	A	D	A	D	A
64	+							
62	+				+		+	
60	+		+		+		+	
58	+		+		+		+	
56	+		+		+		+	
54	=		=		=		=	+
52	=		+	+	=	+	=	=
50	=	+	=	=	=	=	=	=
48	-	-	=	=	-	=	-	=
46		-	-	-		-		-
44		-		-		-		-
42		-		-		-		-
40		-		-		-		-
38		-						-
36		-						
उपरी सीमांत ¼UI½	55	49	51	55	55	51	53	55
निचला सीमांत ¼LT½	49	49	47	47	49	47	47	49
दोनों सीमातों का माध्य ¼PSE½	52	49	49	51	52	49	50	52

ऊपरी सीमान्तों का माध्य ¼Mean of UT½ $= \frac{424}{8} = 5.3$ ग्राम

निचली सीमान्तों का माध्य ¼Mean of LT½ $= \frac{384}{8} = 48$ ग्राम

अनिश्चितता का अंतराल ¼IU½ = 53 – 48 = 5 ग्राम

विभेदक सीमांत ¼DL½ $= \frac{IU}{2} = \frac{5}{2} = 2.5$ ग्राम

आत्म परक समानता बिंदु ¼PSE½ $= \frac{48 + 53}{2} = 50.50$ ग्राम

सतत त्रुटि (CE) = PSE – St = 50.5 – 50 = .5 ग्राम

आरोही श्रृंखला का माध्य ¼Mean of Ascending Series½ = 50.25 ग्राम

अवरोही श्रृंखला का माध्य ¼Mean of Descending Series½ = 50.75 ग्राम

अनिश्चितता का अंतराल (IU) उपरी सीमान्त तथा निचली सीमान्त के मध्य का भाग है, जिसकी गणना दोनों सीमान्तों के अन्तर द्वारा ज्ञात की जा सकती है। इस उदाहरण में अनिश्चितता का अंतराल (53-48=5 ग्राम) 5 ग्राम है। **विभेदक सीमान्त (DL)** अनिश्चितता के अंतराल का आधा होता है (D=IU/2) । यहाँ DL का मान 2.5 ग्राम प्राप्त हुआ है। 2.5 ग्राम विभेदक सीमान्त का मान इंगित करता है कि यदि 50 ग्राम के तुलनात्मक उद्दीपक को मानक वजन से 2.5 ग्राम के अंतर से घटाया या बढ़ाया जाता है तो व्यक्ति उस अंतर की पहचान कर लेता है।

अनिश्चितता के अंतराल का मध्य बिंदु या उपरी सीमान्त तथा निचले सीमान्त का माध्य **आत्मपरक समानता बिंदु** (PSE) को प्रदर्शित करता है। इस प्रयोग में PSE का मान (48+53/2 = 50.50) 50.50 ग्राम है। यह स्पष्ट करता है कि प्रयोज्य ने मानक उद्दीपक के 50 ग्राम के वजन को तुलनातक उद्दीपक के 50.50 ग्राम के वजन के समतुल्य प्रत्यक्षीकृत किया है।

आत्मपरक समानता बिंदु तथा मानक उद्दीपक का अंतर (PSE-St) **सतत त्रुटि** को प्रदर्शित करता है। यहां सतत त्रुटि का मान 0.5 ग्राम है। धनात्मक सतत त्रुटि अतिआंकलन को तथा ऋणात्मक सतत त्रुटि न्यूनआंकलन को इंगित करती है। 0.5 ग्राम की धनात्मक त्रुटि बताती है कि प्रयोज्य ने 50 ग्राम के मानक उद्दीपक का अतिआंकलन किया है।

गणना से यह भी स्पष्ट है कि आरोही श्रृंखला का माध्य 50.25 ग्राम तथा अवरोही श्रृंखला का माध्य 50.75 ग्राम है। अवरोही श्रृंखला के माध्य का अधिक होना स्पष्ट करता है कि प्रयोज्य का निर्णय औसत रूप् से प्रत्याशा त्रुटि से प्रभावित हुआ है। यद्यपि यह त्रुटि नगण्य है।

सीमा विधि उन सभी उद्दीपक श्रृंखलाओं के लिए उपयोगी है जहां उद्दीपकों को समान छोटे-छोटे चरणों में परिवर्तित किया जा सकता है। यह विधि आवाज, गन्ध, स्वाद, रंग, तापमान, दर्द, रोशनी तथा त्वक संवेदना के लिए देहली तीव्रता तथा विभेदक सीमांत ज्ञात करने में उपयोगी है।

इस विधि में समस्त आंकड़ों का उपयोग नहीं होता और प्रसरण का शुद्ध माप नहीं किया जा सकता। किंतु एक सामान्य रूप से AL व DL के निर्धारण के लिए यह उपयुक्त है।

7.6 सतत उद्दीपक विधि या स्थिर उद्दीपक विधि

सतत उद्दीपक विधि को मनोभौतिकी विधियों में सामान्यतः सर्वाधिक शुद्ध तथा विस्तृत रूप से उपयोगी माना जाता है। यह विधि निरपेक्ष सीमान्त, विभेदक सीमान्त, सम संवेदी दूरी, समतुल्य उद्दीपक के मापन में तथा मनोभौतिकी के बाहर भी कई मनोवैज्ञानिक स्थिर के निर्धारण में सरलता से काम ली जा सकती है। इस विधि को सही या गलत केसेज की विधि या बारम्बारता विधि भी कहते हैं।

इस विधि में प्राथमिक प्रयासों के बाद प्रयोगकर्त्ता एक सीमित संख्या में साधारणतया चार से सात उद्दीपकों का चयन करता है। इनमें से प्रत्येक उद्दीपकों को प्रयोज्य के सामने पूर्व निर्धारित क्रम (जिसकी जानकारी प्रयोज्य को नहीं होती) में कई बार सामान्यतः 50 से 200 बार उपस्थित किए जाते है। चूंकि प्रयोज्य को उद्दीपक क्रम की जानकारी नहीं होती अतः उसके मन में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह या अनुमान नहीं आता। फलतः उसका निर्णय अधिक विश्वसनीय होता है। निरपेक्ष सीमान्त के मापन में प्रत्येक उद्दीपक को अकेले प्रस्तुत किया जाता है और प्रयोज्य उद्दीपक उपस्थित या अनुपस्थिति अनुभव के निर्णय को बताना होता हैं। DL के निर्धारण में मानक उद्दीपक के साथ तुलनात्मक उद्दीपक को प्रस्तुत किया जाता हे और प्रयोज्य तुलनात्मक उद्दीपक को मानक उद्दीपक की तुलना में कम अथवा अधिक अथवा बराबर के रूप में अपना निर्णय देता है। दूसरी विधि को सतत उद्दीपक अंतर विधि भी कहते है।

7.6.1 सतत उद्दीपक विधि द्वारा निरपेक्ष सीमान्त का निर्धारण

तालिका 7.4 द्वि बिन्दु सीमान्त के आंकड़े

उद्दीपक दूरी (मिमी में)	दो निर्णयों का अनुपात
8	.01
9	.05
10	.29
11	.66
12	.93

तालिका 7.4 में सतत उद्दीपक विधि द्वारा निरपेक्ष सीमान्त (दो बिन्दु सीमान्त) के निर्धारण के आंकड़े दिए गये हैं इसमें प्रयोगकर्त्ता ने पांच उद्दीपकों का चयन कर प्रत्येक उद्दीपक को यादृच्छिक क्रम में प्रयोज्य के सामने प्रस्तुत किया और उससे एक अथवा दो की अनुभूति के निर्णय को लिया और इन निर्णयों को अनुपात में परिवर्तित किया। उदाहरण के लिए दो बिंदुओं के मध्य 8 मिमी की दूरी होने पर प्रयोज्य ने 100 में से 1 बार दो की अनुभूति की और 12 मिमी. की दूरी पर 100 में से 93 बार दो बिंदु का निर्णय दिया। प्राप्त आंकड़ों से अनेक विधियों द्वारा सीमान्त की गणना की जा सकती है।

7.6.1.1 रेखीय अन्तर्वेशन प्रक्रिया

दो बिंदु सीमान्त वह दो बिंदुओं की दूरी है। जिस पर 50 प्रतिशत बार दो के निर्णय प्राप्त होते है। अतः जहाँ P = .50 है वहां मध्यांक पर ही सीमान्त होगा। अतः मध्यांक ज्ञात कर सीमान्त की गणना की जा सकती है। चित्र 1 से यह स्पष्ट है कि निरपेक्ष सीमान्त की गणना निम्नांकित तरीके से की जाती है

$$L = S_l + \frac{(S_h - S_l)(.50 - p_l)}{p_h - p_l}$$

यहाँ

S_h = सीमान्त के तत्काल ऊपर का उद्दीपक

S_l = सीमान्त के तत्काल नीचे का उद्दीपक

p_h = सीमान्त के तत्काल उपर के उद्दीपक पर दो निर्णय का अनुपात

p_l = सीमान्त के तत्काल नीचे के उद्दीपक पर दो निर्णय का अनुपात

इस उदाहरण के लिए L = 10 + .57 = 10.57 मिमी

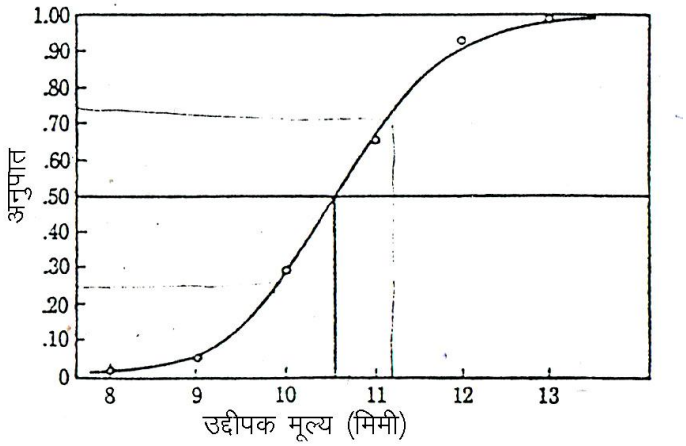

7.6.1.2 असंचयी वितरण का अंकगणितीय माध्य:

स्पीयरमेन ने इस विधि को प्रस्तावित किया। उन्होंने संचयी वितरण को असंचयी में परिवर्तित किया और वितरण के माध्य की गणना की। उन्होंने अवधारणा की कि प्रत्येक प्रयुक्त

तालिका 5: असंकलित वितरण का अंकगणितीय माध्य

अंतराल	S	x'	fx'	$f(x')^2$
13-13.9	2	+3	+6	18
12-12.9	5	+2	10	20
11-11.9	27	+1	27	27
10-10.9	24	-1	-24	24
8-8.9	4	-2	-8	16

7-7.9	1	-3	-3	9
Σ	100	-	8	114

M = 10.5 + 8/100 = 10.58

$$\sigma = \sqrt{\frac{114}{100} = 1.7}$$

उद्दीपक के ऊपर या नीचे सीमान्त स्थित होता है। इस आधार पर 99 सीमान्त 8mm के ऊपर और 01 सीमान्त इसके नीचे है। 9mm उद्दीपक मूल्य के ऊपर 95 सीमान्त है और 5 नीचे है। इस आधार पर संचयी आंकड़ों को उन्होंने अंसचयी में परिवर्तित कर माध्य ज्ञात किया।

7.6.1.3 योग विधि: इस विधि को वुडवर्थ ने प्रस्तावित किया। और माध्य (सीमान्त) तथा मानक विचलन के लिए निम्नलिखित सूत्र दिया।

$M = S_1 - .5_i - \Sigma p$ $\qquad$ $M = S_0 - .5i + i\Sigma q$

M = उद्दीपक मात्रा जहाँ P = 1.0 हो या माना जाए

M = उद्दीपक मात्रा जहाँ P = O हो या माना जाए

i = उद्दीपक अंतराल का आकार

p = उच्च निर्णय श्रेणी के निर्णयों का अनुपात

q = 1-p

$$\sigma = i\sqrt{2\Sigma cp - (\Sigma p^2) - \Sigma p}$$

$$\sigma = i\sqrt{2\Sigma cq - (\Sigma q)^2 - \Sigma q}$$

cp = संकलित p का अनुपात

cq = संकलित q का अनुपात

तालिका 7.5: योग विधि से सीमान्त की गणना

S	**p**	**q**	**cp**	**cq**
12	.93	1.94	1.94	0.07
11	.66	1.01	1.01	0.41
10	.29	.35	0.35	1.12
9	.05	.06	0.6	2.07
8	.01	.99	0.1	3.06

So = 7 $\qquad$ $S_1 = 13$

$M = 13 - (.5)(1) - (1)(1.94) = 10.56$

$M = 7 + (.5)(1) + (1)(3.06) = 10.56$

$\sigma = \sqrt{(2)(3.37) - (1.94)^2 - 1.95} = 1.02$

$\sigma = \sqrt{(2)(6.73) - (3.06)^2 - 3.06} = 1.02$

इस विधि से सीमान्त का मान 10.56mm आया।

इसी प्रकार सतत उद्दीपक विधि में निरपेक्ष सीमान्त ज्ञात करने के लिए सामान्य अन्तरेखीय प्रक्रिया, आधारित अवलोकनों के साथ न्यून-वर्ग समाधान विधि, मूलर - अरबन वजन के उपयोग से न्यून वर्ग विधि समाधान आदि विधियाँ उपयोग की जा सकती है।

7.6.2 सतत् उद्दीपक विधि द्वारा विभेदक सीमान्त का निर्धारण - सतत उद्दीपक अंतर विधि द्वारा विभेदक सीमान्त की गणना की जाती है। मानक उद्दीपक को कुछ चयनित तुलनात्मक उद्दीपकों के साथ अनेक बार प्रस्तुत कर 'अधिक', 'बराबर' या 'कम' की श्रेणी में निर्णय प्राप्त किये जाते है । प्राप्त निर्णयों की बारम्बारता को अनुपात में बदला जाता है। इस विधि को समझने के लिए काल्पनिक उदाहरण को तालिका 7.6 में दिया गया है।

विभेदक सीमान्त ज्ञात करने के लिए पूर्व में बताई गई किसी भी विधि से 'भारी' तथा 'हल्के' की प्रतिक्रियाओं के वितरण द्वारा क्रमशः उपरी सीमान्त तथा निचले सीमान्त की गणना की जाती है। प्रस्तुत उदाहरण में निम्नलिखित मध्यांक सूत्र द्वारा ऊपरी सीमान्त तथा निचले सीमान्त की गणना की गई।

$$L = S_l + \frac{(S_h - S_l)(.50 - p_l)}{p_h - p_l}$$

तालिका 7.6: उत्तोलित वजन के लिए सतत उद्दीपक अंतर विधि से विभेदक सीमांत ज्ञात करने के लिए आंकड़े

S (ग्राम)	बारम्बारता (f)			अनुपात (p)		
	भारी	बराबर	हल्का	भारी	बराबरी	हल्का
65	85	9	66	.85	.09	.06(.94)
60	70	18	12	.70	.18	.12(.88)
55	55	35	10	.55	.35	.10(.90)
50	30	42	28	.030	.42	.28(.72)
45	15	25	60	.15	.25	.60(.40)
40	12	18	70	.12	.18	.70(.30)
35	5	04	91	.05	.04	.91(.09)

ऊपरी सीमान्त की गणना

$$UT = 50 + \frac{(55-50)(.50-.30)}{.55-.30} = 54 \text{ ग्राम}$$

निचले सीमान्त की गणना

$$LT = 45 + \frac{(50-45)(.50-.40)}{.72-.40}$$

अनिश्चितता का अंतराल ¼IU½ = UT – LT

= 54 - 46.32 = 7.68 ग्राम

विभेदक सीमान्त ¼DL½ $= \frac{IU}{2} = \frac{7.68}{2} = 3.84$ ग्राम

आत्मपरक समान्ता बिंदु ¼PSE½ $= \frac{UT + LT}{2} = \frac{54 + 46.32}{2}$ = 50 .16 ग्राम

सततत्रुटि ¼CE½ = PSE – St = 50.16 – 50 = .16 ग्राम

उपर्युक्त गणना से स्पष्ट है कि ऊपरी सीमान्त का मान 54 ग्राम तथा निचली सीमान्त का मान 46.32 ग्राम है। विभेदक सीमान्त 3.84 ग्राम है जो इंगित करता है कि 50 ग्राम वजन में 3.84 ग्राम बढ़ाने या घटाने पर प्रयोज्य को वजन में अंतर की अनुभूति होती है। आत्मपरक समानता बिंदु 50.16 ग्राम बताता है कि प्रयोज्य को 50 ग्राम का मानक वजन तुलनात्मक वजन के 50.16 ग्राम के समतुल्य प्रतीत होता है।

7.7 मनोभौतिकी की आधुनिक विधियाँ (Recent Methods of Psychophysics)

वेबर तथा फेकनर को मनोभौतिकी तथा मनोभौतिकी विधियों का प्रतिपादक माना जाता है। उनके द्वारा दिए गये नियमों तथा विधियों में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने अनुसंधान कर इन विधियों के विकास में योगदान दिया। फूलर्टन तथा कैटल ने सामान्य मनोभौतिकी नियमों में परिवर्धन किया। थर्स्टन ने तुलनात्मक निर्णय नियम दिया और अभिवृत्ति मापनी विकसित करने की समदृष्टि अंतर विधि प्रस्तुत की। इसी श्रृंखला में हेल्सन का संवेदी स्तर, स्टीवेन्स का घात प्रकार्य नियम, केलेन्डर का निर्णय सिद्धांत तथा सूचना सिद्धांत, स्टीवेन्स का श्रवण का मनोभौतिकी नियम आदि विकसित हुए। प्राचीन मनोभौतिकी विधियों से ही मनोभौतिकी मापनी विधियों का विकास हुआ जो प्राचीन मनोभौतिकी विधियों से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें परिणाम भौतिक उद्दीपकों से प्राप्त नहीं किए जाते वरन् निर्णायक कर्ताओं के निर्णय से प्राप्त होते है। अतः परिणाम मनोवैज्ञानिक सातत्य पर होते है। भौतिक सतत पर प्रत्येक परिवर्तन के साथ संवेदी में परिवर्तन होता है और भौतिक उद्दीपक के लिए मूल्य निकलते है।

7.7.1 मनोवैज्ञानिक मापनी विधियाँ

साधारणतया मनोविज्ञान में मापनी विधियों का प्रयोग मनोभौतिकी की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। इन विधियों के माध्यम से मनोभौतिकी की चार प्रमुख समस्याओं- समान मध्यांतर, समान समानुपात, श्रेणी निर्धारण तथा उद्दीपक मूल्यांकन का अध्ययन किया जाता है। मानसिक प्रक्रमों तथा व्यवहार विशेषताओं के मापन में इन विधियों का उपयोग होता है। प्रमुख मापनी विधियाँ निम्नलिखित हैं जिन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1 **कोटि सूचक मापनियाँ** विशेषताओं या व्यवहार को श्रेणियों के क्रम में इंगित करती है। इसमें युग्मित तुलना विधि, श्रेणी क्रम विधि, उद्दीपक मूल्यांकन विधि तथा क्रमिक वर्गों की विधि सम्मिलित है।

2 **समानान्तर एवं समानुपात मापनियाँ** - इन मापनियों में उद्दीपक विमाओं के कोटि स्तर के साथ-साथ उनके मध्य में अन्तराल की मात्रा भी ज्ञात हो जाती हैं। ये मापनीयाँ किसी स्थिर इकाई के आधार पर निर्मित होती है। इनमें समान संवेदनान्तर विधि, समदृष्टि अंतर विधि, समानुपात निर्णय विधि, बहुउद्दीपक विधि इत्यादि सम्मिलित है।

कुछ मनोवैज्ञानिक इन मापनियों को मनोवैज्ञानिक मापनियाँ ही मानते हैं किंतु कुछ इन्हें मनोभौतिकी विधियों का ही एक प्रकार या वैकल्पिक मापनी प्रक्रिया मानते है। गिलफोर्ड इन्हें मनोवैज्ञानिक मापनी विधियाँ कहते है तो डी आमेटो इन्हें मनोवैज्ञानिक मापनीयाँ कहते है। सर्वाधिक प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक मापनी विधियाँ युग्मतुलना विधि, श्रेणी क्रम विधि तथा रेटिंग मापनीयाँ है। ये विभिन्न समस्याओं के हल खोजने में सहायक है।

7.8 सारांश (Summary)

प्राचीन मनोभौतिकी में फेकनर तथा उनके सहयोगियों ने तीन विधियों का वर्णन किया है।

- **औसत त्रुटि विधि** - इसे समायोजन विधि, पुनरूत्पादन विधि, तुल्य उद्दीपक विधि भी कहते है। इस विधि में निरीक्षणकर्ता सक्रिय रूप् से चर उद्दीपक को मानक उद्दीपक के समतुल्य करता है। उसके द्वारा दिए गये सभी प्रयासों का औसत ज्ञात किया जाता है। स्थान त्रुटि, गति त्रुटि की गणना भी इस विधि में होती है।

- **सीमा विधि** - इसे न्यूनतम उद्दीपक परिवर्तन विधि भी कहते है। इसमें उद्दीपकों में न्यूनतम परिवर्तन करते हुए उन्हें निरीक्षणकर्त्ता को आरोही व अवरोही क्रम में दिए जाते है। इन निर्णयों से उन निर्णयों जहाँ निर्णय में परिवर्तन हुआ है से संबंधित उद्दीपक आंकड़ों से निरपेक्ष तथा विभेदक सीमान्त की गणना की जाती है। इस विधि में आदत त्रुटि व प्रत्याशा त्रुटि पाई जाती हैं।

- **स्थिर या सतत उद्दीपक विधि** - इस विधि में सीमान्त के नजदीक के कुछ उद्दीपकों का चयन कर उनमें से प्रत्येक को 50 से 150 बार यादच्छिक क्रम में प्रस्तुत किये जाते हैं, प्राप्त निर्णयों को बारम्बारता से अनुपात में बदला जाता है। निरपेक्ष सीमान्त की गणना दी गई कुछ विधियों में से एक उपयोग कर की जाती है। इस विधि से सर्वाधिक शुद्ध परिणाम प्राप्त होते है।

- प्राचीन विधियों में अनुसंधानों तथा परिवर्धन कर मनोवैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक मापनियों का विकास किया। कुछ इन मापनियों को मनोभौतिक मापनियाँ कहते है। इनका मनोवैज्ञानिक मापनी विधियों में प्रमुख युग्म तुलना विधि, श्रेणीक्रम विधि, रेटिंग विधियाँ आदि है।

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औसत त्रुटि विधि द्वारा मूलर लायर भ्रम का मापन कैसे किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।
2. सीमा विधि में होने वाली त्रुटियों का वर्णन कीजिए।
3. स्थिर उद्दीपक विधि से निरपेक्ष सीमान्त निर्धारण का वर्णन कीजिए।

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- डी. अमेटो (1979) एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी, टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।
- राजमनिक्कम, एम. (2000), मार्डन साइकोफिजिकल एण्ड स्केलिंग मेथडर्स एण्ड एक्सपेरियमेन्टेशन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (1999), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्री वास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस. तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपरीमेंटल साइकोलॉजी, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

इकाई - 8

अवधान
Attention

8.1 अवधान का अर्थ एवं परिभाषा

8.2 अवधान की प्रकृति

8.3 अवधान की विशेषताएँ

8.4 अवधान के प्रकार

8.5 अवधान के निर्धारक

(अ) वस्तुगत निर्धारक

(ब) व्यक्तिगत निर्धारक

(स) संरचनात्मक निर्धारक

(द) आनुभाविक कारक

8.6 चयनात्मक अवधान का स्वरूप

8.7 चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त

(1) मार्ग विरोधी सिद्धान्त

(2) नारमैन एवं बोवरों मॉडल

(3) नाईसर मॉडल

8.8 ध्यान परिवर्तन एवं विचलन

8.9 अवधान विचलन के कारण

8.10 ध्यान भंग

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.1 अवधान का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & definition of Attention)

व्यक्ति अपनी इच्छा अथवा आवश्यकता के अनुसार कुछ खास उद्दीपकों को चुन लेता है और उसके प्रति अनुक्रिया करता है। मनोविज्ञान में इस प्रकार की चयनात्मक प्रक्रिया को अवधान या ध्यान की संज्ञा दी जाती हैं।

मॉर्गन, किंग, विसज तथा स्कोपलर ने अवधान को परिभाषित करते हुए कहा है- अवधान उस प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक प्रक्रिया को कहा जाता है जिसके द्वारा कुछ निश्चित उद्दीपकों को दिये गये समय में अपने चेतन अनुभूति या चेतना में लाने के लिये चुना जाता हैं।

मेटलिन के अनुसार - मानसिक क्रिया की एकाग्रता ही ध्यान हैं।

श्रीवास्तव के अनुसार - अवधान प्रत्यक्षीकरण को स्पष्टता प्रदान करने वाली प्रक्रिया है जो चेतना के आहर के उद्दीपक या उद्दीपकों का चयन करती है तथा जिसके द्वारा उद्दीपक या उद्दीपकों का समूह चेतना के सीमा प्रदेश के केन्द्र में आते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अवधान एक चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति एक विशेष शारीरिक मुद्रा बनाकर किसी वस्तु को चेतना में लाने के लिये तत्पर रहता हैं।

8.2 अवधान की प्रकृति (Nature of Attention)

अवधान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए स्नाइड ग्रास एवं अन्य साथियों ने कहा है कि ''अवधान टार्च की रोशनी की भाँति हैं, जिसे व्यक्ति अपने चेतन मन से अपने वातावरण में घटित होने वाली घटनाओं की ओर निर्देशित करता है अथवा अपने मानसिक क्षेत्र में हो रही आन्तरिक घटनाओं की ओर निर्देशित करता है। इस प्रकार अवधान एक ऐच्छिक क्रिया हैं। व्यक्ति अवधान का चयन जानबुझ कर करता हैं। अनैच्छिक ढंग सेवातावरण की घटनाओं की ओर या आन्तरिक घटनाओं की ओर स्वतः आकृष्ट होकर बहुधा व्यक्ति अवधान केन्द्रित हो जाता हैं।''

अवधान और प्रत्यक्षीकरण के मध्य संबंध स्पष्टकरते हुए स्नाइड ग्रास एवं अन्य साथियों ने कहा है कि प्रत्यक्षीकरण के लिये अवधान अनिवार्य दशा हैं। जब कोई उद्दीपक, वस्तु या घटना अवधान के केन्द्र में आती हैं तभी व्यक्ति उसका प्रत्यक्षीकरण करता है अथवा ज्ञान प्राप्त करता हैं।

लैशमेन आदि मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, अवधान चेतना का प्रर्याय हैं। चेतना से तात्पर्य अभिज्ञा से हैं। एक व्यक्ति उन्हीं उद्दीपकों की अभिज्ञा कर सकता है जो एक समय विशेष में उसकी चेतना में रहते हैं।

सूचना प्रक्रमण उपागम के अनुसार, अवधान एक क्रियातंत्र माना गया हैं। इसमें यह भी माना गया है कि अवधान में उन्हीं उद्दीपकों का चयन किया जाता है जो व्यक्ति के प्रभाव को प्रभावित करने वाले होते हैं।

उद्दीपक अनुक्रिया उपागम का अनुसरण करने वाले मनोवैज्ञानिक अवधान शब्द के स्थान पर उद्दीपक चयन पद का उपयोग करते हैं। उनके अनुसार अवधान एवं उद्दीपक चयन एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। मोरे ने उद्दीपक चयन प्रक्रिया के रूप में अवधान की निम्न विशेषताये बताई हैं:-

(1) एकाग्रता (Concentration)

अवधान चंचल होता ही और उसमे विचलनशीलता पाई जाती है। दूसरे शब्दों में अवधान का केन्द्र वैसे ही बदलता रहता है जैसे टार्च के प्रकाश को इधर-उधर प्रेक्षेपित किया जाता है टार्च के प्रकाश को एक कमरे में स्थित तमाम उद्दीपकों या वस्तुओं में से किसी एक या कुछ उद्दीपकों या वस्तुओं पर प्रक्षेपित किया जा सकता है। इसी प्रकार अवधान जो भी वातावरण के अनेक उद्दीपकों में से कुछ

उद्दीपकों या एक उद्दीपक या उद्दीपक के किसी भाग पर केन्द्रित किया जाता है। जब व्यक्ति अवधान के विचलन को सप्रयास जानबुझ कर अवरूद्ध करके किसी उद्दीपक पर अवधान की एकाग्रता कहते है। जब व्यक्ति सप्रयास अवघान के विचलन के अवरूद्ध करके अवधान को एकाग्र करता है तब अन्य उद्दीपक उपेक्षित होकर अवधान परिधि से बाहर हो जाते है, दूसरे शब्दों में इस अवस्था मंे अवधान की परीधि अपेक्षाकृत छोटी हो जाती है।

(2) अन्वेषण (Discovery)

अवधान प्रक्रिया से अन्वेषण वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति अपने चारों ओर के वातावरण में उपस्थित अनेक उद्दीपकों, वस्तुओं या घटनाओं में से एक या कुछ उद्दीपक, वस्तुओं या घटनाओं को विशेष रूप से ढूँढता या खोजता है। ऐसा वह व्यक्ति जानबुझ कर करता है। उदाहरणार्थ एक विद्यार्थी अपने कमरे में रखे हुए पेन को कमरे में चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर ढूँढता है जिसे उसने अपने कमरे में ही कहीं रख दिया था।

(3) सक्रियाकरण

अवधान प्रक्रिया में सक्रियाकरण भी पाया जाता है। अवधान के सक्रियाकरण को अवधान की तत्परता भी कहते है। यह तत्परता या सक्रियाकरण निद्रा अवस्था की अपेक्षा जाग्रत अवस्था में अधिक मात्रा में पाया जाता है। अवधान की प्रक्रिया में सक्रियकरण से व्यक्ति जैसा उद्दीपन प्राप्त करता है। सक्रियकरण के अनुरूप ही उसकी अनुक्रिया होती है।

(4) सतर्कता या संधृत अवधान

सतर्कता या संघृत अवधान, अवधान की वह अवस्था है जिसमे एक व्यक्ति अवधान को उद्दीपक पर इसलिये केन्द्रित करता है कि वह लम्बी अवधि तक उस उद्दीपक सांजापन कर सके। संधृत अवधान के लिये यह भी कहा जाता है कि संघृत अवधान, अवधान में प्रतीक्षा की वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति प्रत्याशित उद्दीपक के घटित होने से सम्बधित है।

8.3 अवधान की विशेषताएँ (Characterstics of Attention)

अवधान की कई विशेषताएँ है जिनमें से प्रमुख निम्न है -

(1) स्वतंत्र केंद्रीय प्रक्रिया

अवधान स्मरण, कल्पना तथा चिन्तन आदि की भाँति एक केन्द्रिय प्रक्रिया है जिसकी प्रकृति स्वतंत्र है। यही कारण है टिनचर आदि जैसे मनोवैज्ञानिकों ने इसे ध्यान के स्थान पर ध्यान देना कहा है।

(2) प्रत्यक्ष परक संगठन को स्पष्टता प्रदान करता है-

अवधान मं प्रत्यक्षी स्पष्ट हो जाता है। अवधान की उपस्थिति में प्रत्यक्षीकरण से संबंधित संगठन अधिक स्पष्ट हो जाते है यदि प्रत्यक्षीकरण में से अवधान हटा लिया जाये तो प्रत्यक्षपरक संगठन की स्पष्टता समाप्त हो जाती है।

(3) संवेदात्मक प्रक्रियाओं के लिये यह एक प्रकार का पुनर्बलन है

पुनर्बलन का पहले प्रकार का अर्थ प्रोसीपर से संबंधित तथा दुसरे प्रकार का अर्थ प्रक्रिया से संबंधित है। प्रक्रिया के रूप के पुनर्बलन वह मैकेनिज्म है जो किसी भी प्रकार को एक विशिष्ट प्रत्युत्तर को एक

विशिष्ट प्रक्रिया से जोड़ता है। यह अवधान पुनर्बलन संवेदनात्मक प्रक्रियाओं को प्रत्युत्तर चयन से जोडने में सहायक होता है।

(4) प्रत्युत्तर चयन

अवधान एक चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है। वातावरण में उपस्थित अनेक उद्दीपकों में से व्यक्ति केवल एक या कुछ ही उद्दीपकों पर एक समय में ध्यान दे सकता है। अर्थात व्यक्ति केवल चुनी हुई उत्तेजनाओं या उत्तेजन के प्रति ही प्रत्युत्तर देता है।

(5) अवधान के द्वारा उद्दीपक या उद्दीपक समूह चेतना के सीमा प्रदेश से चेतना के केन्द्र में लाए जाते है

उदाहरण के लिये जब एक विद्यार्थी कक्षा में बैठता है तो कक्षा में बैठे अन्य विद्यार्थी कुर्सियों, कमरे की दीवारे, अध्यापक ब्लैक बोर्ड आदि सभी की चेतना उस विद्यार्थी को होती है परन्तु उसके चेतना के केन्द्र में इन तमाम उद्दीपकों में से केवल कुछ ही उद्दीपक होते है। चेतना के सीमा प्रदेश के उद्दीपक अवधान प्रक्रिया के द्वारा चेतना के केन्द्र में लाये जाते है।

(6) गत्यात्मक

अवधान प्रक्रिया की प्रकृति गत्यात्मक होती है। इसी कारण से अवधान को चंचल कहा गया है। अवधान प्रक्रिया में इतनी अधिक गत्यात्मक पाई जाती है कि चेतना के केन्द्र में कभी एक उद्दीपक होता है तो कभी दूसरा उद्दीपक।

(7) अवधान अन्वेषणात्मक होता है -

जब व्यक्ति किसी उत्तेजना पर ध्यान लगाता है तो वह उस उद्दीपक के गुण या उस उद्दीपक में नवीनता खोजने लगता है परन्तु जब व्यक्ति को उद्दीपक में गुण और नवीनता नहीं दिखाई देते है तब उस उद्दीपक के स्थान विशेष से या उस उद्दीपक व्यक्ति का ध्यान हट जाता है। चूँकि ध्यान अन्वेषणात्मक होता है इसलिये उसमें चंचलता पाई जाती है। अवधान प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति निरन्तर नई वस्तु को परीक्षा के लिये ढूँढता रहता है।

(8) संकीर्णता

अवधान प्रक्रिया का कुछ न कुछ विस्तार होता है जो विस्तृत न होकर सीमित होता है। टैचिस्टोस्कोप से संबंधित प्रयोगों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ है कि सामान्यतः इसका विस्तार छः उद्दीपकों तक ही होता है।

(9) सेट या तत्परता

अवधान प्रक्रिया की उपस्थिति के व्यक्ति में सेट या तत्परता पाई जाती है। इस तत्परता के कारण व्यक्ति को अवधान प्रक्रिया में संबंधित शारीरिक अनुक्रियाएं करने में सुविधा और सरलता होती है।

(10) अवधान के दो पक्ष होते है

जब कोई उद्दीपक या उद्दीपक का समूह हमारी चेतना के केन्द्र में होता है तो समय उपस्थित अवधान प्रक्रिया में अवधान का पक्ष धनात्मक पक्ष कहलाता है तथा चेतना के केन्द्र से उद्दीपक या उद्दीपक समूह के हटते ही अवधान प्रक्रिया का पक्ष अवधान का ऋणात्मक पक्ष कहलाता है।

(11) ध्यान में शारीरिक समायोजन

अवधान के समय प्रयोज्य की एक विशेष मुद्रा होती है क्योकि इस प्रक्रिया में अनेक आन्तरिक और ब्राह्य परिवर्तन होते है। आँख, नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों का झुकाव ध्यान उद्दीपक की ओर होता है। शारीरिक मुद्रा समायोजन की अवधान प्रक्रिया के समय देखा जा सकता है। सिनेमा हाल में बैठे या कक्षा में ब्लैक बोर्ड पर ध्यान दे रहे विद्यार्थियों की एक विशेष मुद्रा होती है। अवधान प्रक्रिया में माँस पेशियों का भी अभियोजन होता है। अवधान की प्रक्रिया की अवस्था से संबंधित ज्ञान इन्द्रियों की माँसपेशियों में तनाव अधिक मात्रा में होता है। अवधान की प्रक्रिया की उपस्थिति के अन्तरावयन सन्तुलन भी पाया जाता है। ह्रदय गति, नाड़ी-गति, रक्त संचार, श्वास-गति, शारीरिक तापमान आदि सभी में अवधान की अवस्था में कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाता है जो व्यक्ति के अवधान अवस्था में शारीरिक समायोजन के लिये आवश्यक है।

8.4 अवधान के प्रकार (Types of Attention)

अवधानों के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है-

1. अनैच्छिक अवधान: जब व्यक्ति का किसी बाह्य उद्दीपक पर अनायास ध्यान चला जाये तो यह अनैच्छिक अवधान कहलाता हैं।
2. ऐच्छिक अवधान: जब किसी उद्दीपक पर व्यक्ति का ध्यान व्यक्ति की इच्छा के अनुसार संचालित हो तो इस प्रकार के ध्यान को ऐच्छिक ध्यान कहते हैं।
3. स्वाभाविक अवधान: जब किसी उद्दीपक पर व्यक्ति का ध्यान स्वभाववश, आदत वश या व्यक्ति की अभिवृत्ति के कारण चला जावे तो इसे स्वाभाविक अवधान कहते हैं।
4. विचारात्मक अवधान: जब व्यक्ति का ध्यान उद्दीपक से संबंधिक प्रतिमा या विचारों की ओर हो तो यह विचारात्मक अवधान होगा।
5. विश्लेषणात्मक या संश्लेषणात्मक अवधान: जब प्रत्यक्षीकरण किये जा रहे उद्दीपन पर ध्यान प्रयोज्य विश्लेषण या संश्लेषण की दृष्टि से दिया जाये।

8.5 अवधान के निर्धारक (Determinants of Attention)

ध्यान के दो प्रमुख निर्धारक हैं - कुछ निर्धारक का संबंध उद्दीपक से होता हैं तथा कुघ निर्धारक का संबंध स्वयं से होता हैं। उद्दीपक से संबंधित निर्धारकों को वस्तुनिष्ठ निर्धारक तथा व्यक्ति से संबंधित निर्धारकों को आत्मनिष्ठ निर्धारक कहा जाता है।

(अ) वस्तुगत निर्धारक

कुछ प्रमुख वस्तुगत निर्धारक निम्न है-

(1) उद्दीपक का स्वरूप

विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों से संबंधित भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्दीपक अवधान को प्रभावित करते है। रंगीन उद्दीपक रंगहीन उद्दीपक की अपेक्षा अवधान को अधिक मात्रा में प्रभावित करते है इसी प्रकार निरर्थक शब्द उद्दीपक की अपेक्षा सार्थक शब्द उद्दीपक अवधान को अधिक मात्रा में प्रभावित करते है।

(2) उद्दीपक का आकार

बडे आकार के उद्दीपक छोटे आकार के उद्दीपकों की अपेक्षा अधिक ध्यान आकर्षित करते है।

(3) उद्दीपक की स्थिति

उद्दीपकों की विशिष्ट स्थितियाँ भी ध्यान को आकर्षित करती है। जैसे कक्षा में अध्यापक, भीड़ में नेता आदि।

(4) उद्दीपक की तीव्रता

किसी भी उद्दीपक की तीव्रता जितनी अधिक होती है वह ध्यान को उतना ही अधिक आकर्षित करती है।

(5) उद्दीपक की अवधि

प्रयोज्य के सामने उद्दीपक जितना ही अधिक अवधि तक रहता है उसे अवधान आकर्षित करने की सम्भावना भी उतनी ही अधिक रहती है। क्षणिक उद्दीपक में अपेक्षाकृत अवधान आकर्षित करने की सम्भावना कम होती है।

(6) उद्दीपक की पुनरावृति

एक उद्दीपक को प्रयोज्य के सामने जितनी बार उपस्थित किया जाता है उसके अवधान के आकर्षित होने की सम्भावना उतनी ही अधिक बढ़ जाती है।

(7) उद्दीपक में नवीनता

पुराने उद्दीपक की अपेक्षा नवीन उद्दीपक में अवधान आकर्षित करने की क्षमता अधिक होती है। कम आयु वाले प्रयोज्य नये नये खिलौने व कपड़ो के प्रति ज्यादा आकर्षित होते है।

(8) उद्दीपक स्थिति में आकस्मिक परिवर्तन

किसी उद्दीपक की स्थिति में अचानक परिवर्तन से अवधान आकर्षण की सम्भावना अधिक होती है जैसे शान्तवातावरण में अचानक को आवाज आना, किसी मिटिंग में बैठे सदस्यों में से कोई अचानक उठकर चला जाये आदि स्थिति में अचानक परिवर्तन से ध्यान आकर्षित **होता है।**

(9) उद्दीपक का पृथक्करण

जब कोई एक उद्दीपक अन्य उद्दीपकों की अपेक्षा अलग, दूर या पृथक होता हैं तो ध्यान अधिक आकर्षित करता है।

(10) उद्दीपक की गतिशीलता

स्थिर उद्दीपकों की अपेक्षा गतिशील उद्दीपक अधिक ध्यान आकर्षित करते है।

(11) उद्दीपकों की विषमता

विरोधी उद्दीपक प्रयोज्य का ध्यान जल्दी आकर्षित करते है जैसे बडे उद्दीपकों में छोटा उद्दीपक का होना अथवा कई छोटे उद्दीपकों में किसी बडे उद्दीपक का होना अधिक ध्यान आकर्षित करते है।

(12) दुर्लभता

जो उद्दीपक कभी-कभी में हमारे अनुभव में आते है वे अधिक ध्यान आकर्षित करते है जैसे किसी पिछडे गाँव में हेलिकॉप्टर का उतरना।

(ब) व्यक्तिगत निर्धारक

कुछ व्यक्तिगत निर्धारक निम्न है -

(1) मौलिक आवश्यकताएँ (Basic necessities)

प्रयोज्य की मौलिक आवश्यकताओं, जैसे भोजन, पानी, सेक्स आदि में संबंधित उद्दीपक जिनसे कि प्रयोज्य की आवश्यकताओं की तृप्ति हो सकती है। वह प्रयोज्य के अवधान को अधिक आकर्षित करती है।

(2) जिज्ञासा (curiosity)

व्यक्ति लक्ष्य से संबंधितउद्दीपक के अवधान को जल्दी आकर्षित करता है।

(3) लक्ष्य (Goal)

व्यक्ति लक्ष्य से संबंधितउद्दीपक के आवधान को जल्दी आकर्षित करता है।

(4) रूचि (Interest)

प्रयोज्य की रूचि अथवा रूचियों से संबंधितउद्दीपक प्रयोज्य के अवधान को शीघ्र और अधिक आकर्षित करते है क्योकि प्रयोज्य की रूचि से संबंधितउद्दीपक के कारण प्रयोज्य का मानसिक सेट शीघ्र बन जाता है।

(5) स्वभाव (Nature)

प्रयोज्य का स्वभाव भी प्रयोज्य के ध्यान को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। जैसे धार्मिक व्यक्तियों का ध्यान, उनमे धार्मिक प्रवृति होने के कारण धार्मिक उद्दीपकों की ओर शीघ्र आकर्षित होते है।

(6) संवेग (Emotion)

कुछ संवेगात्मक अवस्थाएँ भी व्यक्ति के अवधान को प्रभाविक करती है। जैसे व्यक्ति को जब कोई वस्तु या व्यक्ति से भय होता है तो वह उसका अधिक ध्यान रखता है। इसी प्रकार नव विवाहित दम्पत्ति का ध्यान एक दूसरे पर अधिक रहता है।

(7) अभ्यास (Practice)

अभ्यास भी ध्यान को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है। यह पाया गया कि जब किसी वस्तु पर व्यक्ति का अभ्यास अधिक होता है तो उस पर उसका ध्यान कम होने लगता है।

(8) आदत (Habit)

प्रत्येक व्यक्ति की कुछ न कुछ विशेष आदत होती है और उसी के अनुरूप उसका ध्यान आकर्षित होता है जैसे पानखाने की आदत वाले व्यक्ति का ध्यान पान की दुकान पर जल्दी जाता है।

(9) आवश्यकता (Necessity)

व्यक्ति किसी उद्दीपक पर अपने आवश्यकता के अनुसार ध्यान देता है वैसे यदि किसी व्यक्ति को किताब खरीदनी हो तो उसका ध्यान अन्य दुकानों की अपेक्षा किताब की दुकान पर जल्दी जाता है।

(10) अभिरूचि (Interest)

अभिरूचि व्यक्ति के ध्यान का एक प्रमुख आत्मनिष्ठ निर्धारक है। व्यक्ति की अभिरूचि भिन्न-भिन्न होती है और प्रायः व्यक्ति अपनी अभिरूचि के अनुसार ही किसी वस्तु या उद्दीपक पर ध्यान देता है।

(11) उम्मीद या प्रत्याक्षा (Hope)

व्यक्ति का ध्यान किसी वस्तु या उद्दीपक पर उसके प्रत्याशा या खास उम्मीद के कारण भी चला जाता है।

(12) अर्थ (Meaning)

कुछ उद्दीपक ऐसे होते है जिसका अर्थ व्यक्ति समझता है तथा कुछ उद्दीपक ऐसे होते है जिसका अर्थ व्यक्ति नहीं समझता है। जिस उद्दीपक का अर्थ व्यक्ति समझता है उस पर उसका ध्यान तेजी से चला जाता है।

(13) प्रशिक्षण (Training)

प्रशिक्षण से व्यक्ति में कुछ खास मानसिक तत्परता आ जाती है जिससे उसका ध्यान किसी वस्तु या उद्दीपक की ओर चला जाता है। उदाहरणार्थ डा ॅक्टर का ध्यान सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा रोगियों की ओर बहुत ही आसानी से चला जाता है क्योंकि उन्हे रोग के लक्षण, उपचार आदि में विशेष प्रशिक्षण मिला है।

(स) संरचनात्मक निर्धारक

सभी प्रकार के प्राणियों के ज्ञानेन्द्रियों की संरचना एक सी नहीं होती कुछ प्राणियों की ज्ञानेन्द्रियाँ अन्य प्राणियों की ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होती है। जिससे वे प्राणी उद्दीपकों का अवधान उन्ही के अनुरूप करते है। जैसे कुत्ते की गंध अनुभव की शक्ति

अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होती है। कुत्ते गंध उद्दीपकों पर अपने अवधान को अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक केन्द्रित कर सकते है।

(द) आनुभाविक कारक

एक व्यक्ति का ध्यान उसके वातावरण में उपस्थित अनेक उद्दीपकों मंे से किस उद्दीपक पर अधिक आकर्षित होगा यह मुख्यतयः इस बात पर निर्भर करता है कि उस व्यक्ति के व्यक्तिगत अनुभव क्या है। अध्ययनों के स्पष्ट होता है कि जिन उद्दीपकों के विभेदन के लिये व्यक्ति पुरस्कृत हो चुका है ऐसे उद्दीपकों से सम्बन्धित जो उद्दीपक होते है उन पर उसका ध्यान अधिक जाता है।

8.6 चयनात्मक अवधान का स्वरूप (The form of Selective Attention)

चयनात्मक अवधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति कुछ खास क्रिया या उद्दीपक पर अपनी मानसिक एकाग्रता दिखलाता हैं तथा अन्य क्रियाओं या उद्दीपकों की ओर न के बराबर ध्यान देता हैं। मैटलिन ने चयनात्मक अवधान को परिभाषित करते हुए कहा कि ''चयनात्मक अवधान एक ऐसी घटना है जिसमें हमलोग क्रिया पर अपनी मानसिक क्रियाशीलता को एकाग्रित करते है तथा अन्य क्रियाओं के बारे में बहुत ही कम ध्यान दे पाते हैं।''

चयनात्मक अवधान के विशेष गुण या लाभ यह है कि इसमें व्यक्ति एक तरह के कार्य पर दूसरों कार्यों में बिना किसी तरह के अवरोध अनुभव किये एकाग्रचित्त कर सकता हैं। इसका परिणाम यह होता हैं इसमें मानसिक निष्पादन की उत्कृष्टता बढ़ जाती हैं। किन्तु चयनात्मक अवधान में कुछ हानि भी होती हैं। चयनात्मक अवधान व्यक्ति में कुछ विशेष परिस्थिति में खास कर उस परिस्थिति में कुंठा उत्पन्न करने लगता है जब उसे एक साथ कई क्रियाओं पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में लाचारी में व्यक्ति को अन्य क्रियाओं की अवहेलना करनी पड़ती हैं।

8.7 चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त (Theories of Selective Attention)

चयनात्मक अवधान की व्याख्या के लिये मनोवैज्ञानिकों ने कई तरह के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिनमें निम्नांकित प्रमुख है-

(1) मार्ग विरोधी सिद्धान्त

(2) नॉरमैन एवं बोवरों मॉडल

(3) नाईसर मॉडल

(1) मार्ग विरोधी सिद्धान्त

मार्ग विरोधी सिद्धान्त के तहत कई मनोवैज्ञानिकों द्वारा चयनात्मक अवधान की प्रदत्त व्याख्या को रखा गया जिसमे ब्रौडवेन्ट, ट्रीसमैन तथा डियूश एवं डियूश के विचार प्रमुख है।

इन मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जिस तरह से यदि हम एक ऐसे बोतल में पानी डालने की कोशिश करते है जिसका मुंह छोटा होता है तो पानी को भीतर जाने में एक तरह का अवरोध उत्पन्न होता है

और कुछ मात्रा में पानी बोतल के भीतर जाता है और कुछ मात्रा में वह बोतल से बाहर गिर जाता है। ठीक उसी तरह यदि व्यक्ति को एक साथ कई तरह की सूचनाओं को संसाधित करना पड़ता है या उस पर ध्यान देना पड़ता है, तो वह सभी ऐसी सूचनाओं पर एक साथ ध्यान नहीं दे पाता है क्योंकि उसमें जैविक रूप से आधारित एक तरह का मार्ग विरोध होना है। कुछ सूचनाएँ इस मार्ग विरोध को पार करते हुए व्यक्ति को ध्यान में प्रवेश पाती है परन्तु कुछ सूचनाएँ पीछे रह जाती है क्योकि वह मार्ग विरोध को पार नहीं कर पाती है। जो सूचनाएँ पीछे रह जाता है उन्हें व्यक्ति धीरे-धीरे भूतल जाता है।

ब्रौडबेन्ट मॉडल के अनुसार सूचना के भौतिक गुणों के आधार पर हम उनका चयन करत ही या एक तरह से छानते है तथा उस पर ध्यान दे पाते है। अतः इस सिद्धान्त को फिल्टर सिद्धान्त भी कहा जाता है।

ट्रीसमैन नामक महिला मनोवैज्ञानिक ने ब्रौडवेन्ट मॉडल में थोड़ा परिवर्तन कर उसे अधिक मॉडल को फिल्टर तनुकरण मॉडल कहा जाता है। इस मॉडल के अनुसार व्यक्ति जिस कान से प्राप्त सूचना पर ध्यान नहीं दे पाता है, वह संसाधित होने से पूर्णतः अवरूद्ध नहीं हो जाता बल्कि उसका रूप थोड़ा सूक्ष्म हो जाता हैं और इसका आंशिक विश्लेषण व्यक्ति कर लेता है यही कारण है कि ध्यान नहीं दी गई सूचना की कुछ विशेषताओं से भी व्यक्ति अवगत हो जाता है।

डियूश एवं डियूश का मत है कि ज्ञानेन्द्रियों को मिलने वाली सभी उद्दीपक या सूचनाओं का व्यक्ति प्रत्यक्षणात्मक रूप से विश्लेषण करता है तथा उनमे किसी विशेष सूचना का चयन तब होता है जब व्यक्ति को उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करनी होती है। अर्थात् व्यक्ति विभिन्न उद्दीपकों से मिलने वाली प्रत्येक सूचना को संसाधित करता है तथा अनुक्रिया करने के टीक पहले व्यक्ति में मार्गविरोध उत्पन्न होता है।

नारमैन तथा कौली ने भी ड्यिूश एवं डियूश के इस मॉडल को सनर्धन दिया और अपना मत रखा है उद्दीपकों से प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की सूचनाओं का सम्पूर्ण विश्लेषण व्यक्ति करता है तथा अनुक्रिया संगठन तथा स्मृति के स्तर पर अवधान की प्रक्रिया निश्चित हो पाती है।

(2) नॉरमैन एवं बोवरों मॉडल

नॉरमैन व बोवरों ने मार्ग विरोध के संप्रत्यय को स्वीकार किया और कहा कि सचमुच में सूचना संसाधन में मार्गविरोध नाम की कोई चीज नहीं होती है जिससे सूचना की प्रवाह में कोई रूकावट होती है। इनके अनुसार अवधान का स्वरूप सीमित होता है क्योकि व्यक्ति के पास कार्य पर ध्यान देने के लिये मानसिक प्रयास करने की क्षमता सीमित होती है। ऐसे मानसिक प्रयास को नॉरमैन एवं बोवरों ने साधन या युक्ति की संज्ञा दी। इन लोगों ने साधन में मानसिक प्रयास के अलावा स्मृति के विभिन्न प्रयासों एवं संचार माध्यमों को भी सम्मिलित किया है।

इन लोगों का मत है कि चूँकि व्यक्ति के पास जो साधन होता है वह सीमित होता है फलतः वह कुछ सीमित वस्तुओं या उद्दीपकों या कार्यों पर ही ध्यान दे पाता है। इन लोगों से यह भी स्पष्ट किया कि व्यक्ति का ध्यान कई कार्यों के विभाजित होने से निष्पादन में जो कमी होती है उसका कारण यह होता है कि उस सीमित शाधन का उपयोग व्यक्ति को उन सभी कार्यों में बाँटकर करना पड़ता है।

नॉरमैन तथा बोवरों ने अपने सिद्धान्त में दो तरह के कार्यों के बीच अंतर किया है साधन सीमित चार्य एवं आँकड़े सीमित कार्य। साधन सीमित कार्य में तात्पर्य होता है जिसमे निष्पादन साधन के उपलब्ध

होने पर निर्भर करता है। आँकड़े सीमित कार्य से तात्पर्य वैसे कार्य से होता है जिसमे निष्पादन व्यक्ति के सीमित स्मृति क्षमता या उद्दीपक के विशेष गुण के कारण सीमित होता है।

(3) नाईसर मॉडल

नाईसर ने चयनात्मक अवधान की व्याख्या की और कहा कि ''कोई दैहिक या गणितीय ढंग से स्थापित सीमा नहीं होती है कि हम लोग एक समय में कितनी सूचना पर ध्यान दे सकते है।''

नाईसर ने अपने इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया कि सूचनाओं की सीमित मात्रा पर ही व्यक्ति एक समय में ध्यान दे पाता है। यदि बहुत सारी सूचनाएँ व्यकित को एक साथ दी जाती है तो उसमें से कुछ ही सूचना पर व्यक्ति ध्यान दे पाता है। इस तरह की सिद्धान्त से प्रोत्साहित होकर कुछ न्यूरो शरीर शास्त्रीयों ने तत्रिका तंत्र में व्यास फिल्टरिंग प्रक्रम की खोज के लिये शोध प्रारम्भ किये तथा शोधों द्वारा स्पष्ट किया कि मस्तिष्क में अरबो न्यूरोन्स होते है जो एक दूसरे से संबंधित होते है तथा उनकी क्षमता भी असीमित होती है।

नाईसर ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि दिन प्रतिदिन की जिन्दगी में यदि एक ही साथ व्यक्ति कई चीजों या कामों को करना प्रारंभ करता है तो उसका निष्पादन थोड़ा जरूर प्रभावित होता है। परन्तु अभ्यास से धीरे-धीरे उसके निष्पादन में सुधार हो जाता है और व्यक्ति एक साथ कई उद्दीपकों पर ध्यान देने में समर्थ हो जाता है।

8.8 ध्यान परिवर्तन एवं विचलन (Change in Attention & Deviation)

यह कदापि संभव नहीं है किसी उद्दीपक या उद्दीपकों पर घण्टों ध्यान लगाया जा सकता है क्योंकि हमारा ध्यान एक उद्दीपक से दूसरे उद्दीपक पर या एक एक उद्दीपक के ही विभिन्न भागों पर ध्यान परिवर्तित तथा विचलित होता रहता हैं, इसे अवधान विचलन कहते हैं।

जब अवधान एक उद्दीपक से दूसरे पर, दूसरे से तीसरे पर तथा तीसरे से अन्य उद्दीपक पर परिवर्तित हो अथवा एक ही उद्दीपक के एक भाग से दूसरे भाग पर तथा दूसरे भाग से उसी उद्दीपक के विभिन्न भागों पर परिवर्तित हो तो इस परिवर्तन को अवधान परिवर्तन कहते है।

अध्ययनों एवं प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि एक निश्चित समय के बाद किसी उद्दीपक पर समान तीव्रता से ध्यान नहीं लगाया जा सकता है। प्रयोज्य का उद्दीपक पर ध्यान की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। ध्यान देते समय प्रयोज्य उद्दीपक पर ध्यान कभी अधिक लगाता है और कभी कम। अवधान का यह गोचर कहलाता है।

ध्यान परिवर्तन के मुख्य कारण हिनेत्रीय प्रतिस्पर्धा, अस्पष्ट आकृतियाँ तथा अवधान उद्दीपक की गतिशीलता आदि है। इसी प्रकार से अवधान विचलन के मुख्य कारण अवधान में बाधा, अवधान प्रक्रिया की अध्णिक तीव्रता है।

विलिंग्स ने अपने एक प्रयोग में प्रयोज्य के सामने एक तस्वीर रखकर के निश्चित भाग पर ध्यान लगाने को कहा तथा प्रयोज्य को यह निर्देश दिये कि जहाँ निश्चित भाग से अवधान परिवर्तित हो तो एक विशेष कुन्जी दबा देना। इस प्रकार के प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि अवधान का

प्रथम परिवर्तन दो सैकण्ड बाद होता है परन्तु इन परिवर्तनों का विस्तार 2/10 सैकण्ड से पाँच सैकण्ड तक होता है।

वुडवर्थ तथा श्लासवर्ग का मत है कि एक जटिल उद्दीपक पर पाँच सैकेण्ड से अधिक समय तक भी ध्यान लगाया जा सकता है, परन्तु इस दशा में अवधान उस वस्तु के एक भाग से दूसरे भाग पर परिवर्तित होता रहता है। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ध्यान परिवर्तन आँखों की गतिशीलता के कारण होता है।

अरबनस्टीच ने सर्वप्रथम अपने एक प्रयोग में संवेदनात्मक विचलन को ज्ञात किया। प्रयोज्य के श्रवण का परीक्षण करते समय उसने देखा कि प्रयोज्य को एक निश्चित दूरी पर रखी घड़ी की आवाज निरन्तर सुनाई देती है। प्रयोज्य के ध्यान में कभी तो वह घड़ी की टिक-टिक आती है और कभी घड़ी की यह टिक-टिक उसने अवधान से ओझल हो जाती है। दृष्टि तथा स्पर्श उद्दीपकों में भी इसी प्रकार के गोचर का पता लगा और इसे अवधान गोचर कहते है। अवधान विचलन में वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है। स्लाटर के अनुसार ध्यान लहर जिसमें घनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों पहलू सम्मिलित है, का औसत समय केवल 3 सैकण्ड है परन्तु टेलर के अनुसार यह लगभग 6 सैकण्ड है।

8.9 अवधान विचलन के कारण (Reasons for deviation in Attention)

प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर अवधान विचलन के प्रमुख कारक निम्न है-

(1) **सांवेगिक अनुकूलन या थकान-** अवधान प्रक्रिया में ज्ञानेन्द्रियों के लगातर कार्यरत रहने से ज्ञानेन्द्रियों से संबंधित संवेदना निरंतर होने से संवेदनात्मक समायोजन में बाधा आती है अथवा वह न्यूरोन जिनके द्वारा संवेदना का निरन्तर कुछ समय तक आभास होता है, उनमें थकान आ जाती है।

(2) **आँख की गति -** ध्यान विचलन का कारण आँखों की गति भी हैं अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनों में देखा गया कि आँख की गति के कारण उद्दीपक की प्रतिमा रेटिना के निश्चित भाग से हट जाती है दूसरे ही क्षण वह उद्दीपक प्रमि रेटिना के उस निश्चित स्थान पर न बनकर दूसरे स्थान पर बनने के कारण ध्यान परिवर्तित होता है।

राबर्टसन ने अपने एक अध्ययन में देखा कि उद्दीपक पर प्रकाश का वितरण समान नहीं होता है। कहीं उद्दीपक पर प्रकाश अधिक होता है और कहीं कम, उद्दीपक पर प्रकाश अधिक होता है और कहीं कम, उद्दीपक पर प्रकाश की उ उद्दीप्ति एक समान न होने के कारण भी ध्यान का विचलन होता है।

(3) **सम्भावित रक्त संचालन कारक -** रक्त संचालन में भी हल्के से विचलन होते रहते है यह विचलन (Traulee-Heaingve) कहलाते है। तथा इसका अध्ययन (Plethysmograph) यन्त्र द्वारा किया जाता है। बोन्सर ने अपने अध्ययन में पाया कि ध्यान में विचलन तथा रक्त में विचलन साथ साथ पाये जाते है। अतः सम्भावना है कि रक्त संचालन में (Traulee-Heaingve) के कारण अवधान में विचलन पाया जाता है। ग्रिफिट्स एन गोरडोन अपने अध्ययन में रक्त संचालन के विचलन तथा अवधान विचलन मे कोई विशेष संबंध ज्ञात कर सके।

8.10 ध्यान भंग (Attention-Loss)

जब व्यक्ति अपना ध्यान किसी विशेष उद्दीपक की ओर किये हुए होता हैं और बीच में उसके सामने कोई दूसरा उद्दीपक आ जाता हैं तो ऐसी अवस्था में व्यक्ति का ध्यान पहले उद्दीपक से हटकर दूसरे उद्दीपक की ओर अपने आप चला जाता है। इस प्रक्रिया को ध्यान भंग की संज्ञा दी जाती हैं। जिस उद्दीपक की वजह से ध्यान भंग हुआ है उसे ध्यान भंजक कहते हैं।

ध्यान भंग दो प्रकार के होते हैं - (1) निरंतर ध्यान भंग तथा (2) अनिरन्तर ध्यान भंग। जो ध्यान निरन्तर होता है; जैसे फैक्ट्री अथवा चलती ट्रेन में ध्यान भंग की प्रक्रिया निरन्तर ध्यान भंग हैं। दूसरी ओर जब कुछ समय पष्चात् रूक-रूकक ध्यान भंग होता है तो इस प्रकार के ध्यान भंग को अनिन्त ध्यान भंग कहते हैं। ध्यान भंग का प्रभाव कार्य पर बहुत अधिक होता हैं। ध्यान भंग की अवस्था में केवल कार्योत्पादन ही कम नहीं होता हैं, बल्कि कार्य की क्वालिटी भी गिर जाती हैं। परन्तु प्रयोगों के आधार पर पता चला है कि निरन्तर ध्यान भंग की अवस्था में प्रयोज्य कुछ समय में अपने आप को संतुलित कर लेता है। फलस्वरूप उसक कार्योत्पादन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा कुछ ऐसे प्रयोग भी किये गये है जिसमें यह दिखाया गया कि ध्यान भंग में सिर्फ बाह्‌ उद्दीपकों जिसे विकर्षक के रूप में प्रयोग किया जाता हैं, का ही महत्व नहीं होता हैं बल्कि व्यक्ति की पूर्व अनुभूति, प्रत्याशा तथा मनोवृत्ति का भी महत्वपूर्ण होता हैं।

प्रयोग के उपरान्त मार्गन ने यह निष्कर्ष निकाला कि ध्यान भंग के प्रारम्भ में कार्य की गति कुछ कम हो जाती है परन्तु यदि प्रयोज्यों को ध्यान भंग अवस्था में कार्य का अभ्यास कराया जाये तो प्रयोज्य कार्य की गति को कुछ ही समय में पूर्ववत कर लेता हैं और इन्हीं प्रयोज्यों से शान्त वातावरण में कार्य कराया जाये तो शान्त वातावरण में जो कार्य करते है उसमें फिर से शिथिलता आ जाती हैं।

होवे ने अपने एक अध्ययन में देखा कि नियंत्रित समूह जिसने साधारण अवस्था में कार्य किया, को प्रयोग में 137.6 प्राप्तांक प्राप्त हुए तथा प्रयोगात्मक समूह जिसने ध्यान भंग अवस्था में कार्य किया, को प्रयोग में 133.2 प्राप्तां प्राप्त हुए। स्पष्ट है कि ध्यान भंग अवस्था में कार्योत्पादन में थोडी सी हानि होती हैं।

एक अन्य प्रयोग में स्मिथ ने तीव्र शोरगुल (ध्यान भंग) की अवस्था में प्रयोज्य से अकों को चेक कराने का कार्य लिया। प्रयोग में स्मिथ ने देखा कि ध्यान भंग अवस्था में प्रयोज्य सामान्य अवस्था की अपेक्षाकृत तीव्रगति से कार्य करते हैं परन्तु प्रयोगात्मक समूह के कार्य में त्रुटियाँ अधिक होती हैं। नियंत्रित तथा प्रयोगात्मक समूहों के कार्योत्पादन में बहुत थोडा अन्तर पाया जाता है जो सार्थक अन्तर नही होता हैं।

फोर्ड ने भी अपने एक प्रयोग में देखा कि ध्यान भंग अवस्था में प्रयोज्य की मस्कु एकटीविटी सामान्य अवस्था की अपेक्षा अधिक बढ़ जाती हैं। फेण्डरिक ने अपने एक प्रयोग में देखा कि प्रयोज्यों के पढ़ने के समय यदि फोनोग्राम से रिकार्डस् बजाए जाते है तो इन प्रयोज्यों के पढ़ने में कुछ न कुछ हानि अवश्य होती हैं। एक अन्य अध्ययन में देखा गया कि यदि ध्यान भंजक के रूप में लोकप्रिय संगीत का उपयोग किया जाता है तो प्रयोज्यों की कार्यक्षमता पर कोई प्रभाव नही पड़ता हैं।

सैण्डर्स और बैरन ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह प्रदर्शित किया कि सरल कार्यों के निष्पादन पर ध्यान भंग करने वाले उद्दीपकों का प्रभाव कम पड़ता हैं। दूसरी ओर जटिल कार्यों के कार्य निष्पादन पर ध्यान भंग करने वाले कारकों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पड़ता हैं।

ध्यान भंग बाह्य उद्दीपकों के कारण तो होता ही है साथ ही ध्यान भंग के काण प्रयोज्य की व्यवहागत विशेषताओं और उसके व्यक्तित्व से भी संबंधित हो सकते हैं। औगुल और ब्रिटन ने अपने अध्ययनों में पाया कि अधिक चिन्ता वाले लोग शोरगुल की स्थिति में अपने ध्यान को अधिक एकाग्र रखते हैं। इसी प्रकार से देखा गया कि व्यामोह से ग्रस्त व्यक्ति भी शोरगुल में अच्छा कार्य निष्पादन कर लेते हैं। जबकि शान्त एकान्त अवस्था में उनका कार्य निष्पादन गिर जाता हैं।

ब्रॉडबेण्ट ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि बहुमुखीं व्यक्तित्व वाले प्रयोज्य जब शोरगुल की उपस्थिति में अंकगणित की समस्याओं का हल करते हैं, उनका ध्यान अधिक भंग होता हैं। बेकर एवं मैडल ने अपने एक अध्ययन में पाया कि कम अंक पाने वाले छात्रों का ध्यान भंग अधिक अंक पाने वाले छात्रों की अपेक्षा अधिक होता हैं।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस ध्यान भंग (विकर्षण) को कम करने के दो उपाय बताये है - पैशीय प्रयास तथा समंजन।

ध्यान में विकर्ष को कम करने के लिये व्यक्ति के कुछ अतिरिक्त पेशीय ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। मार्गन ने अपने प्रयोग में प्रयोज्य को टाईपराईटर पर कुछ शाब्दिक सामग्री टाईप करने के कहा। कुछ विशेष प्रबध द्वारा टाईपराईटर के बटन या कुन्जी पर प्रयोज्य की अंगुलियों द्वारा पड़ने वाले दबाव तथा कुन्जी पर अंगुली रखने के समय प्रयोज्य के श्वसन का अपने आप माद लिया जाता है। इन दोनों मापों द्वारा टाईप करते समय प्रयोजन के पेशिय प्रयास का पता चलता है। प्रयोज्य पहले कुछ समय के लिए शांत अवस्था में टाईप करता रहा। फिर अचानक कमरे में संगीत, बिजली घंटियाँ आदि बजने लगे और प्रयोज्य को इस शोरगुच की परिस्थिति में भी टाईप करना था तथा फिर अन्त में कुछ समय के लिए उसे शांत अवस्था में टाईप करना था। परिणाम में देखा गया कि पहली शांत अवस्था में धीरे-धीरे टाईपराईटर की कुन्जी पर अंगुलियों का दबाव कम होता गया तथा साथ ही साथ प्रति स्ट्रोक समय भी कम होता गया। प्रयोज्य की श्वसन प्रक्रिया भी इस अवस्था में सामान्य थी। शोरगुल की अवस्था प्रारम्भ होते ही कुन्जी पर अंगुलियों का दबाब बढ़ गया तथा प्रति स्टोक समय भी बढ़ गया। इसके अतिरिक्त प्रयोज्य की श्वसन प्रक्रिया भी तीव्र हो गयी और टाईप किये जाने वाले अक्षरों व अंको को टाईप करते समय वह जोर जोर से बोल भी रहा था। अंतिम अवस्था में ऐसा पेशिय तनाव नहीं पाया गया। इस परिणाम से स्पष्ट है कि प्रयोज्य ने शोरगुल अवस्था के ध्यान को अपने कार्य में लगाये रखने के लिए अधिक पेशिय ऊर्जा खर्च कर रहा था। टाईपराईटर की कुंजी को जोर से तथा अधिक समय के लिये दबाये रखना तथा उसकी श्वास प्रक्रिया में अनयिमितता एवं जोर से अक्षरों व अंको को बोलना आदि से यह पता ला कि प्रयोज्य अतिरिक्त पेशिय ऊर्जा खर्च कर रहा था। ताकि उसका ध्यान भंग नहीं हो सके। फोर्ड और डेम्बर तथा वार्म द्वारा भी इसी प्रकार के निष्कर्ष अपने अपने प्रयोग में पाये गये।

संमजन दूसरी प्रविधि है जिसके सहारे व्यक्ति का ध्यान भंग होने से बचता है। यदि किसी व्यक्ति के घर के ठीक बगल में आटा चक्की है तो कुछ दि तक तो उसकी आवाज से वह परेशान होता है और उसका ध्यान किसी कार्य में ठीक प्रकार से नहीं लग पाता है। परन्तु कुछ दिनों या एक दा महिनों के

बाद वह अपना प्रत्येक काम बिना सिकी परेशान के कर लेता है। यहाँ तक कि गहरी नींद सो भी सकता हे। हालाँकि मशीन पूर्णतः चलती रहती हे। तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति अपने काम मे अच्छी तरह ध्यान लग पाता है। यद्यपि मशीन से शोरगुल की आवाज उत्पन्न होती है। इसका कारण यह है कि हव अपने आपको उस विशेष परिस्थिति के साथ संमजित कर लेता है। इस प्रक्रिया को मनोविज्ञान में संमजन कहा जाता है। हारमोन, फ्रीमेन तथा पोफेन बर्गर ने अनेको ऐसे प्रयोग किये है जिससे स्पष्ट होता है कि संजन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति ध्यान को भंग होने के बचाता है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि ध्यान भंग एक महत्वपूर्ण घटना है। इस पर सिर्फ बाह्य उद्दीपक जो विकर्षक का कार्य करते है, का ही प्रभाव नहीं पड़ता हैं बल्कि व्यक्ति की मनोवृत्ति तथा प्रत्याशा का भी प्रभाव प्रड़ता है। पेशीय प्रयास तथा संमजन द्वारा ध्यान के विकर्षण को कम भी किया जा सकता हैं।

8.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अवधान के निर्धारक तत्व कौन-कौन से हैं ? व्याख्या करें |
2. अवधान का अर्थ एवं परिभाषा स्पष्ट करें |
3. अवधान विचलन के कारणों को उदहारण सहित स्पष्ट करें |

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- डी. अमेटो (1979) एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी, टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।
- राजमनिक्कम, एम. (2000), मार्डन साइकोफिजिकल एण्ड स्केलिंग मेथडर्स एण्ड एक्सपेरियमेन्टेशन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (1999), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्री वास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस. तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपरीमेंटल साइकोलॉजी, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

8.11 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- डी. अमेटो (1979) एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी, टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।
- राजमनिक्कम, एम. (2000), मार्डन साइकोफिजिकल एण्ड स्केलिंग मेथडर्स एण्ड एक्सपेरियमेन्टेशन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (1999), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।

- श्रीवास्तव, रामजी, श्री वास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस. तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपरीमेंटल साइकोलॉजी, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

इकाई - 9

प्रत्यक्षीकरण

Perception

9.1 प्रत्यक्षीकरण का अर्थ

9.2 प्रत्यक्षण की विशेषताएँ

9.3 प्रत्यक्षण के सिद्धान्त या उपागम

(अ) गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धान्त

(ब) निर्देश अवस्था सिद्धान्त

(स) प्रत्यक्षण का दैहिक उपागम या सिद्धान्त

(द) गिब्सन का उपागम

(य) सूचना संसाधन उपागम

(र) व्यवहारवादी उपागम या सिद्धान्त

9.4 प्रत्यक्षण को प्रभाविता करने वाले कारक -

(1) प्रत्यक्षण में व्यक्तिगत कारकों की भूमिका

(2) प्रत्यक्षण में सामाजिक कारकों की भूमिका

(3) प्रत्यक्षण में संस्कृतिक कारकों की भूमिका

9.5 आकृति एवं पृष्ठभूमि प्रत्यक्षीकरण

9.6 आकृति तथा पृष्ठभूमि पृथक्करण के निर्धारक

9.7 सारांश

9.8 निबंधात्मक प्रश्न

9.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

प्रत्यक्षीकरण (Perception)

प्रत्यक्षीकरण या प्रत्यक्षण एक महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है। यह वस्तुतः मनोविज्ञान एवं मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान है। व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का सही अध्ययन प्रत्यक्षण पर ही निर्भर करता है।

प्रत्यक्षण की क्रिया संवेदन की प्रक्रिया से प्रारंभ होती है और किसी व्यवहार करने की क्रिया के पहले तक होती रहती है। अतः प्रत्यक्षण की क्रिया संवेदन तथा व्यवहार करने की क्रिया के बीच की प्रक्रिया होती है।

9.1 प्रत्यक्षीकरण का अर्थ (Meaning of Perception)

प्रत्यक्षण को भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है।

आइजनेक के अनुसार ''प्रत्यक्षीकरण प्राणी का एक मनोवैज्ञानिक प्रकार्य है जिसका संबंध पर्यावरण की स्थिति या परिवर्तनों की सूचना ग्रहण करने तथा प्रकम से है।''

बार्टली ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ परसेप्शन' में अनेक परिभाषाओं का पुनरावलोकन कर निष्कर्ष निकाला कि ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करने वाले ऊर्जा सम्बन्धी प्रभाव अथवा तुंरत बाद घटित होने वाली प्राणी की समस्त क्रियाएँ प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत आती है।

डेम्बर ने प्रत्यक्षीकरण को एक व्यवस्था तथा मध्यस्थताकारी प्रक्रमों का एक सेट माना है जिसमे उद्दीपक तथा अनुक्रिया वे सम्बन्धों का स्पष्टीकरण होता है।

फोर्गस ने माना कि प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रम है जो पर्यावरण से सूचना का अवशोषण करता है तथा जिसकी चार अवस्थाएँ है -

(1)प्रथम में ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से भौतिक ऊर्जा ग्रहण की जाती है, (2) द्वितीय में सूचना देने वाले स्नायु आवेश के रूप में भौतिक ऊर्जा का रूप परिवर्तित होता है, (3) तृतीय अवस्था में जब स्नायु आवेग मस्तिष्क में पहुँचते है तो कुछ मध्यस्थकारी क्रियाएँ उत्पन्न होती है, इन क्रियाओं का कार्य स्नायु आवेशों से प्राप्त सूचना को परिवर्द्धित, पुनर्गठित और परिवर्तित करना होता है। (4) चतुर्थ अवस्था का सम्बन्ध प्राणी के प्रत्यक्षपरक अनुभवों से है, तथा इन अनुभवों में व्यक्ति का वांचित और शारीरिक व्यवहार भी सम्मिलित है।

हैबर के अनुसार ''प्रत्यक्षपरक प्रक्रियाओं में वह सभी प्रक्रियाएँ सम्मिलित है जिसका कि सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों पर पड़ने वाली उद्दीपक ऊर्जा को, उद्दीपन की अनुक्रिया को तथा इस उद्दीपक की समाप्ति, तक न मिटने वाली स्मृति को सूचना देने वाले अनुभवों के रूप में अनुवादित या व्याख्या करता है। ''

एटकिन्सन तथा हिलगार्ड के अनुसार ''प्रत्यक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम लोग वातावरण में उपस्थिति उद्दीपकों की व्याख्या करते है तथा उसे संगठित करते है।''

कोलमैन के अनुसार ''प्रत्यक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव को अपने आंतरिक अंगों तथा अपने वातावरण के बारे में सूचना मिलती है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के निष्कर्षतः प्रत्यक्षण की एक विस्तृत एवं तुलनात्मक रूप से अधिक वस्तुनिष्ठ परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है।

''प्रत्यक्षण एक सक्रिय, चयनात्मक एवं संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति का अपने आंतरिक अंगों तथा बाह्य वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का तात्कालिक अनुभव होता है। ''

9.2 प्रत्यक्षण की विशेषताएँ (Characterstics of Perception)

(1) प्रत्यक्षण के लिए उद्दीपक का होना अनिवार्य है प्रत्यक्षण हमेशा किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति का होता है। जिन व्यक्तियों, घटनाओं या वस्तुओं का प्रत्यक्षा होता है, उसे उद्दीपक कहते है। जब कोई उद्दीपक कोई सवेदन नहीं होगा और फिर तब उनका प्रत्यक्षण भी नहीं होगा।

(2) प्रत्यक्षण में उद्दीपक का तात्कालिक अनुभव होता है।

प्रत्यक्षण मं उद्दीपकों का तात्कालिक अनुभव होता है। अर्थात् जब कोई व्यक्ति के सामने कोई उद्दीपक उपस्थित होता है तो उसका ज्ञान हमें तुरंत होता है न कि उन उद्दीपक के बारे में कुछ देर सोचने के बाद। जो उद्दीपक व्यक्ति के सामने उपस्थित नहीं रहता है उसका हम प्रत्यक्षण नहीं कर सकते।

(3) प्रत्यक्षण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया

मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षण को एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया कहा है। मानसिक प्रक्रिया से तात्पर्य है कि किसी उद्दीपक का प्रत्यक्षण करते समय व्यक्ति का मस्तिष्क काफी सक्रिय होकर वस्तु की घटना की व्याख्या पूर्व अनुभूतियां े के सन्दर्भ मं े करता है।

(4) प्रत्यक्षण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है-

मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षण का एवं संज्ञानात्मक प्रक्रिया माना है। संज्ञानात्मक प्रक्रिया से तात्पर्य है कि वह प्रक्रिया जिसके द्वारा हमें उद्दीपकों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है।

(5) प्रत्यक्षण के उद्दीपकों को संगठित किया जाता है-

प्रत्यक्षण मं सिर्फ उद्दीपकों को व्याख्या ही नहीं की जाती है बल्कि उन उद्दीपकों को विशेष नियमों के आधार पर एक खास ढ़गस से संगठित किया जाता है।

(6) प्रत्यक्षण एक चयनात्मक प्रक्रिया है-

प्रत्यक्षण एक मानसिक प्रक्रिया है। किसी भी समय अनेकों उद्दीपक हमारे ज्ञानेन्द्रिय से उत्तेजित करते है। परन्तु उनमें से हम सभी का प्रत्यक्षण नहीं कर पाते है। सच्चाई यह है कि हम केवल उन्ही उद्दीपकों का प्रत्यक्षण कर पाते है जिन पर हम अवधान या ध्यान देते है। अर्थात् प्रत्यक्षण में अवधान काफी महत्वपूर्ण है। हम किसी वस्तु पर अपनी अभिरूचि, आदत, प्रेरणा आदि के अनुरूप ध्यान देते है जिसके फलस्वरूप उस उद्दीपक या वस्तु का प्रत्यक्षण होता है। कभी-कभी किसी वस्तु या उद्दीपक में कोई खास गुण होता है जिससे हम उसकी ओर ध्यान देते है और फिर उसका प्रत्यक्षण हमें हो जाता है। इसलिये प्रत्यक्षण का स्वरूप चयनात्मक होता है।

9.3 प्रत्यक्षण के सिद्धान्त या उपागम (Theories of Perception)

प्रत्यक्षण की प्रक्रिया हेतु मनोवैज्ञानिकों ने निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है-

(अ) गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धान्त (Gestalt Theories)

(ब) निर्देश अवस्था सिद्धान्त

(स) प्रत्यक्षण का दैहिक उपागम या सिद्धान्त

(द) गिब्सन का उपागम

(य) सूचना संसाधन उपागम

(र) व्यवहारवादी उपागम या सिद्धान्त

(अ) गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धान्त

गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धान्त का प्रतिपादन वर्दाइमर, कोहलर तथा कौफ्कर नामक मशहुर मनोवैज्ञानिकों के द्वारा किया गया। गेस्टाल्ट उपागम को समझने के लिये इसे चार भागों में विभाजित किया गया।

(1) आकृति पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण

(2) प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन का नियम

(3) समाकृतिकता का सिद्धान्त

(4) क्षेत्रबल

(1) आकृति पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण

गेस्टाल्ट के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण अलग-अलग रूप में न कर सम्पूर्ण रूप से करता है। इस सम्पूर्ण प्रत्यक्षण का अपना एक विशेष गुण होता है जो वस्तु के भिन्न-भिन्न हिस्सों के प्रत्यक्षण के विशेष गुण मं भिन्न होता है।

जब व्यक्ति किसी वस्तु विशेष का प्रत्यक्षण करता है, तो उसे वस्तु विशेष का कुछ भाग अत्यन्त स्पष्ट दिखलाई देता है उसे आकृति तथा कुछ तुलनात्मक रूप से कम स्पष्ट दिखाई देता है उसे पृष्ठभूमि कहा जाता है।

इस तरह के प्रत्यक्षण को आकृति पृष्ठभूमि कहा जाता है। गेस्टाल्टवादियों ने आकृति तथा पृष्ठभूमि में अन्तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है-

- आकृति का एक निश्चित आकार होता है जबकि पृष्ठभूमि आकारविहित होती है। और यदि आकार होता भी है तो उसमे किसी भी प्रकार की आकृति नहीं होती है।
- पृष्ठभूमि हमेशा आकृति के पीछे होता है और आकृति निश्चित आकार लिये हुए उसी पृष्ठभूमि पर उभरी हुई दिखाई देती है।
- आकृति का निश्चित आकार होने के कारण वह अधिक प्रभावपूर्ण एवं स्मरणीय होती है जबकि पृष्ठभूमि प्रभावहीन होती है।
- आकृति का स्थान करीब करीब निश्चित तथा सीमित होता है परन्तु पृष्ठभूमि पीदे की ओर अनन्त तक फैली होती है।
- गत्यात्मक रूप से भी आकृति तथा पृष्ठभूमि में अन्तर होता है।

हलर तथा वेलेक (1944) ने मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की घटना परितृप्ति घटना बताया और उसके द्वारा पलटोवी प्रत्यक्षण व्याख्या की है। जब पलटावी प्रत्यक्षण के अध्ययन में व्यक्ति काले चित्र पर (यानी आमने-सामने दो व्यक्तियों की आकृतियों पर) कम से कम 35 सेकेण्ड तक देखता रहता है, तो इससे संबंधित मस्तिष्क क्षेत्र पूर्णतः संतृप्त होता है। परिणामस्तक परितृप्ति पूर्ण होते ही अपने आप उजला चित्र सामने आ जाता है और फिर इससे संबंधित मस्तिष्क क्षेत्र उत्तेजित होता है तथा फिर धीरे-धीरे संतृत्पति की ओर बढ़ने लगता है। परितृप्ति पूरा होते ही फिर अपने आप काली आकृति आँखों के सामने आती है। इस तरह के परितृप्ति पूरा होते ही फिर अपने आप काली आकृति प्रत्यक्षण के एक विशेष पहलू की व्याख्या की गयी है जिसे आकृति अनुप्रभाव कहा गया प्रत्यक्षा का यह स्वरूप मौलिक एवं जन्मजात होता है।

गेस्टाल्ट स्कूल के अनुसार पलटावी आकृति का प्रत्यक्षण से प्रत्यक्षण के विशेष पहलू जिसे बहुस्थिरता कहा जाता है, का पता चलता है। बहुस्थिरता से इस बात से होता है कि एक ही उद्दीपक को यदि भिन्न-भिन्न् ढंग से संगठित किया इस बात से होता है कि एक ही उद्दीपक को यदि भिन्न-भिन्न ढंग से संगठित किया जाए इससे भिन्न भिन्न तरह की आकृति का प्रत्यक्षण होता है। इस तरह का प्रत्यक्षण दृष्टि में ही नहीं बल्कि अन्य क्षेत्रों जैसे श्रवण क्षेत्रों आदि में भी होता है।

(2) प्रत्यक्षणात्मक संगठन का नियम

गेस्टाल्टवादियों का मत है कि प्रत्यक्षण में एक तरह का संगठन पाया जाता है। जब भी व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण करता है उसे एक खास पैटने के रूप में संगठित पाता है। जब व्यक्ति उद्दीपकों को एक पैटर्न में संगठित देखता है तो इसका गुण उन गुणों से भिन्न होता है जो उसके अंगों या हिस्सों के विश्लेषण के बाद प्राप्त होता है।

प्रत्यक्षणात्मक संगठन दो तरह के नियमों द्वारा निर्धारित होता है परिधीय नियम तथा केन्द्रिय नियम।

परिधीय नियम में उन नियमों को रखा जाता है जो उद्दीपक से संबंधित होते है। जैसे उद्दीपकां े में सन्तिकटता, समानता, निरंतरता, अच्छी आकृति, रिक्ति आदि कुछ ऐसे गुण है जिसमे प्रत्यक्षण के संगठन उत्पन्न होता है। उद्दीपकों के इन गुणों में संबंधित स्तभी नियम जन्मजात होते है न कि व्यक्ति उसे अर्जित कर सीखता है। इसके अलावा कुछ केन्द्रिय नियम भी है जिनसे प्रत्यक्षण में संगठन उत्पन्न होता है। इनमें अर्थ अभिप्रेरण, मनोवृति आदि को रखा जाता है। इन नियमों को व्यक्ति अपने जीवनकाल में अर्जित करता है।

गेस्टाल्टवादियों द्वारा संगठन के निम्नाकिंत नियमों पर अधिक बल दिया-

(1) सत्रिकटता का नियम

प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन के इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक दूसरे उद्दीपक से समय या स्थान मं े नजदीक होते हैं, उन्हे व्यक्ति आपस में संगठित का प्रत्यक्षण करता है और उन्हें एक स्पष्ट आकृति के रूप मं देखता है।

(2) समानता का नियम

इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक एक-दूसरे के समान होते हैं, उन्हें व्यक्ति एक साथ संगठित प्रत्यक्षण करता है।

(3) सममिति का नियम

इसे उत्तम आकृति का नियम भी कहा जाता है। इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक अधिक सममित होता है उस व्यक्ति एक स्पष्ट आकृति के रूप में संगठित देखता है। दूसरे तरफ जिन उद्दीपकों में सममिति नहीं होता है, उसे व्यक्ति एक स्पष्ट आकृति में संगठित नहीं देखता है।

(4) उत्तम सातत्य का नियम

इस नियम के अनुसार जिन उद्दीपका में या उद्दीपकां के अंशों में एक ही दिशा में जाने या आने की निरंतरता पायी जाती है, उन्हें व्यक्ति एक समूह में संगठित प्रत्यक्षण करता है।

(5) सामान्य गति का नियम

इस नियम के अनुसार दृष्टि क्षेत्र में उपस्थित उद्दीपक के जब सामान्य गति या परिवर्तन होते पाया जाता है, तो उसे व्यक्ति एक खास पैटर्न के सगठित हुए प्रत्यक्षण करता है।

(6) बन्दी का नियम

इस नियम के अनुसार व्यक्ति उद्दीपक में रिक्त स्थानों को अपनी ओर से भरकर उसे एक संगठित पैटर्न के रूप में देखता है। इस नियम की सक्रियता के कारण व्यक्ति उद्दीपक का एक सम्पूर्ण रूप को न कि उसके विभक्त रूप का प्रत्यक्षण करता है।

इन नियमों के अलावा कुछ केन्द्रीय नियम भी है जिनसे प्रत्यक्षण मंे संगठन उत्पन्न होता है। इनमें निम्नांकित प्रमुख है-

(1) **अर्थ का नियम** -व्यक्ति जिन उद्दीपकों का अर्थ समझता है उसे वह एक निश्चित पैटर्न में संगठित देखता है। जैसे, नीचे की पवित्र को व्यक्ति शब्दों के अर्थ के अनुसार तुरंत अलग-अलग करके एक निश्चित पैटर्न के रूप संगठित कर प्रत्यक्षण कर लेता है-

(2) **वृत्ति का नियम** - जब व्यक्ति किसी उद्दीपक पर देखता है तो उससे उसके मन में एक विशेष तरह की मानसिक वृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण वह उद्दीपकां को संगठित करके एक निश्चित पैटर्न के रूप में, देखता है यह वृत्ति उत्पन्न हो जाने पर उद्दीपक में कुछ परिवर्तन भी हो जाता है तो व्यक्ति उसे पहले के रूप में ही देखता है।

(3) **अर्थगर्भता का नियम** - इस नियम के अनुसार सभी व्यक्तियों में एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है जो प्रत्यक्षण किये जाने वाले उद्दीपकों से अधिकाधिक अर्थ का अनुभव करने की प्रेरणा प्रदान करती है। सममिति उत्तम आकृति, बन्दी निरंतरता आदि का इस नियम से सीधा संबंध है। उद्दीपकों के इन सभी गुणां के सहारे व्यक्ति एक तरह का अर्थ ढूँढने का प्रयास करता है। जैसे, नीचे की दो पंक्तियों को देखें।

वयाम पाताल नदी माता|

मोहन संतरा घर लाना|

उसमे ऊपर की पंक्ति में अर्थगर्भता नहीं है जबकि नीचे की पंक्ति में अर्थगर्भता अधिक है। फलस्वरूप दूसरी पंक्ति के शब्दों में आपसी सम्बन्ध स्थापित करना आसान है जिसके चलने उसे हम तुरन्त ही पूर्ण वाक्य के रूप में संगठित कर उसका प्रत्यक्षण कर स्मरण कर लेते है।

(4) **प्रेरणात्मक नियम-** प्रत्यक्षणातमक संगठन पर व्यक्ति के अभिप्रेरण जैसे, भूख, प्यास तथा व्यक्ति के मूल्य आदि का तीव्र प्रभाव पड़ता है। इन कारकों को प्रत्यक्षण का केन्द्रीय निर्धारक इन कारकों से व्यक्ति का प्रत्यक्षण संगठित हो जाता है और उससे उद्दीपक में एक निश्चित पैटर्न देता है।

(3) **समाकृतिकता का नियम**- गेस्टाल्टवादियां द्वारा प्रतिपादित समाकृतिकता के नियम से तात्पर्य है कि व्यक्ति जिस घटना या वस्तु का प्रत्यक्षण करता है, उससे मस्तिष्क के संबंधित क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन होता है और इन दोनों के बीच एक सीधा एक स्पष्ट संबंध पाया जाता है। इसके स्पष्ट है कि प्रत्यक्षण के दो पहलू होते है- एक प्रत्यक्षज्ञानात्मक क्षेत्र तथा दुसरा मस्तिष्क क्षेत्र/समाकृतिकता का नियम बताता है कि इन दोनों के बीच एक सीधा संबंध होता है।

वुडवर्थ (1948) ने इन दोनों क्षेत्रों के बीच के सम्बन्ध को देश तथा उसके नकशे के सम्बन्ध के साथ तुलनात्मक रूप से किया है और जिस तरह किसी देश का क्षेत्र तथा उसी देश के नक्शे का क्षेत्र (यद्यपि दोनों एक ही चीज नहीं है क्योकि वास्तविक क्षेत्र बहुत बड़ा होता है और नक्शे का क्षेत्र बिल्कुल ही छोटाहोता है। में सीधा सम्बन्ध होता है, ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्षज्ञानात्मक क्षेत्र प्रत्यक्षज्ञानात्मक क्षेत्र तथा मस्तिष्क क्षेत्र में एक सीधा सम्बन्ध होता है। अब एक उदाहरण लीजिए अंधेरे में यदि दो बल्ब को एक खास समय अंतराल पर बारी-बारी से जलाया जाता है, तो देखने वाले को ऐसा प्रतीत होता है कि एक निचित दिशा में बल्ब घूम रहा है।

वर्दाईमर (1948) ने इसे फाई घटना कहा है। वदाईमर का विचार था कि जब हमारे प्रत्यक्षज्ञानात्मक क्षेत्र में दो बल्ब एक निश्चित दिशा में घूमते नजर आते है, तो ठीक इसी ढंग से इन दोनों उद्दीपकों से सम्बन्धित दो क्षेत्र होते है जो एक-दूसरे को ठीक उसी प्रकार से प्रभावित करते है जैसे एक बल्ब की रोशनी दूसरे बल्ब की रोशनी को। अतः समाकृतिकता के सिद्धान्त के अनुसार मस्तिष्क एक तरह का गतिशील क्षेत्र होता है।

समाकृतिकता कोहलर तथा हेल्ड (1949) ने एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने प्रयोज्या के मस्तिष्क के दृष्टि क्षेत्र से यानी मस्तिष्क तरंग को रिकार्ड किया। जब प्रयोज्य के सामने रखे गये वस्तु के बारे में वह दृष्टि प्रत्यक्षण कर रहा था, में गति उत्पन्न किया गया तो इससे मस्तिष्क तरंग में भी कुछ परिवर्तन आ गये। इससे साबित होता है कि प्रत्यक्षज्ञानात्मक क्षेत्र तथा मस्तिष्क क्षेत्र में सीधा सम्बन्ध होता है उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि गेस्टाल्टवादियों ने प्रत्यक्षण की व्याख्या दैहिक एवं तन्त्रिका सम्बन्धी कारकों के रूप में किया है तथा इसके लिए प्रयोगात्मक सबुत भी प्रदान किये है।

(4) **क्षेत्र बल-** गेस्टाल्टवादियों ने क्षेत्र में दो प्रकार के बल की व्याख्या की। ये दोनो बल है संसजक बल तथा अवरोधक बल।

दृष्टिक्षेत्र में उपस्थित उद्दीपकों के स्वरूप के फलस्वरूप इन दोनों प्रकार के बलों की उत्पत्ति होती है। अनेक उद्दीपकों में से कुछ उद्दीपक समान होते है तथा कुछ भिन्न होते है । भी समान उद्दीपक एक

दूसरे के प्रति आकर्षित होते है और उनमे मिल जाने की प्रवृति होती है। इस प्रकार की प्रवृति को संसजक बल कहा जाता है। इस प्रकार संसजक बल का काम समान उद्दीपकों को आपस में मिलाना होता है। ताकि उद्दीपक अधिक से अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सके। जब हम किसी वस्तु का प्रत्यक्षण करते है तो वस्तु का कुछ भाग आकृति के रूप में इसी संसजक बल के कारण दिखाई देते है।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्दीपकों की भिन्नता से अवरोध बल उत्पन्न होता है जिसका मुख्य काम उद्दीपकों को अलग-अलग रखना है।

जब हम किसी वस्तु का प्रत्यक्षण करते है तो संसजक बल तथा अवरोधक बल दोनों ही क्रियाशील होते है जो क्रमशः आकृति और पृष्ठभूमि के रूप में प्रत्यक्षण का आभास देते है।

कोहनर के अनुसार प्रत्यक्षण में ससंजक तथा आसंजक बन का होना आवश्यक है। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाए, उद्दीपकक क्षेत्र या दृष्टि क्षेत्र में सिर्फ संसंजक बल काम कर रहा है, तो ऐसी परिस्थिति में सभी उद्दीपक अपना-अपना स्वतन्त्र अस्तित्व इस तरह मिल जायें कि उनका स्पष्ट प्रत्यक्षण सम्भव नहीं है। उसी तरह से यदि उद्दीपक क्षेत्र में सिर्फ अवरोधक ही काम कर रहा है, तो ऐसी परिस्थिति में उद्दीपक के सभी भाग एक-दूसरे से इतना अलग-अलग हो जायेगे कि वे वास्त्व में निरर्थक हो जायेंगे और उनका सही प्रत्यक्षण करना कठिन हो जायेगा।

उद्दीपक क्षेत्र की संसंजक तथा अवरोधक बलों की अपनी-अपनी सबलता होती है जो निम्नांकित चार नियमों द्वारा निर्धारित होती है।

(1) यदि उद्दीपकों के बीच गुणात्मक समानता अधिक होती है, तो उससे संसंजक बल की सबलता भी अधिक (और इसके विपरीत अवरोधक बलों की सबलता कम) होती है।

(2) यदि उद्दीपकों के बीच तीव्रता की समानता होती है, तो इससे संसंजक बल की सबलता काफी अधिक होती है।

(3) यदि दो उद्दीपकों के बीच में स्थान की समानता होती है, तो इससे भी संसंजक बल अधिक होता है।

(4) यदि दो उद्दीपकों के बीच में समय की समीपता होती है, अर्थात एक उद्दीपक के तुरन्त बाद दूसरा उद्दीपक आता है, तो इससे भी संसंजक बल अधिक होता है।

नियम तीन तथा चार का एक संयुक्त उदाहरण हम फाई-घटना में पाते है। जब कई बल्बों को एक-दूसरे के समीप रखकर एक खास समय अन्तराल पर जलाया तथा बुझाया जाता है, तो में लगता है कि एक बल्ब एक जगह से दूसरी जगह एक खास दिशा में घूम रहा है। इस उदाहरण में संसंजक बल उद्दीपकों में स्थान की समीपता तथा समय की समीपता दोनों के कारण उत्पन्न हो रहा है।

ब्राउन तथा भोथ (1973) ने संसंजक बल तथा अवरोधक बल द्वारा प्रत्यक्षण में किये गये कार्यों की गणितीय विश्लेषण किया इन लोगों ने उद्दीपक क्षेत्र में किसी भाग या हिस्से द्वारा उत्पन्न सभी संसंजक बल के योग को तथा उसी उद्दीपक क्षेत्र के अन्य भागों या हिस्सों द्वारा उत्पन्न सभी अवरोधक बल के योग को का संकेत देकर निम्नांकित तीन तरह की परिस्थतियों का वर्णन किया है जिसमें प्रत्यक्षण का स्वरूप भी अलग-अलग होता दीख पड़ता है-

(1) पहली परिस्थिति में ∑ ब तथा ∑ त बराबर हो सकते है ;∑बत्र ∑तद्ध इस तरह की परिस्थिति में प्रत्यक्षण की क्रिया नहीं के बराबर होगी क्योंकि दोनों तरह के बल समान रूप से सबल होने पर प्रत्यक्षज्ञानात्मक शक्ति नहीं होती है। प्रत्यक्षज्ञानात्मक शक्ति से यहाँ तात्पर्य प्रत्यक्षण करने की क्षमता से होती है।

(2) दूसरी परिस्थिति में ∑ ब ∑ त की मात्रा से अधिक हो सकती है ;∑ब झ∑तद्ध । इस परिस्थिति में प्रत्यक्षण में उद्दीपकों का एक स्पष्ट एवं स्थायी आकृति एक निश्चित पृष्ठभूमि पर दिखलाई देती है। दूसरे शब्दों में, इस तरह की परिस्थिति में आकृति पृष्ठभूमि का प्रत्यक्षण स्पष्ट होता है।

(3) तीसरी परिस्थितियों में ∑ ब की मात्रा ∑ त की मात्रा से कम हो सकती है ;∑ब झ∑तद्ध। ऐसी परिस्थिति में उद्दीपकां का प्रत्यक्षण अस्पष्ट एवं अस्थायी होता है।

ऊपर में जिन दो क्षेत्र बलों की व्याख्या की गयी है, उन पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता कि गेस्टाल्टवादियों के महत्वपूर्ण संप्रत्ययों में यह एक है।

9.4 गेस्टाल्ट सिद्धान्त की आलोचना

(Criticisms of Gestalt Theory)

गेस्टाल्ट सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए इस निष्कर्ष पहुँचा जा सकता कि गेस्टाल्टवादियों अपने अध्ययन एवं विभिन्न नियमों के आधार पर प्रत्यक्षण की व्याख्या अधिक सरल एवं सामान्य बना दिया है। लुनडीन (1985) के अनुसार गेस्टाल्ट सिद्धान्त ने प्रत्यक्षण क्षेत्र में किये गये विश्लेषण को एक 'नयी भेंट' दिया है। इसके बावजूद भी गेस्टाल्ट सिद्धान्त की कुछ आलोचनाएँ की गयी है जो निम्नांकित हैं-

(1) यद्यपि गेस्टाल्टवादियों ने अपने तथ्य के समर्थन में प्रयोग किया गया फिर भी उनके अधिकतर प्रयोग ऐसे हैं जिनमें मनोवैज्ञानिकों ने प्रविधि में सम्बन्धित अनेक त्रुटियाँ होती है जिसके परिणामस्वरूप उनके प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष विश्वसनीय तथा निर्भर योग्य नहीं है।

(2) गेस्टाल्टवादियों ने प्रत्यक्षण में अधिगम के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया है। आलोचकों का मत है कि प्रत्यक्षण की प्रक्रिया अधिगम या अनुभूति के अभाव में भी सही नहीं होगी एवं हमेशा अधूरी ही रहेगी।

(3) आलोचकों का मानका है कि गेस्टाल्टवादियों के समाकृतिकता का सिद्धान्त मात्र दैहिक पूर्वकल्पना है। निश्चित ही यह एक महत्वपूर्ण व्याख्या है परन्तु इसके सबूत परोक्ष हैं। इस सिद्धान्त पर पूर्णरूपेण निर्भर करना सम्भव नहीं है।

(4) गेस्टांल्ट मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित संगठनात्म्क नियम द्वारा प्रत्यक्षण का वर्णन होता है परन्तु उसकी व्याख्या नहीं होती है। हम यह तो समझ पाते है कि किस तरह का संगठन उत्पन्न हो रहा है परन्तु यही नहीं समझ पाते है कि ऐसा संगइन क्यों उत्पन्न हो रहा है।

(5) गेस्टाल्ट सिद्धान्त का तर्क है कि उद्दीपक के गुण या विशेषताओं के कारण प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन उत्पन्न है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि प्रत्यक्षज्ञाणात्मक संगठन सिर्फ उद्दीपक इन गुणों या विशेषताओं पर आधारित नहीं होता है बल्कि व्यक्ति द्वारा उन गुणों की प्रदत्त व्याख्या पर भी आधारित है। उदाहरणस्वरूप, रा ॅक एवं ब्रोसगोल ने अपने अध्ययन में पाया कि समानता का प्रभाव पर स्पष्टतः आकार स्थिरता सूचना का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

(6) केनेडी (1974) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि संकेत का प्रभाव आकृति पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण पर पड़ता है। कैनेडी के अनुसार जब संकेतों का प्रभाव आकृति पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण पर इतना जोरदार पड़ता है तो स्पष्टतः इस तरह के प्रत्यक्षण को मौलिक जन्मजात नहीं माना जा सकता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद प्रत्यक्षण में गेस्टाल्ट सिद्धान्त का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा आज भी जब हम प्रत्यक्षण के किसी पहलू पर चर्चा प्रारम्भ करते है, तो गेस्टाल्ट स्कूल का नाम हम सबसे पहले हैं।

(ब) निदेश अवस्था सिद्धान्त

गेस्टाल्टवादियों की भूलों को सुधारन के उद्देश्य के निदेश अवस्था सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। ब्रूनर तथा पोस्टमैन इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक थे जिन्होने बताया कि प्रत्यक्षण दो तरह के कारकों द्वारा निर्धारित होता है -

(1) स्थानिक कारक तथा (2) व्यवहारपरक कारक

स्थानिक कार में उद्दीपक से संबंधित कारक आते है तथा व्यवहारपरक कारक में व्यक्तिगत कारक जैसे आवश्यकता, अभिप्रेरक, मान आदि आते है। ब्रूनर तथा पोस्टमैन ने बताया कि निदेश अवस्था सिद्धान्त का संबंध प्रत्यक्षण में व्यवहार परक कारकों या अभिप्रेरणात्मक कारकों का महत्व दिखलाने से है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने निदेश अवस्था सिद्धान्त को क्रियात्मक सिद्धान्त भी कहा है।

निदेश अवस्था सिद्धान्तवादियों निम्न प्राकल्पनाओं का वर्णन किया है-

1. प्रत्यक्षण व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होता है

वस्तुओं के प्रत्यक्षण पर व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं का काफी प्रभाव पड़ता है। सचमुच में, व्यक्ति अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार ही उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है। जैसे ऑसगुड (1953) अपनी पुस्तक में लिखे हैं कि जव वे भोजन करने के लिए जाते थे तो रास्ते में एक दफ्तर मिलता था जिसका नाम '400क्श् था जिसे वे प्रायः फुड पढ़ा करते थे। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि ऑसगुड की शारीरिक आवश्यकता यानी भूख के कारण ही प्रत्यक्षण में इस तरह की त्रुटि होती थी।

दैहिक उदाहरण के अलावा लेभाईन, चीन तथा मर्फी (1942) ने एक प्रयोग करके भी यह स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि शारीरिक आवश्यकताओं द्वारा व्यक्ति का प्रत्यक्षण निर्धारित होता है। इस अध्ययन में प्रयोज्यों का दो समूह लिया गया एक प्रयोगात्मक समूह तथा दूसरा नियंत्रित समूह दोनों समूह में कॉलेज के छात्र थे। प्रयोगात्मक समूह के छात्र गत कई घंटों से भूखे थे जबकि नियंत्रित समूह के छात्र भरपेट भोजन किये हुए थे। इन दोनों तरह के समूहों

को बारी-बारी से कुछ रंगीन तथा कुछ रंगहीन अस्पष्ट चित्रों को एक शीशे के भीतर रखकर दिखलाया गया।

इस चित्रों में घरेलू वस्तुओं तथा कुछ खाने-पीने की वस्तुओं के अस्पष्ट चित्र थे। दोनों समूह के छात्रों से यह बतलाने का अनुरोध किया गया कि देखे जा रहे प्रत्येक चित्रों से संबंधित वस्तुओं के बारे में बताएँ परिणाम मं देखा गया कि दोनों ही तरह के चित्रकारी अर्थात रंगीन तथा रंगहीन चित्रों में प्रयोगात्मक समूह के छात्रों द्वारा तीन घंटों तक भूखा रहने के कारण नियंत्रित समूह के छात्रों की अपेक्षा खाने-पीने की वस्तुओं के बारे में अधिक बतलाया गया। परन्तु नौ घंटे के बादे प्रयोगात्मक समूह द्वारा भी खाने-पीने से संबंधित बताये गये वस्तुओं की संख्या में कुछ कमी आ गयी परंतु फिर भी यह कमी नियंत्रित समूह द्वारा खानेपीने के वस्तुओं के बारे में बतलाये गए संख्या में कुछ कमी आ गयी परंतु फिर भी यह कमी नियंत्रित समूह द्वारा खाने पीने से संबंधित बताये गये वस्तुओं की संख्या से कहीं अधिक था। ऐसे परिणाम का कारण यह था कि प्रयोगात्मक समूह के छात्र भूखे थे जबकि नियंत्रित समूह के छात्र भोजन किये हुए थे। इस प्रयोग के परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यक्षण हमारी शारीरिक आवश्यकताओं द्वारा काफी हद तक निर्धारित होता है।

कुछ लोगों ने लेभाईन, चीन तथा मर्फी (1942) के प्रयोग की आलोचना की है। आलोचकों का मत है कि इस प्रयोग में प्रयोज्यों को चित्र का प्रत्यक्षण करने के लिए नहीं कहा गया था बल्कि उसे देखकर उससे संबंधित मन में आने वाली वस्तुओं के बारे में बतलाने के लिए कहा गया था। अतः यह कहा जा सकता है कि शारीरिक आवश्यकता द्वारा प्रत्यक्षण नहीं बल्कि कल्पना करने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। प्रयोज्य नौ घंटे तक जब भूखा रहता था, तो खाने-पीने से संबंधित वस्तुओं यानी भूख आवश्यकता से संबंधित बताये गये वस्तुओं की संख्या कम हो गयी जो नहीं होना चाहिए था।

2. प्रत्यक्षण किये जाने वाले वस्तु से संबंधित पुरस्कार एवं दण्ड द्वारा प्रत्यक्षण की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

प्रत्यक्षण की प्रक्रिया पुरस्कार एवं दण्ड द्वारा भी प्रभावित होती है। इस तथ्य को सबसे पहले शेफर तथा मर्फी ने एक प्रयोग मं दिखलाया। इस प्रयोग में इन लोगों ने कागज के चार अलग-अलग टुकड़ों पर एक वृत्त बनाते हुए मानव चेहरे की रूपरेखा बनायी जिसे टेचिस्टोस्केप की सहायता से 1/3 सेकेण्ड के लिए 100 प्रयास तक दिखलाया। इर तरह से प्रत्येक रूपरेखा को 25-25 बार दिखलाया गया। इसमें से दो रूपरेखा को दिखाने के बाद प्रयोज्य को पुरस्कार अर्थात् 2 से 4 सेन्ट (अमेरिकन सिक्का) दिया जाता था तथा बाकी दो रूपरेखा को दिखलाने के बाद प्रयोज्य को दण्ड दिया जाता था अर्थात उससे 2 से 4 सेन्ट वापस ले लिया जाता था। इस 100 प्रयास के प्रशिक्षण के बाद जाँच दिया गया जिसमें पुरस्कृत रूपरेखा को दण्डित रूपरेखा के साथ मिलाकर दो अलग-अलग वृत्तों में दो नयी रूपरेखा तैयार कर दिखलाया गया। परिणाम में देखा गया कि जाँच प्रयासों में प्रयोज्य ने पुरस्कृत रूपरेखा को आकृति के रूप में तथा दण्डित रूपरेखा को पृष्ठभूमि के रूप् में देखा। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि पुरस्कृत रूपरेखा को प्रयोज्य अधिक स्पष्ट देख सके तथा प्रत्येक प्रयास में वह प्रत्यक्षण कर सका परन्तु दण्डित रूपरेखा को प्रत्येक चार

अस्पष्ट रूप से ही वह प्रत्यक्षण कर पाया। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरस्कृत वस्तुओं को प्रत्यक्षण दण्डित वस्तुओं की अपेक्षा अधिक स्पष्ट तथा तीक्ष्ण होता है। रिगवी तथा गिरवी (1952) ने एक प्रयोग कर शेफर तथा मर्फी के इस निष्कर्ष का समर्थन किया है।

परन्तु कुछ ऐसे भी अध्ययन हुए हैं जिनमें शेफर तथा मर्फी के निष्कर्ष को समर्थन नहीं मिला है। उदाहरणस्वरूप रॉक तथा फ्लैक (1950) ने शेफर तथा मर्फी के ही प्रयोगात्मक डिजाइन की पुनरावृत्ति करते हुए एक दूसरा प्रयोग किया, परन्तु इनका परिणाम कुछ भिन्न था। इन लोगों ने पाया कि प्रशिक्षण के दौरान पुरस्कृत रूपरेखा तथा दण्डित रूपरेखा को एक साथ मिलाकर जब प्रयोज्य के सामने उपस्थित किया जाता था, तो प्रयोज्य में एक तरह की घबड़ाहट तथा क्षुब्धता उत्पन्न हो जाती थी जिनसे प्रत्यक्षण में बाधा पहुँचती थी। इस तरह की घबड़ाहट तथा क्षुब्धता को भी शेफर तथा मर्फी के प्रयोग की आलोचना का एक हिस्सा माना जा सकता है क्योंकि उनके प्रयोग में इस तरह की सांवेगिक प्रक्रियाएँ नहीं हुई थी और पुरस्कृत रूपरेखा को प्रयोज्यों ने स्पष्ट रूप से प्रत्यक्षण किया था।

3. व्यक्ति अपने मान या मूल्य गुणों से संबंधित वस्तुओं का प्रत्यक्षण तेजी से करता

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का कुछ मान गुण होता है। मान या मूल्य से सामान्य अर्थ प्रबल अभिरूचि से होता है। मनोवैज्ञानिकों ने यह प्रयोग कर दिखला दिया है कि यदि कोई उद्दीपक या वस्तु व्यक्ति के इस मान गुण से संबंधित है तो वह उस वस्तु या उद्दीपक का प्रत्यक्षण अन्य वस्तुओं या उद्दीपकां की अपेक्षा जल्दी कर लेता है। पोस्टमैन, ब्रुनर तथा मैकगिनिज (1948) ने अपने प्रयोग में इस तथ्य को दिखला दिया है। इस प्रयोग में 25 कॉलेज छात्रों पर पहले आलपोर्ट वर्नन मान या मूल्य मापनी क्रियान्वयन करके 6 प्रमुख मान क्षेत्रों का प्राप्तांक तैयार किया गया। ये 6 प्रमुख मूल्य थे सामाजिक मूल्य, आर्थिक मूल्य तथा सौंदर्यरोधी मूल्य जिस मान श्रेणी में उच्च प्राप्तांक थे उससे यह पता चलता था कि प्रयोज्य के लिए वह मान अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक मान श्रेणी से संबंधित 6-6 शब्द तैयार किये गये। इन सभी 36 शब्दों को टेचिस्टोस्कोप द्वारा प्रयोज्य को .01 सेकेण्ड से लेकर उत्तरोतर बढ़ते समय के लिए तब तक दिखाया गया जब तक वह उन शब्दों का सही-सही प्रत्यक्षण न कर लिया हो। परिणाम में देखा गया कि जो शब्द व्यक्ति के उच्च मान श्रेणी के थे, उनका प्रत्यक्षण करने में प्रयोज्य ने काफी कम समय लिया परन्तु जो शब्द उनके निम्न मान से संबंधित थे, उनका प्रत्यक्षण करने में उन्हे अधिक समय लगा। दूसरे शब्दों में, उच्च श्रेणी वाले शब्दों की पहचान सीमान्त कम था परन्तु निम्न मान श्रेणी वाले शब्दों की पहचान सीमान्त अधिक था।

होवेस तथा सोलोमोन द्वारा पोस्टमैन ब्रूनर तथा मैकगिनिज के अध्ययन की आलोचना की गयी है और इन लोगों ने बताया है कि यह अध्ययन विश्वसनीय नहीं है। होवेस तथा सोलोमोन (1951) का कहना था कि प्रत्यक्षज्ञानात्मक पहचान सीमा का संबंध दिन-प्रतिदिन के शब्दों के प्रयोग की बारंबारता से धनात्मक होता है। उच्च मूल्य श्रेणी के शब्दों को व्यक्ति अपने दिन प्रतिदिन की भाषा में अधिक प्रयोग करता है अर्थात ऐसे शब्दों के प्रयोग की बारंबारता अधिक होती है। इस अधिक बारबारता के कारण जब ऐसे शब्दों को टेचिस्टोस्कोप से दिखलाया जाता है, तो प्रयोज्य स्वभावतः कम समय में ही इसका सही

प्रत्यक्षण कर लेता है। अतः ऐसे शब्दों के प्रत्यक्षज्ञानात्मक पहचान सीमा के कम होने के कारण उच्च मान श्रेणी से संबंधित होना नहीं है। यदि थोड़े देर के लिए यह स्वीकार भी कर लिया जाय कि पहचान सीमा के कम होने का कारण उच्च मान श्रेणी है तो पोस्टमैन, ब्रूनर तथा मैकगिनिज के प्रयोग में उच्च मान श्रेणी के शब्दों को दिन-प्रतिदिन की भाषा में प्रयोग किये जाने की उच्चतर बांरबारता से उसे कैसे बचाया गया, स्पष्ट नहीं है।

4. यदि किसी वस्तु का मान या मूल्य व्यक्ति के लिए अधिक होता है तो व्यक्ति उसका प्रत्यक्षण अधिक बढ़ा-चढ़ा कर करता है

यदि वस्तु का मान व्यक्ति के लिए अधिक है, तो व्यक्ति उस वस्तु का प्रत्यक्षण अधिक बढ़ा-चढ़ा कर करता है। इसे साबित करने के लिए ब्रूनर तथा गुडमैन (1947) ने प्रयोग किये हैं जिनमें से एक प्रयोग अधिक उल्लेखनीय है। इस अध्ययन में उन्होंने 10 बच्चों के दो समूह तैयार किये। एक समूह में सभी धनी परिवार के बच्चे थे तथा दूसरे समूह में गरीब परिवार के बच्चे थे। इन दोनों समूह के बच्चों को 1, 5, 10, 20, 25 तथा 50 सेन्टस के सिक्के के आकार का आकलन एक रोशनी प्रोजेक्टर द्वारा करने को कहा गया। रोशनी प्रोजेक्टर द्वारा परदे पर सिक्के के आकार की गोल रोशनी पड़ती थी जिसे प्रोजेक्टर के नाव को घुमा कर छोटा या बड़ा किया जा सकता था। परिणाम में देखा गया कि गरीब परिवार के सभी बच्चों ने सभी प्रकार के सिक्कों के आकार का अधिप्राक्कलन किया जबकि धनी परिवार के बच्चों द्वारा इन सिक्कों के आकार का न्यून प्राक्कलन किया गया ब्रूनर तथा गुडमैन के अनुसार ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि धनी परिवार के बच्चों के लिए इन सिक्कों का मान या महत्व कम था जबकि गरीब परिवार के बच्चों के लिए इन सिक्कों का मान या महत्त्व अधिक था। इसी तरह का एक दूसरा प्रयोग भी ब्रूनर को भिन्न-भिन्न सिक्कों को देकर नहीं बल्कि इसके बारे में अपने मन में कल्पना कर उसके आकार को रोशनी प्रोजेक्टर द्वारा आकलन करने के लिए कहा गया। इस प्रयोग के परिणाम भी पहले ही जैसे थे। धनी परिवार के बच्चों द्वारा सिक्कों का न्यून प्राक्कलन तथा गरीब परिवार के बच्चों द्वारा अधिप्राक्कलन किया गया।

5. व्यक्ति अपने शीलगुणों के अनुकूल वस्तु या उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है।

प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुण होते हैं और जब वह किसी वस्तु या उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है तो इन शीलगुणों का उस पर काफी प्रभाव पड़ता है। आलपोर्ट (1955) के अनुसार बहिर्मुखता तथा अतर्मुखता का शीलगुण अधिक होने पर व्यक्ति को यदि स्याही धब्बा परीक्षण के कार्ड दिखलाए जाते है, तो उसमें वह गति का प्रत्यक्षण अधिक करता है। क्लिन तथा स्केलेसिंगर (1950) ने एक प्रयोग किया जिसमें यह दिखलाया गया है कि जब प्रयोज्य में दृढता या लचीलापन का शीलगुण होता है और जब ऐसे प्रयोज्य को उद्दीपक का आकार या भार के बारे में सही-सही प्रत्यक्षण कर बतलाने के लिए कहा जाता है, तो ऐसी अवस्था में वे प्रायः सही प्रत्यक्षण नहीं कर पाते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि दृढ़ता का शीलगुण होने पर करीब-करीब एक ही तरह के निर्णय पर अडिग रहते हैं तथा यदि उनमें लचीलापन का शीलगुण होता है और जब ऐसे प्रयोज्य को उद्दीपक का आकार या भार के बारे में सही-सही प्रत्यक्षण कर बतलाने के लिए कहा जाता है, तो

ऐसी अवस्था में वे प्रायः सही प्रत्यक्षण नहीं कर पाते है। प्रायः यह देखा गया है कि दृढ़ता का शीलगुण होने पर वे करीब-करीब एक ही तरह के निर्णय पर अंडिग रहते है तथा यदि उनमें लचीलापन का शीलगुण अधिक हुआ तो उनका निर्णय इतना जल्द परिवर्तित होता है कि उसमें किसी प्रकार की संगति नहीं रह जाती है। कैटेल तथा वेनिंग (1952) ने एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने पाया कि दुश्चिता तथा प्रभुत्व का शीलगुण अधिक होने से व्यक्ति में स्वप्नचित्र जो एक प्रकार का अनुपयुक्त प्रत्यक्षण है, अधिक होता है। उसी तरह जिस व्यक्ति में पराहं शक्ति अधिक होता है, उसमें तर्कबुद्धिपरकता की प्रक्रिया अधिक होती है।

6. शाब्दिक उद्दीपक जिनका स्वरूप सांवेगिक एवं धमकाने वाला होता है, का प्रत्यक्षण तटस्थ उद्दीपकों की अपेक्षा व्यक्ति देरी से करता है तथा साथ ही ऐसे शब्द व्यक्ति द्वारा सही-सही पहचाने जाने के पहले ही उनमें सांवेगिक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देता है।

निदेश अवस्था सिद्धान्त का यह एक प्रमुख प्राक्कल्पना है जिसे मैकगिन्निज (1949) मैकक्लियरली तथा लैजारस (1950) ने प्रयोग करके सही बतलाया है। मैकगिन्निज (1949) के प्रयोग में 18 शब्दों की सूची तैयार की गयी जिसमें से 11 तटस्थ शब्द जैसे किताब, आकाश, शिक्षक आदि थे तथा 7 सांवेगिक शब्द जैसे 'रण्डी' बलात्कार आदि थे। इन सभी शब्दों को एक-एक करक टैचिस्टोस्कोप द्वारा .01 सेकेण्ड की अवधि से प्रारंभ करके तब तक दिखाया जाता रहा जब तक कि उनका सही प्रत्यक्षण प्रयोज्य द्वारा नहीं कर लिया जाता था। प्रत्येक शब्द दिखलाने के बाद प्रयोज्य की हथेली पर लगे एल्केट्रोड के सहारे Galvanic skin response भी रिकार्ड किया गया। परिणाम ऊपर की प्राक्कल्पना के अनुकूल था। सांवेगिक शब्दों का सही-सही प्रत्यक्षण करने में प्रयोज्य ने तटस्थ शब्दों की गयी अपेक्षा अधिक समय लिया तथा सांवेगिक शब्दों के तटस्थ शब्दों की अपेक्षा अधिक था। मैकक्लियली तथा लैजारम (1950) ने इसी तरह का प्रयोग करके जिसमें उन्होंने सार्थक शब्दों की जगह पर पाँच अक्षरों के निरर्थक पदों का उपयोग किया, मैकगिन्निज के परिणाम का समर्थन किया है।

होवेस तथा सोलोमोन (1950) ने मैकगिन्निज के प्रयोग को दो कारकों के आधार पर आलोचना किया है। पहली आलोचना यह है कि मैकगिन्निज ने जिन शब्दों को प्रयोज्य को दिखलाया था, वे सभी समान रूप रे सदिन प्रतिदिन के प्रयोग में नहीं आते है। सच्चाई यह है कि सांवेगिक शब्दों का उपयोग दिन-प्रतिदिन की भाषा में तटस्थ शब्दों की अपेक्षा कम होता है। सच्चाई यह है कि सांवेगिक के अनुसार प्रयोज्य सांवेगिक शब्दों का सही-सही प्रत्यक्षण करने में इसलिए अधिक समय लेता था क्योंकि इन शब्दों का उपयोग दिन-प्रतिदिन की भाषा में काफी कम होता था। इन लोगों की दूसरी आलोचना यह थी कि सचमुच में तटस्थ शब्दों एवं सांवेगिक शब्दों के प्रत्यक्षण में प्रयोज्य को बराबर-बराबर ही समय लगता था परन्तु चूँकि सांवेगिक शब्दों का स्वरूप ही कुछ परेशान कर देने वाला होता है, अतः प्रयोज्य जान बूझकर इन शब्दों के बारे में देर से बोलता था। इसलिए सांवेगिक शब्दों का प्रत्यक्षण करने में नहीं बल्कि उसके बारे में बोलने में या बतलाने में देरी होने के कारण समय अधिक लगता था। कुछ मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि सांवेगिक शब्दों के प्रत्यक्षण के बारे में बतलाने की प्रक्रिया पर प्रयोगकर्ता के यौन का भी प्रभाव खासकर उस समय पड़ता है जब प्रयोगकत्र्ता तथा प्रयोज्य विपरीत यौन के होते है।

ऊपर वर्णन किये गये तथ्यों की विवेचना को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यद्यपि निदेश-अवस्था सिद्धान्त के सभी प्राक्कल्पनाओं की आलोचना की गयी है तथा इन आलोचनाओं के समर्थन में कुछ प्रयोगात्मक सबूत भी दिये गये हैं, फिर भी इस सिद्धान्त की मान्यता मनोवैज्ञानिकों के बीच काफी है। इस सिद्धान्त द्वारा प्रत्यक्षण में व्यवहारपूरक कारक या प्रेरणात्मक कारक के महत्व को काफी समर्थन मिला है।

(स) प्रत्यक्षण का दैहिक उपागम या सिद्धान्त

इस आगम में सभी तरह के प्रत्यक्षणात्मक अनुभूतियों की व्याख्या न्यूरोदैहिक प्रक्रम के रूप में की जाती है। इस उपागम की प्रमुख मान्यता है कि जब कोई उद्दीपक में व्यक्ति का ज्ञानेन्द्रिया प्रभावित होती है तो उसमें तंत्रिका आवेग उत्पन्न होता है जो उसे मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्र में पहुचता है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को उसका प्रत्यक्षण होता है। ज्ञानेन्द्रियों से लेकर मस्तिष्क तक होने वाले प्रक्रिया को न्यूरोदैहिक प्रक्रम कहा जाता है।

हेब्स का मत है कि केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र के विशेष क्षेत्र के कोशिका के उत्तेजित होने की प्रक्रिया पर प्रत्यक्षण निर्भर करता है। जब तक उस विशेष कोशिका में उतेजन नहीं होगा, प्रत्यक्षा नहीं होगा।

हेब का मत है कि केन्द्रीय तंत्रिका तंत्रके विशेष क्षेत्र की कोशिका के उत्तेजित होने की प्रक्रिया पर प्रत्यक्षण निर्भर करता है। जब तक उस विशेष कोशिका में उत्तेजन नहीं होगा, प्रत्यक्षण नहीं होगा, हेब का यह विचार लैशले के समअन्तः शक्ति नियम के विरूद्ध है क्योंकि यह नियम यह बतलाता है कि एक क्षेत्र के कोई विशेष कोशिका नहीं बल्कि सभी कोशिकाएँ एक साथ उत्तजित हो जाती हैं क्योंकि उनमें अनुक्रिया उत्पन्न करने की अन्तः शक्ति लगभग एक समान होती है। गेस्टाल्टवादियों का मत है कि प्रत्यक्षज्ञाणात्मक अनुभूति जन्मजात होती है तथा इसके पक्ष में उन्होने यह दावा किया है कि किसी आकृति की मूल एकता का प्रत्यक्षण उन व्यक्तियों या प्राणियों द्वारा भी आसानी से कर लिया जाता है जो जन्म से किसी कारण से अन्धे रहे होते हैं। इस सिलसिले में गेस्टल्टवादियों ने भान सेन्डन (1932) तथा रिसेन (1947) द्वारा किए गए प्रयोगात्मक सबूतों का उदाहरण दिया है। भान सेन्डन के अध्ययन में पाया गया के व्यक्ति जो जन्म से मोतियाबिन्द के कारण नहीं देख पाये थे; आपरेशन के बाद जब उत्पीडन प्रथम बार देखना प्रारंभ्ज्ञ किया तो वे लोग दो आकृतियों के बीच में विशेष प्रयास करने पर भी विभेदित नहीं कर पाये परंतु उन आकृतियों को स्पर्ष कर विभेदित कर लेते थे। हेब का यह भी मत था कि ऐसे सामान्य प्राणी का जिन्हे जन्म में ही हेब का यह भी मत था कि ऐसे मनुष्य या पशु को प्रशिक्षण की जितनी आवश्यकता होती है, उतनी आवश्यकता सामान्य पशु या मनुष्य को नहीं होता है। इन्होने यह बतलाया कि ऐसे प्राणी को सही दिशा में आँख गति करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और तभी साहेब के दृष्टिकोण में सही एवं स्पष्ट प्रत्यक्षण के लिए प्राणी को पर्याप्त प्रशिक्षण देना भी अनिवार्य है।

हेब्ब के उपागम में प्रत्यक्षज्ञाणात्मक प्रक्रिया में गत अनुभूति या सीखना या प्रशिक्षण अनिवार्य है कि इसलिए एक 'द्वैध चिह्न प्रक्रम' के संप्रत्यय के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। दुध चिह्न प्रक्रम से तात्पर्य एक ऐसा प्रक्रम से होता है जिसके प्रभाव से मस्तिष्क में लघु अवधि के लिए उत्पन्न गुजायमान कम्पन या दौरा तंत्रिका कोशिकाओं के बीच उतने समय तक आपस में संबंध बनाये रखते हैं जितने समय तक उनमें एक स्थायी साहचर्य स्थापित हो सके। इस स्थायी की व्याख्या इस प्रकार की गयी है। जब कोशिका का एक्सान कोशिका व बार-बार उत्तेजित कर पाता है, तो इससे किसी

एक कोशिका या दोनों कोशिकाओं में चयापचयी परिवर्तन इस तरह का होता है कि कोशिका अ में कोशिका ब को उत्तेजित करने की क्षमता में अपने आप वृद्धि हो जाती है। चूँकि प्रत्यक्षण को एक साहचर्यवादी तंत्रिकीय प्रक्रिया माना गया है, जिनमें प्रशिक्षण या सीखना भी सम्मिलित होता है, हेब्ब का मत है कि इस तरह का कार्टिकल संगठन या कोश संग्रहण सिर्फ दृष्टि क्षेत्र ब्रोका क्षेत्र संख्या 17) में ही नहीं होता है बल्कि इसके इर्द गिर्द के क्षेत्र अर्थात क्षेत्र संख्या 18, 19, 20 आदि में भी होते पाया जाता है। हेब्ब ने यह स्पष्टतः दिखलाया है कि ब्रोका क्षेत्र संख्या 17 में उत्पन्न उत्तेजना अगल-बगल के क्षेत्रों में तंत्रकीय संबंधों के साथ संयोजित हो जाते हैं। इस तरह से न्यूरोन या तंत्रिका कोशों का एक समूह आपस में कार्यात्मक रूप से संगठित हो जाता है, और इस तरह से न्यूरोन या तंत्रिका कोशों का एक समूह आपस में कार्यात्मक रूप से संगठित हो जाता है, और इस तरह के संगठन को कोशिका संग्रहण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, कोशिका संग्रहण एक ऐसा अन्तर संबंध तंत्रकीय पैकेज है जो बाह्य उद्दीपक, आंतरिक उद्दीपक या इन दोनों के संयोग से उत्तेजित होता है। हेब के अनुसार कोशिका संग्रहण के अभाव से किसी प्रकार का प्रत्यक्षण का एक दैहिक आधार भी है।

कोशिका संग्रहण का बड़ा या छोटा होना इस बात पर निर्भर करता है कि उसके द्वारा किस तरह के पर्यावरणी उद्दीपक का प्रतिनिधित्व हो रहा है। जैसे, एक 'दरवाजा' के प्रत्यक्षण से संबंधित कोशिका संग्रहण छोटा होगा परंतु पूरे 'मकान' के प्रत्यक्षण से संबंधित कोशिका संग्रहण का आकार बड़ा होगा क्योकि दरवाजा के प्रत्यक्षण से बनने वाले कोशिका संग्रहण में उत्तेजित न्यूरोन की संख्या कम होगी परंतु पूरे मकान के प्रत्यक्षण से बनने वाले कोशिका संग्रहण में उत्तेजित न्यूरोन की संख्या अधिक होगी।

हेब्ब के उपागम में प्रत्यक्षण की जो व्याख्या की गयी है, उसका दूसरा महत्वपूर्ण, पहलू अवस्था क्रम है। जिस तरह से एक ही वस्तु के विभिन्न पहलू आपस में तंत्रकीय रूप से संबंधित होकर कोशिका संग्रहण का निर्माण करते है, उसी तरह कई कोशिका संग्रहण तंत्रकीय रूप से आपस में मिलकर अवस्था क्रम निर्माण करते है। हेब्ब' (1959) के शब्दों में अवस्था क्रम को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, ''अवस्था क्रम संग्रहण क्रियाओं का एक अस्थायी रूप से संगठित क्रम होता है। यह चिन्तन सरिता में प्रवाह के समान होता है।'' अवस्था क्रम संग्रहण क्रियाओं का एक अस्थायी रूप से संगठित क्रम होता है। यह चिन्तन सरिता में प्रवाह के समान होता है।'' एक बार जब अवस्था क्रम का निर्माण हो जाता है, तो वह ब्राह्य, उद्दीपक, आन्तरिक उद्दीपक या दोनों ही तरह के उद्दीपकों के संयोग से उत्तेजित हो सकता है। जब किसी अवस्था क्रम का एक कोशिका संग्रहण या कई कोशिका संग्रहण उत्तेजित होता है तो इससे व्यक्ति में चिन्तन सरिता का अनुभव होता है अर्थात उसके मन में कई विचार एक तार्किक कार्यक्रम में आना प्रारंभ हो जाते है।

यदि हम हेब्ब द्वारा प्रतिपादित उपागम की तुलना गेस्टाल्ट उपागम से करें तो यह स्पष्ट होगा कि निम्नांकित दो बिन्दुएँ ऐसी हैं जिन पर हेब उपागम की श्रेष्ठता बनी हुई है -

1) हेब्ब उपागम में इस बात पर अधिक बल डाला जाता है कि व्यक्ति क्या प्रत्यक्षण कर रहा है।

2) हेब्ब उपागम में प्रत्यक्षण में गत अनुभूतियों तथा सीखने के महत्व पर पर्याप्त बल दिया गया है।

इनके बावजूद इस उपागम में कुछ दोष हैं जो निम्नांकित हैं-

1) हेब्ब उपागम की मान्यताएँ इतनी अस्पष्ट तथा दैहिक है कि उनके लिए प्रयोगात्मक सबूत इकट्ठा करके उसकी स्थिति को मजबूत करना मनोवैज्ञानिको के लिए अब तक संभव नहीं हो पाया है।

2) हेब्ब उपागम में वही अवगुण है जो कुछ हद तक गेस्टाल्ट उपागम में है। दूसरे शब्दों में, हेब्ब द्वारा प्रतिपादित उपागम में सम्पूर्ण अंश संभ्रान्ति व्याप्त है। हेब ने अपने सिद्धान्त में यह कहा है कि टी का प्रत्यक्षण (सम्पूर्ण प्रत्यक्षण) एक तरह का नया श्रेष्ठ तंत्र है न कि वस्तुओं के विभिन्न अंशों के प्रत्यक्षण का योग है। परंतु उनकी व्याख्या से पता चलता है कि टी वास्तव में वस्तुओं के अंशों के प्रत्यक्षण का योग ही है।

3) कुछ आलोचकों का मत है कि हेब्ब के उपागम में कोशिका संग्रहण तथा अवस्था कम के जो संप्रत्यय है, वे अस्पष्ट हैं तथा इनका स्पष्ट दैहिक आधार मानव वल्कल में नहीं मिलता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद हेब्ब का दैहिक उपागम बाद के मनोवैज्ञानिकों के लिए जो प्रत्यक्षण के कार्य करना चाहते थे, एक मुख्य प्रेरणा स्त्रोत साबित हुआ है।

(द) गिब्सन का उपागम (Gibson Theory)

गिब्सेनियम उपागम में जे. जे. गिब्सन का मत है कि पर्यावरण के उद्दीपक में पर्याप्त सुचनाएँ मौजुद होती है। अतः प्रत्यक्षण में वस्तुओं के गुणे या विशेषताओं पर व्यक्ति को अधिक ध्यान देना चाहिये ताकि यह आसानी से निश्चित किया जा सके कि प्रत्यक्षण के लिये वस्तु की कौनसी विशेषता अधिक महत्वपूर्ण है। अतः इस सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि प्रत्यक्षण का निर्धारण प्रत्यक्षणकर्ता के गुणों के आधार पर न होकर वस्तु जिसका प्रत्यक्षण व्यक्ति सीधे करता है के गुणों या विशेषताओं के आधार पर होता है यही कारण है कि गिब्सन के प्रत्यक्ष सिद्धान्त को प्रत्यक्षण का प्रत्यक्ष सिद्धान्त कहा जाता है।

अतः प्रत्यक्षण के बारे में गिब्सन द्वारा प्रतिपादित विचारों को साराशं में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है -

- प्रत्यक्षण का स्वरूप सरल एवं प्रत्यक्ष होता है।
- सभी प्रकार के प्रत्यक्ष का आधार उद्दीपक की विशेषता होती है।
- प्रत्यक्षण में प्रत्यक्षणकर्ता से संबंधित चरों का जैसे उसकी आवश्यकता अभिप्रेरणा, अभिरूचि आदि का कोई महत्व नहीं होता।

इन सभी गिब्सन के सिद्धान्त में कुछ परिसिमाए है जो इस प्रकार है-

1) गिब्सन ने प्रत्यक्षण की व्याख्या करने के लिए स्थापित एवं सत्यापित शब्दों तथा संप्रत्ययों का उपयोग नहीं करके कुछ विशिष्ट प्रकार के शब्दों तथा सप्रत्ययों को विकसित किया है जिसे आम लोगों के लिए समझना मुश्किल है।

2) गिब्सन सिद्धान्त के लिए प्रस्तावित आनुभाविक समर्थन का स्वरूप मिश्रित है। कुछ अध्ययनों के परिणाम से गिब्सन के निष्कर्ष को समर्थन मिलता है जबकि कुछ अध्ययनों के

परिणाम से इनके निष्कर्ष का विरोध है। जैसे लारिस एवं फ्लैक (1970) द्वारा किये गये प्रयोग के परिणाम से गिब्सन के सिद्धान्त को समर्थन मिलता है जबकि टॉय (1986) द्वारा किये गये प्रयोग के परिणाम से इस सिद्धान्त को समर्थन नहीं मिला।

3) गोल्डस्टोन (1984) ने यह बतलाया है, कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती है जिसमें गठन प्रवणता का पता लगाना काफी कठिन होता है।

4) कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि गिब्सन का कार्य को एक पर्याप्तता विश्लेषण माना जा सकता है जिसमें यह तो पता चलता है कि किस तरह से किसी चीज को किया जा सकता है परंतु यह नहीं पता चलता हैं कि वह किस तरह से पूरा किया जाता है। जैसे गिब्सन का सिद्धान्त यह तो कहता है कि व्यक्ति को गहराई प्रत्यक्षण गति के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से होता है परंतु इससे यह व्याख्या नहीं होती है कि गतिरहित होने पर गहराई का प्रत्यक्षण समाप्त क्यो नहीं हो जाता है।

5) मार्र ने अपने सिद्धान्त में जिन निश्चरों को प्रस्तावित किया, उनके उपयोग एवं पहचान में होने वाले कठिनाइयों को जान-बुझकर कम महत्व दिया जाता है।

6) हेफ्ट (1982) तथा हिल (1979) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि गिब्सन ने अपने सिद्धान्त में मूल्य संसाधन प्रक्रिया वास्तव में ऐसा नहीं है, प्रत्यक्षणीय स्थान के प्रदर्शन के बारे में जब भी व्यक्ति जानने की कोशिश करता है तो उसमें मूल्य संसाधन की प्रक्रिया कुछ सीमा तक ही होती है।

इन परिसीमाओं या समस्याओं के बावजूद गिब्सन का यह प्रत्यक्ष सिद्धान्त जो पारिस्थिति संदर्भ पर अधिक प्रकाश डालता है, आज संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकां के बीच एक प्रसिद्ध सिद्धान्त हैं।

(य) सूचना संसाधन उपागम (Information Processing Theory)

प्रत्यक्षा के इस उपागम का प्रतिपादन उन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया जिनकी अभिरूचि कम्प्यूटर तथा संचार विज्ञान में ज्यादा रही।

इस उपागम में प्रत्यक्षण की व्याख्या ब्राहा वातावरण या उद्दीपकों से प्राप्त सूचनाओं को विभिन्न स्तर पर संसाधित करके किया जाता है। सूचना से तात्पर्य ऐसी चीज से होती है जिसके प्राप्त होने से व्यक्ति के मन में उद्दीपक के बारे में बनी अनिश्चितता दूर हो जाती है।

सूचना संसाधन उपागम की यह मान्यता है कि व्यक्ति की प्रत्यक्षण क्षमता सीमित होती है। अतः कोई व्यक्ति बहुत सोर उद्दीपकों में से कुछ का ही प्रत्यक्षण कर पाता है। अगर व्यक्ति किसी एक रचना पर ध्यान देता है तो दूसरे तरह की सूचनाओं को छोडना पडता है। प्रत्यक्षणकर्ता में किसी भी सूचना का प्रवाह कई चरणों में सम्पन्न होता है।

सूचना संसाधन उपागम की यह मान्यता है कि व्यक्ति का प्रत्यक्षण क्षमता सीमित होती है। अतः कोई व्यक्ति बहुत सारे उद्दीपकों में से सीमित उद्दीपकां का ही प्रत्यक्षण कर पाता है। अगर व्यक्ति किसी एक सूचना पर ध्यान देता है तो उसे दूसरे तरह की सूचना को छोड़ना ही पड़ता है। प्रत्यक्षणकर्ता में किसी भी सूचना की प्रवाह कई चरणों में सम्पन्न होती है जिसका वर्णन निम्नांकित हैं-

(1) उद्दीपक व्यक्ति के सामने कोई उद्दीपक उपस्थित होता है जो व्यक्ति के संवेदी ग्राहक को प्रभावित करता है।

(2) संवेदी ग्राहक

उद्दीपक व्यक्ति के संवेदी ग्राहक अर्थात आँख, कान, नाक, आदि को प्रभावित करता है जिससे सूचनाएँ केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में पहुँचती हैं।

(3) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र

केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र उन सूचनाओं को ग्रहण करता है ऐसी सूचनाएँ वहाँ पहले से उपस्थित सूचनाओं से प्रभावित होती है। पहले से उपस्थित सूचनाओं को मनोवैज्ञानिक शोर उत्पन्न होता है।

(4) कार्टिकल मस्तिष्कीय केन्द्र

केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा ग्रहण की गई सूचनाओं को मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों द्वारा संसाधित किया जाता है।

(5) अनुक्रिया

अन्त में कार्टिकल मस्तिष्कीय केन्द्रों से प्राप्त सूचना के आधार पर व्यक्ति प्रत्यक्षण की अनुक्रिया ठीक ढंग से कर पाता है।

जिन मनोवैज्ञानिकों द्वारा सूचना संसाधन उपागम का समर्थन प्रदान किया गया है, उनका मानना है कि सूचनाओं का संसाधन कई अवस्थाओं में होता है। जैसे, इन मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्ति की संवेदी ग्राहकों से सूचनाएँ लघु संवेदी संचयन में प्रवेश करती है, उससे फिर वे लघु कालीन स्मृति में प्रवेश करती है और अन्त में दीर्घकालीन स्मृति में प्रवेश करती हैं। सूचना संसाधन के इस मॉडल का प्रतिपादन एटकिन्सन तथा शीफ्रिन (1968) द्वारा किया गया। इस मॉडल के अनुसार व्यक्ति तीन अवस्थाओं में संसाधित करते हुए सूचनाओं का प्रत्यक्षण करता है। सूचना संसाधन उपागम के अनुसार प्रत्यक्षण, संवेदन तथा अन्य उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएँ एक दूसरे अलग नहीं होती हैं बल्कि एक-दूसरे से अंतरसंबंधित है। इन सभी का अध्ययन एक ही तंत्र के भीतर किया जा सकता है। ये सभी एक-दूसरे पर निर्भर होते है। अतः उन्हें एक दूसरे से अलग करके अध्ययन करना उचित नहीं है। जब व्यक्ति का ज्ञानेन्द्रिय किसी उद्दीपक से प्रभावित होता है तो उससे संवेदन होता है फिर उसका संसाधन करने से व्यक्ति को प्रत्यक्षण होता है। प्रत्याक्षित उद्दीपकों या घटनाओं को संसाधित कर व्यक्ति उसे स्मृति में लाता है।

आलोचकों का मानना है कि सूचना संसाधन उपागम प्रत्यक्षण का एक प्रमाणीकृत सिद्धान्त नहीं है। एलुईसी (1970) तथा गारनर (1962) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि यह उपागम या सिद्धान्त मात्र एक वर्णनात्मक दृष्टिकोण है जिसके माध्यम से बहुत सारे असंबंध तथ्यों को संगठित या एकत्रित कर उन्हें अध्ययन करने में सहयोग मिलता है।

(र) व्यवहारवादी उपागम या सिद्धान्त (Behaviourist Theories)

व्यवहारवादी सिद्धान्त के अनुसार अन्य व्यवहारों के समान प्रत्यक्षण भी एक प्रकार का सीखा गया व्यवहार है। इस सिद्धान्त के मानने वालों का मत है कि प्रत्यक्षण पूर्ण रूपेण एक सीखा गया व्यवहार

होता है और जिन नियमों और सिद्धान्तों द्वारा अन्य व्यवहार निर्धारित होते है ठीक उन्ही नियमों एवं सिद्धान्तों द्वारा प्रत्यक्षण भी निर्धारित होता है जिस पर से कोई भी सीखा गया व्यवहार आदत रचना, सामान्यीकरण तथा अवरोध आदि के नियमों द्वारा निर्धारित होता है, उसी तरह से प्रत्यक्षण भी इन्ही नियमों से निर्धारित होता है।

व्यवहारवादियों में प्रमुख हल का मत था कि किसी खास समय में सभी संवेदी तत्रिका आवेग जो तंत्रिका तंत्र में सक्रिय होते है, एक दूसरे के साथ अतः क्रिया करते है और दुसरे को इस ढंग के परिवर्तित कर देते है कि उनका रूप सभी वर्तमान संवेदी आवेग से भिन्न हो जाता है।

9.5 प्रत्यक्षण को प्रभाविता करने वाले कारक (Factors Affeting Perception)

प्रत्यक्षण पर व्यक्ति की मानसिक वृत्ति, अभिप्रेरण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का काफी प्रभाव पडता है। अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से इन कारकों को निम्न भागों में विभाजित किया गया है-

(1) प्रत्यक्षण में व्यक्तिगत कारकों की भूमिका

(2) प्रत्यक्षण में सामाजिक कारकों की भूमिका

(3) प्रत्यक्षण में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका

प्रत्यक्षण में व्यक्तिगत कारकों की भूमिका

प्रत्यक्षण में प्रत्यक्षणकर्ता से संबंधित कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इन कारकों की तीक्षणता से व्यक्ति का प्रत्यक्षण स्पष्टतः प्रभावित होता है।

व्यक्तिगत कारकों में कई कारकों को सम्मिलित किया गया है परन्तु इनके प्रत्यक्षणकर्ता की आवश्यकता, प्रत्यक्षणकर्ता के लिये वस्तु का मूल्य, प्रत्यक्षणकर्ता का मूल्य तंत्र, व्यक्तिगत शीलगुण, मानसिक वृत्ति, वस्तु का प्रत्यक्षणकर्ता के लिये प्रतीकात्मक अर्थ आदि को प्रमुख माना गया है -

- शारीरिक आवश्यकता तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकता का प्रत्यक्षण प्राणी के अभिप्रेरण में भुख प्यास आदि शारीरिक आवश्यकताओं तथा उपलब्धि अभिप्रेरक एवं अन्य मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का प्रत्यक्षा पर सीधा प्रभाव पडता है। व्यक्ति अपनी इन्ही आवश्यकताओं के अनुरूप उद्दीपकों का प्रत्यक्षण करता है।

- प्रत्यक्षण किये जाने वाले वस्तुओं के मूल्यों का प्रभाव प्रत्यक्षण पर इस बात का भी प्रभाव पडता है कि व्यक्ति के लिये वस्तुओं या उद्दीपकों का मूल्य कितना है। अध्यक्षों के स्पष्ट हुआ है कि जिस वस्तु का मूल्य प्रत्यक्षणकर्ता के लिये अधिक होता है उसका आकार उसे बडा मालुम होता है।

- प्रत्यक्षण पर मानसिक वृत्ति का प्रभाव प्रत्यक्षण पर प्रत्यक्षणकर्ता के मानसिक वृति का भी प्रभाव पडता है। मानसिक वृति के तात्पर्य एक विशेष तरह की मानसिक तत्परता से है जिसे विशेष शाब्दिक उपदेश देकर उत्पन्न की जाती है।

- प्रत्यक्षण पर प्रतीकात्मक अर्थ का प्रभाव कुछ वस्तुओं का व्यक्ति के लिये अप्रकट अर्थ होता है जिसका स्वरूप व्यक्तिगत तथा प्रतीकात्मक होता है। वस्तुओं के प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्ति के लिये सामान्य अर्थ में हटकर कुछ दुसरी अर्थ की ओर इशारा करते है। वस्तुओं का यह प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्ति के लिये धनात्मक महत्व या निषेधात्मक महत्व भी रख सकता है और इससे व्यक्ति का प्रत्यक्ष काफी प्रभावित होता है।

9.6 प्रत्यक्षण में सामाजिक कारकों की भूमिका (Role of Social Factors in Perception)

ऐसे सामाजिक कारक जिनसे प्रत्यक्ष का प्रभाव पडता है निम्नांकित है -

- सामाजिक मनोवृति (Social Attitude) - खुशी का मनोवृति, आलोचना करने की मनोवृति तथा चिन्ता की मनोवृति आदि मनोवृतियों का प्रभाव प्रत्यक्षण पर पड़ता है।
- सामाजिक मानक प्रत्येक समाज के कुछ मानक या नियम होते है जिनसे व्यक्ति का प्रत्यक्षण प्रभावित होता है।
- सामाजिक सुझाव पारस्परिक सुझाव द्वारा किसी वस्तु का विशेषकर अस्पष्ट वस्तुओं का प्रत्यक्षण प्रभावित होता है।
- प्रचार नित वस्तु का अधिक प्रचार किया जाता है उन पर व्यक्ति का ध्यान तेजी से जाता है और व्यक्ति उनका प्रत्यक्षण भी जल्दी कर लेता है साथ ही वह प्रत्यक्ष भी उसी ढ़ग से करता है जैसा कि प्रचार किया गया है।

9.7 प्रत्यक्षण में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका (Role of Cultural Factors in Perception)

प्रत्यक्षण पर सांस्कृतिक अनुभूतियों के कारण व्यक्ति के कुछ खास तरह के भ्रम का प्रत्यक्षण अधिक होता है। अध्ययनों में स्पष्ट हुआ है कि पश्चिमी संस्कृति और अपश्चिमी संस्कृति के लोगों ने भ्रम की मात्रा तथा दिशा में अन्तर होता है अपश्चिमी संस्कृति में लोगों में कुछ खास तरह के भ्रम पश्चिमी संस्कृति के लोगों की तुलना में अधिक होते है ओर व्यक्ति उन्ही के अनुरूप प्रत्यक्षण करता है।

9.8 आकृति एवं पृष्ठभूमि प्रत्यक्षीकरण

दृष्टि प्रत्यक्षणीकरण में आकृति तथा पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण अधिक महत्वपूर्ण है। आकृति तथा पृष्ठभूमि संबंधी प्रक्रम प्रत्यक्षीकरण का सरलतम तथा आधारभुत प्रक्रम प्रत्यक्षीकरण का सरलतम तथा आधारभुत प्रक्रम है यह पाया गया कि प्रत्येक आकृति की कोई न कोई पृष्ठभूमि अवश्य होती है तथा दोनों एक दुसरे से संबंधित और साथ होते हुए भी भिन्न होती है।

रूबित ने आकृति और पृष्ठभूमि की गोपनीय विशेषताओं के निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त किये जो दृष्टि प्रत्यक्षीकरण के अतिरिक्त अन्य प्रकार के प्रत्यक्षीकरण के सम्बन्ध में भी सत्य प्रतीत होते है।

1 आकृति अधिक संरचित तथा रूपगुण वाली होती है जबकि पृष्ठभूमि आकृति की अपेक्षा कम संरचित, कम रूप गुणवाली कम स्पष्ट और संगठित होती है।

2 आकृति पृष्ठभूमि से उभरी हुई तथा पृष्ठभूमि आकृति के नीचे या पीछे फैली प्रतीत होती है।

3 प्रत्यक्षकत्र्ता को आकृति अधिक पास तथा पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत दूर प्रतीत होता है।

4 आकृति अधिक सजीव और प्रभावोत्पादक लगती है। जबकि पृष्ठभूमि इसकी तुलना में कम सजीव और कम प्रभावोत्पादक प्रतीत होती है। यही कारण है कि आकृति की स्मृति पृष्ठभूमि की अपेक्षा अधिक स्थायी है।

5 आकृति में वस्तु गुण अधिक मात्रा में पाये जाते है तथा पृष्ठभूमि में यह गुण अपेक्षाकृत मात्रा में पाया जाता है।

6 आकृति संरचना धरातल पृष्ठभूमि की अपेक्षा अधिक निश्चित होता है।

9.9 आकृति तथा पृष्ठभूमि पृथक्करण के निर्धारक(Determining factors in regard to Separation Background)

आकृति तथा पृष्ठभूमि के लिये आवश्यक है कि उद्दीपक क्षेत्र में भौतिक ऊर्जा का वितरण समजातिय न होकर रंग चमक व आकार आदि विशेषताओं के अन्तर हो। ऐसे ऊर्जा वितरण के समजातीय उद्दीपक क्षेत्र गैसफील्ड कहलाते है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि सजातीयता तत्व जब उद्दीपक क्षेत्र मं विद्यमान होता है तब आकृति तथा पृष्ठभूमि का अलग-अलग अनुभव नहीं होता है, कई बार प्रयोज्यो को रंगों के सत्य रंग का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता है परन्तु जब उद्दीपक की तीव्रता में अन्तर बढाया जाता है तब आकृति तथा पृष्ठभूमि में अन्तर स्पष्ट होने लगता है। फौगर्स ने उद्दीपक की विषमता पर बल देते हुए कहा कि ऊर्जा में निम्न चार विशेषताओं के आधार पर विषमता उत्पन्न की जा सकती है।

(1) तीव्रता (2) स्पैटियल विस्तार, (3) तरणों का गठन (4) समयगत क्रम।

एटाकिन्सन तथा एमोन्स ने अपने प्रयोग के माध्यम से स्पष्ट किया कि अभ्यास आकृति के प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है।

9.10 सारांश

प्रत्यक्षण एक मानसिक प्रक्रिया है। यह एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया भी है। प्रत्यक्षपरक क्रियाओं में वह सभी प्रक्रियाएं सम्मिलित है जिसका संबंध ज्ञानेन्द्रियों पर पडने वाली उद्दीपक ऊर्जा को, उद्दीपन की अनुक्रिया को तथा इस उद्दीपक की समाप्ति तक न मिटने वाली स्मृति को सूचना देने वाले अनुभवों के रूप में अनुवादित या व्याख्या करता है। प्रत्यक्षण के लिए उद्दीपक का होना अनिवार्य है। प्रत्यक्षण हमेशा किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति का होता है। प्रत्यक्षण में उद्दीपक का तात्कालिक अनुभव होता है।

9.11 मूल्यांकन प्रश्न

1 प्रत्यक्षण किसे कहते है।

2 आकृति तथा पृष्ठभूमि पृथक्करण के निर्धारक तत्वों का उल्लेख कीजिए।

3 प्रत्यक्षण में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

4 प्रत्यक्षण के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

5 प्रत्यक्षण की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

9.12 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- डी. अमेटो (1979) एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी, टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।
- राजमनिक्कम, एम. (2000), मार्डन साइकोफिजिकल एण्ड स्केलिंग मेथडर्स एण्ड एक्सपेरियमेन्टेशन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (1999), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्री वास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस. तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपरीमेंटल साइकोलॉजी, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

इकाई - 10

गहराई प्रत्यक्षीकरण एवं पैटर्न प्रत्यभिज्ञान

Depth Perception & Pattern Recognition

इकाई की रूपरेखा

10.1 गहराई प्रत्यक्षीकरण की उत्पति

10.2 गहराई प्रत्यक्षण के जन्मजात होने के पक्ष में किये गये प्रयोग

10.3 गहराई व दूरी प्रत्यक्षण के सिद्धान्त

10.3.1 अनुभववादी सिद्धान्त

10.3.2 गिब्सोनियमत सिद्धान्त

10.4 गहराई तथा दूरी का प्रत्यक्षण: तीसरी विमा

10.4.1 एकनेत्री संकेत तथा

10.4.2 द्विनेत्रीय संकेत

10.5 पैटर्न प्रत्यभिज्ञान

(क) विशिष्ट विशेष सिद्धान्त

(ख) प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त

10.6 ऊपरी-निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतक्रिया

10.7 प्रत्यक्षीकरण मं स्थैर्य

10.8 आकार स्थैर्य

10.9 रूप स्थैर्य

10.10 चमक तथा रंग स्थैर्य

10.11 स्थिरता अस्थिरता विरोधाभास

10.12 प्रत्यक्षणज्ञानात्मक स्थिरता का महत्वपूर्ण सामान्यीकरण

10.13 गहराई प्रत्यक्षीकरण एवं पैटर्न प्रत्यभिज्ञान

10-14 सारांश

10.16 निबंधात्मक प्रश्न

10.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 गहराई प्रत्यक्षीकरण की उत्पति (The Origin of Depth Perception)

गहराई प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धित एक प्रश्न के कारण मनोवैज्ञानिकों के मध्य काफी वाद विवाद रखा है कि क्या गहराई प्रत्यक्षण जन्मजात होता है या व्यक्ति इसे अनुभूति से सीखता है। इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं है मूल रूप से यह कहा जा सकता है कि गहराई प्रत्यक्षीकरण के जन्मजात तथा अर्जित होने के पक्ष एवं विपक्ष में मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न शोध करके सिद्ध करने की कोशिश है यहाँ पर सर्वप्रथम दोनों पक्षों को सिद्ध करने के लिए विभिन्न प्रयोगों को प्रस्तुत किया गया है।

10.2 गहराई प्रत्यक्षण के जन्मजात होने के पक्ष में किये गये प्रयोग

हर्षबर्गर ने एक प्रयोग बताया कि चूजों को एक ऐसे वातावरण में रख कर पाला पोषा गया जिसमे रोशनी हमेशा नीचे से ऊपर की ओर जाती है इस तरह के वातावरण को सामान्य यही कहा जा सकता क्योकि सामान्यतः रोशनी ऊपर से नीचे की तरफ आती है इन चूजों को एल्यूमिनियम प्लेट पर बने उच्छलन एवं पिचक के मध्य अन्तर करना सीखाया, कुछ चूजों को उच्छालन पर चोच मारने पर भोजन दिया जाता था इसके विपरित कुछ चूजों को पिचक पर चोंच मारने पर भोजन दिया जाता था। इस बता की पूरी सावधानी रखी गई कि उच्छालन या पिचक पर कोई छाया नहीं बन पाये। इस तरह से उन्हे विशिष्ट संकेतों से विचलित रखा गया तत्पश्चायत् उच्छलन या पिचक का फोटोकाॅपी दिखाकर इस बात की जांच कि गई कि वे किस पर चोचं मारते है। इस जांच की प्रक्रिया में कभी रोशनी ऊपर से तथा कभी रोशनी नीचे की ओर दी गई परिणाम में यह पाया गया कि फोटो देखकर भी उनके प्रतिक्रिया पूर्व में सीखी गई प्रतिक्रियाओं के समान थी प्रयोग के इस परिणाम से स्पष्ट है कि चूजों में गहराई प्रत्यक्षण जन्मजात होता है। कुछ अध्ययन गिब्सन (1969), एक वाॅक (1960) ने दृष्टि मृगु उपकरण द्वारा गहराई प्रत्यक्षण में जन्मजात कारकों के महत्व को दिखाया गया इसी क्रम में केम्पोस, लैन्गर एवं क्रोबिज (1970) ने मानव शिशुलों पर अध्ययन कर यह बताया कि जब बच्चे गहराई की तरफ बढते है तो उनकी ह्रदयगति में परिवर्तन होता है। जो यह सिद्ध करता है कि उस उम्र में भी गहराई का प्रत्यक्षीकरण सम्भव है पेटरिंग (1981) ने स्टिरियोस्टोपिक गहराई प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धि प्रयोगों से यह सिद्ध किया कि गहराई प्रत्यक्षण जन्मजात होता है।

(ब) गहराई प्रत्यक्षण के अर्जित होने के पत्र में किए गए प्रयोग गहराई प्रत्यक्षण में अनुभव तथा अधिगम के महत्व को बताते हुए मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न प्रयोग किए ही मिटचेल (1981), टीस एवं मिडग्ले (1978) तथा वाक एवं गिब्सन (1961) ने प्रयोगों के आधार पर यह बताया कि प्रांरभिक जीवन में रोहानी से वंचित यहां दृष्टि भृगु के गहराई वाले भाग की ओर जाने से अपने से रोक नहीं पाते है पहुलओं में सामान्य बचाव प्रतिक्रिया की शुरूआत तब होती थी जब उन्हे गहराई का अनुभव हो जाता था। वालेक, ओकोनेल एवं बाइसर ने प्रत्यक्षण में अनुभूति के महत्व को दिखलाने के लिए एक प्रयोग किया जिसमें तार से बनी एक आकृति का उपयोग किया गया आंरभ में प्रयोज्यों में आकृति की द्विविनिय बताया तत्पश्चात आकृति को परभासी पर्दे के पीछे रखकर घुमाया गया ताकि पर्दे पर पडने वाली छाया का आकार बदल जाए प्रयोज्यों ने गहराई का प्रत्यक्षण किया तत्पश्चात प्रयोज्यों को पर्दे के सामने की ओर से पुनः तार की आकृति को दिखाया, इस क्रम में अब उन्होने आकृति को त्रिगिनिय प्रत्यक्षण किया इसे गतिक गहराई प्रभाव कहा जाता है उक्त अध्ययन से

यह स्पष्ट हो जाता है कि गहराई युक्त प्रत्यक्षण का अनुभव होने से व्यक्ति किसी वस्तु का त्रिटिमिय प्रत्यक्षण करता है।

उपरोक्त प्रयोगों को देखने पर यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि गहराई प्रत्यक्षण की क्षमता जन्मजात तथा अर्जित दोनों प्रकार की होती है।

10.3 गहराई व दूरी प्रत्यक्षण के सिद्धान्त (Theories of Depth & Distance Perception)

गहराई व दूरी प्रत्यक्षण की वैज्ञानिक व्याख्या करने के लिए दो प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

1. अनुभववादी सिद्धान्त
2. गिब्सोनियमत सिद्धान्त

1. अनुभववादी सिद्धान्त (Empiricist Theory)

हम सिद्धान्त की मुख्य मान्यता यह है कि सभी तरह की सूचनाएँ संवेदी प्रत्यक्षण तथा अनुभूतियों से प्राप्त होता है। व्यक्ति को जन्म से गहराई का प्रत्यक्षण नहीं होता वरन् अनुभव व अधिगम द्वारा गहराई का प्रत्यक्षण होता है।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्र्रथम जार्ज वर्केली (1709) द्वारा किया गया वर्केती के मतानुसार व्यक्ति दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण अपने अनुभूति एवं पूर्व परीक्षण के आधार पर करता है। विशेष रूप से व्यक्ति गहराई व दूरी के विभिन्न संकेतो को दूरी के बारे में उपलब्ध गति बोधक सूचनाओं के साथ संबंधित करना सीखता है जिसके कारण व्यक्ति को दूरी का प्रत्यक्षण होता है यहाँ गति बोधक सूचनाओं से तात्पर्य उन सभी अदृष्टि सूचनाओं से होता है जिसमें वे सारे पेशीय संकेत सम्मिलित होते है जिन्हे व्यक्ति वस्तुओं के साथ अन्तः क्रिया करने के फलस्वरूप प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति किसी वस्तु के पास अथवा दूर जाने पर नेत्र में मांसपेशीय तनाव का अनुभव करता है जो पास या दूर जाने पर एक संकेत देता है और इसी आधार पर वह गहराई अथवा दूरी का प्रत्यक्षण करता है। स्प्ष्ट है कि वर्केली से सिद्धान्त में गतिबोधक सूचनाएँ प्रमुख है तथा दृष्टि संकेत गौण है। वर्केली के सिद्धान्त को होचबर्ग तथा ब्रुनस्तिक द्वारा समर्थन प्रदान किया गया। बुरनस्विक के अनुसार व्यक्ति दूरी के प्रत्यक्षण करने के लिए एक विशेष मानसिक संरचना उत्पन्न करता है। होचवर्ग ने दृष्टि उद्दीपकों के साथ लगातार अन्तः क्रिया करता है परिणामस्वरूप व्यक्ति वस्तुओं के बारे में विशेष प्रत्याक्षा विकसित कर उसी आधार पर प्रत्यक्षता करता है निष्कष्र्ज्ञ रूप से यह कहा जा सकता है कि अनुभववादी सिद्धान्त के अनुसार दृष्टि उद्दीपद जो अतिपटल तक पहुचता है अपर्याप्त सूचनाएँ प्रदान करता है इस सूचनाओं को अनुभव व प्रशिक्षण सही प्रत्यक्षण का आधार प्रदान करता है।

2. गिब्सोमियत सिद्धान्त (Gibsomiat Theory)

हम सिद्धान्त का प्रतिपादन गिब्सन/ (1979) द्वारा किया गया इनके मतानुसार अक्षिपटल तक पहुँचने वाले दृष्टि उद्दीपक अपने आप में पर्याप्त होते ही उन्हे कसी अदृष्टि सूचना द्वारा संपूरित करने की जरूरत नहीं पडती है। और इसी आधार पर व्यक्ति को दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण होता है।

गिब्सन ने कुछ पायलट प्रशितार्थियों पर प्रयोग किया इन पायलट को दूरी एवं गहराई प्रत्यक्षण के परम्परागत संकेतो जैसे रेखीय परिदृश्य, अक्षिपटलीय आकार, हस्तक्षेप तथा वायुमंडलीय परिदृश्य के आधार पर दूरी एवं गहराई के प्रत्यक्षण करने में सफलता या असफलता का पूर्वानुमात करने की कोशिश करायी गई परिणाम में यह पाया गया कि परम्परागत संकेतों के आधार पर पूर्वानुमान लगाने में कोई खास सफलता नहीं मिली।

गिब्सन ने दूरी व गहराई प्रत्यक्षण में गठन प्रवणता को महत्वपूर्ण बताया। गिब्सन ने गठत प्रवणता को इतना महत्व दिया कि इसे धरातल सिद्धान्त का एक अंश माना जा सकता है धरातल सिद्धान्त में जमीन, मकान, पेड पौधो आदि सभी मिलकर गहराई व दूरी प्रत्यक्षण को निर्धारित करते है बाद में गिष्मत में दूरी एवं गहराई के प्रत्यक्षण में गति परिदृश्य को अधिक महत्व दिया जब व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर बढता है उसे वस्तुएँ भी परिवर्तित होने प्रतीत होती है। इसी परिवर्तन के आधार पर व्यक्ति दूरी व गहराई का प्रत्यक्षण करता है।

दोनों प्रकार के सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट होता है कि दूरी व गहराई के प्रत्यक्षण में एक संवृद्ध दृष्टि वातावरण तथा एवं सक्रिय प्रत्यक्षणकर्ता दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

10.4 गहराई तथा दूरी का प्रत्यक्षण: तीसरी विमा (Depth & Distance Perception- Third Dimension)

वातावरण में उपस्थित वस्तुएं जिनका हम प्रत्यक्षण करते हैं मूलतः तीन विमाओं में बिन्यासित हो सकते है। जिस वस्तु का व्यक्ति प्रत्यक्षण कर रहा है, वह वस्तु व्यक्ति से ऊपर या नीचे हो सकता है, बायीं ओर या दायीं ओर हो सकता है या दूर या नजदीक हो सकता है। चाहे वस्तु व्यक्ति से ऊपर हो या नीचे, बायीं ओर हो या दायीं ओर, नजदीक या दूर हो, जब दुसरा प्रतिबिम्ब अक्षिपटल या दृष्टिपटल पर पड़ता हैं, तो उसमें केवल लंबाई तथा चैड़ाई होती है। अक्षिपटल पर जो प्रतिविम्ब बनता है उसमें मात्र दो ही विमा होते हैं। एक विमा लंबाई है और दूसरी विमा चैड़ाई है। तीसरी विमा यानी मोटाई नहीं होती है। अतः दृष्टिपटल पर बने प्रतिबिम्ब किसी कागज के टुकड़े पर बने चित्र के बिलकुल समरूप होते है जिसमें केवल लंबाई तथा चैड़ाई होती है। जब दृष्टिपटल पर बनने वाले प्रतिविम्ब में मात्र लंबाई तथा चैड़ाई होती है, तो ऐसी अवस्था में हमें वस्तुओं का सिर्फ लंबाई और चैड़ाई का ही ज्ञान होना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं होता है। हमें वस्तुओं की मोटाई, सघनता दूरी आदि का भी ज्ञान होता है। इसे तीसरी विमा का प्रत्यक्षण या दिक् प्रत्यक्षण भी कहते है। यहाँ दिक् से तात्पर्य उस विमा के अनुभव से होता है जिसके सहारे हमें यह पता चलता है कि वस्तु व्यक्ति से कितनी दूरी पर है, किस दिशा में है आदि। वस्तुओं में मोटाई, सघनता तथा दूरी का प्रत्यक्षण कुछ खास-खास संकेतो के आधार पर होता है। इन संकेतों को निम्नांकि त दो भागों में बाँट कर अध्ययन किया गया है-

1. एकनेत्री संकेत तथा
2. द्विनेत्रीय संकेत

इन दोनों का वर्णन निम्नांकित है-

1. एकनेत्री संकेत

एकनेत्री संकेत उन संकेतों को कहा गया है एक आँख द्वारा ग्रहण किया जा सकता है और उसे वस्तुओं की दूरी, गहराई तथा सघनता आदि का ज्ञान हो सकता है। एकनेत्री संकेतों तो को चित्रीय संकेत भी कहा जाता है। एकनेत्री संकेत को व्यक्ति अपने जन्मजात से सीखता है। अतः एकनेत्री संकेत सीखा गया संकेत होता है न कि जन्मजात संकेत होता है। एकनेत्री संकेत दो तरह के होते हैं वैसे एकनेत्री संकेत जिसमें गति सम्मिलित नहीं होता है तथा वैसे एकनेत्री संकेत जिसमें गति सम्मिलित होता है। प्रमुख एकनेत्री संकेत जिसमें गति सम्मिलित नहीं होता है, का वर्णन निम्नांकित है-

(1) हस्तक्षेप या आच्छादन

जब वस्तुएँ एक सीध में होती है तथा साथ-ही-साथ जब वे अपारदर्शीय होती है, आगे की वस्तु पीछे की वस्तु के कुछ हिस्से या भाग को प्रायः छिपा लेती है। इसे ही हस्तक्षेप का संकेत कहा जाता है। जब आगे की वस्तु पीछे की वस्तु को अंशत छिपा लेती है, तो व्यक्ति को पीछे की वस्तु अधिक दूरी पर दिखती पडती है तथा आगे की वस्तु जिसका पूरा भाग वह देख रहा है, काफी नजदीक मालूम पड़ता है। हस्तक्षेप संकेत द्वारा वस्तुओं की दूरी तथा गहराई का ज्ञान तभी हो सकता है जब वस्तुएँ करीब-करीब एक सीध में हो तथा उन सभी वस्तुओं में एक-दूसरे को ढँकने की क्षमता हो, अर्थात वे सभी अपारदर्शी हों। इन शर्तों के अभाव में हस्तक्षेप संकेत द्वारा वस्तुओं की दूरी का प्रत्यक्षण नहीं होगा।

(2) दृष्टिपटलीय प्रतिबिम्ब का आकार

जब कोई वस्तु व्यक्ति से नजदीक होता है तो दृष्टिपटल या अक्षिपटल पर बनने वाले इसके प्रतिबिम्ब का आकार बड़ा होता है। फलस्वरूप वस्तु का आकार भी बड़ा दिखलाई देता है। इटेल्सन एवं किल्पैट्रीक ने एक प्रयोग किया जिसमें अंधेरे कमरे में समान दूरी पर हवा से भरे दो बैलून को लटका दिया गया। प्रयोज्य को यह बताना था कि कौन-सा बैलून नजदीक है तथा कौन अधिक दूरी पर। एक बैलून का आकार दूसरे बैलून के आकार रो बड़ा कर दिया गया था। परिणाम में देखा गया कि बड़े बैलून को प्रयोज्यों ने नजदीक एवं छोटे बैलून को प्रयोज्यों ने अधिक दूरी पर होने का प्रत्यक्षण किया।

आकार संकेत की परिसीमा यह है कि इस संकेत द्वारा हमें वस्तुओं की दूरी का प्रत्यक्षण तभी होता है जब हम वस्तु के वास्तविक आकार से परिचित हों। इटेलसन (1951) ने एक प्रयोग कर इसे सिद्ध किया है।

(3) रेखीय परिदृश्य

जैन्डा और क्लेनका हैमेल (1982) लेखीय परिदृश्य को परिभाषित करते हुए कहा है, 'रेखीय परिदृश्य से तात्पर्य उस घटना से होता है जहाँ समानांतर रेखाएँ जैसे-जैसे (व्यक्ति से) दूर होते जाती है, वैसे-वैसे आपस में अभिमुख होते जाती हैं (अर्थात एक दूसरे से सटती नजर आती है)।''जब दो समानान्तर रेखाएँ आगे की ओर अर्थात् क्षितिज की ओर बढ़ने पर एक दूसरे से सटी हुई नजर आती है, तो इससे हमें दूरी एवं गहराई का प्रतयक्षण होता है तथा इस संकेत को रेखीय परिदृश्य कहा जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण रेल की दोनों पटरियों पर देखने से प्राप्त होता है। अधिकतम दूरी पर यानी कि क्षतिज पर ऐसा महसूस होता है कि ये रेखीय परिदृश्य संकेत के साथ महत्वपूर्ण परिसिमा यह है कि यदि वस्तुएँ एक-दूसरे के सामान्तर नहीं है, तो संकेत द्वारा हमें दूरी का प्रत्यक्षण नहीं होगा।

(4) गठन प्रवणता

गठन प्रवणता का संकेत एक ऐसा संकेत है जिसमें रेखीय परिदृश्य तथा आकार दोनों तरह के संकेत सम्मिलित होते है। गठन से तात्पर्य वस्तु एवं उसके आकार में क्रमिक परिवर्तन से होता है। गिब्सन (1950) ने गठन प्रवणता के संकेत पर प्रयोग करके यह दिखला दिया है कि जब किसी वस्तु के गठन के तत्त्वों का आकार छोटा-छोटा होता है तथा वे काफी सघन होते हैं, तो इससे व्यक्ति को दूरी का प्रत्यक्षण होता है। परन्तु जब गठन के सभी तत्त्वों का आकार एक समान होता है तथा वे सघन नहीं होकर फैले होते है, तो इससे वस्तु के तत्त्वों में आपस दूरी का प्रत्यक्षण व्यक्ति को नहीं होता है। वाक तथा गिग्सन (1961) में एक प्रयोग किया जिसमें यह दिखलया गया है कि गहराई एवं दूरी के प्रत्यक्षण में गठन संकेत को प्राणी सीखता सीखता है न कि जन्म से उसमें उपस्थित होता है।

(5) छाया

छाया को एक प्रमुख एकनेत्रीय संकेत माना गया है जिसके आधार पर गहराई तथा दूरी का प्रत्यक्षण होता है। छाया संकेत की प्रमुख पूर्वकल्पना यह होती है कि रोशनी वस्तु के ऊपर से आ रही है। जब एक वस्तु की छाया दूसरे वस्तु पर पड़ती है, तो देखने वाला व्यक्ति को दूसरे वस्तु की दूरी पहली वस्तु की अपेक्षा अधिक मालूम पड़ती है। छाया संकेत द्वारा वस्तुआंे की चमक में थोड़ा विभेद या अन्तर हो जाता है जिससे दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण होता है।

(6) वायवीय परिदृश्य

वायवीय परिदृश्य का संबंध भी रोशनी से ही है। में जैसे-जैसे रोशरनी आगे की ओर बढ़ती है वैसे-वैसे उसमें (वायु में) उपस्थित धूलकण तथा नमी के कारण रोशनी में अधिक धुंधलापन तथा फैलाव बढ़ जाता है। इसका परिणाम यह है कि वातावरण में उपस्थित दूर की पहाडियाँ, घर, पेड़ आदि काफी धुंधले, अस्पष्ट तथा साथ-ही-साथ रंग पर दिखलाई देते हैं। इसे ही वायवीय परिदृश्य का संकेत कहा जाता है। वातावरण वस्तुएँ, यानी पहाडियाँ, घर, पेड़-पौधे, व्यक्ति से नजदीक होते हैं, वे न तो धुंधले, अस्पष्ट और न ही बैंगनी ही दिखलाई देते है। अतः वस्तु की अस्पष्टता, धुंधलापन, आदि जो वायवीय परिदृश्य संकेत में सम्मिलित होता है, द्वारा भी हमें वस्तुओं की दूरी का प्रत्याक्षण होता है।

(7) सापेक्ष चमकीलापन

अंधेरे में यदि कई वस्तुओं को जिनके चमकीलेपन का स्तर असमान होता है, हम देखते हैं तो अधिक चमकीली वस्तु नजदीक तथा कम चमकीली वस्तु अधिक दूरी पर दिखलाई देती है। इटेल्सन (1960) ने इसे एक प्रयोग द्वारा सिद्ध किया। इन्होंने प्रयोज्य को एक पूर्णरूपेण अंधेरे कमरे में दो समान दूरी पर रोशरनी दिखाई एक रोशनी में दूसरी रोशनी की अपेक्षा चमकीलापन अधिक था। परिणाम में देखा गया कि प्रयोज्य ने अधेरे में चमकील रोशनी को नजदीक तथा कम चमकीले रोशनी को अधिक दूरी पर होने का प्रत्यक्षण दिया।

(8) ऊँचाई संकेत या वायुमंडलीय परिदृश्य

इस संकेत के अनुसार जो वस्तु क्षैतिज के नजदीक होता है उसे व्यक्ति तुलनात्मक रूप से अधिक दूरी पर होने का प्रत्यक्षण करता है क्षैतिज पर ऊँचाई संकेत में उलटाव होता है। क्षैतिज से नीचे (अर्थात जमीन पर) की स्थिति में जो वस्तुएँ सतह पर होती हैं वे नजदीक दिखती हैं तथा क्षैतिज के ऊपर (अर्थात आकाश में) की स्थिति में जो चीजें ऊपर स्थित होती हैं, वे नजदीक प्रतीत होती है।

एकनेत्री संकेत जिनमें गति सम्मिलित होता है ऐसे प्रमुख एकनेत्री संकेत निम्नांकित दो है-

(9) गतिबोधक गहराई संकेत

इस संकेत का संबंध वस्तुओं या उद्दीपकों के गति से है न कि प्रत्यक्षणकत्र्ता के गति से हैं। कोई वस्तु स्थिरावस्था में होने पर चपटा दिखता है परंतु जब उसमे गति उत्पन्न हो जाती हैं या वह घुमन लगता है तो उसमें गहराई एवं दूरी प्रत्यक्षण होने लगता है। इस तथ्य को पुष्टि कई वालेकि एवं ओकोनेल द्वारा किया गय। इस अध्ययन में प्रयोज्यों को कुछ ठोस ब्लाक, तार से बने कुछ आकृतियाँ एवं सीधी छड़ी आदि दिखलाया गया। स्थिरावस्था में ये सारी वस्तुएँ चिपटी प्रतीत हुई परंतु जब उन्हें तेजी से घूमते हुए स्थिति में दिखलाया गया तो वे त्रिविमीय प्रतीत हुई। बाद में बाऊनस्टीन (1976) ने भी अपने अध्ययन से इनके परिणाम को घोषित किया।

(10) गति

वस्तुओं में गति का प्रत्यक्षण होने के कारण भी हमें दूरी तथा गहराई का ज्ञान होता है। इस संकेत को गति लम्बन भी कहा जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण चलती रेलगाड़ी में खिड़की या दरवाजे से बाहर की ओर देखने पर मिलता है।

ऊपर वर्णन किये गये तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन एकनेत्री संकेतों द्वारा हमें दूरी एवं गहराई के प्रत्यक्षण में काफी मदद मिलती है। सभी एकनेत्रीय संकेतों की एक सामान्य विशेषता या गुण यह है कि व्यक्ति इसे अपने अनुभव द्वारा सीखता हैं न कि जन्म से ही इन संकेतों का उपयोग करने की क्षमता उसमें मौजूद रहती है।

2. द्विनेत्रीय संकेत

द्विनेत्रीय संकेत उन संकेतों को कहा जाता है जिनके उपयोग के लिए दोनों आँखों का होना आवश्यक है। इन संकेतों को शारीरिक संकेत भी कहा जाता है क्योंकि इसका संबंध आँख की संरचना से होता है। स्वभावतः तब इस तरह का संकेत जन्मजात होता है न कि व्यक्ति इसे अपने अनुभव द्वारा जीवन काल में सीखता है। कोरेन, पोरेक तथा वार्ड (1979) के अनुसार प्रमुख द्विनेत्री संकेत निम्नांकित तीन है -

(1) समायोजन

इस संकेत मनोवैज्ञानिकों ने एकनेत्री संकेत जिसमें गति सम्मिलित नहीं होता है, की भी श्रेणी में भी रखा है। हमारे आँख के लेन्स में छोटा होने तथा बड़ा होने का गुण मौजूद होता है। वस्तुतः कि लेन्स की वक्रता घटती बढ़ती है। जब व्यक्ति नजदीक की चीज या वस्तु को देखता है, तो लेन्स छोटा हो जाता है अर्थात् लेन्स की वक्रता बढ जाती है ताकि देखे जा रहे वस्तु का प्रतिबिम्ब अक्षिपटल पर ठीक से पड़ सके। दूसरी तरफ जब व्यक्ति दूर की चीज या वस्तु को देखता है तो लेन्स बड़ा हो जाता है, अर्थात लेन्स की वक्रता कम हो जाती है जिससे लेन्स पतला हो जाता है और तब जाकर दूर की वस्तुओं का प्रतिबिम्ब अक्षिपटल पर ठीक ढंग से पड़ता है। लेन्स के आकार में वृद्धि तथा कमी की यह प्रक्रिया विशेष मांसपेशियों द्वारा नियंत्रित होता है जिसे सिलियरी मांसपेशी कहा जाता है तथा इस पूरी प्रक्रिया को समायोजन कहा गया है। इस व्याख्या से स्पष्ट है कि लेन्स में अधिक वक्रता होने से कोई भी वस्तु व्यक्ति को नजदीक दिखलाई देता है तथा लेन्स में फैलाव होने से व्यक्ति की वस्तु दूर पर दिखलाई देता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने समायोजन को एकनेत्रीय संकेत माना है क्योंकि

इसका उपयोग मात्र एक आँख द्वारा भी हो सकता है। लेकिन इसे द्विनेत्रीय संकेत कहने में ही अधिक यथार्थता है क्योकि जब समायोजन दोनों आँखों द्वारा होता है तो वह ज्यादा परिशुद्ध होता है और हमें दूरी का प्रत्यक्षण भी स्पष्ट रूप से होता है।

ग्राहम (1965) ने एक प्रयोग कर यह दिखलाया है कि समायोजन संकेत दूरी एवं गहराई के प्रत्यक्षण के लिए कोई बहुत अधिक महत्वपूर्ण संकेत नहीं है। इन्होंने यह स्पष्ट रूप से दिखला दिया है कि अगर कोई वस्तु व्यक्ति के चेहरे से 20 सेन्टीमीटर की दूरी पर होती है तो लेन्स अपनी अधिकतम वक्रता पर पहुँच जाता है। अगर वस्तु और नजदीक आ जाता है, जैसे 10 सेन्टीमीटर पर, इससे लेन्स की वक्रता बढ़ती नहीं है। ठीक उसी प्रकार यदि कोई वस्तु व्यक्ति के चेहरे से 3 मीटर की दूरी पर होता है, तो लेन्स अपने अधिकतम फैलाव की बिन्दु पर पहुँच जाता है। अगर वस्तु उससे भी अधिक दूरी पर होती है, तो लेन्स का फैलाव बढ़ता नहीं है। इस तथ्य से यह बिलकुल ही स्पष्ट हो जाता है कि के लेन्स में समायोजन एक सीमित प्रसार यानी 20-300 सेन्टीमीटर के भीतर ही होता है।

(2) अभिबिन्दु ता तथा अपसारिता

अभिबिन्दुता एवं अपसारिता नेत्र-गोलक के गति से संबंधित दो संकेत हैं जिससे हमें वस्तु की दूरी एवं गहराई का ज्ञान होता है। जब हम नजदीक की वस्तुओं को देखते है, तो दोनों आँखों के नेत्र-गोलक भीतर की ओर यानी नाक की ओर घुमता है, उसे अभिबिन्दुता कहा जाता है। इस प्रकार जब हम दूर की वस्तुओं पर देखते हैं, तो दोनों, आँख का नेत्र-गोलक बाहर की दिशा में यानी बायीं आँख, बांये कान की ओर तथा दायीं आँख दाये कान की ओर घुमता हैं। इसे अभिसारिता कहा जाता है। इस तरह से यह स्पष्ट है कि अभिबिन्दुता द्वारा हमें वस्तुओं की समी पता का प्रत्यक्षण होता तथा अपसारिता द्वारा हमें वस्तुओं की दूरी का प्रत्यक्षण होता है।

(3) द्विनेत्री विभिन्नता या अक्षिपटलीय विभिन्नता

जब व्यक्ति किसी वस्तु को देखता है तो इसकी प्रतिमा आँखों के अक्षिपटल पर अलग-अलग बनता है। इन दोनो प्रतिभाओं में थोड़ी भिन्नता पायी जाती है जिसे अक्षिपटलीय विभिन्नता या द्विनेत्री विभिन्नता कहा जाता है। ऐसा देखा जाता है कि जैसे-जैसे वस्तु व्यक्ति से नजदीक आता जाता है, वैसे-वैसे अक्षिपटलीय विभिन्नता बढ़ती जाती है। यदि वस्तु व्यक्ति से दूर होता जाता है, तो उससे उत्पन्न द्विनेत्री विभिन्न्ता कम होते जाती है। स्पष्ट हुआ कि अक्षिपटलीय विभिन्नता द्वारा भी व्यक्ति को वस्तुओं की दूरी का प्रत्यक्षण होता है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दूरी तथा गहराई का प्रत्यक्षण एकनेत्री संकेत तथा द्विनेत्री संकेत दो नों के आधार पर होता है। वास्तविकता यह है कि हम इन दोनों तरह के संकेतों का जब उपयोग करते हैं तो दूरी तथा गहराई का परिशुद्ध प्रत्यक्षण होता है उपयोग करें तो दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण उतना सही नहीं हो पायेगा।

10.5 पैटर्न प्रत्यभिज्ञान (Pattern Recognition)

पैटर्न प्रत्यभिज्ञान दिन-प्रतिदिन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है जिसके सहारे हम अपने आस-पास की घटनाओं का अर्थ समझते है। व्यक्ति को सार्थक ढंग से अपने वातावरण के साथ अन्तः क्रिया करने के लिए यह आवश्यक है कि वह उस वातावरण के विभिन्न उद्दीपक पैटर्न की पहचान करे। मैटलिन' (1983) के अनुसार ''पैटर्न प्रत्यभिज्ञान से तात्पर्य संवेदी उद्दीपकों के जटिल

व्यवस्थाओं की पहचान से होता है।'' पर एक 'कुत्ता' को देखता है और समझ जाता है कि यह मेरे मित्र रमेण का कुत्ता है। वस्तुतः व्यक्ति उद्दीपक को एक सही पहचान करता है जिससे उसके प्रति अर्थपूर्ण अन्तः क्रिया करना संभव हो पाता है। आधारित ऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन आधारिक ऊपरी संसाधनों में उद्दीपकों के महत्वपूर्ण तथ्यों या विशेषताओं से प्रक्रिया आरंभ करके ऊँचे स्तर पर लाया अनुभूति एवं संदर्भ से विशेष प्रत्याशा उत्पन्न होती है और उसी के अनुसार उद्दीपकों की व्याख्या होती है। आधारिक ऊपरी संसाधन मॉडल के तहत दो तरह के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है-

(क) विशिष्ट विशेष सिद्धान्त

(ख) प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त

इन दोनों सिद्धान्तों का वर्णन निम्नांकित हैं-

(क) विशिष्ट विशेष सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कार्नेल विश्वविद्यालय गिब्सन (1975) द्वारा इस बात की व्याख्या करने के लिए की गयी थी कि हमलोग अक्षरों की पहचान किस तरह से करते है। इनका कहना था कि व्यक्ति अक्षरों की पहचान उनकी विशिष्ट विशेषताअें के आधार पर करता है। प्रत्येक अक्षर की कुछ अपनी विशिष्ट विशेषताएँ होती है जिनके आधार पर उनकी पहचान संभव हैं। जैसे श्भ्श् में तीन सीधी रेखाएँ जो उसकी अपनी विशिष्ट विशेषता के कारण अक्षर श्व्श् में एक भी सीधी रेखा नहीं है जो भी इस अक्षर की अपनी विशिष्ट विशेषता है। इस विशिष्ट विशेषता के कारण अक्षर श्व्श् अक्षर श्भ्श् से भिन्न लगता है। गिब्सन का यह सिद्धान्त इस बात प बल डालता है कि प्रत्येक अक्षर का एक विशिष्ट विशेषता होता है जिसके आधार पर उसकी पहचान होती है। अक्षरों का कुछ समूह इस बात पर बल डालता है कि प्रत्येक अक्षर का एक विशिष्ट विशेषता होता है जिसके आधार पर उसकी पहचान होती है। अक्षरों का कुछ समूह तो ऐसा होता है जिनकी विशिष्ट विशेषता एक-दूसरे में पूर्णतः भिन्न होती है। जैसे, श्ळश् एवं श्ॅश् दो ऐसे अक्षर हैं जिनकी विशिष्ट विशेषता आपस में समान नहीं है। कुछ अक्षर ऐसे है जिनकी विशिष्ट विशेषता आपस में बहुत अधिक है। जैसे श्च्श् एवं श्त्श् दो ऐसे ही अक्षर हैं। इन दोनों में अन्तर सिर्फ इतना ही है कि श्त्श् में एक तिरछी रेखा होती है। अक्षरों की 'विशिष्ट विशेषता' की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह हमेशा स्थिर होती है चाहे उसे हाथ से लिखा जाय या फिर छापा जाय। गिब्सन ने अंग्रेजी के सभी 26 अक्षरों की विशिष्ट विशेषताओं का एक चार्ट बनाया है। इन्होंने ने कई तरह की विशेषताओं का वर्णन किया है जिसमें तीन विशेषताएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है सीधा मुड़ा हुआ तथा कटान या प्रतिच्छेदन विशेषताओं पर सर्वाधिक निर्भर।

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए गिब्सन, सापिरों एवं योनास (1968) ने प्रयोग किया। इस प्रयोग में प्रयोज्यों के अक्षरों को एक-एक जोड़ा बारी-बारी से दिखलाया गया। उनसे यह निर्देशित किया गया है। दोनों अक्षर एक समान लगे, तो वे विशेष बटन को दबाकर अपनी अनुक्रिया करेंगे। इस तरह से प्रयोगकत्र्ताओं प्रत्येक प्रयोग से अन्तर्निहित अर्थात् अनुक्रिया करने में लगा समय के आधार पर समानता की माप की गयी यदि अन्तर्निहित कम होता था जैसा कि श्ळश् तथा श्ॅश् के जोड़ा में होता था तो यह समझा जाता था कि दोनों एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं। अगर अन्तर्निहित लम्बा होता था जैसा कि श्च्श् तथा श्त्श् के जोड़ा में होता था, तो मर जाना जाता था कि अक्षर एक-दूसरे से समान है।

विशिष्ट विशेषता सिद्धान्त का एक आर्थिक पहलू यह है कि सिद्धान्त का दावा कुछ दैहिक सबूतों के अनुरूप है। जैसा कि अध्ययन से पता चला है कि दृष्टि कोर्टेक्स में विभिन्न प्रकार के न्यूरोन होते हैं जिनमें से कुछ ऐसे होते है जो विशेष तरह की उन्मुखता वाले रेखाओं के प्रति अधिक तेजी से अनुक्रिया करते है। शायद यही कारण है कि सीधी रेखा वाले अक्षर तथा वक्राकार अक्षरों के प्रति अन्तर्निहित में अंतर होता है।

हम सिद्धान्त के साथ कुछ संप्रत्ययात्मक कठिनाइयाँ है। नास तथा शिलमैन ने एक ऐसी ही प्रमुख समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है। इन्होंने यह बतलाया प्रायः अक्षरों की विशिष्ट विशेषताओं के बीच अंतर करना संभव नहीं हो पाता है।

(ख) प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जाता है कि में उद्दीपकों का एक अमुर्त एवं आदर्श पैटर्न संचित करके रखता है। जब व्यक्ति कोई वस्तु को देखता है तो वह उसकी तुलना मन में संचित प्रोटोटाईप या आदर्श आकृति से करता है। अगर वह उससे सुमेलित होता हैं, तो पैटर्न की पहचान कर लेता हैं। अगर वह सुमेलित होता हैं, तो व्यक्ति पैटर्न की पहचान कर लेता है। अगर वह सुमेलित नहीं होता व्यक्ति उसे अन्य प्रोटोटाईप से एक-एक करके तब तक मिलाते जाता ही जब तक कि सही सुमेल न प्राप्त हो जाय। इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि मन में संचित प्रोटोटाईप की निम्नांकित तीन विशेषताएँ होती है -

1. प्रोटोटाईप अमूर्त होता है।
2. प्रोटोटाईप आदर्शस्वरूप होते हैं।
3. प्रोटोटाईप का आकार दृढ़ रूप से विशिष्ट नहीं होता है।

इन दोनों सिद्धान्तों में सबसे प्रमुख अंतर यह है कि प्रोटोटाईप सिद्धान्त में उद्दीपक के सम्पूर्ण आकारों के महत्व पर बल डाला जाता है जबकि विशिष्ट विशेषता सिद्धान्त यह बतलाता है कि उद्दीपक के विशिष्ट महत्वपूर्ण हिस्सा की पहचान करने के बाद ही पैटर्न प्रत्यभिज्ञान होता है। इस तरह से विशिष्ट विशेषता सिद्धान्त के अनुसार स्मृति में संचित पैटर्न दृढ़ रूप से आकार में विशिष्ट होता है जबकि प्रोटोंटाईप सिद्धान्त के अनुसार ऐसे संचित पैटर्न में लचीलापन का गुण होता है। इस लचीलेपन के विचार को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है। व्यक्ति वैसे अक्षर को भी अपने वास्तविक स्वरूप में पहचान लेता है जिसकी आकृति विकृत होती है।

प्रोटोटाईप सुमेल सिद्धान्त के समान ही एक अन्य सिद्धान्त भी है जिसमें तुलनात्मक रूप से लचीलापन कम है सांचा सुमेल सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक अक्षर के विभिन्न रूपी का अलग पहले यह जाँचते है कि यह अक्षर मन में संचित अक्षरों के किसी साँचे से मिलता जुलता है या नहीं। अगर यह मिलता जुलता है तो हम उसकी पहचान कर लेते है। अगर वह किसी विशेष सांचा से नहीं मिलता है, तो हम फिर किसी दूसरे साँचे की तलाश करते है। यह सिद्धान्त ऊपर से देखने में बिलकुल ही सरल दिखता है परंतु इसमें दोष भी विद्यमान है। इस सिद्धान्त को यदि सही मान लिया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि सभी अक्षरों एवं उनके आकारों के सभी परिवर्तनों को सही-सही पहचानने के लिए मस्तिष्क में करोड़ों सांचा की जरूरत होगी और इसके लिए स्मृति तंत्र को काफी व्यापक एवं विस्तृत होने की आवश्यकता है। यह निश्चित रूप से एक असंभव कार्य

दिखता है। इतना ही नहीं, इस सिद्धान्त की यह प्रक्रिया को पूरा होने में समय भी काफी लगेगा। इन दोषों या कठिनाइयों के कारण सांचा सुमेल सिद्धान्त को अस्वीकृत करके प्रोटोटाइप सुमेल सिद्धान्त को ही अधिक महत्व दिया गया है जो इस बात पर स्पष्ट रूप से बल देता है कि स्मृति में संचित प्रोटोटाईप अमूर्त आकार में दृढ़ एवं विशिष्ट न होकर लचीले होते है।

पोजनर, गोल्डस्मीथ एवं वेल्टन (1967) ने पैटर्न पहचान पर एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया। प्रयोज्य को प्रोटोटाईप के प्रत्येक विकृत प्रारूप को देखने के बाद बटन दबाकर उसे पहचानने की प्रतिक्रिया करनी थी। परिणाम में देखा गया है कि मौलिक प्रोटोटाईप के समान प्रारूप को अर्थात् प्रारूप में कम विकृति होने पर प्रयोज्यों ने उसकों पहचानने में कम त्रुटि किया परंतु जैसे-जैसे प्रारूप मौलिक प्रोटोटाईप से अधिक विकृत होता गया, पहचानने में त्रुटि बढ़ते गयी। पोजनर तथा उनके सहयोगियों के इस अध्ययन का समर्थन फ्रैक्स एवं बैरनस्फोर्ड (1971) ने अपने अध्ययन के परिणाम से किया है। इन्होंने अपने अध्ययन में बिंदु पैटर्न की प्रोटोटाईप के रूप में व्यवहत न करके ज्यामितीय आकार का उपयोग किये। प्रयोज्यों को यह बतलाना था कि वे पहले डिजाइन को देखे है या नहीं। परिणाम में पाया गया कि प्रयोज्य द्वारा उन डिजाइनों की पहचान सही-सही की गयी जो मौलिक डिजाइन के समान थे। परंतु जो जो डिजाइन मौलिक प्रोटोटाईप या डिजाइन से काफी भिन्न या परिवर्तित थे, उनको पहचानने में त्रुटि की गयी। इस अध्ययन से पोजनर, एवं बेल्टन के अध्ययन की भी पुष्टि होती है।

कुछ अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि पैटर्न पहचान पर संदर्भ का भी प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, पैटर्न ने पहचान में ऊपरी-निचली संसाधन मॉडल महत्व होता है। इस संसाधन में उद्दीपकां की व्याख्या व्यक्ति के पूर्व ज्ञान एवं उद्दीपक के संदर्भ में किया जाता है। रूमेलहार्ट (1977) ने सर्वाधिक बल देते हुए बताया है कि ऊपरी निचली संसाधन प्रक्रिया स्वरूप चयनित होता है। इस संसाधन को संप्रत्यात्मक रूप से व्युत्पन्न-संसाधन भी कहा गया है जबकि आधारिक ऊपरी संसाधन आँकड़े व्युत्पन्न संसाधन भी कहा गया है।

ऊपरी निचली संसाधन का समर्थन हमें दो तरह के मनोवैज्ञानिक घटना में भी स्पष्ट रूप से मिलती है शब्द श्रेष्ठता प्रभाव तथा सम्पूर्ण संसाधन शब्द श्रेष्ठता प्रभाव द्वारा ऊपरी निचली संसाधन की घटना को दिखलाया जाता है जिसमें व्यक्ति उन अक्षरों की पहचान उस समय तेजी से करता है जब वे एक सार्थक शब्द का निर्माण करते पाये जाते है। जानस्टोन तथा रीकर ने शब्द अध्ययन के परिणाम में देखा गया कि श्क्श् को श्ॅव्त्क्श् में उपस्थित करने पर उसे उसी अक्षर को श्व्त्ॅक्श् में उपस्थित करने की तुलना में प्रयोज्यों द्वारा पहचान आसानी से कर लिया जाता था। इस परिणाम से स्वभावतः ऊपरी-निचली संसाधन को व्याख्या की पुष्टि होती है क्योंकि ऐसा होने का प्रमुख कारण विशेष संदर्भ तथा पूर्व ज्ञान का होना है अर्थात प्रयोज्य द्वारा क् को ॅव्त्क् में देखने का पूर्व अनुभूति है।

सम्पूर्ण संसाधन की प्रक्रिया से भी ऊपरी निचली संसाधन मॉडल को समर्थन मिलता है। सम्पूर्ण संसाधन घटना इस सिद्ध करती है कि व्यक्ति प्रायः किसी उद्दीपक के विशिष्ट विशेषताओं को पहचानने के पहले उसके समग्र विशेषताओं की पहचान कर लेता है। इस तथ्य का प्रयोगात्मक समर्थन नेवन के प्रयोग में मिलता है।

परिणाम में यह देखा गया कि समग्र लक्ष्य की पहचान व्यक्ति तुलनात्मक रूप से अधिक तेजी से कर लेता था। परिणाम में यह भी देखा गया कि समग्र प्रत्यभिज्ञान कार्य की प्रतिक्रिया समय इस बात पर आधारित नहीं होता है कि उसका निर्णय किस अक्षर विशेष से किया गया है।

इस परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति किसी उद्दीपक को पहले समग्र रूप से अर्थात ऊपरी निचली प्रक्रिया अपनाकर न कि उद्दीपक के विशेष तत्व या विशेषता प्रारंभ करते हुए (आधारिक ऊपरी) संसोधित करता है।

10.6 ऊपरी-निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतक्रिया

मनोवैज्ञानिकों जिनमें एवं नारमैन (1972) तथा रूमेलहार्ट (1977) ने बतलाया है कि पैटर्न प्रत्यभिज्ञान ऊपरी-निचली संसाधन तथा आधारिक ऊपरी संसाधन की अंतिक्रिया पर आधारित होता है। पैटर्न पहचान में व्यक्ति उद्दीपक की विशेषताओं का विश्लेषण करता है। (अधारिक ऊपरी विश्लेषण) लेकिन इसके अतिरिक्त उसकी प्रत्याशा से भी पहचान की प्रक्रिया प्रभावित होती है। (ऊपरी निचली विश्लेषण) दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किसी उद्दीपक की पहचान में कई तरह की प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती है। कुछ प्रक्रियाए ऐसी होती है जिनमें उद्दीपक की विशिष्ट विशेषताओं का विश्लेषण होता है तथा कुछ प्रक्रियाए ऐसी होती हैं जिनमें प्रयोज्य की गत अनुभूति प्रत्याशा या संदर्भ जिसमें उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है, महत्वपूर्ण होता है। पालमर (1975) ने इसके समर्थन में एक अति महत्वपूर्ण योगदान किया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि पैटर्न पहचान में आधारिक ऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन दोनों ही सम्मिलित होते है। हम लोग मानव चेहरा का एक समग्र चेहरा के रूप में इसलिए पहचान कर पाते है क्योकि हम उसके हिस्से को पहचानते है परंतु हम लोग उन हिस्सों को समग्रता के संदर्भ के अभाव में नहीं पहचान पाते है।

निष्कर्षतः तब हम इस बिन्दु पर पहुँचते हैं कि हम लोग सूचनाओं को दो ढंग से संसाधित करते है-

1 उद्दीपक की उसकी विशेषताओं के रूप में विश्लेषित करके उसके अर्थ को समझने की कोशिश की जाती है (आधारिक ऊपर संसाधन)

2 किसी उद्दीपक के अर्थ को अपने प्रत्याशा के रूप में समझने की कोशिश की जाती है जिसमें उद्दीपक का संदर्भ महत्वपूर्ण होता है। (ऊपरी निचली संसाधन)

अतः पैटर्न पहचान में आधारिक-ऊपरी संसाधन तथा ऊपरी निचली संसाधन दोनों ही सम्मिलित होते है।

10.7 प्रत्यक्षीकरण में स्थैर्य

परिवर्तनशील संसार की उत्तेजनाआं में दान प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण के बल अस्थिर और अविश्सनीय प्रक्रम है। प्रत्यक्षीकरण में अस्थिरता के साथ-साथ स्थिरता में पाई जाती है। प्रत्यक्षीकरण में स्थैर्य मुख्यत निम्न प्रकार से पाया जाता है।

10.8 आकार स्थैर्य

आकार स्थैर्य का अर्थ है जब प्रत्यक्षीकरण करने वाले व्यक्ति और उद्दीपक के बीच की दूरी बढ़ाने-घटाने से भी उद्दीपक के आकार में परिवर्तन का अन्तर न दिखाई दे तो वह आकार स्थैर्य है।

होल्वे तथा बोरिंग ने अपने एक प्रयोग में देखा कि जब प्रत्यक्षीकरण करने वाला व्यक्ति दोनों आँखों से वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करता है। तब प्रत्यक्षीकरण में अति स्थैर्य पाई जाती है, दुसरे शब्दों में दूर की वस्तुएँ भी अपने आकार की अपेक्षा बड़ी दिखाई देती है। दूसरी ओर जब प्रत्यक्षीकरणकत्र्ता केवल एक आँख स्थैर्य रहता है।

कुछ अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि आकार स्थैर्य आयु वृद्धि के साथ-साथ बढता है इसके अतिरिक्त आकार स्थैर्य की उद्दीपक का ज्ञान और उद्दीपक के साथ अनुभव तथा उद्दीपन के प्रत्यक्षीकरण का समय आदि कारक भी महत्वपूर्ण ढंस से प्रभावित करते है।

10.9 रूप स्थैर्य

रूप के आधार पर उद्दीपकों में अन्तर और तादात्मीकरण स्थापित किया जाता है। भाउलेस तथा गिब्सन ने प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यक्षीकरण में रूप स्थैर्य की मात्रा का सम्बन्ध वातावरण में उपस्थित दिक् संकेतों से होता है। तथा प्रत्यक्षीकरण में रूप स्थैर्य उतना अधिक होता है जितना ही अधिक स्पष्ट संकेत दिव्य परिपेक्ष्य प्रदान करते है। आयु भी रूप स्थैर्य को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। एक अध्ययन में बोरेसन तथा लीचे ने यह सिद्ध किया कि अभ्यास भी रूप स्थैर्य का प्रमुख कारक है।

10.10 चमक तथा रंग स्थैर्य

प्रत्यक्षीकरण में चमक स्थिरता पाई जाती है चमक स्थैर्य की भाँति रंग स्थैर्य भी प्रत्यक्षीकरण में पाया जाता है परन्तु रंग स्थैर्य चमक स्थैर्य की भाँति पूर्ण रूप से नहीं पाया जाता है। रूप स्थैर्य का पूर्ण रूप में न पाए जाने का मुख्य कारण वातावरण में उपस्थित चमक है।

वालाच ने अपने अध्ययनों ये यह निष्कर्ष निकाला कि जब प्रत्यक्षीकरणकत्र्ता के लिये सीमित समय होता है तो इस अवस्था के वातावरण की चमक का अनुपात उद्दीपक की चमक को प्रभावित करता है।

बैक के अध्ययन से स्पष्ट है कि चमक स्थैर्य उद्दीपकों की दिक् स्थिति से प्रभावित होती है उनके अनुसार उद्दीपकों के चारों ओर के वातावरण में संगठन किस प्रकार का है यह चमक स्थैर्य को प्रभावित करता है।

10.11 स्थिरता अस्थिरता विरोधाभास

प्रत्यक्षण स्थिरता के क्षेत्र में किए गये प्रयोगों से यह स्पष्ट हुआ कि उद्दीपनों के आकार रंग आदि में परिवर्तन होने के पश्चात् भी एक निश्चित एवं स्थिर प्रारूप में ही प्रत्यक्षण किया जाता है उदाहरण के लिए यदि हम दुध की गिलास को 4 फिट की दूरी से देखे या उसे 20 फिट की दूरी पर रखे उसे हम भोजन के प्लेट के रूप में ही दंबे। इसी प्रकार यदि एक मोबाइल को धूप अथवा छाया में रखकर

प्रत्यक्षण करे वह एक ही रूप में प्रत्यक्षीकृति किया जाएगा पहली स्थिति में अक्षीयपटलीय प्रतीभा में भिन्नता होने के बावजूद भी प्रत्यक्षण में स्थिरता होती है।

मनोवैज्ञानिकों ने यह अध्ययन करने का प्रयास किया कि जब सभी उद्दीपन में समाजीयता उत्पन्न कर दी जाये ताकि उनमें पूर्ण स्थिरता तथा समरूपता आ जाए इसका प्रभाव प्रत्यक्ष नात्मक अनुभूति पर क्या पडेगा? इस हेतु प्रयोगात्मक अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्ति के प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभूति में स्थिरता एवं श्रेष्ठता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उदीपक को अस्थिर बनाकर रखा जाए इस प्रकार स्थिरता अस्थिरता विरोधानत्स उत्पन्न हुआ।

स्थिरता अस्थिरता विरोधाभास एक ऐसी प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अवस्था माना जा सकता है जिसमे प्रत्यक्षण में स्थिरता तथा स्पष्टता लाने के लिए उद्दीपक में अस्थिरता तथा परिवर्तन लाना आवश्यक हो जाता है। स्थिरता अस्थिरता विरो. के सत्यापन के लिए प्रयोगों में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की गई जिसमें उद्दीपकों की प्रतिभा हमेशा एक समान रह सके। इसे स्थिगित या स्थिर प्रतीभा कहा जाता है।

अलपर्न (1971) क्रानस्वीर (1970), डिचबर्न (1973), हेकेन्मूलर (1965) प्रिटचार्ड (1961) ने इसे प्रयोगों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया इनके प्रयोगों में प्रयोज्यों के अक्षीयपटलीय पर उद्दीपक के बनने वाले प्रतिबिम्ब या प्रतिभाओं को स्थिर किया गया ऐसे उद्दीपकों को देखने के बाद मात्र कुछ सेकण्डों में ही प्रयोज्यों ने बताया कि उद्दीपक धीरे-धीरे उनकी आंखों के सामने से गायब होने लगा जिसके परिणाम स्वरूप उद्दीपक परिस्थिति में एकरूपता उत्पन्न हो गई और धीरे-धीरे अधिक अन्धेरा दिखने के कारण प्रयोज्यों को स्पष्ट प्रत्यक्षण होना बन्द हो गये।

स्थिगित या स्थिर आकृतियों का धीरे-धीरे लुप्त होना इस बात की ओर संकेत करता है कि नेन गतिक द्वारा व्यक्ति उद्दीपक को प्रत्यक्षीकृत कर बनाये रखने का प्रयास करता है।

मेककिन्नी (1963, 1964) ने स्थिरता अस्थिरता विरोधाभास दिखाने के लिए प्रयोग किये है। परन्तु वे स्थिगित या स्थिरता प्रतिभाओं की जगह पर चमकीली आकृतियों के उपयोग द्वारा संवेदी परिस्थिति को स्थिर रखने का प्रयास करते है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने उद्दीपक परिवर्तन में समानता एवं एक रूपता की उत्पत्ति का अध्ययन सम्पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक क्षेत्र में चमक के देवर को समान बनाकर किया है। इस तरह प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक क्षेत्र को समरूप क्षेत्र या गेंज फिल्ड कहा जाता है। कोहेन (1958), एवं सिमेन (1958) ने गेंजकेल के सहारे उदी परिस्थिति में समरूपता एवं स्थिरता लाकर उनका प्रयोज्या के प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभूति पर पडने वाले प्रभावों का अध्ययन किया।

उपयुक्त प्रयोगात्मक अध्ययनों के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्थिरता अस्थिरता विरोधा प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्थिरता से काफी सम्बन्धित है।

यह इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि वस्तुओं का सही एवं स्पष्ट स्थिरता प्रत्यक्षण करने के लिए यह आवश्यक है कि उद्दीपक परिस्थिति में स्थिरता या समरूपता न होकर अस्थिरता व भिन्नता हो।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि स्थिर उद्दीपक परिस्थिति से अस्थिर प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभूति होती है।

10.12 प्रत्यक्षणज्ञानात्मक स्थिरता का महत्वपूर्ण सामान्यीकरण

प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता कई प्रकार की होती है तथा इसके प्रत्येक प्रकार से सम्बन्धित बहुत से प्रयोग किए गए है। इन प्रयोगों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता के बारे में कुछ सामान्यीकरण निम्न है-

1 प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता में व्यक्ति जो प्रत्यक्षण करता है वह संवेदी आँकड़े तथा वस्तु सदभी के मध्य एक तरह का समझौता होता है दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता में जो अनुभव होता है वह न तो पूर्णतः वस्तु या उद्दीपक के समान होता है और न संवेदी आंकड़ों के समान बल्कि या उद्दीपक के समान होता है और न संवेदी आंकड़ों के समान बल्कि यह दोनों के मध्य होता है। बाऊलेस, 1931 ने आकार, रंग दीप्ति आदि स्थिरताओं का अध्ययन किया तथा स्थिरता अनुपात कभी न तो शून्य होता है और न 100 ही। अतः कहा जा सकता है कि विभिन्न परिस्थितियों विभिन्न व्यक्तियों में प्रत्यक्षभावांत्मक स्थिरता की मात्रा में अलग-अलग होती है।

2 मानक वस्तु तथा तुलनात्मक वस्तु के बीच निरपेक्ष अन्तर जैसे बढ़ता है, वैसे वैसे प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता की मात्रा बढती जाती है हासिया, 1943 इसे सिद्ध करते हुए बताया और उन्होने दीप्ति स्थिरता घर प्रयोग किया था जिसमें मानक तथा तुलनात्मक डिस्क को एक निश्चित दूरी पर अंधेरे की पृष्ठभूमि में अलग -अलग घूसर कागज पर रखकर दिखाया और परिणाम में देखा गया कि जैसे-जैसे घूसर कागज के दीप्ति में अन्तर उत्पन्न होता है। बर्नस्विक 1940 ने अपने अध्ययन में पाया कि 50 मिलिमीटर के मान ब्लाॅक को तुलनात्मक ब्लाॅक से 2 मीटर की दूरी पर रखकर दिखलाया गया तो वर्नस्विक अनुपात 50 था परन्तु जब वही मानक ब्लाक तथा तुलनात्मक ब्लाक में 10 मीटर की दूरी उत्पन्न कर दी गई तो वनीस्थिक अनुपात बढ़कर 96 हो गया।

3 यदि मानक वस्तु तथा तुलनात्मक वस्तु को पहचानने के लिए एक समान संकेत अधिक मात्रा में उपलब्ध होते है, तो प्रत्यक्षनात्मक स्थिरता की मात्रा अधिक होती है।

4 जब व्यक्ति मं सीधा या सरल वस्तु उन्मुखी मनोवृति होती है तो इससे प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता बढ़ती है परन्तु जब आलोचनात्मक उद्दीपक उन्मुखी मनोवृति दिखाता है तो इससे प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता कमती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा स्पष्ट किया गया है कि समान निर्देश एवं परिस्थितियों के बावजूद भी अप्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्थिरता में अन्तर होने का कारण प्रयोज्य की मनोवृति में भिन्नता पायी जाती है।

5 उम्र में वृद्धि होने से प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता में की वृद्धि होती है वेर्ल ने आकार स्थिरता पर 2 साल के बच्चों से लेकर प्रयोग किये तथा थाऊलेस ने आकार, दीप्ति, रूप स्थिरता पर 20 से 50 साल के प्रयोज्यों को लेकर अध्ययन किये ओर यह निष्कर्ष निकाले ही प्रयोज्यों में आयु की वृद्धि होने पर उनके द्वारा अनुमवित प्रत्यक्षज्ञानात्मक स्थिरता में वृद्धि होती है।

6 निम्न प्रजातियों के प्राणियों में भी प्रत्यक्षगात्मक स्थिरता मनुष्यों जैसी होती है। जो यह बताता है कि व्यवहार का आधार जन्मजात तन्त्रिकीय सगंठन है। कोहलर 1918 गोड्स 1926, ने चूजों पर प्रयोग करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाले की इनमे दीप्ति स्थिरता ओर

आकार स्थिरता अधिक होती है। कल्ज एवं रेवेन्ज 1921 में चूजों पर अध्ययन करके उनमे रंग स्थिरता को पाया लोके ने बन्दरों और मानव वयस्कों को समान परिस्थिति में रखकर दीप्ति स्थिरता का अध्ययन किया और पाया कि बन्दरों को मानव वयस्कों की तुलना में दीप्ति स्थिरता अधिक मात्रा में होती है।

वर्कम्प वे 1923 ने मछलियों पर अध्ययन कर पाया कि मछलियों ने दीप्ति तथा रंग स्थिरता अधिक मात्रा में होती है।

11-7 साराश

गहराई प्रत्यक्षीकरण के जन्मजात तथा अर्जित होने के पक्ष विपक्ष मे मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न शोध का विवेचन किया गया है। जिसमें इसके पक्ष में हर्षवर्गर का चूजे का प्रयोग बताता है कि गहराई प्रत्यक्षण जन्मजात होता है इसके अतिरिक्त गिब्सन, वॉक ने दृष्टि भृगु उपकरण से केम्पोस लेन्गर एवं क्रोलिज ने मानव शिशुओ पर तथा पेरारिंग ने स्टिरियोस्टोपिक गहराई परीक्षण से सिद्ध किया कि गहराई प्रत्यक्षण जन्मजात होता है जबकि मिटचेल, टीस, भिग्ले तथा वीक एवं गिब्सन ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि गहराई प्रत्यक्षण अर्जित होता है। तथा दूरी प्रत्यक्षण के दो सिद्धान्त है। पहले अनुभव की सिद्धान्त इस का सर्वप्रथम पतिपादन जार्ज वर्केली 1907 ने किया। इसके अनुसार व्यक्ति दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण अपने अनुभूति एवं पूर्व परीक्षण के आधार पर करता है तथा दूसरे गिब्सोमियन सिद्धान्त (प्रतिपादक गिब्सन 1979) के अनुसार अक्षिपटल तक पहुंचने वाले दृष्टि उद्दीपक अपने आप में पर्याप्त होते है उन्हें किसी अदृष्टि सूचना द्वारा सपूरित करने की जरूरत नहीं पड़ती और व्यक्ति को दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण होता है। गिब्सन ने गठन प्रणवता को महत्व दिया। वातावरण में उपस्थित वस्तुऐं जिनका हम प्रत्यक्षण करते है। मूलत: तीन विमाओं में विन्यासित हो सकता है। तीसरा विमा को दिक् प्रत्यक्षण कुछ खास संकेंतों को दो भागों में बांटा गया है एक नेत्री संकेत तथा द्विनेत्रीय संकेत है। एक नेत्रीय संकेत एक आंख से ग्रहण किये जा सकते है और वस्तुओं की दूरी गहराई तथा सघनता का ज्ञान होता है इसमें हस्तक्षेप या आच्छादान, दृष्टि पटलीय प्रतिबिम्ब का आकार, रेखीय परिदृक्ष्य गठन प्रवणता, छाया, वायवीय परिदृश्य, गतिबोधक गहराई संकेत प्रमुख है। सभी एक नेत्रीय संकेतों का एक सामान्य गुण यह है कि इसे अनुभव द्वारा सीखता है न कि जन्म से। द्विनेत्रीय संकेत के लिए दोनों आंखों का होना आवश्यक है, इसे शारीरिक संकेत भी कहा जाता है। कोरेने पोरेक तथा वार्ड (1979) के अनुसार प्रमुख द्विनेत्री संकेत तीन प्रकार के है समायोजन, अभिसिद्धता तथा अपसारिता, द्विनेत्री विभिन्नता या अक्षिपटलीय विभिन्नता। पेटर्न प्रत्यक्षिज्ञान के सहारे हम अपने आस पास की घटनाओं का अर्थ समझते है। पेटर्न पहचान में आधारित ऊपरी संसाधन मॉडले तथा ऊपरी निचली ससाधन मॉडल विशिष्ट विशेष सिद्धान्त तथा प्रोटो टाईप सुयेल सिद्धान्त मुख्य है । प्रत्यक्षीकरण में स्थैर्य मुख्यत: आकार, रूप, चमक तथा रंग स्थैर्य है। स्थिरता अस्थिरता विरोध प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्थिरता से काफी संबंधित है अर्थात् स्थिर उद्दीपक परिस्थिति से अस्थिर प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभूति होती है।

11_9 निबंधात्मक प्रश्न

1 गहराई व दूरी प्रत्यक्षण के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।

2 पेटर्न प्रत्यभिज्ञान के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।

11 .10 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- डी. अमेटो (1979) एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी, टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।
- राजमनिक्कम, एम. (2000), मार्डन साइकोफिजिकल एण्ड स्केलिंग मेथडर्स एण्ड एक्सपेरियमेन्टेशन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (1999), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्री वास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस. तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपरीमेंटल साइकोलॉजी, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

इकाई - 11

भ्रम
Illusion

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रत्यक्षण तथा भ्रम में अन्तर

11.2 भ्रम के प्रकार

11.3 भ्रम के सिद्धान्त

(1) आँख-गति सिद्धान्त

(2) तदनुभूति सिद्धान्त

(3) क्षेत्र सिद्धान्त

(4) परिदृश्य सिद्धान्त

(5) विभ्रांति सिद्धान्त

(6) दुष्प्रयुक्त स्थिरता का सिद्धान्त

(7) गलत तुलना सिद्धान्त

(8) आभासी दूरी सिद्धान्त

11.4 भ्रम तथा विभ्रम में अन्तर

10.5 सारांश

10.16 निबंधात्मक प्रश्न

10.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

भ्रम

गलत प्रत्यक्षण को भ्रम कहा जाता है। भ्रम एक तरह का प्रत्यक्षण है न कि अप्रत्यक्षण या धोखा है। प्रत्यक्षण की श्रेणी में आते हुए भी इसे भ्रम इसलिये कहा जाता है क्योकि इसमें जो प्रत्यक्षण होता है वह पहले हुए प्रत्यक्षण से भिन्न होता है।

भ्रम एक प्रकार का प्रत्यक्षण ही है अतः भ्रम की उत्पति के लिये यह आवश्यक है कि उद्दीपक मौजुद हो। यदि किसी व्यक्ति को बिना उद्दीपक का ही कुछ प्रत्यक्षण होता है तो वह भ्रम नहीं बल्कि विभ्रम कहलाता है।

11.1 प्रत्यक्षण तथा भ्रम में अन्तर (Difference between Perception & Illusion)

प्रत्यक्षण एक संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हमें उपस्थिति व्यक्तियों, वस्तुओं एवं घटनाओं का अर्थपूर्ण ज्ञान होता है। भ्रम एक प्रकार का प्रत्यक्षण है जिसके सहारे हम वस्तुओं व्यक्तियों एवं घटनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है स्पष्ट है कि प्रत्यक्षण एवं भ्रम में काफी समानता है। ये दोनों ही मानसिक प्रक्रिया है। इन दोनों के लिये उद्दीपकों का होना भी आवश्यक है। ये दोनों एक तरह की चयनात्मक प्रक्रिया है। इस समानताओं के बावजुद भी निम्न अन्तर है-

(1) प्रत्यक्षण में हमें उद्दीपक का यथार्थ एवं सही ज्ञान होता है परन्तु भ्रम में उद्दीपक का अथथमि एवं गलत ज्ञान होता है।

(2) प्रत्यक्षण का स्वरूप स्थायी होता है किन्तु भ्रम का स्वरूप अस्थायी एवं क्षणिक होता है।

(3) अभ्यास के प्रत्यक्षण के थोड़ी स्पष्टता बढती है तथा भ्रम की मात्रा में कमी होती है।

(4) सभी सामान्य व्यक्तियों में किसी उद्दीपक का प्रत्यक्षण करीब करीब एक समान होता हैं। परन्तु एक ही उद्दीपक सभी व्यक्तियों में समान भ्रम पैदा करे ऐसा जरूरी नहीं है।

अतः स्पष्ट है कि प्रत्यक्षण एवं भ्रम में कई समानताएँ होते हुए भी वे एक दूसरे से भिन्न है।

11.2 भ्रम के प्रकार (Types of Illusion)

भ्रम कई प्रकार के होते है। कुछ भ्रम ऐसे होते है जो अधिकांशतः व्यक्तियों में समानरूप से होते है। मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार के भ्रम का सर्वव्यापी अथवा सामान्य भ्र कहा है जैसे कुछ दुरी पर आकाश व पृथ्वी से सटा हुआ दिखाई देता या रेलागड़ी की पटरियों का सही हुई होना प्रतीत होना अदि सामान्य भ्रम के उदाहरण है। इसकी विशेषता यह है कि यह स्थायी होते है। अतः इसे स्थायी भ्रम भी कहते है।

कुछ भ्रम ऐसे होते है जो व्यक्तिगत होते है एक व्यक्ति को जो भ्रम होगा तो दूसरे व्यक्ति को वही भ्रम न होकर कुछ दूसरा भ्रम होता है। जैसे अंधेरे में खडे व्यक्ति को किसी व्यक्ति को ख भे का किसी को चोट का तो किसी की भूत प्रेत का भ्रम होता है किन्तु रोशनी में स्थिति स्पष्ट होने पर सभी भ्रम दुर हो जाते है अतः ऐसे व्यक्तिगत भ्रम क्षणिक होते है।

मनोवैज्ञानिकों ने भ्रम का अध्ययन कुछ विशेष प्रकार के रेखाओं तथा कोणों आदि के आधार पर किया है। इस तरह के भ्रम को ज्यामितिक भ्रम की संज्ञा दी गयी है। कोरेन तथा उनके सहयोगियों (1976) ने ज्यामितिक भ्रम को 10 भागों में बाँटा है जो निम्नांकित है -

1. **मूलर-लायर भ्रम (Muller-Lyer illusion) -** इस भ्रम का नामकरण दो मनोवैज्ञानिकों के नाम पर किया गया है जिन्होंने ने इसका प्रतिपादन किया था। इस भ्रम में दो समान लम्बाई की रेखाएँ होती हैं- एक तीर रेखा तथा दूसरा पंख रेखा इन दोनों रेखाओं में व्यक्ति तीर रेखा को पंख रेखा से छोटा समझता है हालाँकि दोनों रेखाओं की लम्बाई बराबर होती है। विटेकर (1970) के अनुसार मूलर-लायर भ्रम सभी सभ्य समाज के सदस्यों में होता है परन्तु कुछ ऐसे आदिम समाज भी हैं जिनके सदस्यों को इस तरह का भ्रम नहीं होता है।

2. **पोन्जों भ्रम** -इस भ्रम में ऊपर की पड़ी रेखा नीचे की पड़ी रेखा से बड़ी मालूम होती है हाँलाकि इन दोनों रेखाआं की लम्बाई बराबर होती है।

3. **पड़ा-खड़ा भ्रम** -खडी रेखा पड़ी रेखा से बड़ी है हालाँकि इन दोनों रेखाओं की लम्बाई बराबर-बराबर है। इस तरह के भ्रम को पड़ा-खड़ा भ्रम कहा जाता है।

4. **जास्ट्रो भ्रम** - जास्ट्रों भ्रम में पैटर्न बिल्कुल ही एक-दुसरे के समान हैं परन्तु ऊपर का पैटर्न नीचे के पैटर्न से छोटा दिखलाई देता है।

5. **डेलवोफ भ्रम (Delboef illusion)** - इसतर के भ्रम में दो समान वृत्तों को दो परिस्थितियों में रखा गया है। एक वृत्त बड़ा गोला के भीतर है तथा दूसरा वृत्त छोटा गोला के भीतर है। बड़ा गोला के भीतर का वृत्त छोटा गोला के भीतर के वृत्त से छोटा दिखलाई पड़ता है, हालाँकि दोनों वृत समान है।

6. **अर्नस्टीन भ्रम** - इस तरह के भ्रम में बीच का वर्ग कुछ विकृत दिखलाई पड़ता है हालाँकि वर्ग की चारों भुजा की लम्बाई समान है और सभी रेखाएँ सीधी है।

7. **ऑर्विसन भ्रम** - में बड़ा चक्र के भीतर प्रकार का वृत्त कुछ विकृत दिखलाई पड़ता है हालाँकि वृत्त में कोई विकृति ज्यामितिक नियमों के अनुसार नहीं है।

8. **जालन्तर भ्रम** - इस भ्रम में सात समानान्तर रेखाएँ हैं जो सभी एक ही दिशा में है। परन्तु देखने में ऐसा लगता जाता है कि इन सात सामान्तर रेखाओं की दिशा में विकृति है अर्थात वे अलग-अलग दशाओं में हैं।

9. **वुंट भ्रम** - इस भ्रम में दोनों पडी हुई समानान्तर रेखाएँ यद्यपि बिल्कुल सीधी दिशा में है फिर भी बीच में कुछ विकृत दीख पड़ती है। दूसरे शब्दों में बीच में ये दोनों रेखाएँ कुछ एक-दूसरे की ओर सटती हुई दिखती है।

10. **घुमाव रस्सी भ्रम** - में एक घुमावदार रस्सी है। यदि कोई व्यक्ति (जो ऊपर में हैं) से घुमना प्रारंभ करता है तो भीतर जाने के बजाय घूमति है घुमते वह पुनः उसी स्थान यानी श्।श् पर पहुँच जाता है।

इन प्रमुख ज्यामितिक भ्रम के अलावा कुछ जिन पर को मनोवैज्ञानिकों जैसे ओभर (1968) तथा रॉक (1975) ने अधिक बल दिया है। ऐसे निम्नांकित दो भ्रम महत्वपूर्ण है।

11. **सैण्डर समान्तर चतुर्भुज भ्रम**- इस भ्रम में चतुर्भुज में दो विकर्ण हैं वे तथा इ है। ये दोनों विकर्ण में विकर्ण अधिकांशतः व्यक्ति को इ से बड़ा दिखलाई पड़ता है हालाँकि सच्चाई यह है कि दोनों विकर्ण लम्बाई में एक-दूसरे के बराबर है।

12. **पोगेनडौर्फ भ्रम**- इस भ्रम में एक ही तीरछी रेखा या विकर्ण दो समान आयात को काटती है। परन्तु ऐसा लगता है कि एक तीरछी रेखा या विकर्ण दो समान आयात को काटती है। परन्तु ऐसा लगता है कि एक तीरछी रेखा नहीं बल्कि तीन अलग-अलग तीरछी रेखाएँ हैं जो इन दोनों आयतों को काट रही हैं।

इस तरह से हम देखते हैं कि ज्यामितिक भ्रम विभिन्न प्रकारों से मूलर-लायर भ्रम पड़ा-खड़ा है। काफी महत्वपूर्ण हैं भ्रम के वर्गीकरण में अन्य भ्रमों जैसे चाँद भ्रम तथा गलियारा भ्रम का नाम भी उल्लेखनीय है।

इस प्रकार ज्यामितिक भ्रम कई प्रकार के होते है।

11.3 भ्रम के सिद्धान्त (Theories of Illusion)

मनोवैज्ञानिकों ने भ्रम से संबंधित कई अध्ययन किये जिनके आधार पर कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। ओभर, रॉक, जसनी तथा हाचवर्ग आदि ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जिन्होने भ्रम के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किये। इन लोगों ने भ्रम को तीन भागों में बांटा। एक श्रेणी वह है जिसमें भ्रम का कारण उद्दीपक से आने वाली सूचनाओं में कुछ त्रुटियों है। दूसरी श्रेणी वह है जिसमे भ्रम को कुछ तन्त्रिकीय स्तर के रूप में व्याख्या की गई है। तथा तीसरी श्रेणी वह हैं जिसने भ्रम को संज्ञानात्मक तत्वों के रूप में व्याख्या की गई है।

भ्रम का सबसे पहला वैज्ञानिक विश्लेषण जे. जे. ओपेलल द्वारा 1854 में किया गया और उसके बाद फिर उसके गहन अध्ययन में कई मनोवैज्ञानिकों ने रूचि दिखलायी। इन तीनो श्रेणियों में आने वाले सभी सिद्धान्तों की व्याख्या करना यहाँ संभव तो नहीं है फिर भी कुछ सिद्धान्तों का वर्णन निम्नांकित है-

(1) आँख-गति सिद्धान्त

ओभर द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त के अनुसार प्रथम श्रेणी यदि उद्दीपक के मिलने वाले सूचनाओं में सन्निहित त्रुटियों द्वारा भ्रम की व्याख्या करने वाला सिद्धान्त है।

इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति जब किसी ज्यामितिक चित्र को देखता है तो उसका आकार व किनारे द्वारा व्यक्ति की आँख की गति में कुछ परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन के कारण व्यक्ति को भ्रम होता है।

उदाहरणस्वरूप पड़ा खडा भ्रम में खडी रेखा को देखने में तेज गोलक में गति होती है उसमें व्यक्ति को अधिक प्रयास करना पड़ता है परन्तु पडी रेखा को देखने में नेत्र गोलक की जो गति होती है उसमे व्यक्ति को कम प्रयास करना पडता है यही कारण है कि खड़ी रेखा की लम्बाई पडी रेखा की लम्बाई की अपेक्षा अधिक मालूम होती है।

यह सिद्धान्त ओभर (1968) के अनुसार प्रथम श्रेणी यानी उद्दीपक से मिलने वाले सूचनाओं में सन्निहित त्रुटियों द्वारा भ्रम की व्याख्या करने वाला सिद्धान्त है।

इस सिद्धान्त की प्रमुख दो आलोचनाएँ हैं-

1 स्कीफमैन तथा थामसन (1974) ने अपने प्रयोग में जब टैचिस्टोस्कोप के सहो इतना कम समय के लिए कुछ ज्यामितिक चित्रों को दिखलाया जिसमें नेत्र गोलक में गति होने का प्रश्न ही नहीं उठता है, तो पाया कि ऐसी परिस्थिति में भी भ्रम होता है। दूसरे शब्दों में बिना गति के भी भ्रम होता है जो स्पष्टतः इस सिद्धान्त के विरूद्ध है।

2 दूसरी आलोचना भी कुछ पहली ही जैसी है। इभान्स तथा मार्सडन (1966) ने एक प्रयोग किया जिसमें स्थिर प्रतिबिम्ब प्रविधि द्वारा व्यक्ति के अक्षिपटल पर पड़ने वाले उद्दीपक के

प्रतिबिम्ब को स्थिर किया। इस स्थिरता के बावजूद भी व्यक्ति में भ्रम हुआ जो आँख गति सिद्धान्त के अनुसार नहीं होना चाहिए था क्योंकि अक्षिपटल पर बनने वाले प्रतिबिम्ब का स्थिर होने से जो स्थिति उत्पन्न होती है वह नेत्र गोलक में गति न होने से उत्पन्न स्थिति के समान है।

(2) तदनुभूति सिद्धान्त

लिपस द्वारा प्रतिपादित भ्रम के इस क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार ज्यामितिक चित्रों को देखते समय व्यक्ति में कुछ विशेष सावेगिक स्थिति उत्पन्न होती है जिसके कारण भ्रम की उत्पति होती है।

उदाहरणस्वरूप मूलर लायर भ्रम में पंख रेखा को देखने से व्यक्ति में फैलान की सांवेगिक अनुभूति होती है जबकि तीर रेखा को देखते समय सिकुडन की सांवेगिक अनुभूति होती है। यही कारण है कि पंख रेखा तीर रेखा से बड़ी दिखाई देती है।

(3) क्षेत्र सिद्धान्त

गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त में उन्होने कहा कि भ्रम की परिस्थिति में उद्दीपक का पूर्ण क्षेत्र उद्दीपक के किसी एक भाग के प्रत्यक्षण को प्रभावित करता है।

जब भी व्यक्ति किसी उद्दीपक चित्र को देखता है तो उस चित्र में संतुलन का एक बिन्दु होता है जहाँ आकर्षण बल तथा विकर्षण बल समान होता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई दूसरा चित्र या रेखा को उसमे जोड़ा जाता है तो उससे संतुलन में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण दूसरा चित्र या रेखा अपने मूल रस में विकृत नजर आती है और हमें भ्रम होता है।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन गेस्टाल्टवादियों द्वारा किया गया था। इन लोगों कहना था कि भ्रम की परिस्थिति में उद्दीपक का पूर्ण क्षेत्र उद्दीपक के किसी एक भाग के प्रत्यक्षण प्रभावित करता है। जब भी व्यक्ति किसी उद्दीपक चित्र को देखता है तो उस चित्र में संतुलन एक बिन्दु उत्पन्न होता है जहाँ आकर्षण बल तथा विकर्ण समान होता है। ऐसी परिस्थिति में यदि कोई दूसरा चित्र या रेखा को उसमें जाता है, तो उससे संतुलन में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है जिनके कारण दूसरा चित्र या रेखा ने मूल रूप से विकृत नजर आता है और हमें भ्रम होता है। के संतुलन केन्द्र में गड़बडी के साथ भी होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने क्षेत्र सिद्धान्त की आलोचना किया है और कहा है कि इस सिद्धान्त द्वारा सभी तरह की व्याख्या नहीं होती है। इसके द्वारा अर्नस्टीन भ्रम, आर्विसन भ्रम, वुंट भ्रम आदि जिनका आधार आकार तथा दिशा में विकृति हैं, की व्याख्या तो होती है परन्तु मूलर लायर भ्रम, खड़ा-पड़ा भ्रम आदि की व्याख्या नहीं हो पाती है।

(4) परिदृश्य सिद्धान्त

परिदृश्य सिद्धान्त को समरूपता सिद्धानत भी कहते है। इस सिद्धान्त के अनुसार भ्रम होने का प्रमुख कारण व्यक्ति द्वारा रेखाओं या चित्रों के बीच एक खास परिदृश्य या पृष्ठभूमि को देखना होता है।

उदाहरण स्वरूप मूलर लायर भ्रम में तीरछी रेखाओं द्वारा एक विशेष प्रकार का परिदृश्य बनता है जिसके कारण तीर रेखा पंख रेखा के छोटी महसुस होती है।

भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न संस्कृति के नियमों को सीखे हुए होते है। इन नियमों के आधार पर ही वे किसी वस्तु या घटना को देखते है और इस प्रकार व्यक्ति में किसी वस्तु या घटना को देखने या समझने के लिये एक खास परिदृश्य विकसित होता है। इसी परिदृश्य के कारण ही व्यक्ति में भ्रम उत्पन्न होता है।

परिदृश्य सिद्धान्त को समरूपता सिद्धान्त अगर परिदृश्य सिद्धान्त की यह व्याख्या ठीक है तो एक संस्कृति से दूसरे प्रकृति के व्यक्तियों द्वारा अनुभव किये गये भ्रम की मात्रा में अन्तर होना चाहिए। इस तथ्य के समर्थन सीगल कैम्पबेल तथा गर्सकोविटस (1963, 1966) द्वारा किया गया प्रयोगात्मक सबूत पर्याप्त है। इन लोगों ने यूरोपियन अफ्रिकन तथा अन्य समुदाय के कुछ प्रयोज्यों को मूलर लायर भ्रम, तथा सैण्डर समान्तर चतुर्भुज भ्रम की मात्रा सबसे अधिक थी जबकि अन्य दूसरे संस्कृति तथा समुदाय के प्रयोज्यों में खड़ा पड़ा भ्रम की मात्रा सबसे अधिक थी। प्रयोगकत्र्ताओं के अनुसार भ्रम की मात्रा में इस तरह के अन्तर का कारण भिन्न भिन्न समुदाय एवं संस्कृति में वस्तुओं को भिन्न-भिन्न परिदृश्य में देखने की आदत है। मनोवैज्ञानिकों ने परिदृश्य सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि इस सिद्धान्त द्वारा जिन भ्रमों की व्याख्या होती है, उसकी व्याख्या दूसरे ढंग से आसानी से हो सकती है। जैसे कुन्नापास (1957) के अनुसार पड़ा खड़ा भ्रम इसलिए होता है कि क्योकि दृष्टि क्षेत्र वास्तव में अंगकार डाकार होता है जिसका परिणाम यह होता है कि खड़ी रेखा का व्यक्ति अधिप्राक्कलन करता है क्योंकि यह दृष्टि क्षेत्र की सीमा के नजदीक होता है।

(5) विभ्रांति सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति भिन्न-भिन्न रेखाओं और चित्रों को जब देखता है तो वह उसका विस्तृत विश्लेषण करना प्रारभ कर देता है इस विश्लेषण के दौरान उसमे विभूति होती है और परिणामस्वरूप भ्रम की उत्पति होती है।

उदाहरण स्वरूप मूलर लायर भ्रम में जब व्यक्ति तीर रेखा तथा पंख रेखा को गौरपूर्वक देखता है तो वह साथ ही साथ उसका विश्लेषण भी करने लगता है। वह पंख रेखा व तीर रेखा के किनारे की तीरछी रेखाओं को देखता है तथा उसकी मोटाई और लम्बाई की एक दूसरे से भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से तुलना करने लगता है परिणामस्वरूप व्यक्ति के मन में सभ्रांति उत्पन्न होती है जिसमें भ्रम उत्पन्न होता है।

(6) दुष्प्रयुक्त स्थिरता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार भ्रम में उपलब्ध कुछ संकेतों को आकार स्थिरता को स्थायी रखने वाले संकेत के रूप में व्यक्ति प्रत्यक्ष करने लगता है और उसी आकार स्थिरता के आधार पर लकीरों या रेखाओं की लम्बाई का निर्णय करते है। जो रेखा उन्हे दूर नजर आती है उसे वह उस रेखा से बड़ा होने का प्रत्यक्षण करता है जो उन्हे अपेक्षाकृत नजदीक नजर आती है।

उदाहरणस्वरूप पोल्लो भ्रम में ऊपरी रेखा निचली रेखा से समान होते हुए भी बड़ी नजर आती है क्योकि वह निचली रेखा से दूर नजर आती है।

(7) गलत तुलना सिद्धान्त

इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि व्यक्ति को भ्रम इसलिये होता है क्योकि वह आकृति के गलत हिस्से से तुलना कर अपना निर्णय निर्धारित करता है। जैसे मूलर लायर भ्रम में व्यक्ति आकृति के रेखाओं को डैनों से अलग करने में असफल रहता है और वह डैनों के अंतिम छोरों के बीच की दूरी की तुलना करता है। चूंकि यह तुलना अनुप्रयुक्त एवं गलत है इसलिये व्यक्ति को भ्रम होता है।

(8) आभासी दूरी सिद्धान्त

कॉफ़मेन तथा रॉक प्रतिपादित यह सिद्धान्त आकार दूरी अपरिवर्तनशील प्राकल्पना से संबंधित है। इस प्रावकल्पना के अनुसार यदि दो वस्तुओं के अक्षिपटलीय प्रतिभा का आकार एक ही होता है तो वह वस्तु जो अधिक दूरी पर प्रतीत होती है वह उस वस्तु की अपेक्षा बड़ी नजर आती है जो कम दूरी पर प्रतीत होती है।

उदाहरण स्वरूप चांद भ्रम में चाँद जब क्षैतिज पर होता है तो वह बड़ा नजर आता है। परन्तु जब वही चाँद प्रत्यक्षणकत्र्ता के सिर के ठीक ऊपर होता है तो छोटा नजर आता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार चाँद जब क्षैतिज पर होता है तो वह प्रत्यक्षकर्ता को अधिक दूरी पर तथा जब वह शिरोबिन्दु पर होता है तो वह कम दूरी पर अवस्थित अतीत होता है। इस आभासी दूरी में अन्तर होने के कारण चाँद भ्रम होता है।

11.5 भ्रम तथा विभ्रम में अन्तर (Difference between Illusion & Hallucination)

भ्रम एक प्रकार का गलत प्रत्यक्षण है। चूकि भ्रम एक प्रत्यक्षण के अतः इसके लिये उद्दीपक का होना आवश्यक है किन्तु कभी-कभी व्यक्ति बिना उद्दीपक के भी प्रत्यक्षण करता है इसे विभ्रम कहा जाता है।

उदाहरण स्वरूप यदि अंधेरे कमरे में छाये को व्यक्ति उसे कोई दूसरा व्यक्ति समझता है तो यह भ्रम है किन्तु अंधेरे कमरे में कोई व्यक्ति बिना किसी उद्दीपक के यह प्रत्यक्षण करता है कि उसमें कोई व्यक्ति है तो इसे विभ्रम कहते है। स्पष्ट है भ्रम तथा विभ्रम दोनों में ही व्यक्ति को गलत ज्ञान होता है। इस समानता के बावजुद दोनों में निम्न अन्तर है।

1. भ्रम में उद्दीपक होता है किन्तु विभ्रम में कोई उद्दीपक नहीं होता है।
2. भ्रम अधिकतर बाह्य कारणों से होता है परन्तु विभ्रम अधिकतम आत्मगत कारकों जैसे भय, चिन्ता मानसिक रोग आदि कारणों से होता है।
3. भ्रम में उद्दीपक होने से इसका स्वरूप स्पष्ट होता है किन्तु विभ्रम में उद्दीपक के न होने से इसका स्वरूप अस्पष्ट होता है।
4. विभ्रम अधिकतर असामान्य व्यक्तियों को ज्यादा होता है जबकि भ्रम सामान्य व असामान्य दोनों व्यक्तियों को हो सकता है।

5. सामान्य व्यक्ति के भ्रम का स्वरूप स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार का होता है जबकि सामान्य व्यक्ति में विभ्रम का स्वरूप हमेशा अस्थायी होता है जबकि असामान्य व्यक्तियों में विभ्रम का स्वरूप हमेशा स्थायी होता है।

11.6 सारांश

गलत प्रत्यक्षण को भ्रम कहा जाता है। प्रत्यक्षण एक संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा हमें उपस्थिति व्यक्तियों, वस्तुओं एवं घटनाओं का अर्थपूर्ण ज्ञान होता है। भ्रम एक प्रकार का प्रत्यक्षण है जिसके सहारे हम वस्तुओं व्यक्तियों एवं घटनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें समानताएं होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न है। भ्रम कई प्रकार के होते है जिसमें मूलर लायर, पोन्जो पडा खडा जास्ट्रा, डेलवोफ, अर्नस्टीन, आि्ब्रसन, जालन्तर, वुन्ट, घुमाव रस्सी सेन्टर समान्तर चजुभुजर्ज , पोगेनडोर्फ भ्रम मुख्य है। भ्रम में सिद्धान्तों में आंख गति, तदनुभूति क्षेत्र परिदृश्य, विभा्रि्न्स दुष्पप्रयुक्त गलत तुलना आभासी दूरी सिद्धान्त प्रमुख है। भ्रम एक प्रकार का गलत प्रत्यक्षण है। जिसके उद्दीपक के भी प्रत्यक्षण करता है जिसक विभ्रम कहा जाता है।

11-7 निबंधात्मक प्रश्न

1 भ्रम के सिद्धान्तों का विस्तृत उल्लेख कीजिए।

11. 8 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- डी. अमेटो (1979) एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी, टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।
- राजमनिक्कम, एम. (2000), मार्डन साइकोफिजिकल एण्ड स्केलिंग मेथडर्स एण्ड एक्सपेरियमेन्टेशन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- सिंह अरूण कुमार (1999), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी, श्री वास्तव बीना, आनन्द वर्षा, आनन्द वाणी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वुडवर्थ, आर.एस. तथा स्क्लोशबर्ग, एच. (1954) एक्सपरीमेंटल साइकोलॉजी, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

इकाई - 12

अधिगम एवं शाब्दिक अधिगम

Learning & Verbal Learning

इकाई की रूप रेखा

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 अधिगम का स्वरूप एवं परिभाषा
12.3 अधिगम की विशेषताए
12.4 अधिगम के प्रकार
12.5 सांराश
12.6 बोध प्रश्न
12.7 शाब्दिक अधिगम का स्वरूप
12.8 शाब्दिक अधिगम की विधियॉं
12.9 शब्दिक अधिगम के प्रकम
12.10 शाब्दिक अधिगम की सैद्धान्तिक व्याख्या
12.11 शाब्दिक अधिगम में साहचर्य के सम्बंध में समकालिन मत
12.12 शाब्दिक अधिगम के क्षेत्र
12.13 सारांश
12.14 अभ्यास प्रश्न
12.15 संदर्भग्रंथ

12.0 प्रस्तावना (Introduction)

सामान्य शब्दों में सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। मानव व्यवहार को नियन्त्रित करने में अधिगम एक आधारभूत प्रक्रिया हैं। जीवन के प्रारम्भ से ही अधिगम प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, मानव जीवन के सामाजिक रीति रिवाजों , अभिवृत्तियों संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं व आदतों के निमार्ण में अधिगम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बच्चा जन्म लेने के बाद अपने आसपास के वातावरण के सम्पर्क में आता है और उसके प्रति प्रतिक्रिया करता है। इस प्रकार व्यक्ति व वातावरण के बीच की गयी अंतक्रिया अधिकगम ही अधिगम है। अधिगम एक मानसिक प्रक्रिया हैं क्योकि मानसिक प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति व्यवहार के माध्यम से होती है। मानव व्यवहार अनुभवों के

आधार पारिमार्जित होता है, इससे शब्दो में प्रत्येक प्राणी कुछ आन्तरिक शक्तियों को लेकर पैदा होता है जो उसे परिस्थितियों का आसानी से सामना करने के योग्य बनाती है,

उद्दीपक (S) ⟹ प्रतिक्रिया (R) ⟹ व्यवहार (B)

12.1 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के निम्न उद्देश्य हैं:-

अधिगम मानव के मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार में अनुभवों द्वारा संशोधन ताकि मानव व्यवहार समाज के अनुरूप हो सकें। अधिगम का आधार व्यवहार है और मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन है, अत: अधिगम को मनोविज्ञान का प्रमुख अंग माना गया है, अधिगम के उद्देश्य हैं -

- अधिगम की वैज्ञानिक परिभाषा का निरूपण।
- अधिगम एक प्रमुख मानसिक प्रक्रिया है जिस पर मानसिक प्रक्रिया के कई प्रमुख तत्वों का प्रभाव पड़ता है, उनका अध्ययन करना।
- अधिगम और अभिप्रेरणा के सम्बन्धों की चर्चा करना ।
- अधिगम की विभिन्न सिद्वान्तों द्वारा व्याख्या करना।

12.2 अधिगम का स्वरूप एवं परिभाषा (Defination of Learning)

एक छोटा शिशु जब कुछ दूरी पर रखे दीपक को जलते हुए देखता है तो उसे देखकर बालक को उत्सुकता जागृत होती है वह दीपक की ओर बढ़ता है और उसकी लौ को पकड़ने की चेष्टा करता है जैसे ही वह उसे पकड़ने की चेष्टा करता है उसका हाथ जल जाता है। जलने की अनुभूति के साथ बालक अपना हाथ खींच लेता है। यह घटना उसके व्यवहार में परिवर्तन लाती है। वह फिर कभी जलती हुई वस्तुओं को नही पकड़ेगा, यही सीखना है। अत: सीखना अनुभव द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है। नवीन अनुभव व्यवहार में वृद्वि तथा संशोधन करता हैं। मनोविज्ञान में सीखने से तात्पर्य सिर्फ उन्ही परिवर्तनों से होता है जो अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होते है। प्राय: इसी तरह के परिवर्तन का उद्देश्य व्यक्ति को किसी दिये हुए वातावरण में समायोजन करने में मदद करने से होता है। (Learning refers to the change in behaviour as a funition of praitice or experience with a view to make adjustment to the enviourment) विभिन्न मनौवैज्ञानिकों ने सीखने की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी है।

गुथरी के अनुसार '' सीखना किसी परिस्थिति में भिन्न ढ़ग से कार्य करने की क्षमता है जो परिस्थिति के अनुसार पूर्व अनुभवों के कारण आती है।''

Gutherie – The ability to learn that's' to respond diffently to a situation of past response to the situation is learning.

गिलफोर्ड जे. पी. के अनुसार - व्यवहार के कारण व्यवहार में परिवर्तन तथा अधिगम के कारण व्यवहार में परिवर्तन के बीच अन्तर दिया गया है, क्योकि ये गतिविधियॉ एक साथ होती है।

J.P. Gilford – Learing is change in behaviour resulting from behaviour.

स्ट्रेंज तथा चैपमैन 1973 के अनुसार ‘‘ सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है। 'According to strange & chapman (1973) Learning may be defined as the process by which a relatively endusing change in behaviour occurs as a result of experience of practice'

मार्गन किंग , विस्ज तथा स्कॉप्लर 1986 ने सीखना को परिभाषित करते हुए कहा है - ‘‘ अभ्यास या अनुभूति के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन को सीखना कहा जाता है।

Mrrgan , king, weisz & scholper (1986) learning can be defined as any relatively parmanent change in behaviours that occurs as a result of practice or experience.'

गैरेट ने कहा है - अधिगम व्यवहार का संगठन है। अधिगम एक गतिविधि है जिसके कारण हम अपनी अनुक्रिया को नई आदतों के अनुरूप संगठित करते है।

Garret – learning is an organization of behaviour learning is the activity by virture of which we orgamise our respouses with new habits.

मरफी - अधिगम , व्यवहार तथा प्रत्यक्षीकरण , दोनो में परिवर्तन है,

Murphy – Learning is a modification of both behabiour and the way of perceving.'

हिलगाडर् - अधिगम वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई क्रिया आरम्भ होती है या सामना की गई परिस्थिति द्वारा परिवर्तित की जाती है। इसकें लिए आवश्यक है कि क्रिया के परिवर्तन की विशेशताओं मूल प्रवृत्तियों की प्रक्रिया , परिपक्वता या प्राणी की अस्थायी अवस्थाओं के आधार पर उस प्रक्रिया को समझाया न जा सकें।

Hillgard – Learning as ' The process by which an activity originates or is changed through reacting to an encountered situation provided that characteristics of the change in activity cannot be explanined on the basis of native responses , tendencies , malurity or timporaryy status of the organasm.'

सारांश (Summary) में हम कह सकते है कि अधिगम का अर्थ है अपने व्यवहार को किसी निर्दिस्त लक्ष्य को प्राप्ति हेतु अनुकूल बनाना तथा बदलना तथा किसी ऐसी विधि का विकास है जिससे समस्या से निबटा जा सके ।

12.3 अधिगम की विशेषताएँ (Characterstics of Learning)

योकम तथा सिम्पसन (Yoakam and simpson) ने सीखने कुछ प्रमुख विशेशताओं का उल्लेख किया है।

- अधिगम अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन हैं (Learning is relatively permanent change) प्रत्येक सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन नही होता है अगर परिस्थिति ऐसी है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार मे परिवर्तन नही होता है तो उसे हम सीखना नही कहेंगे। व्यवहार में परिवर्तन अच्छा तथा अनुकूलित (Adaptive) परिवर्तन भी हो सकता है या खराब एवं कुसमायोजित (maladaptive) परिवर्तन भी हो सकता है। जैसे चोरी , करना, झुठ बोलना।
- अधिगम जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है (Learning is a life long process) जन्म लेने के साथ ही बच्चा अपने वातावरण (माता-पिता, भाई-बहन) के सम्पर्क में आता है उनसे कुछ न कुछ अनुभव एवं क्रियायें सीखता है।
- अधिगम सार्वभौमिक है। (Learinig is universal) अधिगम की प्रक्रिया किसी विशिष्ट स्थान अथवा विशिष्ट मनुष्यों में नही पायी जाती है वरन् सभी जीवों में पायी जाती है।
- अधिगम अनुभवों का संगठन है। (Learining is organisatiuon of experience) हर एक क्षण व्यक्ति नये-नये अनुभव अर्जित करता है तथा इन्ही नये व पुराने अनुभवों को संगठित कर व्यक्ति सीखता है।
- अधिगम उद्देश्यपूर्ण है। (Learning is purposive) किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ही व्यक्ति कार्य को सीखता है उद्देश्य बिना सीखने की क्रिया निष्फल होती है।
- अधिगम विवेकपूर्ण होता है। (Learinig is rational) किसी कार्य को विवेकपूर्ण ढ़ग से करना ही अधिगम है।
- अधिगम व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो है। (Learinig is individual and social both) यद्यपि व्यक्ति स्वत: प्रयत्न करके कार्यो की सीखता है परन्तु अनेक बातें ऐसी होती है जो वह दूसरों से देखकर एवं सुनकर सीखते है।

12.4 अधिगम के प्रकार (Types of Learning)

महोदय ने एक अधिगम की आठ अवस्थाओं का वर्णन किया है जिन्हे अधिगम के प्रकार के रूप में परिभाषित की जा सकती है ये प्रकार है -

1) संकेतक अधिगम (Signal learning)
2) शाब्दिक संयोजन (Verbal association)
3) श्रृखंला अधिगम (chain learning)
4) सम्प्रत्यय अधिगम (concept learning)
5) साभिप्राय सीखना तथा प्रासंगिक सीखना (Intentional learning and incidental learning) देखें इकाई 13।
6) विभेदन तथा विवेकी अधिगम (Discrimination Learning)
7) समस्या समाधान अधिगम (Problem solving learning)

8) प्रेक्षणात्मक अधिगम (Observational learning) देखे इकाई 13

उपर्युक्त में से प्रत्येक प्रकार का अधिगम व्यक्ति भी एक भिन्न अवस्था से प्रारम्भ होता है तथा निष्पादन की एक अन्य योग्यता की प्राप्ति में परिणत हो जाता है

1) **संकेतक अधिगम (Signal Learning)** यह प्रकार पॉवलाव व वाटसन के क्लासिक अनुबन्धन अनुक्रिया का दूसरा नाम है। यह एक प्रकार का उद्दीपक प्रतिस्थापन है। ऐसे अनुबन्धन में जीव किसी नए उद्दीपक के प्रति उसी प्रकार की अनुक्रिया करने लगता है जैसा कि वह प्राय: पुराने अप्रतिबन्धित उद्दीपक के साथ करता था। यह नया उद्दीपक अनुबन्धित उद्दीपन बन जाता है। पावलाव के प्रयोग में घण्टी की ध्वनि से पुरानी अप्रतिबन्धित अनुक्रिया (लार) उत्पन्न होने लगती है। अत: लार स्त्राव (Salivation) प्रतिबन्धित अनुक्रिया बन जाती है।

2) **शाब्दिक अधिगम (Verbal Learning)** मानव सीखना (Human Learning) का एक महत्वपूर्ण पक्ष शाब्दिक सीखना है। शाब्दिक सीखना से तात्पर्य ऐसे सीखना से होता है जिसमें व्यक्ति अक्षरों, अक्षरों से बने सार्थक, अर्थहीन शब्दों, वाक्यों, चिन्हों तथा अंकों के अर्थो को सीखता है तथा उसके आशय का समझता है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में शाब्दिक सीखने का महत्व इसलिए है क्योकि वास्तव में हमें बहुत सारे तथ्यों का ज्ञान शब्दों के उपयोग से होता है।

3) **श्रृंखला अधिगम (Chain Learning)** श्रृंखला अधिगम से अभिप्राय किसी अनुक्रिया में अलग S-R संयोजन यह संयोजन शाब्दिक भी हो सकता है तथा चालक भी शाब्दिक साहचर्य, शाब्दिक श्रृंखलाओं का अधिगम है इसकी परिस्थितियॉ श्रृंखला से मिलती जुलती है। कोई श्रृंखला जब तक नही सीखी जा सकती जब तक व्यक्ति अलग-अलग SS RS साहचर्यो को पूरा करने की क्षमता का विकास नही कर लेता। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अनुक्रम की पुरनावृत्ति साहचर्य (संयोजन) का सुदृढ बनाने में सहायक होती है, प्रयोज्य की अन्तिम संतुश्टि का होना भी श्रृंखला को स्थिर करने के लिए आवश्यक है।

4) **विभेदन अधिगम (Discrimination Learning)** यह वह अधिगम प्रक्रिया है जिसके अन्र्तगत व्यक्ति भिन्न भिन्न उद्वीपकों के प्रति उनके अनुकूल अलग-अलग अनुक्रिया करना सीख जाता है। ऐसे उद्वीपकों के प्रति जो भौतिकरूप से एक जैसे प्रतीत होते हो परन्तु उनसे सूक्ष्मभेद हो। विवेकी अधिगम प्राप्त होने पर पृथक-पृथक उद्दीपक तथा अनुक्रियाएॅं एवं दुसरे से सहज ही गोरश्ट अथवा विशेशणीय हो जाते है और उन विभिन्न उद्वीपको के प्रति जो देखने में एक जैसे प्रतीत होते है। व्यक्ति भिन्न-भिन्न अनुक्रियाएॅं करने में सक्षम हो जाता है उदाहरण के लिए अधिगम प्रक्रिया में प्रयोज्य वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के लिए सुस्पष्ट व विशिश्ट उत्तर देने लगता है।

5) **सम्प्रत्यय अधिगम -** कुछ नियम द्वारा गुणों का आपस में मिलना ही समप्रत्यय कहलाता है। Baron 1992 के अनुसार ''सम्प्रत्यय उन वस्तुओ, घटनाओं, अनुभूतियों या विचारों जो एक या इससे अधिक अर्थ में एवं दूसरे से समान होते है, के लिए एक तरह का मानसिक श्रेणी होती है।'' सम्प्रत्यय निर्माण द्वारा अधिगम मे दो तथ्य महत्वपूर्ण ढ़ंग से शामिल होते है (1) गुणों का समुच्चय या समुह (Set of features) किसी भी वस्तु में पृथ्थकरण (abstraction) एंव विशमता (contrast) का गुण विघमान होता है। उदाहरण के लिए 'हरा घास' घास का गुण हरा है - जिसमें पृथ्थकरण एवं विशमता का गुण स्पष्टत: इसे अन्य वस्तुओं से अलग कर रहा है।

(2) नियम (Rule) सम्प्रत्यय का बोध होने के लिए कुछ विशेश नियम की भी आवश्यकता होती है। ये नियम एल्गोरिद्म (algorithmic) तथा स्वत: शोध नियम (Meuristic) होते है । एलगोरिद्म या गणितीय नियम जिसके लागू करने में व्यक्ति को सफलता निश्चित प्राप्त होती है उदाहरण शून्य से गुणा करने पर उत्तर हमेशा शून्य ही होगा जबकि स्वत: शोध में कोई गांरटी नही हीती है। परिस्थिति अनुसार व्यक्ति इस नियमों का प्रयोग करता है।

6) **समस्या समाधान अधिगम (Problem solving)** समस्या समाधान एक ऐसी विधि है जिसके माध्यम से प्रयोज्य लक्ष्य की प्राप्ति करता है इसमें खोज विधि का उपयोग किया जाता है। बैरन (Baron 1992) के अनुसार '' समस्या समाधान में विभिन्न अनुक्रियाओं को करने या उनमे से चुनने का प्रयास सम्मिलित होता है ताकि वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा ldsA ' Problem solving involves efforts to develop or choose among various responses in order to attain desired goals' Baron 1952 psychology P.281 .

मेटलिन (matlin 1983) के अनुसार समस्या समाधान के द्वारा अधिगम में तीन महत्वपूर्ण पहलू है -**(1)** मौलिक अवस्था (Original state) मौलिक अवस्था उस अवस्था को कहते है जो समस्या के सामने आने पर प्रारम्भ में उत्पन्न होती है। **(2)** लक्ष्य अवस्था (Croal state) समस्या समाधान होने के बाद उत्पन्न होती है। **(3)** नियम (Rules) नियम से तात्पर्य उन कार्य विधि से होता है - जिसे व्यक्ति समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य अवस्था तक पहुचने में अपनाता है। इस प्रकार अधिगम के प्रकारो में समस्या समाधान भी एक महत्वपूर्ण प्रकार है।

12.5 सारांश (Summary)

अधिगम एक मानसिक प्रक्रिया है, मानव व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिभाषित होता है। इसी परिमार्जन का काम अधिगम करती है। संक्षेप में उद्दीपक वातावरण

व्यवहार = अधिगम कहा जा सकता है। अधिगम एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। यह सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों होती है। व्यक्तिगत अधिगम में पूर्व के अनुभवों को संगणित का मानव विवेकपूर्ण ढ़ग से परिस्थितियों में सांमजस्य करता है।

अधिगम के कई प्रकार है जिनमें पे्रक्षणात्मक एवं समस्या समाधान अधिगम मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दूसरे प्रकार जीवन में सहायक अधिगम के रूप में काम करते है जैसे विभेदन अधिगम, श्रृंखला अधिगम, सम्प्रत्यय अधिगम, संकेतक अधिगम, साभिप्राय एवं प्रासंगिक अधिगम आदि ।

12.6 बोध प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये है इनमें से जो आपको सही लगे उसके सामने () तथा गलत के सामने ;ग्द्ध का निशान लगाए-

1- अधिगम मानव व्यवहार का परिमार्जन है। ( )

2- प्रगतिशील व्यवहार व्यवस्थापन्न की प्रक्रिया को सीखना कहतें है। ( )

3- अधिगम द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में केवल स्थाई परिवर्तन आते है। ( )

4- अधिगम केवल सामाजिक होती है। ( )

12.7 शाब्दिक अधिगम का स्वरूप (Form of Verbal Learning)

शाब्दिक अधिगम मानव सीखनें में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है | शाब्दिक सीखने में व्यक्ति अक्षरो, अक्षरो से बने सार्थक, अर्थ ही न शब्दों वाक्यों चिन्हों (Symbols) तथा अंको के अर्थ को सीखता है और समझता है A (Cofer ,1984) शाब्दिक सीखना को परिभाषित करते हुए कहा है -' शाब्दिक सीखना से जॉच या अध्ययन के ऐसे क्षेत्र का पता चलता है जिसमे, उन प्रक्रियाओ एवं घटनाओं में अभिरूचि का केन्द्र होता है जिसके सहारे व्यक्ति अभ्यास के माध्यम से दो शाब्दिक एकांशो को एक साथ संबन्धित करता है, उन क्रमों को सीखता है, जिसमें शाब्दिक एकांशो के पूरे सेट को उपस्थित किया जाता है, शाब्दिक एकांशो के बीच अन्तर करता है तथा एकाशो के सेट को मौलिक रूप् से दिखलाए गए क्रमों से भिन्न व स्वतन्त्र क्रम में प्रत्याहान करता है।

12.8 शाब्दिक अधिगम के प्रक्रम

शाब्दिक अधिगम से सम्बन्धित जो अध्ययन हुए हैं, इन अध्ययनों से कई प्रक्रमों का भी पता लगा है। शाब्दिक अधिगम के तीन प्रमुख प्रक्रम है -

1) क्रमिक स्थिति वक्र

क्रमिक अधिगम में पदों की क्रमिक स्थिति तथा पुन:स्मरण (पूर्वानुमान) की संख्या को क्रमश: X-अक्ष तथा Y-अक्ष पर प्रदर्शित किया जाये तो भी वक्र प्राय: होता है उसे क्रमिक स्थिति वक्र कहते है। इस प्रकार का वक्र आगे के चित्र में दिखाया गया है तथा क्रमिक शाब्दिक सीखना प्रयोग में भी इसी प्रकार का वक्र प्राप्त होता है। इस प्रकार का वक्रों के अध्ययनों से पता चला है कि इसी प्रकार का वक्र प्राप्त होता है। इस प्रकार की वक्रो के अध्ययनों से पता चलता है कि प्रयोज्य को चाहे Free Recall करवया जाये, चाहे Serial Recall करवया जाये प्रयोजय सूची में पदो को पदो की स्थिति के आधार पर ही सीखता है। पर चाहे सार्थक हो चाहे निरर्थक, क्रमिक स्थिति वक्रों की प्रकृति में कुछ न कुछ समानता अवश्य होती है। मर्डाक के प्रयोगात्म्क अध्ययनों में इस प्रकार के वक्रों का उदाहरण हैं मर्डाक के अतिरिक्त डीज ने भी इस प्रकार के वक्रों के अध्ययन किया है। इन मनोवैज्ञानिकों का निष्कर्ष यही है कि शाब्दिक अधिगम में क्रमिक पूर्वाभास विधि द्वारा अधिगम करते समय प्रयोज्य सूची के प्रारम्भ के पदों का अधिगम सर्वाधिक करता है फिर अन्त: के पदों का। प्रयोज्य के लिए मध्य के पदों का अधिगम कठिन होता है तथा पुन:स्मरण न्यूनतम संख्या में होता हैं

ग्लान्जर ने सूची के मध्य के स्थित पदों पर विलम्बर के प्रभाव का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि विलम्ब का प्रभाव मध्य के पदों पर नहीं पड़ता है। उसने अपने प्रयोग में 15 शब्दों की सूची को तीन समूहों को एक-एक बार दिया। पहले समूह से उसने तुरन्त, दूसरे से 10 सेकण्ड तथा तीसरे से 30 सेकण्ड बाद Free Recall कराया। दूसरे और तीसरे समह को 10 तथा 30 सेकण्ड के मध्यान्तर में गिनती गिनाने में व्यस्त रखा। कुछ अध्ययनों में यह देखा गया है कि क्रमिक शाबिदक अधिगम में

यदि एक ही प्रयास के बाद अधिगमन का मापन किया जाये तो प्रयोजय को सूची के प्रारम्भ और मध्य के पदों की अपेक्षा अन्त के पद अधिक याद रहते हैं परन्तू सीच को एक बार देने के के बाद यदि सूची प्रस्तुतीकरण और पुन: स्मरण के मध्यान्तर को बढ़ा दिया जाये तो निश्चत रूप से पुन:मरण छिन्न-भिन्न हो जायेगा। ऐसी अवस्था में प्रयोज्य प्रारम्भ, मध्य और अन्ति पदों में से किन पदों का अधिगम करेगा, यह मध्यान्तर और पदों की प्रकृति पर निर्भर करेगा।

2) गुच्छन

बॉसफील्ड्स ने मुक्त पुन:स्मरण में एक ऐसे परिवत्य का पता लगाया जिसे उसने कहा है। आज यही गुच्छन के नाम से प्रचलित है। गुच्छन का अर्थ है कि शाब्दिक अधिगम की सूची में जो सम्बद्ध (किसी भी प्रकार से समान) पद होते हैं, प्रयोज्य द्वारा मुक्त पुन:स्मरण में एक-दूसरे के अनुक्रम में दुहराये जाते हैं भले ही यह पद सूची में दू-दू स्थित हो। बॉसफील्ड से प्रयोग में 60 शब्दों क सूची थी तथा चार कोटि के पद में पहली कोटि में जानवरों के नाम,दूसरी में व्यवसायों के नाम, तीसरी में नामों से सम्बन्धित पद तथा चौथी में सब्जियों के नाम थें प्रयोज्य के सामने यह चार कोटियों के पद 3 सेकण्ड के अन्तर में प्रस्तुत किये गये। सम्पूर्ण सूची को एक बार प्रस्तुत करने के बाद प्रयोजय से Recall करवाया। उसने यह देखा कि प्रयोज्यों के Recall में एक कोटि के शब्द एक साथ गुच्छित होकर स्मरण किए जाते है। बॉसफील्ड्स ने अपने सहयोतगियों के साथ पुनपरिवत्य का अध्ययन अधिक वैज्ञानिक ढंग तथा बड़े प्रतिदर्श पर किया। गुच्छन को अनेक कारक प्रभावित करते है जैसे - प्रयासों की संख्या, पदो की भाषा,सूची में पदो का क्रम तथा प्रत्येक कोटि की प्रकृति आदि।

कॉफर तथा उनके साथियों ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि यदि एक कोटि के एक शब्दों को एक साथ प्रस्तुत किया जाता हैं तो गुच्छन अधिक मात्रा में तथा अधिक स्पष्ट और संगठित होता है परन्तु जब विभिन्न कोटि के पदों को Random ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तो गुच्छन मात्रा में कम, कम स्पष्ट और कम संगठित होता है। टुलविंग ने अपने प्रयोग में, जिसमें 16 पदों की दो सूचियाँ थी, इनमें से एक सूची उच्च संगठन वाली तथा दूसरी निम्न संगठन वाली थी। उच्च संगठन वाली सूची वह थी जिसका प्रयोजय किसी अन्य प्रयोग में पुन:स्मरण कर चुके थे। प्रयोग केउपरान्त यह निष्कर्ष निकाला कि उच्च संगठन वालीसूची का,अधिगम सरल था। उसने यह भी निष्कर्ष निकाला कि प्रयोज्य सूची का पुन:संगठन सुविधापूर्ण अधिगम के लिए करता है और गुच्छन का प्रक्रम घटित होने का एक मात्र कारण सुविधापूर्ण अधिगम ही प्रतीत होता है।

3) कूट संकेत

कूट संकेतन का अर्थ है कि जब शाब्दिक सामग्री का अधिगम संकेतों के आधार पर किया जाये अथवा सूची के पदों को रूपान्तरित करके किया जाये। विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि निरर्थक पदों का प्रयोज्य Proximity अथवा Codes के आधार पर सीखता है। अण्डरवूड तथा केप्पेल ने अपने प्रयोग में 20 निरर्थक शब्दों वाली सूची ली प्रत्सयेक निरर्थक शब्द में तीन अक्षर थे। प्रत्येक निरर्थक शब्द से पुन:संगठन के आधार पर दो सार्थक शब्द बनाये जा सकते है, जैसे BSU-BUS-SUB इसमें BSU निरर्थक शब्द है। इनके प्रयोग में दो प्रायोगिक दशाएँ थी - (1) पहली प्रायोगिक दशा में प्रयोयों को कूट संकेतन की संभावना के सम्बन्ध में निर्देश दिए गये थे। प्रत्येक प्रायोगिक दशा में चार अध्ययन समूह थे। ये लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रयोजय जब निरर्थक पदों का संकेतन सार्थक पदों के रूप में करके सीखते हैं तो सीखना अपेक्षाकृत सरल हो

जाता है। दूसरा निष्कर्ष इन लोगों ने यह निकाला कि जब प्रयोज्य अक्षरों को किसी भी क्रम में पुन:स्मरण करने के लिए स्वतंत्रता होते है तब इस अवस्था में कूट संकेतन पुन:स्मरण में अधिक सहायक होता है।

फारेस्टर तथा स्पीयर ने इस दिशा में प्रयोगों के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि निरर्थक पदों में अउच्चारणशीलता जितनी ही अधिक होती है, प्रयोज्य कूट संकेतन का उपयोग उतना ही अधिक करता है जब पदों में उच्चारणशीलता जितनी ही अधिक होगी, पुन:स्मरण में कूटसंकेतन का उपयोग कम होता जायेगा। निरर्थक अक्षरों को शब्दों में परिवर्तित कर सीखना कूट संकेतन का केवल एक पकार है। उपर्युक्त प्रायोगिक परिणामो के आधार पर कहा जा सकता है कि अपरिचित, उच्चारणशील, निरर्थक तथा विचित्र शब्दों या पदों के अधिगम में प्रयोज्य कूट संकेतन के आधार पर अधिगम करता है।

12.9 शाब्दिक अधिगम की सैद्धान्तिक व्याख्या (Theoretical Explanation of Verbal Learning)

1- **शाब्दिक अधिगम किस प्रकार होता है -** साहचर्य स्थापना की सहायता से वंचित अधिगम की व्याख्या की जा सकती है। शाब्दिक अधिगम और अनुबन्धन में भी समानता है। शाब्दिक अधिगम उन्हीं नियमों के आधार पर स्थापित होता है। जिन पर अनुबन्धन स्थापित होता है। युग्मित सहचर अधिगम की सहायता से अनुबन्धन और शाब्दिक अधिगम की समानता को स्पष्ट किया जा सकता है। जैसा पहले बताया जा चुका है कि युग्मित सहचर अधिगम में पहले उत्तेजना शब्द प्रस्तुत करते हैं और प्रयोज्य से प्रतिक्रिया शब्द का पूर्वाभास करने को कहा जाता है। जब प्रयोज्य पूर्वाभास कर लेता है तब युग्मित पद अर्थात् उत्तेजना-प्रतिक्रिया पद को प्रस्तुत किया जाता है। इस उत्तेजना-प्रतिक्रिया शब्द को देखकर प्रयोज्य अपनी प्रतिक्रिया को संशोधित करता है। इस प्रकार के संशोधन से प्रयोज्य की प्रतिक्रिया दृढ़ होती है और उत्तेजना प्रतिक्रिया के बीच इसी प्रकार साहचर्य स्थापित होता जाता है। उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित होने का कारण उत्तेजना और प्रतिक्रिया शब्दों की समीपता है। अत: कहा जा सकता है कि समीपता के नियम के कारण ही शाब्दिक अधिगम होता है। स्पीयर, एक्टट्रैण्ड तथा अण्डरवुड के अनुसार शाब्दिक अधिगम के लिए पुनर्बलन आवश्यक नहीं है। इन मनोवैज्ञानिकों ने इस कथन के लिए प्रयोगात्मक अध्ययन कर प्रमाण भी उपस्थित किये हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शाब्दिक अधिगम में समीपता के नियम साथ-साथ मध्यस्थता प्रक्रम भी कार्य करता है। मध्यस्थता प्रक्रम का अर्थ है कि शाब्दिक अधिगम में युग्मित पद के उत्तेजना प्रतिक्रिया शब्द के बीच अर्थपूर्ण अवयक्त साहचर्य का उत्पन्न होना। इस मध्यस्थता प्रक्रम के सम्बन्ध में बुगेल्सकी तथा अण्डरवुड और शुल्ज आदि मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगात्मक अध्ययन किये हैं।

2- **युग्मित सहचर अधिगम किस प्रकार होता है-** युग्मित सहचर अधिगम में प्रयोज्य उत्तेजना प्रतिक्रिया का ही अधिगम करता है। ऐश तथा ईबेनहोल्टज के अनुसार युग्मित सहचर अधिगम में प्रयोज्य उत्तेजना अनुक्रिया के बीच साहचर्य के आधार पर सीखता है।

युग्मित सहचर अधिगम एक प्रकार का उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्य ही है। उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्य में प्रयोज्य उद्दीपक और अनुक्रिया को पहचानना अथवा उनके सम्बन्ध को सीखता है। इस प्रकार के अधिगम में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या प्रयोज्य इस प्रकार के अधिगम में उद्दीपक अनुक्रिया का अधिगम करता है? अथवा अनुक्रिया उद्दीपक का अधिगम करता है? युग्मित सहचर अधिगम में क्या पृष्ठोन्मुख साहचर्य की स्थापना करता है? इस प्रकार के अधिगम में क्या प्रयोज्य अनुक्रिया पद साहचर्य की स्थापना करता है? इस प्रकार के अधिगम में क्या प्रयोज्य उद्दीपक अनुक्रिया का साहचर्य सीखता है। एक अध्ययन के आधार पर यह स्थिर किया गया कि युग्मित सहचर अधिगम प्रयोज्य जो उद्दीपक अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित करता है। उस साहचर्य को सममित साहचर्य कहते हैं। इस प्रकार के परिणाम एक अन्य अध्ययन में भी प्राप्त हुए।

इस सम्बन्ध में अण्डरवुड आदि मनोवैज्ञानिकों ने प्रश्न किया कि युग्मित सहचर अधिगम में क्या प्रयोज्य उद्दीपक-अनुक्रिया के बीच अग्रोन्मुख और पृष्ठोन्मुख साहचर्य सीखता है या इस साहचर्य के अतिरिक्त कोई अन्य बात सीखता है? डीज ने बताया कि प्रयोज्य उद्दीपक अनुक्रिया के बीच अग्रोन्मुख और पृष्ठोन्मुख साहचर्य ही सीखता है। होरोविट्ज ने भी युग्मित सहचर अधिगम थी इस प्रकार की व्याख्या से सहमति व्यक्त की है।

3- **क्रमिक अधिगम किस प्रकार होता है-** इबेनहोल्टज के अनुसार क्रमिक अधिगम करते समय प्रयोज्य पदों की क्रमिक स्थिति को पहचान कर सीखता है। एक प्रयोग में इबेनहोल्टज के प्रयोज्यों को एक सूची का क्रमिक अधिगम कराया। बाद में प्रयोज्यों को एक दूसरी सूची अधिगम के लिए दी। इस दूसरी सूची में पहली सूची के पद उन्हीं निश्चित स्थानों पर थे जो कि पहली सूची में थे। अपने प्रयोज्य में उसने यह देखा कि प्रयोगात्मक समूह के प्रयोज्यों ने नियन्त्रित समूह की अपेक्षा दूसरी सूची का अधिगम शीघ्र कर लिया। उसने अपने इस प्रयोग में नियन्त्रित समूह को जो दूसरी सूची दी उसमें वही पद थे जो पहली सूची में थे अन्तर केवल इतना था कि इस दूसरी सूची में पदों का स्थान परिवर्तित कर दिया गया था।

12.10 शाब्दिक अधिगम में साहचर्य के सम्बन्ध में समकालीन मत (Contemporary views in connection with association of Verbal Learning)

अण्डरवुड ने शाब्दिक अधिगम में स्थापित होने वाले साहचर्य की छ: विशेषताओं को बताया है। ये विशेषताएं अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा मान्य हैं। इन विशेषताओं का वर्णन डी अमेटो ने अपनी पुस्तक में किया है। संक्षिप्त रूप में यह विशेषताएं निम्न हैं-

1- साहचर्य उत्तेजना-उत्तेजना, उत्तेजना-प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया-उत्तेजना, प्रतिक्रिया-प्रतिक्रिया के बीच ही स्थापित होता है।
2- साहचर्य अग्रोमुखी तथा पृष्ठोन्मुखी दोनों प्रकार का हो सकता है।
3- साहचर्य एक प्रकार का मध्यवर्ती चर है।

4- युग्मित सहचर अधिगम में प्रयोगकर्ता द्वारा उपस्थित किए जाने वाली उत्तेजना-प्रतिक्रिया तथा प्रयोज्य द्वारा ग्रहण की गई उत्तेजना प्रतिक्रिया में समानता भी हो सकती है और मित्रता भी।

5- उत्तेजना-प्रतिक्रिया के बीच स्थापित होने वाली साहचर्य किसी मध्यस्थता के कारण हो सकता है।

6- एक स्थिति में साहचर्य सरलता से स्थापित हो सकता है तथा दूसरी स्थिति में कठिनाई से साहचर्य स्थापित हो सकता है क्योंकि साहचर्य की स्थापना एक विशेष सन्दर्भ से भी प्रभावित होती है।

उक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि शाब्दिक लिखना में व्यक्ति को शाब्दिक एकांशो के कई पक्षो को सीखना पड़ता है और अर्थ भी समझना पड़ता हैं।

12.11 शाब्दिक अधिगम के क्षेत्र (The Field of Verbal Learning)

(1) शाब्दिक अधिगम के अध्ययन में उपयुक्त सामग्रियॉं -Materials used is verbal learning) शाब्दिक अधिगम के प्रयोगात्मक अध्ययनो में आकार एवं गुण में भिन्न कई शाब्दिक इकाइयो का उपयोग किया जाता है, आकारा से तात्पर्य अक्षरो की संख्या से होता है तथा गुण इकाई की सार्थकता या कठिनता पर से सम्बधित होते है -

ये शाब्दिक इकाईयों निम्नलिखित है.-

निरर्थक पद या सी वी सी त्रिवर्ण (Monsense syllabus or cvctrigram) त्रिअक्षरो से बने ऐसे निरर्थक पद जिसका पहला और अन्तिम अक्षर व्यंजन होता है, निरर्थक पद का निर्माण सर्वप्रथम Ebbinghaus जम्रन के मनोवैज्ञानिक ने किया था इसे consonant Vowel Consonant भी कहा जाता है -

ए बिगहौस उने कूल 2300 निरथ्रक पद का निर्माण किया था।

(2) व्यजन पद या सी.सी. त्रिवर्ण (Cousonant syllabuis or cvctrigram) इसके

तीनो अक्षर अर्थहीन व्यंजन से बने होते है, चूँकि इस पद का तीपो अक्षर व्यंजन (Cousonant) होते हे इसलिए इसे CCC trigran कहा जाता हैं निरर्थक पद की तुलना में इनके साथ साहचर्य भी आसानी से स्थापित नहीं किया जा सकता है जबकि निरर्थक पद भी साहचर्य स्थपित किया जाना आसान होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेशता यह होती है - कि दो लगातार पदों में पहले पदके किसी भी अक्षर की पुनरावृत्ति उसके पहले वाले स्थान पर नही होना चाहिए जैसे ZKP के बाद NKC या ZCL या RLP नहीं होनी चाहिए।

(3) बहुपदीय निरर्थक इकाइयों (Multisyllable nonsense Units)

शब्दिक अधिगम में इसके अलावा कुछ निरर्थक इकाइयों का भी उपयोग किया जाता है चार अक्षरो से बने निरर्थक पद Daux TNOG आदि का उपयोग कुछ प्रयोगो में किया गया हैं। (Gamble 1909 -1927) में अपने कई प्रयोगो में पॉंच या पॉच से अधिक अक्षरो से बने पदों का भी उपयोग किया है।

जो भी शाब्दिक सामग्रिया जैसे निरर्थक पद, व्यंजन पद, बहुपदीय निरर्थक पद सार्थक शब्द आदि तैयार किये जाते है, उनके आकार के अलावा सार्थकता के गुण की भी जॉच कर ली जाती है क्यों कि ऐसा कई अध्यनो में देखा गया है कि उन पदों की सार्थकता के स्तर में अन्ता होने से शाब्दिक अधिगम के दर में अन्तर हो जाता हैं। पदो में सार्थकता का गुण अधिक होने से उसे व्यक्ति उन पदो की तुलना में जिनमें यह गुण कम होता हैं, जल्द सीख लेता हैं। मनोवैज्ञानिको ने इन पदों में सम्मिलित सार्थकता के स्तर को मापने के लिए निमनांकित पॉच मापों का वर्णन किया हैं-

(I) साहचर्य मूल्य **(Association Values)** किसी भी अर्थहिन पद या शब्द में सार्थकता की स्तर कितनी हैं, इसकी जॉच वैसे पद के साहचर्य मूल्य ज्ञाक करके किया जाता हैं। ग्लेज 1928 ने निरर्ाि्क पदों का साहचर्य मूल्य ज्ञात करने का सफल प्रयास किया था।

(II) **अर्थपूर्णता (Meaningfulness)** शाब्दिक इकाई की सार्थकता का दुसरा माप अर्थपूर्णता हैं, कोई भी व्यंजन पद या निरर्थक पद व्यक्ति के लिए कितना अर्थ रखता हैं, इसका निर्धारण यहॉ किया जाता हैं। इसके लिए प्रत्येक पद द्वारा व्यक्ति के मन उत्पन्न साहचर्य (association) की गणना की जाती है, जितना ही अधिक साहचर्य अमुक पद द्वारा उत्पन्न किया जाता है, उसे उतना ही अर्थपूर्ण समझा जाता हैं। वैज्ञानिक रूप में इसमें केवल साहचार्य का मात्र प्रतिशत नहीं बल्कि प्रत्येक पद द्वारा उत्पन्न साहचर्यो का एक मापनी मूल्य तैयार कर लिया जाता हैं। इस प्रविधि का उपयोग नौबुल (Noble 1952) द्वारा तथा नौबुल, स्टौक वेल एवं प्रयेर (Noble stockwell & Pryer 1957) द्वारा अधिक किया गया।

(III) **परिचय (Familiarity)** व्यक्ति के पूर्वपरिचितता के आधार पर भी शाब्दिक एकांशो (Verbal items) की सार्थकता की परख की जाती हैं, क्यो कि परिचय की मात्रा जितनी ही अधिक होती है शाब्दिक एकांश उतना ही सरल एवं सार्थक समझा जाता हैं। ऐसे पदो को व्यक्ति बहुत ही कम समय में सही सही ढग से सीख लेता हैं।

(IV) **प्रतिमावली (Imagery)** शाब्दिक एकांश (Verbal item) izयोज्य में कितना ठोस प्रतिभा उत्पन्न करने में सक्षम हैं, इसे प्रतिभावली कहते है। व्यक्ति में अणिक प्रतिभाए उत्पन्न करने पर सार्थकता ज्यादा पायी जाती है ताकि इसका शाब्दिक सीक्षने की दर भी अधिक तेज होती हैं।

(V) **आवृतिया बारंबारता (Frequency)**शब्दो के उपयोग की बारंबारता शाब्दिक अधिगम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कुछ ऐसे होते है जिन्हे व्यक्तिद्वारा अधिक प्रयोग में लाया जाता हैं। और कुछ को कम। अमेरिकन अंग्रेजी भाशा में कुछ शब्दों के उपयोग की आवृत्ति को थार्नडाइक एवं काजी (Throndike & Large 1944) तथा कुसेरा एवं फ्रांसिस (Kucera & Francis 1967) द्वारा तैयार किया गया। थर्नडाइक एवं लार्ज द्वारा तैयार किये गए विशिश्ट शब्द कोश में 30,000 शब्दो को सम्मिलित किया गया है जो प्रतिदशलाख (Million) की आवृति के रूप में शब्दों के उपयोग की बारंबारता को दिखालाता हैं।

(4) **अशाब्दिक साम्रगियॉं (Non Verbal Materials)** एसे भी कुछ प्रयोग किये गए हैं जिनमें अशाब्दिक सामग्रियॉं जैसे निरर्थक ज्यामितिक आकृतियॉं तथा चादृच्छिक चित्रो (Ranedoun figures) का उपयोग किया जाता हैं। एटनीथ एवं अनोल्टि (Attneave & Arnouit, 1956) ने निरर्थक पदों के समान कुछ चित्रीय (Pictorial)समतुल्य (Equivalent) का निर्माण किया। क्लार्क (Clark 1968)ने अपने अध्ययन में ये स्पष्ट पाया है कि अधिक साहचर्य उत्पन्न करने वाले आकृति को व्यक्ति कम साहचर्य आवृति उत्पन्न करने वाले आकृति की तुलना में जल्दी सीख लेता हैं। इससे स्पष्ट होता हैं कि शाब्दिक सीखना के प्रयोग में कई तरह के शाब्दिक इकाईयों में निरर्थक पद (Monsense syllable) तकि व्यंजन पदों (Consonant syllables) का उपयोग अन्य दूसरे तरह के साम्रगियों की तुलना में अधिक होता हैं।

12.12 शब्दिक अधिगम की विधियॉं (Methods of Verbal Learning)

1- **क्रमिक सीखना व अनुक्रमिक सीखना विधि (Method of serial learning or sequential learning)** इस विधि का सर्वप्रथम (Ebbinghaus) एबिंगहास ने किया था। इस विधि में प्रयोज्य को Meniory drum की सहायता से निरर्थक पदों या व्यंजन पदो (Cousonant syllabus) को एक एक करके कुछ सेकेण्ड के लिए एक खास क्रम में दिखया जाता हैं इस विशेश उपकरण के न रहने पर कागज पर लिखकर भह इन पदो या शब्दो को दिखाया जाता हैं , प्रयोज्य को यह निर्देश दिया जाता है कि वे दिखाए गये पदों को उसी क्रम में याद करे जिस क्रम में उन्हे दिखया जा रहा हें, क्यो कि इसके प्रत्याहवान के लिए प्रयोज्य को सामान्यतरु 20 से 30 सेकेण्ड का समय प्रयोज्य को दिया जाता हैं ।इस तरह पूरी सूची के प्रत्येक पद को बारी बारीसे तब तक दिखलाया जाता है जब कि प्रयोज्य प्रयोगकर्ता द्वारा निर्धारित कसौटी पर नही पहुचता हैं। इस विधि का क्रमिक प्रत्याहान विधि (Method of serial reproduction) भी कहते हैं क्योंकि प्रत्येक प्रयास में प्रयोज्य पदों को क्रमिक ढंग से पुर्नउपस्थित करता हैं। इस विधि को पूर्वभास की विधि (Method of serial anticipation) कहा जाता हैं क्यो कि इस विधि में प्रयोज्य क्रमिक ढंग से शब्दों का पूर्वभ्यास करता हैं।

2- **मुक्त पुन: विधि (Method of Free Recall)**

यह शाब्दिक अधिगम की सबसे सरल विधि है इसमे प्रयोज्य को अधिगम हेतु कुछ शब्दों या पदो को एक एक करके कुछ सेकेण्ड के लिए दिखालाई जाती है फिर प्रयोज्य 25 से 30 सेकेण्ड में उसी पद या सूची का प्रत्याहान हैं प्रयोज्य को किसी भी क्रम में प्रत्यान की स्वतन्त्रता होती हैं। यह विधि क्रमिक सीखना विधि (Sereal learning Method) से अलग है क्यो कि क्रमिक अधिगम में एक खास क्रम में प्रत्या◌ीान किया जाता हैं, जबकि इस विधि में प्रयोज्यों में सूची के अन्तिम पदों तथा बहु प्रथम पदो को याद करने की विशेश तत्परता पाई जाती हैं। अन्तिम पदो को आसन्नता प्रभाव (Recencyeffeet) तथा दूसरो को प्राथमिकी प्रभाव (Princacy effect) कहा जाता हैं।

3. अनुबोधन तथा पूर्वाभास विधि (Method of Prompting and Anticipation)

यह क्रमिक सीखना विधि का ही परिवर्तित रूप है। इस विधि में सूची के अर्थहीन पद या सार्थक शब्द को स्मृति पटल (Memory Drum) द्वारा एक बार दो सेकेण्ड़ के लिए दिखा दिया जाता है। इसके बाद उसे पहला पद दिखलाया जाता है और दिखाये गये शब्द या पद के ठीक बाद वाले शब्द या पद को उसे बताने के लिए कहा जाता है-

इस विधि को सूची के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है।

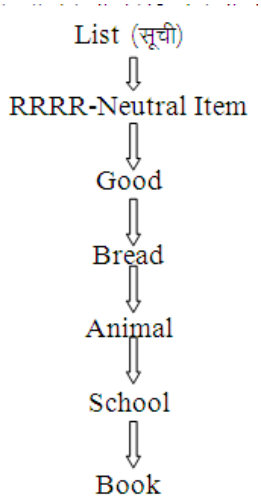

सर्वप्रथम सूची का प्रत्येक शब्द प्रयोज्य को एक बार दिखा देने के बाद प्रयोगकर्ता सबसे पहले (Neutral) तटस्थ एकांश RRRR को दिखाएगा तथा प्रयोज्य उसके बाद के शब्द (यानि Good) का प्रत्याधान करेगा। फिर Good को दिखाकर उसके बाद के शब्द Bread का प्रत्याधान करेगा। इसी तरह से सूची के अन्य शब्दों को दिखाकर प्रयोज्य को ठीक उसके बाद आने वाले शब्द बताने को कहा जाता है। इस विधि की यह भी एक विशेशता है कि सूची का प्रत्येक पद या शब्द उद्दीपक (Stimulus) तथा Response दोनों के रूप में कार्य करता है। इसलिए यहा सीखा गया पूरा साहचर्य उपर से नीचे (जिसे तीर से दिखाया गया है।) होता है - जो स्पष्टत: खड़ा या उदग्र साहचर्य (Vertical association) है।

4. युग्मित साहचर्य विधि Method of paired Association

अधिगम के अध्ययन में युग्मित सहचर विधि Methjod of paired Association प्रमुख विधियों में से एक है। युग्मित साहचर्य विधि वह विधि है जिसमें पदों एवं शब्दों के बहुत से युग्मों को स्मृति पटल (Memorydrum) पेपर एवं lgpj (Paper aperture) की खिड़की द्वारा दिखाया जाता है। युग्म के पहले शब्द को उद्दीपन शब्द (Stimulus word) और दूसरे शब्द की अनुक्रिया शब्द (response word) कहा जाता है तथा प्रयोज्य को युग्म के प्रत्येक उद्दीपक शब्द के साथ अनुक्रिया शब्द का साहचर्य स्थापित करना होता है। जैसे - man साल एक युग्म हुआ। इसमे 'Mands साथ Sky का साहचर्य विधि से सीखा गया साहचर्य क्षैतिज या पडा (Horizontals) होता है न कि उदृग (Vertical) युग्मित साहचर्य विधि का यह सबसे प्रमुख गुण है और इस तरह यह विधि क्रमिक सीखने की विधि और अनुबोधन तथा पूर्वाभास विधि से भिन्न है जहॉ सीखा गया उदग्र (Vertical) होता है युग्मित साहचर्य विधि में शब्दों या पदो के सभी युग्म को हर प्रयास में नये क्रम मे दिखाया

जाता है ताकि प्रयोज्य उदग्र (Vertical) साहचर्य - स्थापित न कर सके। हर प्रयास में जब शब्दों को नए क्रम में दिखाया जायेगा तो स्वभावत: प्रयोज्य में उदग्र (Vertical) या खड़ो साहचर्य (Vertical association) नही हो पायेगा।

चुम्मित साहचर्य विधि की उपविधियाँ

I. पूर्वाभास विधि (Anticipation Method) - इस विधि में एक प्रारम्भिक प्रयास दिया जाता है जिसमें युग्म को 4-4 सेकेण्ड के लिए दिखलाया जाता है। इसके बाद पहला प्रयास शुरू होता है जिसमें सूची के पहले युग्म को सिर्फ उद्दीपक शब्द 2 सेकेण्ड तक दिखाया जाता है और प्रयोज्य इसके साथ वाले अनुक्रिया शब्द का पूर्वाभास करता है इसके बाद उस उद्दीपक शब्द तथा उसका पूर्वाभास करता है इसके बाद उस उद्दीपक शब्द तथा उसका अनुक्रिया शब्द दोनों को एक साथ 2 सेकेण्ड़ के लिए दिखा दिया जाता है । प्रयोज्य द्वारा दिये गये उत्तर को (सही या गलत) प्रयोगकर्ता लिख लेता है। इस तरह से सूची के अन्य युग्मों को प्रयोगकर्ता लिख लेता है। इस तरह से सूची के अन्य यूग्मों को प्रयोगकर्ता लिख लेता है। इस तरह से सूची के अन्य युग्मों को प्रयोगकर्ता एक-एक करके दिखाता है। इसके कुछ समय बाद दूसरा प्रयास इस तरह शुरू होता है। अण्डरवुड (Under wood 1965) के अनुसार सामान्यत: प्रत्येक प्रयास के बाद प्रयोज्य को 6 से 10 सेकेण्ड तक का विश्राम दिया जाना चाहिए। इस समय के दौरान प्रयोगकर्ता नए क्रम वाली सूची को स्मृतिपटल में लगाता है । इस प्रकार तब तक प्रयास करता है जब तक की प्रयोज्य प्रयोगकता द्वारा पूर्व निर्धारित कसौटी तक नही पहुॅंच जाता है। इस विधि को युग्मित साहचर्य अधिगम (Pairedassociation Learning) की पूर्वाभास विधि (Anticipation Method) कहा जाता है।

II. प्रत्याहान विधि (Recall Method) हुल्सादुगोथ तथा डिज (Mulse, Egeth, Deese 1980) ने इसे अध्ययन परीक्षर विधि (Study test Method) कहा है इस विधि में पहले उद्दीपक शब्द तथा अनुक्रिया या प्रतिक्रिया शब्द दोनों को एक साथ 2 या 4 सेकेण्ड के लिए दिखाते है। इसी तरह से सूची के सभी युग्मों को एक एवं करके दिखाते है। इसके बाद फिर सुची के सबसे पहले युग्म के उद्दीपक शब्द को 2 सेकेण्ड तक के लिए दिखातक है और प्रयोज्य उसके साथ अनुक्रिया शब्द का पुनरु स्मरण करता हैं | इस अनुक्रिया शब्द को फिर दिखया नही जाता हैं इसके बाद दूसरे युग्म के उद्दीपक शब्द को दिखाकर प्रयोज्य को अनुक्रिया शब्द बताने को दिया जाता हैं। फिर अनुक्रिया शब्द को बिना बताए ही तीसरे युग्म के उद्दीपन शब्द को दिखाया जाता है और उसे इस युग्म का अनुक्रिया शब्द बताने को कही जाता है । इसी तरह से सभी युग्मो के उद्दीपक शब्द को दिखाकर प्रयोज्य से सम्बन्धित अनुक्रिया शब्दो का पुन: स्मरण कराया जाता है । इसके बाद दूसरा प्रयास शुरू होता है । जहॉ फिर सूची के प्रत्येक युग्म के उद्दीपक तथा अनुक्रिया शब्द को एक साथ 2 या 4 सेकेण्ड के लिए दिखया जाता है। इस तरह से पूरी सुची दिखा देने के बाद फिर प्रत्येक युग्म का सिर्फ उद्दीपक शब्द दिखाकर उसके उपयुक्त अनुक्रिया शब्द का प्रत्याहवान कराया जाता है । यहॉ प्रत्येक प्रयास के बाद 6 से 10 सेकेण्ड तक का विश्राम किया जाता हैं । यह पूरी प्रकिया तब तक चलती रहती हैं जब तक की प्रयोज्य प्रयोगकर्ता द्वारा पूर्व निर्धारित

कसौटी पर नही पहुँच जाता है। इस प्रकार से युग्मित सहचर्य सीक्षने का पुर्वाभास विधि में प्रयोज्य को अपने डत्तर के सही या गलत की जॉच का मौका मिलता हैं लेकिन प्रत्यान विधि में ऐसा कोइ्र मौका प्रयोज्य को नही मिलता है। सीखना के उद्दीपक प्रतिक्रिया पुनर्बलन सिद्धांत (Stimulus response reinforcement theory)के अनुसार यह कहा जा सकता है कि पूर्वाभास विधि में ऐसा कोई मौखिक पुनर्बलन नही हिता। परिणामस्वरूप इस सिद्धांत के अनूसार युग्मिक सहचर्य की पूर्वभास विधि द्वारा सीखने की प्रक्रिया प्रत्याहान की अपेक्षा तेजी से होगी।

युग्मित साहचर्य की चाहे पूर्वभास विधि हो या प्रत्याहान विधि सीखा गया साहचय्र हमेशा क्षैतिज होता है न कि खड़ा या उद्ग (Vertical) इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रयास में शब्दो या पदो के युग्मों के क्रम में परिवत्रन करके प्रयोज्य को दिखाया जाए।

उदाहरण के लिए युग्म तो वही हो परन्तु उनका क्रम अलग अलग हो:

Original List	I st Copy (New Order)	II nd Copy (in new order)
Boy-Pen	Man – Red	Chair -blue
Army – sky	Boy – Pen	Man - Red
Man – Red	Chair - Rice	Army - sky
Chair – Ruce	Army – sky	Boy – Pen

इसी प्रकार 2-3 कॉपी तैयार कर प्रत्येक प्रयास में सूची को याद्दच्छिक ढग से दिखाना चाहिए।

5. प्रत्यभिज्ञान विधि (Method of recognition learning) इस विणि में पदो या शब्दो की पुरि सूचि को पहले कई बार लगातार प्रयोज्य की दिखाते है। इसके बाद, इन शब्दो को नये शब्दो के साथ मिला कर प्रयोज्य को एक- एक करके दिखाये जाते हैं। प्रयोज्यो को इन में से पहले सिखे गये शब्दो का प्रत्यविज्ञान करना होता हैं। इस तरह की विधि में प्रयोज्य पहले देखे गये शब्दो तथा नये शब्दो के बीच एक तरए के वीभेदन करना सीख लेता है। यही कारण है कि (D' Amato 1970) ने इस मौखिक विभेद (Verbal discrimination method) विधि भी कहा हैं।

12.13 सांराश (Summary)

शाब्दिक अधिगम सीखना एवं प्रकार का ऐसा अध्ययन है जिनकें प्रयोग कई तरह के शाब्दिक इकाईयों का उपयोग किया जाता है। इस तरह के इकाईयों में निरर्थक पद तथा व्यंजन पदों का उपयोग अन्य दुसरे तरह के सामग्रियों की तुलना में अधिक किया जाता है। शाब्दिक सीखना में व्यक्ति को शाब्दिक एंकाशो के कई पक्षों को सीखना पड़ता है और इसका अर्थ भी समझना पडता है। शाब्दिक अधिगम का अध्ययन तीन भागों में बॉट कर किया जाता है।

शाब्दिक अधिगम के प्रयोगात्मक अध्ययनों में आकार एवं गुण के भिन्न कई शाब्दिक इकाइर््रयों का उपयोग किया जाता है जिससें इकाई की सार्थकता एवं कठिनता स्तर तथा अक्षरों की संख्या महत्वपूर्ण होती है। शाब्दिक अधिगम में अर्थपूर्णता, परिचय, आवृति या बारंबारता महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शाब्दिक अधिगम की क्रमिक सीखना, मुक्त पुन: स्मरण विधि, पूर्वाभास विधि , युग्मित साहचर्य विधि, विधियॉ है।

12.14 अभ्यास प्रश्न

1- नीचे दिये गए कथनो में सही (√)और गलत **(x)** का निशान लगाए।

1- शाब्दिक विधि द्वारा पशु सीखना संभव है। ( )

2- शाब्दिक अधिगम में मुख्यत: संकेतों का प्रयोग किया जाता है। ( )

3- शाब्दिक अधिगम के निरर्थक पद का निर्माण सर्वप्रथम ऐबिंगहास ने किया था।( )

4- निरर्थक पद से तात्पर्य स्वर,व्यंजन एवं स्वर शब्दों से होता है। ( )

2- निम्नलिखित प्रश्नों के लघु उत्तर दिजिए -

1- शाब्दिक अधिगम के क्षैत्र बताइए।

2- आवृति बारम्बारता से आाप क्या समझतें है।

3- अर्थपूर्णता शाब्दिक अधिगम में क्यों आवश्यक है।

4- प्रतिभावली क्या है।

3- निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर निबन्धात्मक रूप में दिजिए -

1- शाब्दिक अधिगम की कौन-कौन सी विधियॉं है। वर्णन करों।

2- अधिगम की विशेषताएँ बताइए।

12.15 संदर्भ ग्रन्थ

1- प्रो. त्रिपाठी, लाल, बच्चन, गोरखपुर, विश्वविद्यालय, अधिगम का मनोविज्ञान, टाटा मैक्ग्रा हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली

2- प्रो. सिंह अरूण कुमार (पटना) विश्वविद्यालय/उच्चतर मनोविज्ञान पब्लिशिंग मोतीलाल बनारसी दास

3- Chifford Morgan, Richard a King, Johnrweis Publishing House, Tata macrohill, New Delhi

4- वर्मा प्रीति, डॉ. श्री वास्तव डी.एन., आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

इकाई - 13

क्लासिकी एवं नैमित्तिक अनुबन्धन

Classical conditioning and Instrumental conditioning

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना (Introduction)

13.1 उद्देश्य (Objective)

13.2 क्लाकिस अनुबन्धन

13.2.1 क्लसिक अनुबन्धन के तत्त्व

13.3 नैभित्तिक अनुबन्ध स्वरूप

13.3.1 नैमित्तिक अनुबन्धन के प्रकार

13.4 हल का सिद्धान्त

13.4.1 हल के सिद्धान्त का मुख्य सम्प्रत्यय

13.4.2 मौलिक सिद्धान्त में कुछ परिवर्तन के बिन्दु

13.4.3 हल के सिद्धान्त का मूल्यांकन

13.5 टॉलमैन का सिद्धान्त

13.5.1 टॉलमेन सिद्धान्त के मुख्य सम्प्रत्यय

13.6 बोध प्रश्न

13.7 गथरी का सिद्धान्त

13.7.1 गथरी के सिद्धान्त के मुख्य सम्प्रत्यय

13.7.2 गथरी सिद्धान्त की आलोचना

13.8 सारांश

13.9 अभ्यास प्रश्न

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.0 प्रस्तावना (Introduction)

प्राचीन अनुबन्धन वोल्पसन के शोध कार्य "लारमय स्त्राव का प्रेषण" पर आधारित है। यह कार्य आईñपीñपॉवलाव रूसी मनोवैज्ञानिक के निर्देशन में पूरा हुआ। 1904 में इन्हें इस कार्य के लिये नोबल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। क्लासिकल अनुबन्धन से तात्पर्य उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित करना है, इसे टाइप 'एस' अनुबन्धन भी कहा जाता है। इसी प्रकार नैतिमिक अनुबन्धन स्कीनर की देन है। जिसमें पुनर्बलन की महत्त प्रतिपादित की गई है। क्लार्क हल एक प्रमुख व्यवहारवादी है हल ने भी उद्दीपक अनुक्रिया के बीच साचर्य स्थापित होने में पुनर्बलन को महत्त्वपूर्ण माना है। इसी प्राकर टॉलमैन गुथरी के सिद्धान्त भी नैमितिक अनुबन्धन के इर्द-गिर्द प्रतीत होते है।

13.1 उद्देश्य (Objective)

अधिगम में क्लासिकल अनुबन्धन के बारे में ज्ञात करना।

- नैमित्तिक अनुबन्धन के प्रमुख तत्त्वों का विश्लेषण करना।
- हल के सिद्धान्त की व्याख्या करना।
- टॉलमैन द्वारा प्रतिपादित सिद्धानत की विवेचना।
- गुथरी द्वारा विश्लेषित अधिगम सिद्धानत के बारे में जानना।

13.2 क्लासिकी अनुबन्धन: प्रतिमान एवं तथ्य या घटना (Classical Conditioning: Paradigm and Phenomenon)

आई.पी.पैवलव (I.P. Pavlov) एक रूसी शरीर-वैज्ञानिक (physiologist) थे जिन्होंने अपनी जीवन-वृत्ति (career) हृदय के कार्यो के अध्ययन से शुरू की परन्तु बाद में उन्होंने पाचन क्रिया (digestion) के दैहिकी (physiology) का विशेष रूप से अध्ययन करा प्रारम्भ किया और उनका यह अध्ययन इतना महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय हुआ कि 1904 में इसके लिये उन्हें नोबल पुरस्कार (Nobel Prize) भी दिया गया।

पॉवलव का यह निष्कर्ष कि यदि तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) को किसी उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्दीपक (natural stimulus) के साथ बार-बार दिया जाता है तो तटस्थ उद्दीपक के प्रति व्यक्ति वैसी ही अनुक्रिया (response) करना सीख लेता है जैसा कि है वह उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति करता है। यह निष्कर्ष एक प्रयोग पर आधारित है। संक्षेप में प्रयोग इस प्रकार था - एक भूखे कुत्ते को एक ध्वनि-नियन्त्रित प्रयोगशाला में एक विशेष उपकरण के सहारे खड़ा कर दिया गया । कुत्ते के सामने भोजन लाया जाता था और चूँकि कुत्ता भूखा था इसलिये भोजन देखकर उसके मुँह में लार आ जाता था। कुछ प्रयासों (trials) के बाद भोजन देने के 4 या 5 सेकेण्ड अर्थात् 400 या 500 मिली सेकण्ड पहले एक घंटी बजायी जाती थी। यह प्रक्रिया कुछ दिनों तक दोहरायी गयी तो यह देखा गया कि बिना भोजन आये ही मात्र घंटी की आवाज, पर कुत्ते के मुँह

से लार निकलना शुरू हो गया। पैवलव ने अनुसार घंटी की आवाज पर कुत्ते के मुँह से लार निकलना शुरू हो गया। पॉवलव के अनुसार कुत्ता घंटी की आवाज पर लार के स्राव करने की क्रिया को सीख लेता हैं उनके अनुसार घंटी की आवाज (उद्दीपक) द्वारा लार के स्राव (अनुक्रिया) के बीच एक साहचर्य (association) कायम हो गया जिसे अनुबन्धन (conditioning) की संज्ञा दी गयी।

13.2.1 क्लासिक अनुबन्धन के तत्व (The elements of Classical Conditioning)

पॉवलव के इस प्रयोग पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि पैवलोवियन अनुबन्धन (Pavlovian conditioning) के मुख्य चार अंग (components) है जो इस प्रकार है -

(i) **स्वाभाविक उद्दीपक (Uncondtional or unconditioned stimulus: UCS)** - स्वाभाविक उद्दीपक को कहा जाता है जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण (training) के ही प्राणों में अनुक्रिया उत्पन्न करता है। जैसे, पैवलव के प्रयोग में भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक (UCS) है जो लार स्राव करने की अनुक्रिया बिना किसी प्रशिक्षण का ही करता है।

(ii) **स्वाभाविक अनुक्रिया (Unconditioned response: UCS)** - स्वाभाविक अनुक्रिया को कहा जाता है जो स्वाभाविक उद्दीपक द्वारा उत्पन्न किया जाता है। जैसे, पैवलव के प्रयोग में भोजन देखकर कुत्ते के मुँह में लार स्राव एक स्वाभाविक अनुक्रिया है।

(iii) **अनुबन्धित उद्दीपक (Conditional stimulus or Conditioned Stimulus: CS):** अनुबन्धित उद्दीपक वैसे उद्दीपक को कहा जाता है जिसे यदि स्वाभाविक उद्दीपक के साथ या उससे कुछ सेकेण्ड पहले लागतार कुछ प्रयासों (trials) तक दिया जाता है, तो वह उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया उत्पन्न करना प्रारम्भ कर देता है?

(iv) **अनुबन्धित अनुक्रिया (Conditioned response : CS)** - जब अनुबन्धित उद्दीपक (CS) स्वाभाविक उद्दीपक (unconditoned stimulus) के साथ संयोजित (period) किया जाता है तो कुछ प्रयासों के बाद अनुबन्धित उद्दीपक (CS) के प्रति प्राणी ठीक वैसी ही अनुक्रिया करता है जैसा कि वह स्वाभाविक उद्दीपक (UCS) के प्रति करता था। इस तरह की अनुक्रिया को अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned response) कहा जाता है। पैवलक के प्रयोग में (बिना भोजन देखे ही) घंटी की आवाज सुनने पर जो लार के स्राव की अनुक्रिया होती थी, वह अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned reponse) का उदाहरण है।

क्लासिकी अनुबन्धन की पूर्ण व्याख्या के लिये यह आवश्यक है कि उसमें सम्मिलित किये गये मुख्य तथ्यों (phenomena) का वर्णन किया जाए। ऐसे प्रमुख तथ्य निम्नांकित है -

1. **उत्तेजन का नियम (Law of excitation)** - यह कहा जा सकता है कि तटस्थ उद्दीपक प्राणी को इस हद तक उत्तेजित (excite) कर देता है कि वह अनुबन्धित अनुक्रिया (CS) करने के लिये तत्पर हो जाता है।

2. **आन्तरिक अवरोध का नियम (Law of internal inhibition)** - पैवलव ने यह देखने के लिये कि जब तटस्थ उद्दीपक (घंटी) के बाद स्वाभाविक उद्दीपक (भोजन) नहीं दिया जाता है, तो क्या होता है, इस विशेष नियम (law) का प्रतिपादन किया। उनका प्रेक्षण (observation) यह था कि ऐसी परिस्थिति में प्राणी धीरे-धीरे उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करना बन्द करने लगता है। पॉवलव के अनुसार ऐसा होने का कारण यह है कि इस तरह की

परिस्थिति में घंटी बजने के बाद भोजन के नहीं दिये जाने की परिस्थिति में प्राणी में एक विशेष प्रवृत्ति (tendency) उत्पन्न होती है जो प्राणी को सीखी गयी अनुक्रिया को करने से रोकता है। अत: प्राणी सीखी गयी अनुक्रिया का भूल (forget) तो नहीं जाता है बल्कि जान-बूझकर उसे नहीं करता है (क्योंकि ऐसा करने की एक विशेष तत्परता उसमें उसमें उत्पन्न हो जाती है)। इसे ही पैवलव ने आन्तरिक अवरोध का नियम कहा है।

3. **बाह्य अवरोध नियम (Law of external inhibition)** - पॉवलव ने यह बतलाया कि जब प्राणी तटस्थ उद्दीपक (धंटी) तथा स्वाभाविक उद्दीपक (भोजन) को एक दूसरे से सम्बन्धित करना सीखता है तो उस समय अगर कोई बाह्य उद्दीपक जैसे रोशनी (Light) उपस्थित करके तटस्थ उद्दीपक दिया जाता है तो वैसी परिस्थिति में सीखने की गति थोड़े समय के लिये अवरूद्ध (inhibited) हो जाती है। चूंकि इस तरह का अवरोध (inhibition) व्यक्ति में किसी बाह्य उद्दीपक के कारण होता है, अत: इसे पैवलव ने बाह्य अवरोध की संज्ञा दी।

4. **उद्दीपक तथा स्वाभाविक उद्दीपक का कालिक क्रम (Temporal sequence of conditional stimulus and unconditioned stimulus)** - पॉवलव के सिद्धान्त में सबसे महत्त्वपूर्ण कारक जो अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned respnpse) की शक्ति (strength) निर्धारित करता है, वह है - अनुबन्धित उद्दीपक (घंटी) तथा स्वाभाविक उद्दीपक (भोजन) के बीच का समय अन्तराल (time internval)। पॉवलव ने अपने प्रयोग में यह स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि इन दोनों उद्दीपकों के बीच समय अन्तराल जैसे-जैसे बढ़ते जाता है, सीखने की प्रक्रिया कमजोर होती जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है इन दोनों उद्दीपकों के बीच समय अन्तराल बढ़ने से अनुबन्धित अनुक्रिया की शक्ति कमजोर होती जाती है।

5. **उद्दीपक सामान्यीकरण (stimulus generalization)** - सीखने के प्रारम्भ के प्रयासों (trials) में देखा गया है कि सिर्फ मूल अनुबन्धित उद्दीपक (original conditioned stimulus) के प्रति ही प्राणी अनुक्रिया नहीं करता है बल्कि उससे मिलते-जुलते अन्य उद्दीपकों के प्रति भी उसी ढंग से अनुक्रिया करता है। इसे ही उद्दीपक सामान्यीकरण की संज्ञा दी जाती है। हाउस्टन (Houston, 1976) ने इसे परिभषित करते हुए कहा है, "उद्दीपक सामान्यीकरण को घटना में किसी एक उद्दीपक के प्रति अनुबन्धित अनुक्रिया उसी तरह के दूसरे उद्दीपकों से भी उत्पन्न होने लगती है।"

6. **विभेदन (Discrimination)** - विभेदन की घटना (phenomenon) उद्दीपक सामान्यीकरण (Stimulus generalization) के ठीक विपरीत घटना है। जैसे-जैसे सीखने के लिये दिये जाने वाले प्रयासों (trial) की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे प्राणी मूल अनुबन्धित उद्दीपक (original conditioned stimulus) तथा अन्य समान उद्दीपकों (similar stimuti) के बीच स्पष्ट अन्तर या विभेद कर लेता है। इसेके परिणामस्वरूप प्राणी सिर्फ मूल अनुबन्धित उद्दीपक के प्रति ही अनुक्रिया करता है, अन्य समान उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया नहीं करता है। इसे ही विभेदन (discrimination) की संज्ञा दी जाती है।

7. **विलोपन तथ स्वत: पुनर्लाभ (Extinction & Spontaneous recovery)** - पैवलव ने अपने प्रयोग में पाया कि प्राणी (organism) में अनुबन्धन (conditioning) उत्पन्न होने के बाद जब सिर्फ CS (घंटी) दिया जाता है और UCS (भोजन) नहीं दिया जाता है और इस प्रक्रिया को लगातार कई प्रयासों (trial) तक दोहराया जाता है, तो धीरे-धीरे सीखी गयी अनुक्रिया की शक्ति कमने लगती है। दूसरे शब्दों में, कुत्ता धीरे-धीरे घंटी की आवाज पर लार का स्राव कम करते जाता है। अन्त में, एक ऐसा भी प्रयास (trial) आता घंटी बजती है परन्तु लार का स्राव बिलकुल ही नहीं होता है। पैवलव ने इस तरह की घटना (phenomenon) को विलोपन (extinction) की संज्ञा दी है।

8. **पुनर्बलन (Reinforcement)** - पैवलोवियन अनुबन्धन में पुनर्बलन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। पैवलव के प्रयोग में भोजन एक प्रकार का पुनर्बलन है जो कुत्ते को लार स्राव (salivation) की अनुक्रिया करने के लिये प्रेरित करता है। सचमुच में भोजन यहाँ एक मुख्य पुनर्बलन (primary reinforcement) का उदाहरण है। जब कोई दूसरा तटस्थ उद्दीपक natural stimulus) जैसे घंटी को बार-बार भोजन के साथ संयोजित कर (paired) प्राणी के सामने उपस्थित किया जाता है तो वैसी परिस्थिति में उस तटस्थ उद्दीपक में भी मुख्य पुनर्बलन (primary reinforcement) का गुण आ जाता है। यही कारण है कि पैवलव के प्रयोग में कुछ प्रयासों (trials) के बाद कुत्ता मात्र घंटी की आवाज पर ही लार स्राव की अनुक्रिया करता था। जब एक तटस्थ उद्दीपक में मुख्य पुनर्बलन का गुण आ जाता है तो इसे गौण पुनर्बलन (secondary reinforcement) की संज्ञा दी जाती है। एक तटस्थ उद्दीपक में मुख्य पुनर्बलन का गुण बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है बीच में तटस्थ उद्दीपक के साथ-साथ मुख्य उद्दीपक (primary reinforcement) (जैसे भोजन) भी दिया जाता रहे।

10. **आभासी अनुबन्धन (Pseudo-conditioning)** - कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि प्राणी (organism) प्रयोगात्म्क परिस्थिति में कुछ वैसे ही व्यवहार दिखलाता है जो उस समय होता है जब सचमुच में अनुबन्धन (conditioning) हो जाता है। जैसे, प्रयोगात्मक परिस्थिति में लाने के कुछ समय के बाद अपने पूर्व अनुभव के कारण कुत्ते में अपने आप लार स्राव की अनुक्रिया यदि शुरू हो जाती है तो यह है एक आभासी अनुबन्धन (pseudoconditioning) का उदाहरण होगा। प्रय: आभासी अनुबन्धन तब होता है जब प्राणी में सामान्य उत्तेजनशीलता (general excitability) अधिक होता है।

निम्न तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि पैवलोवियन अनुबन्धन में बहुत तरह की घटनाएँ होती हैं जिनसे सीधे या परोक्ष रूप से अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned response) की शक्ति प्रभावित होती है।

कुछ मनोवैज्ञानियों द्वारा क्लासिकी अनुबन्धन की आलोचना निम्नांकित कारकों (factors) के आधार पर की गयी है। प्रमुख आलोचनाएँ निम्नांकित हैं-

1- पॉवलव एक उद्दीपक अनुक्रिया पुनर्बलन सिद्धान्तवादी (stimulus - response reinforcement theorist) हैं। अत: इनके अनुसार सीखने के लिये अर्थात् उद्दीपक एवं अनुक्रिया में सम्बन्ध स्थापित करने के लिये पुनर्बलन (reinforcement) का होना अनिवार्य है।

बोध प्रश्न :

1- पैवलव ने अनुबन्धन सिद्धान्त में किसे सर्वोच्च स्थान दिया।

2- प्राचीन अनुबन्धन का प्रवर्तक कौन थे?

3- प्राचीन अनुबन्धन को ..... भी कहा जाता है।

13.3 नैमित्तिक अनुबन्ध के स्वरूप (Nature and Types of Instrumental Conditioning)

नैमित्तिक अनुबन्धन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्राणी मुक्त अनुक्रिया परिस्थिति (free-responding situation) में रहकर किसी व्यवहार को सीखता है। नैमित्तिक अनुबन्धन में प्राणी का प्रयोगात्मक परिस्थिति (experimental situation) जैसे स्कीनर बॉक्स (Skinner Box) या पहेली बॉक्स (puzzle box) में इधर-उधर घूमने की पूरी स्वतन्त्रता होती है। इस तरह के अनुबन्धन की एक खास विशेषता यह होती है कि प्राणी इसमें अनुक्रिया स्वयं करता है न कि कोई विशेष उद्दीपक (stimulus) द्वारा उत्तेजित होने पर करता है। जैसे, स्कीनर बक्स में चूहा लीवर दबाने की अनुक्रिया स्वयं करता है। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि अनुक्रिया किसी उद्दीपक के प्रति किया जा रहा है। सच पूछा जाय तो प्राणी यहाँ पूरे वातावरण पर ही परिचालन करते हुए (operate) अनुक्रिया करता हैं यही कारण है कि इसे क्रियाप्रसूत अनुबन्धन (operate conditioning) भी कहा जाता है। इस तरह के अनुबन्धन का उदाहरण हमें थॉर्नडाइक (Thorndike) एपवं स्कीनर (Skinner) द्वारा सीखने के क्षेत्र में किये गये प्रयोगों में मिलता है।

13.3.1 नैमित्तिक अनुबन्धन के प्रकार

1. **पुरस्कार प्रशिक्षण (Reward training)** - पुरस्कार प्रशिक्षण साधनात्मक अनुबन्धन का सबसे सरल प्रकार है। इस तरह के प्रशिक्षण की मुख्य विशेषता यह है कि जब प्राणी प्रयोगात्मक परिस्थिति में एक खास अनुक्रिया को करता है, तो उसे पुरस्कार (reward) दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप, स्कीनर बक्स में चूहा जब लीवर दबाने की अनुक्रिया करता था, उसे भोजन दिया जाता था। अत: यह पुरस्कार प्रशिक्षण (reward training) का उदाहरण है। इस तरह से पुरस्कार प्रशिक्षण की सबसे प्रमुख आवश्यकता (requirement) यह होती है कि मानव या पशु पहले कोई उपयुक्त अनुक्रिया करता है और तब उसे वांछनीय परिणाम (resired results) अर्थात् परुस्कार मिलता है।

2. **विभेदन प्रशिक्षण (Discrimination training)** - विभेदन प्रशिक्षण में प्राणी (organism) को एक खास अनुक्रिया परिस्थितियों में विभेद करते हुए करना सीखलाया जाता है। इस तरह के नैमित्तिक सीखना (instrumental learning) में प्राणी को जैसे चूहा को स्कीनपर बक्स में रख दिया जाता है और उसके छत से एक बल्ब लटका दिया जाता है। इसे विभेदन संकेत (discrmination cue) कहा जाता है। किसी प्रयास (trial) में बल्ब जला दिया जाता है तथा किसी प्रयास में इसे बुझा दिया जाता है। 'रोशनी ऑन' (light on) अवस्था में यदि यह लीवर दबाने की अनुक्रिया करता है, तो इसे भोजन दिया जाता है। इसके कुछ समय के बाद दूसरी परिस्थिति प्रारम्भ होती है, जिसमें रोशनी (light) ऑफ (off) होती है और यदि चूहा इस परिस्थिति में लीवर दबाने की अनुक्रिया करता भी है, तो

उसे भोजन नहीं मिलता है। इस तरह रोशनी ऑन (light on) तथा रोशनी ऑफ (light on) की परिस्थिति में लगातार कई प्रयास (trial) दिये जाते हैं। धीरे-धीरे चूहा लीवर दबाने की अनुक्रिया को दो तरह की परिस्थितियों में विभेद करते हुए सीख लेता है। इसे ही विभेदन प्रशिक्षण कहा जाता है।

3. **मुक्ति प्रशिक्षण (Escape training) -** मुक्ति प्रशिक्षण (Escape training) को उन्मुक्ति प्रशिक्षण (relief training) भी कहा जाता है। इस तरह के प्रशिक्षण में एक विशेष बक्स तैयार किया जाता है जिसे 'शटिल बक्स' (shuttle box) कहा जाता है। इस बक्स में दो कक्ष (compartment) होते है। इन दोनों कक्षों के बीच एक दरवाजा हाता है जिसे ऊपर नीचे किया जा सकता हैं। नीचे की और गिरा देने से एक कक्ष दूसरे से अलग हो जाता या परन्तु फिर भी उस दरवाजा की बनावट ही कुछ ऐसी होती थी कि यदि प्राणी चाहे तो उसे लाँघ कर या छलांग लगाकर दूसरे कक्ष में आ जा सकता है। इस प्रशिक्षण में प्राय: कुत्ता को ही प्रयोज्य (subject) बनाया जाता है। कुत्ता को किसी एक कक्ष में रख दिया जाता है। चूंकि कक्ष की सतह (steel) के छड़ (bars) का बना होता है। अत: उसके द्वारा कुत्ता को हल्का बिजली का शॉक (shjock) दिया जाता है। शॉक लगते ही कुत्ता बेचैन होकर वहाँ से भागना चाहता है और फिर इधर-उधर देखकर बीच के दरवाजा को लाँघते हुए दूसरे कक्ष में आ जाता है जिसका भी सतह स्टील के छड़ का ही होता है परन्तु अभी उसमें बिजली की धारा (current) प्रवाहित नहीं होती। कुछ मिनट कुत्ता जब आराम कर लेता तो फिर उस कक्ष के सतह से भी बिजली की धारा प्रवाहित की जाती है और फिर कुत्ता में उसी तरह की बेचैनी देखी जाती है और पुन: बीच के दरवाजा को लाँघते हुए पहले वाले कक्ष में आ जाता है जिसकी सतह में अभी विद्युत की धारा नहीं होती है। इस तरह से कुत्ता को दोनों कक्षों में प्रशिक्षण दिया जाता है और अन्त में देखा जाता है कि बिजली का शॉक (shock) लगने तथा कुत्ता को उछल कर या लाँघकर दूसरा कक्ष में आने के बीच का समय (latency) बहुत कम हो जाता है और तब यह समझा जाता है कि कुत्ता मुक्ति अनुक्रिया (excape response) को पूर्णत: सीख लिया है।

4. **परिवर्जन प्रशिक्षण (Avoidance training) -** परिवर्जन प्रशिक्षण में पशु को दण्ड punishment) से बचना सीखलाया जाता है। अगर पशु एक खास समय के भीतर अनुक्रिया कर देता है, तो स्वभावत: उसे दण्ड नहीं मिलता है। परन्तु यदि वह अनुक्रिया उस खास समय के भीतर नहीं करता है तो उसे दण्ड मिलता है।

5. **दण्ड प्रशिक्षण (Punishment training) -** दण्ड प्रशिक्षण में प्राणी को निष्क्रिय ([passive) होकर पूर्व सीखी गयी अनुक्रिया को पुन: नहीं करने का प्रशिक्षण दिया जाता है क्योंकि प्रयोगात्मक स्थिति (experimental situation) में कुछ इस प्रकार का परिवर्तन कर दिया जाता है कि सीखी गयी अनुक्रिया को न करने से ही उसे पुरस्कार (reward) मिलता है या दण्ड से छुटकारा मिलता है। प्राय: दण्ड प्रशिक्षण के लिये स्कीनर बक्स में पहले चूहा को पुरस्कार (reward) के आधार पर लीवर दबाने की अनुक्रिया को सीखला दिया जाता है। फिर अचानक किसी प्रयास (trial) से लीवर का सम्बन्ध भोजन से तोड़कर बिजली से कर दिया जाता है जिसके फलस्वरूप लीवर दबाने से चूहा को भोजन मिलने के बजाय बिजली का शॉक लगता है। ऐसी परिस्थिति में चूहा की निष्क्रिय होकर (Passive-

ly) लीवर को न दबाने की अनुक्रिया को सीखना होता है क्योंकि ऐसा ही करने से उसे पुरस्कार (reward) मिल सकता है अर्थात् वह दण्ड से बच सकता है।

6. **विलोपन प्रशिक्षण (Omission training) -** विलोपन प्रशिक्षण बहुत हद तक दण्ड प्रशिक्षण से मिलता-जुलता है। अन्तर इनता ही है कि विलोपन प्रशिक्षण में पुनर्बलन (reinforcement) धनात्मक (positive) होता है अर्थात् कोई पुरस्कार होता है जिसके आधार पर भी पूर्व सीखी गयी अनुक्रिया को प्राणी धीरे-धीरे भूलता है।

7. **विभेदित दण्ड प्रशिक्षण (Discriminated punishment training) -** इस प्रशिक्षण में प्रयोगात्मक विधि (experimental method) ठीक वहीं होता है जो दण्ड प्रशिक्षण का होता है। परन्तु इसमें सिर्फ एक विभेदन संकेत (discrimination cue) होता है जिसे स्कीनर बकस में लगा दिया जाता है और तब प्रशिक्षण दी जाती है। जैसे, स्कीनर बकस में प्रकाश बल्ब (Light bulb) लगा दिया जा सकता है जो विभेदन संकेत का कार्य करता है।

8. **विभेदित विलोपन प्रशिक्षण (Discriminated ommission training)** - विभेदित विलोपन प्रशिक्षण की प्रयोगात्मक विधि बहुत कुछ विलोपन प्रशिक्षण के ही प्रशिक्षण के ही समान है। अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रयोगात्मक परिस्थिति में एक विभेदन संकेत (discrimination cue) जैसे रोशनी के लिये बल्ब (Light bulb) लगा दिया जाता है। बल्क के जलते रहने की अवस्था में चूहा को स्कीनर बक्स में लीवर बदाने की अनुक्रिया न करने पर (या यों कहा जाए कि लीवर दबाने की अनुक्रिया करने के पहले ही) उसे भोजन दे दिया जाता है। फिर बल्ब बुझाने की अवस्था में चूहा को स्कीनर बाक्स में लीवर दबाने की अनुक्रिया करने के बाद ही भोजन दिया जाता है। इस तरह से बल्ब रहने की अवस्था तथा बल्ब बुझा रहने की अवस्था को लगातार वैकल्पिक रूप से (alternatively) देने से चूहा इन दोनों अवस्थाओं में विभेद करना सीख लेता है और बल्ब जलते रहने की अवस्था में चूहा लीवर दबाने की अनुक्रिया को तेजी से करता पाया जाता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि नैमित्तिक सीखना से कई प्रकार है। इन प्रकारों में पुरस्कार प्रशिक्षण (reward training) परिवर्जन प्रशिक्षण (avoidance training) तथा विभेदन प्रशिक्षण (disccriminatin training) अधिक महत्त्वूपर्ण है।

बोध प्रश्न

1- नैमित्तिक अनुबन्धन को अन्य किस नाम से जाना जाता है?

2- नैमित्तिक अनुबन्धन क्रिया को कितने भागो में विभक्त किया है?

13.4 हल का सिद्धान्त (Hull's theory)

क्लार्क हल (Clark Hull) एक प्रमुख व्यवहारवादी (behaiourist) है जिन्होंने सीखने की व्याख्या एक ऐसा ढाँचा (framework) के तहत किये हैं, जो अन्य व्यवहारवादियों के द्वारा किये गये व्याख्या से भिन्न है। हल के सीखने की विधि को परिकल्पित-निगमनात्मक विधि (hypothetical deductive mehtod) या तार्किक निगमनात्मक विधि (logical deductive) कहा जाता है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अभिगृहीत (postulates) तथा प्रमेय (theorems) का एक तार्किक

संरचना (logical structure) है।व्यवहार के बारे में एक सामान्य कथन (general statement) अभिगृहीत होता है जिसकी जाँच सीधे नहीं की जा सकती है।

हल के सिद्धान्त का प्रतिपादन पहले 1942 ईñ में किया गया और बाद में 1953 ईñ में उसका संशोधन (revision) किया गया। अत: हल के सिद्धान्त का वर्णन निम्नांकित तीन प्रमुख भागों में बाँटकर किया जाएगा -

(क) अभिगृहीतवाद मुख्य सैद्धान्तिक संप्रत्यय (Major theoretical concepts postulatewise)

(ख) 1952 तथा 1943 ईñ के सिद्धान्तों में प्रमुख अन्तर (Major Differences between Hull's 1943 and 1953 theories)

(ग) चार स्तरीय पूर्वकथनीय तंत्र में चरों का हल द्वारा प्रतिपादित सारांश (Summary) (Hull's summary of variables in four stage predicative system)

13.4.1 हल के सिद्धान्त का मुख्य सम्प्रत्य

(क) अभिगृहीतवाद मुख्य सैद्धान्तिक संप्रत्यय **(Major theoretical concepts postulatewise)** - इस सिद्धान्त की अभिगृहीतवार वर्णन संक्षेप में इस प्रकार किया जा सकता है-

1. **अभिगृहीत 1** : उद्दीपक चिन्ह तथा बाह्य वातावरण का ज्ञान **(Postulate 1 : Sensing the external environment and the stimulus trace)** - बाह्य उद्दीपक से व्यक्ति में संवेदी तंत्रिका आवेग (sensory neural impulse) उत्पन्न होता है जो पर्यावरणी उत्तेजना (environmental stimulation) को अधिक देर तक बनाये रखता है। हल का मत था कि जब किसी बाह्य उद्दीपक को व्यक्ति के सामने प्रस्तुत करके हटा लिया जाता है, तो कुछ सेकेण्ड बाद तक उसका चिन्ह (trace) व्यक्ति के मन में बना होता है। इसे उन्होंने उद्दीपक चिन्ह (stimulus trace) की संज्ञा दी है। चूँकि संवेगी तंत्रिका आवेग (sensory neural impulse) अनुक्रिया (response) के साथ साहचर्यित हो जाता है, इसलिये हल ने पौराणिक S-R सूत्र को बदलकर S-s-R किया जहाँ s से तात्पर्य उद्दीपक चिन्ह (stimulus trace) होता है। हल के लिये S तथा R का साहचर्य महत्वपूर्ण होता है।

2. **अभिगृहीत 2** : संवेदी आवेगों की अन्त:क्रिया **(Postulate 2 : Interaction of sensory impulses)** - इस अभिगृहीत के अनुसार व्यवहार एक उद्दीपक का नहीं बल्कि अनेकों उद्दीपकों के आपसी अन्त:क्रिया का परिणाम होता है। ये सभी उद्दीपक एक साथ प्राणी पर अभिमुख होते हैं और उन्हें अनुक्रिया करने के लिये बाध्य करते हैं।

3. **अभिगृहीत 3** : **अनार्जित व्यवहार (Postulate 3 : Unlearnt behaviour)** - हल का मत था कि जब व्यक्ति कोई आवश्यकता (need) उत्पन्न होती है, तो उसमें इस आवश्यकता को कम करने के लिये कई तरह की अनुक्रियाएँ करने की एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है। जैसे, यदि व्यक्ति के आँख में कीड़ा या धूलकण पड़ जाता है, तो इससे कई अनुक्रियाएँ जैसे आँख का मुलमुलाना (blinking), आँख से आँसू आना आदि अपने आप होने लगता है।

4. **सामीप्यता तथा प्रणोद ह्रास सीखने के लिये आवश्यक परिस्थिति (Postulate 4 : Contiguity and drive reduction as necessary conditions for learning)** - यह अभिगृहीत यह बतलाता है कि यदि उद्दीपक के ास प्रति व्यक्ति अनुक्रिया करता और यदि उस अनुक्रिया से प्राणी की जैविक आवश्यकता (biological need) की तुष्टि होती है, तो उद्दीपक तथा अनुक्रिया बीच का साहचर्य (association) मजबूत हो जाता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हल के लिये पुनर्बलन (reinforcement) अन्तर्नोद कमी (drive reduction) के समान था तथा पुनर्बलन (reinforcer) से तात्पर्य उन उद्दीपकों से था जो अन्तर्नोद (drive) को करने में सक्षम होता है।

5. **अभिगृहीत 5 : उद्दीपक सामान्यीकरण (Postulate 5 : Stimulus Generalization)** समान अवस्थाओं में होने वाले सीखना आसानी से नयी सीखने की परिस्थिति स्थानान्तरित (transfer) हो जाता है। इसे हल ने सामान्यीकृत आदत शक्ति (generalized habit styrength) कहा है।

6. **अभिगृहीत 6 : प्रणोद से सम्बद्ध उद्दीपक (Postulate 6 : Stimulus associated with drive)** - जब प्राणी में कुछ जैविक कमी (biological deficiency) होती है या कोई दर्दपूर्ण उत्तेजना (painful stimulation) होता है, तो इससे इसमें जो अवस्था उत्पन्न होती है, उसे प्रणोद (drive) कहा जाता है। जिसका संकेत D है। प्रत्येक प्रणोद का सम्बन्ध कुछ विशिष्ट उद्दीपक (specific stimulus) से होता है। जैसे, भूख अन्तर्नोद में भूख दर्द (hunger pangs) तथा प्यास अन्तर्नोद में मुँह तथा होठ का सूखना ऐसे ही उद्दीपक (stimulus) के उदाहरण है।

7. **अभिगृहीत 7 : प्रतिक्रिया अन्त:शक्ति प्रणोद तथा आदत शक्ति का परिणाम होता है (Postulate 7 : Reaction potential is a function of Drive and Habit strength)** - किसी एक समय में किसी सीखी गयी अनुक्रिया के होने की संभावना को प्रतिक्रिया अन्त:शक्ति (reaction potential) कहा जाता है जिसका संकेत $_SE_R$ है।

8. **अभिगृहीत 8 : अनुक्रिया कराने से थकान उत्पन्न होता है जिससे अनुबन्धित अनुक्रिया के होने में बाधा होती है (Postulate 8 : Responding causes fatigue which operates against the elicitation of cinditioned response)** - यह अभिगृहीत के अनुसार जब व्यक्ति कोई कार्य करता है या अनुक्रिया करता है, तो उससे थकान उत्पन्न होती है जो उसे अनुक्रिया न करने के लिये प्रेरित करता है। इस तरह की प्रवत्ति को हल ने प्रतिक्रिया अवरोध (reactive inhibition) कहा है।

9. **अभिगृहीत 9 : अनुक्रिया न करने की सीखी गयी प्रवृत्ति की अनुक्रिया (Postulate 9 : Learned response of not responding)** - थकान या IR चूँकि एक नकारात्मक प्रणोद अवस्थान (negative drive state) है, इसलिये जब व्यक्ति विश्राम करता है, अर्थात् कोई भी अनुक्रिया न करता है, तो वह प्रवृत्ति मजबूत हो जाती है और थकान भी इससे कम हो जाती है। अनुक्रिया न करने की इस प्रवृत्ति को अनुबन्धित अवरोध (conditioned inhibition) कहा जाता हैं

10. **अभिगृहीत 10 : सीखी गयी अनुक्रिया को अवरूद्ध करने वाले कारक एक क्षण से दूसरे क्षण में परिवर्तन होते रहते हैं (Postulate 10 : FActors tending to inhibit a learned response change from moment to moment)** - हल के अनुसार प्राणी में कुछ अवरोधात्मक अन्त:शक्ति (inhibitory potentiality) होती है जो क्षण से दूसरे क्षण परिवर्तित होते रहती है तथा वह किसी सीखी गयी अनुक्रिया को उत्पन्न होने से रोकता है। इस तरह के अवरोधात्मक अन्त:शक्ति (inhibitory potentiality) को दोलन प्रभाव (oscillation effect) कहा जाता है।

11. **अभिगृहित 11 : किसी भी सीखी गई अनुक्रिया के उत्पन्न होने के लिये यह आवश्यक है क्षणिक प्रभावी प्रतिक्रिया अन्त:शक्ति एक निश्चित मूल्य सीमा से अधिक हो (Postulate 11 : Momentary effective reaction potential must exceed a certain value before a learned response occurs)** - हल का मत है कि $_SE_R$ द्वारा सीखी गयी अनुक्रिया होने के लिये यह आवश्यक है कि उसका मूल्य (value) एक निश्चित न्यूनतम सीमा से अधिक हो। इसे प्रतिक्रिया देहली (reaction threashold) की संज्ञा दी जाती है और इसका संकेत $_SL_R$ है।

13.4.2 मौलिक सिद्धान्त में कुछ परिवर्तन बिन्दु

हल के 1943 तथा 1952 ईñ के सिद्धान्तों के बीच का मुख्य अन्तर (Major differences between Hull's 1943 and 1952 theories) - हल के अपने सिद्धान्त का 1952 ईñ में संशोधित रूप प्रकाशित किया जिसमें वे अपने मौलिक सिद्धान्त अर्थात 1942 ईñ में सिद्धान्त में कुछ परिवर्तन किये।

1. **प्रोत्साहन अभिप्ररणा (Incentive Motivation)** - हल ने इसे K के संकेतिक किया है। किसी अनुक्रिया को करने के लिये दिए गऐ प्रोत्साहन के प्रेरित प्रभाव (motivation effect) को K की संज्ञा दी गई है। 1943 ईñ के सिद्धान्त में हल ने पुनर्बलन की मात्रा (magnititude of reinforcement) को सीखने की चर (learning variable) माना है।

2. **उद्दीपक तीव्रता गत्यात्मकता (Stimulus - Intensity dynamism)** - इसका संकेत V है। उद्दीपक तीव्रता गत्यात्मकता से यह पता चलता है कि बाह्य उद्दीपक (external stimulus) की तीव्रता जितनी ही अधिक होती है सीखी गयी अनुक्रिया के ओने से संभावना उतनी ही अधिक बढ़ जाती है।

3. **प्रणोद ह्रास से प्रणोद उद्दीपक ह्रास में परिवर्तन (Change from drive reduction to drive stimulus reduction)** - 1942 ईñ के सिद्धानत में हल ने प्रणोद ह्रास (drive reduction) पर अधिक बल डाला था और कहा था कि प्राणी को अनुक्रिया करने के बाद जो प्रोत्साहन (incentive) मिलता है, उससे जब प्राणी के प्रणोद में कमी नहीं होती है तो सीखने की प्रक्रिया नहीं हो सकती है।

4. **भिन्नात्मक पूर्वपादित लक्ष्य अनुक्रिया (Fractional antendating goal response)** - इसका संकेत r_G है। यह एक ऐसी अनुक्रिया है जो उन उद्दीपकों (stimuli) के साथ अनुबन्धित होता है जो प्राथमिक पुनर्बलन (primary reinforcement) की प्राप्ति के पहले उपस्थित होता है। जैसे, पशु के द्वारा भूलभुलैया सीखने (maze learning) के दौरान

लक्ष्य बक्स में पुनर्बलन (reinforcement) प्रापत करना लक्ष्य अनुक्रिया (goal response) कहलाता है जिसका संकेत R_G है। कुछ प्रयासों के बाद पशु जब भूलभुलैया के लक्ष्य बक्स में पहुँचने के पहले अर्थात् जब वह रोस्ते में ही होता है तो लक्ष्य अनुक्रिया का कुछ अंश (fraction) (जैसे, यदि लक्ष्य अनुक्रिया भोजन खाना है, तो चबाना, मुँह, चटपटाना, मुँह में लार आना आदि) करना प्रारम्भ कर देता है।

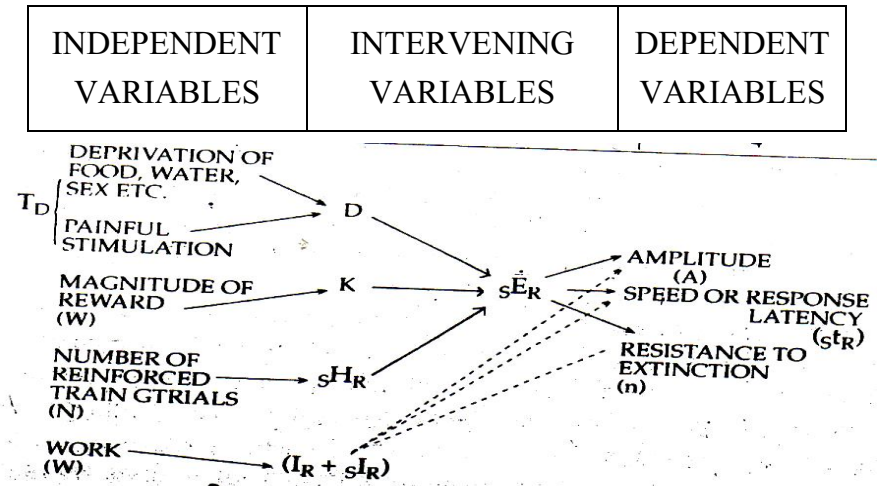

चित्र : हल का चार स्तरीय पूर्व कथनात्मक तंत्र

(Hull's four stage predictive system)

5. **आदन-समूहन पदानुक्रम (Habit family hierarchy)** - हल का मत है कि किसी भी सीखेन की परिस्थिति में कई तराह की अनुक्रियाएँ की जाती है। इस तरह के अनुक्रियाओं का एक परिवार या समूहन (family) होता है जो एक पदानुक्रम (hierarchy) में सुव्यवस्थित रहती है। प्राणी इन विभिन्न अनुक्रियाओं में से उस अनुक्रिया को करता है जिसके करने के तुरन्त बाद पुनर्बलन (reinforcement) मिलती है। यदि किसी कारण से वह इस अनुक्रिया को नहीं करता है, तो वह पदानुक्रम (hierarch) के अगले अनुक्रिया को करता है जिससे उने पुनर्बलन मिलने की उम्मीद होती है। इसी तरह से वह पदानुक्रम के एक के बाद एक करके अनुक्रियाएँ करता है। इसे ही आदत समूहन पदानुक्रम (habit family hierarchy) कहा जाता है। भूलभुलैया सीखना में आदत-समूहन अनुक्रम के अनुसार पशु पहले उस पथ से होकर लक्ष्य बक्स में पहुँचाना चाहेगा जो सबसे छोटा होता है ताकि उसे कम समय तक दौड़ने के बाद पुनर्बलन मिल जाए। जब इस लघुतम पथ से होकर किसी कारण से वह नहीं दौड़ लगा पाता है तो वैसी परिस्थिति में फिर उससे बड़ा पथ से होकर वह दौड़ लगाना चाहता है। यह भी पथ यदि बद हुआ तो फिर उससे बड़ा पथ से होकर दौड़ लगाना चाहता है और इसी तरह से सबसे अन्त सबसे बड़ा पथ से होकर दौड़ लगाना चाहता है। लघुतम पथ से दौड़ लगाने में पशु को न केवल पुनर्बलन (reinforcement) ही जल्द मिल जाता है बल्कि IR तथा SIR मात्रा कम होती है।

(ग) हल का चार-स्तरीय पूर्वकथनात्मक तंत्र **(Hull's four state predictive system)** हल के **1952** ईñ के सिद्धान्त में तीन तरह के चरों **(variables)** का उपयोग किया गया है **-** स्वतन्त्रत चर **(independent variables),** मध्यवर्ती चर **(intervening variable)**

तथा आश्रित चर **(dependent variable)**। इन चरों को उन्होंने एक चार-स्तरीय तंत्र **(four stage system)** में सुव्यवस्थित किया है। तंत्र की पहली अवस्था स्वतन्त्र चर की, दूसरी तथा तीसरी अवस्था मध्यवर्ती चर का है तथा चौथी अवस्था आश्रित चर **(dependent variable)** का है। पहली अवस्था में चरों के आधार पर दूसरी अवस्था के चरों तथा दूसरी अवस्था के चरों के आधार पर तीसरी अवस्था के चरों एवं इस तीसरी अवस्था के चरों के आधार पर चौथी अवस्था के चरों के बारे में पूर्वकथन **(prediction)** किया जाता है। **1952 ईñ** के सिद्धान्त में इन चारों अवस्थाओं के चरों का वर्णन तो अभिगृहीतवार **(postulatewise)** ऊपर किया जा चुका है, परन्तु चित्र में इसके मुख्य बिन्दुओं को एक जगह संक्षिप्त कर दिखलाया गया है।

13.4.3 हल के सिद्धान्त का मूल्यांकन(Evaluation of Hull's theory)

हल के सिद्धान्त का सीखने के मनोविज्ञान पर काफी व्यापक प्रभाव पड़ा है। इसका उचित मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि इस सिद्धान्त की महत्ता के प्रमुख कारण निम्नांकित हैं -

1. हल का सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जो काफी क्रमबद्ध **(systematic)** तथा वस्तुनिष्ठ **(objective)** है।

3- हल का सिद्धान्त एक आत्म-संशोधक सिद्धान्त **(self-correcting theory)** है। अगर प्रमेय **(theorem)** को सिद्ध करने के लिये किये गये प्रयोग द्वारा प्रमेय सिद्ध हो जाता है तो अभिगृहीत **(postulate)** को आपने आप सही मान लिया जाता है, अन्यथा अभिगृहीत को संशोधित कर दिया जाता है। इस तरह के आत्म संशोधन का प्रावधान अन्य किसी सिद्धान्त में नहीं है।

बोध प्रश्न

1- हल का सिद्धान्त क्रमबद्ध तथा **.....** है।

13.5 टॉलमैन का सिद्धान्त (Tolman's Theory)

ई.सी. टॉलमैन एक व्यवहारवादी है यह सिद्धांत व्यवहारवाद तथा गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का सम्मिश्रिण है इन्होंने अन्र्तनिरीक्षणात्मक दृष्टिकोण का विरोध किया हैं। टॉलमेन के अनुसार व्यवहार के छोटे-छोटे टुकड़ों मे बांटे बिना समग्र रूप में अध्ययन किया जाना चाहिए। क्योंकि व्यवहार उद्देश्य पूर्ण होता है। ऐसे व्यवहार को टॉलमैन ने चवर्ण व्यवहार की संज्ञा दी है। टॉलमैन के सिद्धान्त में उद्देश्य पूर्ण व्यवहार पर अधिक बल डाला गया है इसलिए इसे उद्देश्य (Objective)पूर्ण व्यवहारवाद भी कहा जाता हैं इनके सिद्धान्त को चिन्ह-अर्थ सिद्धान्त, चिन्ह-गेस्टॉल्ट सिद्धान्त, प्रत्याशा सिद्धान्त कहा जाता है।

13.5.1 टॉलमैन सिद्धान्त का मुख्य सम्प्रत्यय

सीखने का अर्थ - सीखने की प्रक्रिया में प्राणी एक उद्दीपक से दूसरे उद्दीपक तीसरे उद्दीपक और इसी तरह से लक्ष्य तक सभी उद्दीपकों के बीच एक अर्थपूर्ण सम्बंध स्थापित करना सीखता है। टॉलमेन के अनुसार यदि प्राणी बायी और मुडेगा तो एक चीज पायेगा तथा दांयी और जायेगा तो दूसरी चीज पायेगा। इस प्रक्रिया में वह धीरे-धीरे पूरे उद्दीपक परिस्थिति का एक चित्र या नक्शा मन में विकसित

होता है जिसे टॉलमैन ने सां ानात्मक नक्शा भी संज्ञा दी है। इस तरह का नक्शा विकसित हो जाने के बाद प्राणी लश्च पर किसी भी दिशा में पहुंच सकने में समर्थ हो पाता है। ऐसी परिस्थिति में यदि सामान्य रूप से उपयोग किया जाने वाला पथ में रूकावट होती है तो प्राणी उसका वैकल्पित रास्ता ढुंढ लेता है। टॉलमैन का मत है कि विभिन्न पथों में से लक्ष्य पर पहुँचाने के लिए हमेशा लघुतम को ही प्राणी अपनाता है। इसे टॉलमैन ने न्यूनतम प्रयास का नियम की संज्ञा दी है। टॉलमेन के अनुसार सीखने के लिए अभिप्रेरणा की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्राणी भोजन से वंचित होने पर भोजन की सामग्री पर अधिक देगा। प्राणी का प्रणोद या अभिप्रेरण द्वारा यह निर्धारित होता है कि प्रत्यक्षज्ञानात्मक क्षेत्र के किस पहलू पर प्राणी ध्यान देगा।

1- **संतुष्टि बनाम पुर्नबलन** - गथरी के समान टॉलमेन के लिए भी सीखने के लिए पुनर्बलन आवश्यक नहीं है। टॉलमैन के लिए भी सीखने के लिए पुनर्बलन आवश्यक नहीं है। टॉलमैन का मत है कि संज्ञानात्मक नक्शा के विकास के दौरान प्राणी कुछ प्रतयाशाओं को विकसित करता है। प्रत्याशा से तात्पर्य अनमान से हे जो प्राणी लगाता है कि किस उद्दीपक के बाद कौन सा उद्दीपक आयेगा इस अस्थायी प्रत्याशा को प्राक्कल्पना की संज्ञा दी गयी है। इस पुष्ट प्रत्याशाओं को प्राणी त्याग देता है, जो प्रत्याशाएं सतत संपुष्ट होती जाती है, वह ऑलमैन क अनुसार, एक विशेष संप्रत्यय को जन्म देती है जिसे साधन साध्य तत्परता कहा जाता है। सामान्य भाषा में इसे विश्वास कहा जाता है।उपर्युकत व्याख्या के कारण इस सिद्धान्त को संज्ञानात्म्क सिद्धान्त भी कहा जाता है।

2- **स्थानापन्न प्रयत्न एवं त्रुटि -** टॉलमेन के अनुसार चूहे प्राय: भुलभुलैया के चयन बिन्दु पर थोड़ी देर के लिए रूक जाते हैं और वहां फिर वे चारों तरफ इधर-उधर देखने लगते हैं मानों वे विभिन्न उपलब्ध विकल्प पथों के बारे में कुछ सोच ही रहे हैं चयन बिन्दू या प्राणी द्वारा किये गए इस तरह के संवेदी अन्वेषण को टॉलमेन ने स्थानापनन प्रयत्न एवं त्रुटि की संज्ञा दी है।

3- **सीखना बनाम निष्पादन -** टॉलमैन ने सीखना तथा निष्पादन में अन्तर किया है औश्र इस तरह से वे इस बिन्दु पर हम के समान है, टॉलमैन के अनुसार जब व्यवहार के रूप में सीखना या परिवर्तन हो जाता है तो इसे निष्पादनकी संज्ञा दी जाती है। उनके अनुसार सीखी गयी अनुक्रिया जो व्यवहार के रूप में परिवर्तन लाने के लिए पुनर्बलन की आवश्यकता है निष्पादन एक चर है।

4- **पुनर्बलन प्रत्याशा** -भुलभुलैया सीखना में पुनबर्लन एक महत्वपूर्ण अंग है - जो कि प्राणी की प्रत्याशा का हिस्सा होता है। टॉलमैन अनुसार चरि पुनबर्लन परिवर्तन या दिया जाये तो इससे प्राणी के व्यवहार में विघटन आ जाता है जिसे (पुर्नबलन प्रत्याशा) कहा जाता है। 1928 ने एक प्रयोग करके पुनर्बलन प्रत्यशा की घटना की सिद्ध किया है। इस प्रयोग में बंदा के सामने दो कप रखे गए और उसमें से एक के कप के भीतर केला का रख लिया गया यह प्रक्रिया कई बार दुहराई गयी। इसके बाद अचानक केला की जगह पर चुकन्दर (जिसे बन्दर बहुत पसंद करता है) दे दिया गया। परिणाम यह देखा गया कि बन्दर कप के पास आने या कुंठित हो गया औश्र वह कप को उलट पुलक कर केला खोजने लगा और केला नहीं मिलने पर कप की हवा में उछालना प्रारम्भ कर दिया।

स्वभावत: यहाँ बन्दर का यह व्यवहार केला के प्रत्याशी थी संपुष्टि नहीं होने के धारण हुई। यह प्रयोग साबित करते है कि टॉलमैन द्वारा प्रतिपारित पुनर्बलन प्रत्याशा की व्याख्या सही है।

5- **लक्ष्य या स्थान सीखना बनाम अनुक्रिया सीखना** - टॉलमैन मत है कि प्राणी यह सीखना है कि लक्ष्य कहां है जबकि उद्दीपकर मत है कि प्राणी यह सीखता है कि लक्ष्य कहां है जबकि उसी पकार अनुक्रिया सिद्धान्तवादियों का कहना था कि प्राणी विशिष्ट उद्दीपकों के पति विशिष्ट अनुक्रिया करना सीखता है। टॉलमेन के अनुसार पशु लक्ष्य का पता लगता है किसी न किसी पथ से वहाँ निश्चित रूप से पहुँच ही जाता है इसे लक्ष्य सीखना या स्थान सीखना कहा जाता है। भुलभुलैया में प्राणी यह सीखता है कि प्रत्येक चयन बिन्दु पर उसे किस प्रकार की अनुक्रिया करनी चाहिए इसे अनुक्रिया सीखना कहते है। टॉलमेन, रिशी तथा कालिश 1946 द्वारा किया गया एक प्रयोग महत्वपूर्ण है जिसमें दो चूहों या समूह किया गया। जिसमें एक स्थान सीखने वाला समूह था दूसरा समूह अनुक्रिया सीखने वाला समूह था इन दोनों समूह को एक विशेष तरह की भुलभुलैया में दौड़ लगाना सिखलाया गया। एक समूह को केवल एक ही प्रकार की अनुक्रिया करने पर भोजन मिलता है और वह अनुक्रिया दायें मुड़ने की अनुक्रिया था। दूसरे तरफ स्थान समूह थे एक निश्चित स्थान पर ही जाना सीखना था। इस तरह से स्पष्ट है कि स्थान सीखना समूह अनुक्रिया सीखना समूह के ठीक विपरीत था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पशु स्थानविशेष को सीखते है। अनुक्रिया विशेष को नहीं।

6- **अव्यक्त सीखना** - टॉलमैन के अनुसार जब पुनर्बलन दिया जाता है तो इसकी अभिव्यक्ति निष्पादन के रूपमें होती है अर्थात सीखने में पुनबर्लन की आवश्यकता नहीं होती। जब सीखी गई अनुक्रिया को निष्पादन में अभिव्यक्त करना होता है, तो पुनबर्लन की आवश्यकता होती है। टॉलमैन ने एक प्रयोग तीन समूह के चूहा में से एक समुह भुलभुर्लया में दौड़ लगाने का प्रशिक्षण दिया गया। एक समूह को प्रारम्भ बॉक्स में लेकर लक्ष्य बॉक्स तक दौड़ लगाना पर पुनर्बलन नहीं दिया जाता था। दूसरे समूह की प्रत्येक दौड़ के बाद पुनर्बलन दिया जाता था तथा तीसरे समूह की प्रत्येक दौड़ के बाद पुनर्बलन दिया जाता तथा तीसरे समूह को ग्यारहवें दिन से दौड़ समाप्ति के बाद पुनर्बलन दिया जाता था, परिणामस्वरूप पाया गया कि इस समूह के निष्पादन में बहुत थोड़ा उन्नति हुई जिन्हें पुनर्बलन कभी नहीं दिया गया था, जिसे लगातार पुनर्बलन दिया गया था। उसका निष्पादन पूरे दिनों में धीरे-धीरे उन्नत होता गया। तीसरे समूह को जब पुनबर्लन ग्यारहवें दिन दिया गया तो उसका निष्पादन में अचानक वृद्धि हो गयी यह भी पाया गया कि इस तीसरे समूह का निष्पादन इस समूह से भी अधिक श्रेष्ठ हो गया। जिसे लगातार पुनर्बलन दियाजाता हैं इस प्रकार तीसरे समूह या परिणाम ज्यादा महत्वपूर्ण था।

टॉलमैन ने सीखने ने छ: प्रकार 1949 ई. में एक शोध पत्रिका में बताये है -

1- कैथेएक्सीस - इससे तात्पर्य है कि स्थान विशेष पर किसी विशेष भोजन को खाकर भूख प्रणोद को संतुष्ट जाता है और तखती इलाकों के लोग समुद्री भोजन लाकर ही क्षुधा तृप्र का पाते है।

2- तुल्यता विश्वास जब किसी उप लक्ष्य का प्रभाव लक्ष्य के समान ही होता हैं उसे तुल्यता विश्वास कहा जाता है।

3- क्षेत्र प्रत्याशा - सीखने की परिस्थिति में पशु जब एक चिन्ह या उद्दीपक को देखता है तो वह दूसरे उद्दीपक की आशा करता है इस तरह से एक उद्दीपक को देख कर कोई दूसरा खास उद्दीपक आने की उम्मीद करना सीख लेता है।

4- क्षेत्र संज्ञान तरीका - इससे तात्प्र्य विशेष प्रयोजन से हे जिसका आधार पर समस्या समाधान परिस्थिति सेप्राणी निबटता है। टॉलमैन के अनुसार यह प्रवृति जन्मजात है परन्तु ये प्राणी की अनुभूतियों द्वारा परिवर्तित हो सकती है।

5- प्रणोद विभेदन - सीखने का यह प्रकार प्राणी को विभिन्न प्रकार के प्रणोदों के बीच विभेदन करके उसी के अनुरूप अनुक्रिया करना सीखता हैं।

6- पेशीय पैतर्न - टॉलमेन ने यह स्पष्ट किया है उनके सिद्धान्त का सम्बंध मूलत: विचारों के साहचर्य से है न कि उन तरीकों से जिनके माध्यम से विचार व्यवहार के साथ सम्बनिधत हो जाती है।

आलोचकों का मत है कि टॉलमैन ने अपने सिद्धान्त में सीखने की व्याख्या करने के लिए संज्ञानात्मक ढांचा तो प्रदान किया है परन्तु सीखने के नियम के बारे में कुछ नहीं कहा है।

बोध प्रश्न

1- टॉलमैन द्वारा प्रतिपादित छ: प्रकारों के नाम बताइए।

2- टॉलमैन ने विलोपन को माना है?

13.6 गथरी का सिद्धान्त (Theory of Gutherie)

डी.आर. गथरी एक व्यवहारवादी हैं। इनके अनुसार उद्दीपक तथा अनुक्रिय के बीच में साहचर्य पुनर्बलन के आधार पर स्थापित नहीं होता बल्कि हमारा इन दोनों के बीच समीप्यता के आधार पर होता है। इसलिए इस उद्दीपक अनुक्रिया सामीप्यता सिद्धान्त कहा जाता है। इन्होंने व्यवहारिक पक्षों पर ज्यादा प्रभाव डाला है। इनके सीखने के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण समप्रत्यय निम्नांकित है -

13.6.1 गथरी सिद्धान्त के मुख्य सम्प्रत्यय (The basic concepts of Gatherie Theory)

1. **सीखना एक नियम है -** गथरी ने यह स्पष्ट किय है कि किसी भी दी हुई परिस्थिति में प्राणी अपने सामने उपस्थित अनेकों उद्दीपकों में से कुछ उद्दीपकों का चयन कर लेता है और उन्हीं उद्दीपकों तथा उनके प्रति की गई अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित कर लेता है।

2. **एक प्रयासीय सीखना** - गथरी के अनुसार एक उद्दीपक पैटर्न किसी अनुक्रिया के साथ पहली बार युग्मित होने पर ही सम्पूर्ण साहचर्यात्मक शक्ति प्राप्त कर लेता हैं दूसरे शब्दों में सीखना उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच समीप्यता कापरिणाम होता है और प्रथम बार युग्मित होने पर सीखना पूर्ण हो जाता है।

3. **नवीनता नियम -** गथरी ने इस नियम या बल डाला हे कि प्राणी किसी भी परिस्थिति में कई तरह की अनुक्रिया करता है इनमें से जो अन्तिम अनुक्रिया होती है उसी दो प्राणी दोहराता है।

4. **गति उत्पन्न उद्दीपक** - जब किसी बाह्य उद्दीपक द्वारा अनुक्रिया उपज होती हे, तो शरीरा स्वयं हीअगली अनुक्रिया के लिए उद्दीपक उत्पन्ल्न कर देता है और वह अनुक्रिया फिर अगली अनुक्रिया के लिए उद्दीपक उत्पन्न कर देता हे और इसी तरह से प्रक्रिया चलती रहती है। परिणाम स्वरूप् बाह्य उद्दीपक तथा उसके प्रति की गयी अनुक्रिया के बीच का

समय अंतराय गति उत्पन्न उद्दीपकों द्वारा भर जाते है और इस तरह गति उत्पन्न उद्दीपकों तथा उससे उत्पन्न व्यवहार भी समीज्यता बन जाती है और अन्त में इनके आधार या व्यक्ति बाह्य उद्दीपक तथा व्यवहार के बीच समय अन्तराल होने पर भी दोनों के बीच साहचर्य स्थापित कर पाता हैं।

5. **कार्य एवं गति अन्तर** - गति तथा उद्दीपक के बीच में साहचर्य मात्र एक ही प्रयास में हो जाते है। अत: प्राणी किसी गति को करना मात्र एक ही प्रयास में सीख लेता हे परन्तु किसी क्रिया को सीखने के लिए अभ्यास की जरूरत पड़ती है। क्योंकि ऐसी परिस्थिति कई तरह के विशिष्ट गतियों को विभिन्न उद्दीपक परिस्थिति के साथ सहचचिर्त होना आवश्यक है। जितना ही अभ्यास अधिक दिया जाता है, इस तरह का साहचर्य उतना ही मजबूत होता चला जाता है।

6. **पुनर्बलन का स्वरूप -** गथरी ने अपने सिद्धान्त में पुनर्बलन की व्याख्या समीप्यता नियम से है चूँकि पुनबर्लन देने से उउत्तेजन की अवस्था में कुछ परिवर्तन आ जाता है इसलिए सीखी गयी अनाधिगम होने से बच जाती है। जेसे पहेली बॉक्स में पुनबर्लन मिलने केप हले पशु रस्सी खींचता या बटन दबाता है जिससे वह उस बॉक्स से बाहर निकल जाता है और उसे पुनर्बलन मिलता है पुनर्बलन उद्दीपक परिस्थिति में एक परिवर्तन ला देता है जिसके कारण प्राणी जो अनुक्रिया पुनबल्रन के पहले किये होता है उसे वह अगली बार फिर करना चाहता है।

1. **सीखने के नियम -** गथरी का मत है कि थॉर्नडाइक तथा स्कीनर ने जो सिखने के नियम की चर्चा की हे, वह अनावश्यक रूप से जटिल है और इन विभिन्न नियमों के जगह पर गथरी ने सीखने के मात्र एक नियम की चर्चा की और वह नियम हे - सामीप्यता का नियमं इसकी व्याख्या गथरी ने इस प्रकार किया है, - ''उद्दीपकों का एक संयोग जो किसी गति को उत्पन्न करता है, अपनी दूसरी बारी में फिर वही गति उत्पन्न करेगा।'' अर्थात जब प्राणी किसी परिस्थिति में कुछ करता है, तो अगले बार जब वह उसी परिस्थिति में पुन: होता है तो वह वही अनुक्रिया फिर करता पाया जाता है। 1956 में गा्िरी ने अपने सामीप्यता के नियम में थोड़ा परितर्वन करते हुए कहा कि प्राणी किसी परिस्थिति में जो देखता है, वह इस बात के लिए संकेत हो जाता है कि क्या किया जा रहा हैं इसके द्वारा गथरी ने यह स्पष्ट किया कि किसी भी दी हुई परिस्थिति में प्राणी अपने सामने उपस्थित अनेकों उद्दीपकों में से कुछ उद्दीपकों का चयन कर लेता है (क्योंकि वह सभी उद्दीपकों के साथ साहचर्य स्थापित नहीं कर सकता है) और उन्हीं उद्दीपकों तथा उनके प्रति की गई अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित कर लेता है।

2. **एक प्रयासीय सीखना** - गथरी के ही शब्दों में, ''एक उद्दीपक पैटर्न किसी अनुक्रिया के साथ पहली बार युग्मित होने पर ही सम्पूर्ण साहचर्यात्मक शक्ति प्राप्त कर लेता है।'' इस कथन से स्पष्ट है कि गथरी के लिए सीखना उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच सामीप्यता का परिणाम होता है और प्रथम बार युग्मित होने पर सीखना पूर्ण हो जाता है।

3. **नवीनता नियम** - गथरी ने इस नियम पर बल डाला है और कहा है कि प्राणी किसी भी परिस्थिति में कई तरह की अनुक्रियाएँ करता है। इनमें से जो अन्ति अनुक्रिया होती हे, उसी कोप्राणी पुन: दोहराता हे, यदि उसे भविष्य में उस तरह की परिस्थिति में रखा जाता है। इस ही

गथरी ने नवीनता का नियम कहा है और इसको संपुष्ट करने के लिए गथरी ने हार्टन के साथ मिलकर एक प्रयोग किया है।

4. **गति उत्पन्न उद्दीपक -** कभी-कभी ऐसा होता हे कि उद्दीपक या पर्यावरणी घटना तथा उससे उत्पन्नहोने वाली अनुक्रिया में समय अंतराल अधिक होता है। परिणामस्वरूप ऐसी परिस्थिति में समीप्यता के नियम से व्याख्या करना थोड़ा कठिन हो जाता है जो यदि ध्यान से देखा जाए तो गथरी के सिद्धान्त के लिए एक समस्या (क्यों कि गथरी ने सीखने की व्याख्या मात्र समीप्यता के आधार पर किया है) इस समस्या से निबटने के लिए गथरी ने गति-उत्पन्न संप्रत्यय का पतिपादन किया है।

   जब किसी बाह्य उद्दीपक द्वारा अनुक्रिया उत्पनन होती है, तो शरीर स्वयं ही अगली अनुक्रिया के लिए उद्दीपक उत्पन्न कर देता है और वह अनुक्रिय फिर अगली अनुक्रिया के लिए उद्दीपक उत्पन्न कर देता हे और इसी तरह से प्रक्रिया चलती रहती है। इसका परिणाम यह होती है कि बाह्य उद्दीपक तथा उसके प्रति की गयी अनुक्रिया के बीच का समय अंतराल गति-उत्पन्न उद्दीपकों द्वारा भर जाते हैं और इस तरह गति-उत्पन्न उद्दीपकों तथा उससे उत्पन्न व्यवहार में समीपयता बन जाती है ओर अन्त में इसके आधार पर व्यक्ति बाह्य उद्दीपक तथा व्यवहार के बीच समय अन्तराल होने पर भी दोनों के बीच साहचर्य स्थापित कर पाता है।

5. **कार्य एवं गति अन्तर**

   गति तथा उद्दीपक के बीच में साहचर्य मात्र एक ही प्रयास में हो जाते है। अत: प्राणी किसी गति को करना मात्र एक प्रयास में सीख लेता हैं परन्तु किसी क्रिया को सीखने के लिए अभ्यास की जरूरत पड़ती है। अभ्यास की जरूरत यहाँ इसलिए पड़ती है कि ऐसी परिस्थिति कई तरह की विशिष्ट गतियों को विभिन्न उद्दीपक परिस्थिति के साथ साहचर्चित होना आवश्यक होता है। जितना भी अभ्यास अधिक दिया जाता है, इस तरह का साहचर्य उतना ही मजबूत होता चला जाता है शायद यही कारण है कि अभ्यास से प्राणी का निष्पादन उन्नत होता चला जाता है।

6. पुनर्बलन का स्वरूप

प्रभाव नियम पूर्णत: अनावश्यक है। गथरी के लिए पुनर्बलन मात्रा एक यांत्रिक व्यवस्था है, जिसकी व्याख्या करने के लिए उनके द्वारा प्रतिपादित सामीपयता का नियम पर्याप्त है। गथरी के अनुसार पुनर्बलन सीखने के लिए आवश्यक नहीं है। चूँकि पुनर्बलन देने से उत्तेजन की अवस्था में कुछ परिवर्तन आ जाता है, इसलिए सीखी गयी अनुक्रिया अनाधिगम होने से बच जाती है।

7. गथरी-हार्टन प्रयोग

गथरी का यह दावा था कि किसी परिस्थिति में जब प्राणी का अनुक्रियाएँ करता है तो इसमें से अन्तिम अनुक्रिया को ही वह दोहराता है बशर्ते कि उसे वैसी ही परिस्थिति में पुन: रखा जाता हैं इसे नवीनता का नियम की संज्ञा दी गयी है और इसे साबित करने के लिए गथरी ने हार्टन के साथ मिलकर एक प्रयोग 1947 ई. में किया। इस प्रयोग में पहेली बकस का उपयोग किया गया। वह बक्से शीशे का बना हुआ था तथा इसमें बीच में एक छोटा पोल था जिसमें बिल्ली के शरीर का कोई भी अंग स्पर्श होने पर दरवाजा स्वत: खुल जाता था। प्रावधान इस बात का किय गया था कि पोल को स्पर्श करते समय बिल्ली को जो शारीरिक मुद्रा होती थी, उसका फोटो ले लिया जाए ताकि यह पता

चल सके कि वह किस तरह की शारीरिक मुद्रा बनाते हुए पोल का स्पर्श करती है। यह प्रयोग बारी-बारी से अनेकों बिल्लियों पर किया गया। परिणाम में देखा गया है कि प्रत्येक बिल्ली पहेली बक्से से बाहर आने की अनुक्रिया भिन्न-भिन्न ढंग से की। प्रत्येक बिल्ली उसी अंतिम अनुक्रिया को करना सीख लिया जिससे वह बक्स से बाहर आ पाती है और जब पुन: उसे उस बक्से में रखा गया तो वह उसी अनुक्रिया को दोहराकर बाहर आयी जो वह पिछली परिस्थिति में की थी। जैसे जिस बिल्ली ने अगले पंजा से पोल को स्पर्श कर दरवाजा खोल दिया, वह अगली बारी में उसी पंजे का प्रयोग कर पोल को स्पर्श कर दरवाजा खोलेगी । जिस बिल्ली ने पोल में पीठ रगड़कर दरवाजा पहली बार खोल, वह दूसरी बार तथा बाद में पहेली बक्से में रखने पर पोल में पीठ रंगड़कर दरवाजा खोलने की क्रिया को दोहराती पायी गयी। इसे गथरी ने रूढ़िबद्ध व्यवहार कहा है।

8. **विस्मरण**

जब पहले उद्दीपक की परिस्थिति में प्राणी भौतिक अनुक्रिया के विकल्प में कोई दूसरी अनुक्रिया करता है, तो उस उद्दीपक के साथ दूसरी अनुक्रिया साहचर्यित हो जाती है और पहली अनुक्रिया का विस्म्रण हो जाता है। इस तरह से गथरी के लिए सभी विस्मरण में नये सीखना सम्मिलित होता है।

9. आदतों से कैसे छूटकारा पाया जा सकता है**?**

I. दहेली विधि

II. थकान विधि

III. असंगत उद्दीपक की विधि

I. **देहली विधि**

इस विधि में उद्दीपक की तीव्रता को इतना कम करके उपस्थित किया जाता है कि उससे अवांछनीय अनुक्रिया नहीं होती है। फिर धीरे-धीरे उद्दीपक की तीव्रता को इस ढंग से बढ़ाया जाता है कि प्राणी अवांछनीय अनुक्रिया न कर पाये। इस तरह की अनुभूति का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति में उस अंवाछनीय अनुक्रिया को उत्पन्न करने को देहली ऊँचा हो जाता है।

II. **थकान विधि**

इस विधि में प्राणी को अवांछित अनुक्रिसय को बार-बार तब तक करने के लिये कहा जाता है जब तक कि थककर वह उसे आगे करने की अनिच्छा न व्यक्त कर दे। ऐसी परिस्थिति में थककर प्राणी अवांछनीय अनुक्रिया को करना छोड़ देता है और उसके जगह पर कोई दूसरा अनुक्रिया करना वह सीख लेता है।

III. असंगत उद्दीपक की विधि

इस विधि में अवांछनीय अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपक को अन्य उद्दीपकों के साथ उपस्थित किया जाता है जो उससे एक भिन्न एवं असंगत अनुक्रिया उत्पन्न करता है।

10. दण्ड एवं प्रणोद

गथरी का मत है कि दंड की प्रभावशीलता इस बात से होती है कि यह दंडित प्राणी को क्या करने के लिए बध्य करता है। दंड का प्रभाव इसलिए नहीं होता है कि इसमें व्यक्ति मेंदर्द उत्पन्न होता है ताकि वह व्यक्ति को कुछ उद्दीपकों के प्रति परिवर्तित ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य करता है। दंड

प्रभावी तभी होता है जब दंडित व्यक्ति उद्दीपक के प्रति नयी अनुक्रिया करना प्रारंभ कर देता है। दंड अवांछित व्यवहार को परिवर्तित करने में सफल हो पाता है, क्योंकि व्यक्ति दंडित व्यवहार से असंगत व्यवहार उत्पन्न करने सकने मेंसमर्थ हो पाता है। दंड प्रभावहीन तब हो जाता है जब दंड से उत्पन्न दंडित व्यवहार के साथ असंगत नहीं हो पाते है।

गथरी का मत है कि दैहिक प्रणोद प्राणी में संपोषित उद्दीपक उत्पन्न करते है जो प्राणी को लक्ष्य तक पहुँचने के लिए क्रियाशील रखते है।

13.6.2 गथरी के सिद्धान्त की आलोचनाएँ

1. गथरी ने अपने सिद्धान्त में कुछ नियमों के आधार पर उतने तथ्यों की व्याख्या करने की कोशिश की है जो सचमुच में संभव नहीं है। इनके सिद्धान्तों के कई व्याख्याओं को एक पूर्वकल्पना के समान मान लेता पड़ता है।
2. इस सिद्धान्त के समर्थन में प्रयोगात्मक सबूतों की अत्यन्त कमी है। इस कमी को दूर करने में गथरी या इसके सहयोग हमेशा असफल रहे है।
3. गथरी का विश्वास प्रयोगात्मक तथ्यों से अधिक उपाध्यान में था। आलोचकों का मत है कि उपाख्यानों को प्रयोग का प्रतिस्थापित रूप मानना, गथरी की एक भूल थी।
4. गथरी ने सीखने के सिद्धान्त में रूढ़िबद्ध व्यवहार पर अधिक बल डाला है।
5. उद्दीपक अनुक्रिया अनुपर्बलन सिद्धान्तवादियों का कहना है कि जहाँ सीखने में पुनर्बलन के महत्व को दिखलाने के लिए अनेकों प्रयोगात्मक सबूत उपलब्ध हैं, वहाँ उन सबका अनदेखी कर गथरी ने अपना महत्व बनाये रखने के लिए जो पुनर्बलन की उपेक्षा की है। उसके लिए उन्हें माफ कर देना एक बहुत बड़ी भूल होगी।

13.7 सारांश (Summary)

क्लासिकी अनुबन्धन एक प्रमुख अनुबन्धन प्रविधि है। जिसका प्रतिपादन किया गया। यहएक प्रतिमान या रूपावली है जिसके सहारे अनुबंधन के संबंधित तथ्यों को समझने में मदद मिलती है। साधानात्म्क अनुबन्धन के प्रतिपादन में सीखने वाला प्राणी सीखने की परिस्थिति में पूर्णत: स्वतंत्रत क्रियाएँ करता है और क्रिया या व्यवहार को अपने परिणाम के आधार पर सीखता है। उद्दीपक तथा अनुक्रिया के संबंधकी व्याख्याता सामीप्यता के आधार पर करते हुए सीखने की वैज्ञानिक व्याख्या प्रदान करने का श्रेय मात्र गथरी को ही जाता है।

13.8 अभ्यास प्रश्न

1- टॉलमैन द्वारा प्रतिपादित अधिगम के छ: प्रकारों का वर्णन कीजिए।

2- पावलव के अनुबन्ध सिद्धान्त को समझाइए।

3- नैभितिक अनुबन्धन पर टिप्पणी लिखिए।

4- गथरी के सिद्धान्त को बताइए।

13.9 संदर्भ ग्रंथ (References)

- प्रो. त्रिपाठी, लाल, बच्चन, गोरखपुर, विश्वविद्यालय, अधिगम का मनोविज्ञान, आटा मेक्ग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली
- प्रो. सिंह अरूण कुमार (पटना) विश्वविद्यालय/उच्चतर मनोविज्ञान पब्लिशिंग मोतीलाल बनारसी दास
- Chifford Morgan, Richard a King, Johnrweis Publishing House, Tata macrohill, New Delhi
- वर्मा प्रीति, डॉ. श्री वास्तव डी.एन., आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

इकाई - 14

स्मृति का स्वरूप एवं प्रकार

Forms & Types of Memory

ईकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 स्मृति का स्वरूप

14.3 स्मृति की परिभाषा

14.4 स्मृति के प्रकार

14.4.1 संवेदी स्मृति

14.4.2 लघुकालिक स्मृति

14.4.3 दीर्घकालिक स्मृति

14.4.3.1 प्रासंगिक स्मृति

14.4.3.2 अर्थगत स्मृति

14.4.4 अर्थगत स्मृति के सिद्धान्त

14.4.4.1 आनुक्रमिक नेट मॉडल

14.4.4.2 सेट सैधान्तिक मॉडल

14.4.4.3 विशेषता तुलना मॉडल

14.4.4.4 विस्तरण उत्तेजन मॉडल

14.5 सारांशकथन

14.6 मूल्यांकन प्रश्न के उत्तर

14.7 संदर्भग्रंथ

14.0 प्रस्तावना (Introduction)

स्मरण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार की गत अनुभूतियों को प्राणी संचालित करके भविष्य के प्रति क्रिया करने में सक्षम होता है। स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से वर्तमान व्यवहार का निर्धारण वातावरण के अनुसार होता है। मानव जीवन में स्मरण शक्ति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

14.1 उद्देश्य (Objective)

- स्मरण श्री संज्ञानात्मक से परिचित होना।
- स्मरण के धनात्मक तथा ऋणात्मक पक्षों का अध्ययन करना।
- स्मरण के विविध प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
- अल्पकालिक व दीर्घकालिक स्मृति की जानकारी प्राप्त करना।

14.2 स्मृति का स्वरूप (Forms of Memory)

1- कूटसंकेतन - कूट संकेतन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके सहारे सूचनाओं को एक ऐसा आकार या रूप् में परिवर्तित कर दियाजाता है कि वे स्मृति में प्रवेश पा सकें। साधारण बोल-चाल की भाषा में स्मृति चिन्हों का निर्माण होना ही संकेतन कहलाता है। स्मृति की पहली अवस्था कूट संकेतन की होती है। इस अवस्था को पंजीकरण भी कहा जाता है।

2- संचयन - संचयन की अवस्था में स्मृति में प्रवेश पा चुके सूचनाओं एवं उत्तेजनाओं को कुछ समय के लिए धारित करके रखा जाता है। इस अवस्था को धारण भी कहा जाता है।

3- पुन: प्राप्ति – आवश्यकता के अनुसार व्यक्ति संचयन में मौजूद सूचनाओं में से विशिष्ट सूचना की खोज करता है तथा उन तक पहुँचने की कोशिश करता है। इस अवस्था कोस्मरण भी कहा जाता है।

मान लिया जाए कि कोई छात्र भारत के राज्यों की राजधानी का नाम याद कर रहा है। राज्यों की राजधानी की सूची उसके सामने होती है जिसका प्रत्यक्षक कर वह बार-बार पढ़ता है तथा जिसके परिणामस्वरूप उसमें तंत्र में कुछ परिवर्तन होता है जिससे विशेष संकेत या स्मृति चिन्ह बनते है। यह संकेतन की प्रक्रिया हुई। छात्र राज्यों की राजधानी के नामों को संकेतन कर लेने के बाद उसे कुछ समय तक संचित करके रखता है जिसके फलस्वरूप सीखा गयानाम उसके कुछ दिनों तक याद रहता है। उसे संचयन की संज्ञा दी जाती है। मान लिया जाए कि एक सप्ताह बाद उन्हीं राज्यों की राजधानी का नाम छात्र से पूछा जाता है। यहां छात्र संचित की गई नामों का प्रत्याह्वान कर प्रश्नानुसार उत्तर देने की कोशिश करेगा। इसे पुन: प्राप्ति कहा जाएगा। सभी संचित किये गए सूचनाओं की पुन: प्राप्ति हो ही, यह आवश्यक नहीं है। जैसे भारत के सभी राज्यों की राजधानी का नाम छात्र अपने मस्तिष्क में संचित किये रख सकता है परंतु किसी खास समय में वह सभी राज्यों की राजधानी की पुन: प्राप्ति करने में समर्थ नहीं भी हो सकता है।

14.3 स्मृति की परिभाषा (Defination of Memory)

स्मृति एक सामान्य पद है जिसके तात्पर्य पूर्व अनुभूतियों को मस्तिष्क में इकट्ठा कर रखने की क्षमता होती है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक लेहमैन एवं बटरफिल्ट ने स्मृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''विशेष समयावधि के लिये सूचनाओं को संपोषित करके रखना ही स्मृति है।'' समयावधि एक सेकेंड से कम या सम्पूर्ण जीवन काल का भी हो सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति के दो पक्ष बताये हैं - धनात्मक पक्ष तथा ऋणात्मक पक्ष स्मृति के धनात्मक पक्ष से तात्पर्य पूर्व अनुभूतियों को याद

करके रखने से होता है तथा ऋणात्मक पक्ष से तात्पर्य उन अनुभूतियों को याद करने की असमर्थता से होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि स्कृति का धनात्मक पक्ष स्मरण तथा ऋणात्मक पक्ष विस्मरण है।

हिलगार्ड और एटकिनसन (1976) के अनुसार, पहले सीखी गई अनुक्रियाओं में चिन्हों को वर्तमान समय में व्यक्त या प्रदर्शित करनेका अर्थ ही स्मरण है।

आइजनेक (1970) के अनुसार, स्मृति व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह पहले अधिगम की हुई प्रक्रियाओं (अनुभव, धारण) से सूचना एकत्र करता है फिर इस सूचना को विशिष्ट उत्तेजनाओं के प्रत्युतर में पुनरोत्पादित करता हैं

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि स्मरण वह योग्यता है जिसमें व्यक्ति सीखी हुई विषय-सामग्री को धारण करता हे, इस धारण से सूचना को एकत्र कर सूचना को विशिष्ट उत्तेजनाओं के प्रत्युतर में पुनारोत्पादित कर अधिगमित सामग्री को पहचानता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि स्मरण एक शारीरिक प्रक्रिया है तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों का विचार हे कि यह एक मानसिक प्रक्रिया है। वास्तव में स्मरण एक मनोशारीरिक प्रक्रिया हैं। स्मरण की समस्या का अध्ययन प्राचीन काल से ही होता चला आ रहा है परन्तु इस समस्या का सर्वप्रथम प्रयोगात्मक या वैज्ञानिक अध्ययन एबिंगहास ने प्रारम्भ किया। एबिंगहास के इस दिशा में प्राप्त परिणामों की पुष्टि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने की है।

लैकमन, लैकमन एवं बटरफील्ड (1973) ने स्मृति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा हे कि ''स्मृति वह मानसिक क्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी अर्जित सूचनाओं को अपने जीवनकाल में बनाये रखता है।'' व्यक्ति द्वारा अर्जित यह सूचनायें उसकी स्मृति में कुछ सेकण्ड भी रह सकती हे और उसकी स्मृति में जीवनभर भी रह सकती है। वास्तव में देखा जाये तो स्मृति एक व्यापक शब्द हैं व्यक्ति द्वारा अर्जित सूचनायें उसकी स्मृति का अंग बनी रहें, इसे जानने के लिये स्मृति सम्बन्धी मानसिक क्रियाओं को समझना होगा। यह मानसिक क्रियायें मुख्यत: तीन प्रकार की होती है। स्मृति सम्बन्धी मानसिक क्रिया में सबसे पहले कूटसंकेतन होता है। कूटसंकेतन में ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त सूचनाओं का निवेश मस्तिष्क में किया जाता है। कूटसंकेतन द्वारा प्राप्त सूचनाओं का निवेश मस्तिष्क में किया जाता है। कूटसंकेतन द्वारा प्राप्त सूचनायें, स्मृति में बनाये रखने की द्वितीय समृति सम्बन्धी मानसिक क्रिया या अवस्था प्रत्यक्षपरक प्रकमण हैं इसे भण्डारण भी कहते है। पुररूद्धार स्मृति की तीसरी अवस्था है जिसमें प्रत्याह्वान और पहचान प्रक्रियाएँ होती है।

14.4 स्मृति के प्रकार (Types of Memory)

1) संवेदी स्मृति (Sensory Memory)
2) लघु कालीन स्मृति (Short-term Memory)

14.4.1 संवेदी स्मृति (Sensory Memory) - संवेदी स्मृति वैसे स्मृति संचन को कहा जाता है जिसमें सूचनाओं को सामान्यत: एक सेंकड या उसमें कम अवधि के लिए व्यक्ति रख पाता है। इस स्मृति के उद्दीपक से मिलने वाले सूचनाओं को मौलिक रूप में अर्थात उसमें बिना किसी किसी तरह के फेर-बदल किये ही उन्हें संचित रखा जाता है। संवेदी स्मृति के कारण ही व्यक्ति के सामने से

उद्दीपक के हट जाने के बाद भी उसका चिन्ह थोड़े समय के लिये बना होता है। इसलिए इसे संवेदी संचन या संवेदी रजिस्टर भी कहा जाता है।

14.4.2 लघु कालीन स्मृति (STM)- लघुकालीन स्मृति को विलियम जेम्स ने प्राथमिक स्मृति भी कहा है। इस तरह की स्मृति की दो मुख्य विशेषताएँ है। पहला SMT में किसी सूचना को अधिक से अधिक 20-30 सेकंड तक संचित करके रखा जा सकता है तथा दूसरा इसमें प्रवेश पाने वो सूचनाएँ कमजोर प्रकृति की होती है क्योंकि उन्हें व्यक्ति मात्र एक दो प्रयास में ही सीख लिया होता है।STM को अन्य नामों से भी जैसे - सक्रिय स्मृति, तत्कालिक स्मृति, चलन स्मृति, लघुकालीन संचन से भी जाना जाता है।

लघुकालीन स्मृति से तात्पर्य उस सीमित सूचनाओं के संचयन से होता है जिसे थोड़े समय अर्थात् न्यूनतम एक सेकंड तथा अधिकतम 20-30 सेंकड तक के लिये सक्रिय अवस्था में व्यक्ति रख पाता है। दूसरे शब्दों में, इसमें वैसी सूचनाएं संचित होती हैं जिस पर व्यक्ति ध्यान देता है, उसे संसाधित करता है तथा उसे दोहराता है।

लघुकालीन स्मृति के अस्तित्व को दिखाने के लिए ऐसे तो कई तरह के सबूत उपलब्ध हैं परंतु सबसे उत्तम सबूत क्रमिक स्थान वक्र के अध्ययन में प्राप्त होता है। यदि व्यक्ति किसी-किसी असंबधित शब्दो या शाब्दिक एकाशों की सूची को याद करके उसका प्रत्याह्वान करता हे तो हम पाते है कि सूची के प्रारंभिक स्थानो से अर्थात ऊपरी स्थानों से तथा निचली स्थानों से प्रत्याह्न सबसे खराब होता है। सूची के निचली स्थानों से हुए प्रत्याह्वान को नवीनता प्रभाव तथा ऊपरी स्थानों से हुए प्रत्याह्वान को प्राथमिकता प्रभाव कहा जाता है। नवीनता प्रभाव इा बात की और इशारा करता हे सूची के निचली स्थाना पर के शब्दों का प्रत्याह्वान इसलिए हुआ क्योंकि वे लघुकालीन स्मृति में थे।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों के आलोक में लघुकालीन स्मृति की कुछ स्पष्ट विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। ये विशेषताएं निम्नांकित है -

1- लघुकालीन स्मृति कमजोर होती है।

2- लघुकालिन स्मृति में इसमें उद्दीपकों के बारे में ज्ञानेन्द्रिय द्वारा प्राप्त सुचनाओं की कूटसंकेतीकरण करके उन्हें संचित किया जाता है। लघुकालीन स्मृति में शाब्दिक एकांशों को उनके आवाज के आधार पर कूटसंकेतीकरण करके संचित किया जाता है।

3- मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि लघुकालीन स्मृति में सामान्यत: पांच से नौ अलग-अलग सूचनाओं को ही एक साथ संचित किया जा सकता है। परंतु चुकिंग की प्रक्रिया द्वारा एक समय में नौ से भी अधिक अलग-अलग सूचनाओं को भी संचित किया जा सकता है। चुंकिंग ऐसी प्रक्रिया है जिसमें छोटी-छोटी सूचनाओं को बढ़ी इकाइयों में समूहन करके उसे याद करते हैं। इन इकाइयों को चुक प्रत्याह्वान कहा जाता है। जिसमें वैसी सूचनाओं होती है जो आपस में सबंधित होते हैं तथा जिन्हें अर्थपूर्ण इकाकई मेंएक साथ समूहन किया जा सकता है।

4- लघुकालीन स्मृति की अवधि अधिक से अधिक 20-30 सेंकड तक होता पाया गया है। इस तथ्य की संपुष्टि कई अध्ययनों से हुई है जिसमें ब्राऊन, पेटरसन एवं पेटरसन द्वारा किये गए अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण है।

आधुनिक अध्ययन जो फैक्टर एनालिसिसि, अधिगम मनोविज्ञान, न्यूरोसाइकालॉजी तथा साइवरनेटिकस के क्षेत्र में हुए हैं उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि सामान्य स्मृति शक्ति नहीं होती है बल्कि स्मृति क्षमता के अनेक आयाम है जैसे STM एक प्रकार की बायोइलेक्ट्रिक प्रोसेस है जिसका स्थायीपन अधिक से अधिक 30 सेकण्ड तक होता है। ब्राडबेण्ड के अनुसार ''इस क्षेत्र में हुए अध्ययनों के आधार पर कई प्रयोग प्रक्रियाओं का विकास हुआ भी हुआ है तथा STM की विशेषताओं की भी जानकारी हुई है।

अल्पकालिक स्मृति में सूचनायें बहुत कम समय के लिए भण्डारित हो पाती है। इस प्रकार की स्मृति में वर्तमान काल की ओर तात्कालिक रूप से ग्रहण की गई सूचनाएँ होती हैं। इस प्रकार की स्मृति के अनेक नाम है - 1. कार्यकारी स्मृति 2. सक्रिय स्मृति, तात्कालिक स्मृति और प्राथमिक स्मृति। अल्पकालिक स्मृति से सम्बन्धित उपयुक्त चार पदों काउपयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप् में किया जा सकता है और किया जाता है। वाचिक अधिगम के क्षेत्र में अधिगम के तुरन्त बाद सामग्री का प्रत्याहान से सम्बन्धित जो स्मृति होती है,उसे तात्कालिक स्मृति कहते है। एक प्रयोज्य अपनी स्मृति में एक समय में साथ जितनी इकाइयों कोसंचित रखकर प्रत्याह्रान कर सकता है, उसे तात्कालिक स्मृति विस्तार कहते है।

अल्पकालिक स्मृति और तात्कालिक स्मृति शब्द यद्यपि पर्यावयवाची है फिर भी दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। यदि देखा जाये तो कहा जा सकता है कि तात्कालिक स्मृति अल्पकालिक स्मृति से पहले होती है और यह भी कहा जा सकता है कि तात्कालिक स्मृति अल्पकालीन स्मृति का भाग होती है। तात्कालिक स्मृति विस्तार से व्यक्ति की बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। यह विस्तार जितना ही अधिक होता हे व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होता है। सूचना प्रक्रमण उपागम में इस विस्तार को चैनल क्षमता के नाम से जाना जाता है। जार्ज मिलर ने चैनल क्षमता पर किये गये प्रयोग के आधार पर यह बताया कि व्यक्ति एक साथ 7 इकाइयाँ ◌ 2 इकाइयाँ अपनी तात्कालिक स्मृति में रखता है अर्थात् उसके तात्कालिक स्मृति का विस्तार 7-2=5 से लेकर 7+2=9 तक होता है।

प्रायोगिक विशेषताएँ

प्रायोगिक अध्ययनों के आधार पर STM की मुख्यत: तीन विशेषताओं के सम्बंध में जानकारी प्राप्त हुई है।

1- **अल्पकालिक स्मृति में धारण की शीघ्रह्रास**

पीटरसन तथा पीटरसन ने अपने प्रायोगिक अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया कि अधिकतम सेकण्ड में ही अधिगम की गई सामग्री का 75 प्रतिशत विस्मरण हो जाता है। 18 सेकण्ड के बाद यह ह्रास 90 प्रतिशत हो जाता है। अत: स्पष्ट हो कि अधिगम के तुरन्त बाद विस्मरण तीव्र गति से होता है या धारण में ह्रास तीव्र गति से होता है। इन परिणामों की जानकारी और पुष्टि मरडॉक के अध्ययनों से भी होती है। मरडॉक के अध्ययनों की तीन प्रायोगिक दशाएं थी। पहली प्रायोगिक दशा में प्रयोजय को एक त्रिपद का अधिगम करना था, दूसरी दशा में एक अंग्रेजी शब्द में तीन छोटे अंग्रेजी के निरर्थक शब्दों का अधिगम करना था। STM के तीन प्रायोगिक दशाओं वाले अध्ययन के पश्चात् मरडॉक ने यह देखा कि त्रिपद के विस्म्रण की गति पीटरसन के ही परिणामों के अनुसार थी परन्तु सार्थक शब्द के विस्मरण की गति तीव्र थी अथवा धारण में ह्रास कम मात्रा में था।

2. अल्पकालिक स्मृति तथा अधिगम की मात्रा

यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि STM में एक बार अधिगम अथवा अनुभव की सामग्री होती है। अनेक प्रयोगात्म्क अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि अधिगम की मात्रा अथवा प्रयास यदि बढ़ा दिये जाते हैं तो STM का ह्रास अधिगम की मात्रा अथवा प्रयासों के बढ़ने के साथ-साथ कम हो जाता है। अर्थात् STM की प्रकृति में परिवर्तन STM की दिशा में होता है। हेलयर के प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर, जो उचाट प्रविधि पर आधारित थे, यह सिद्ध हो चुका है कि अभ्यास में वृद्धि के साथ-साथ धारण में ह्रास की मात्रा उसी रूप में घट जाती है। हेलयर द्वारा प्राप्त वक्रकों की प्राकृति ऊपर चित्र में समझाई गई हैं हेलयर के प्रयोग में प्रयोजय के विभिन्न समूहों में 1 बार, 2 बार, 4 बार तथा 8 बार त्रिपदों की पुनरावृत्ति करायी है। इस पुनरावृत्ति के बाद प्रयोज्यों को उल्टी गिनती गिनवायी ताकि बीच की अवधि में प्रयोजय अधिगम की हुई सामग्री को मन ही मन दुहरा न सके। उल्टी गिनती गिनवाने के बाद धारण परीक्षण 3 सेकण्ड, 9 सेकण्ड, 18 सेकण्ड तथा 27 सेकण्ड के बाद लिया।

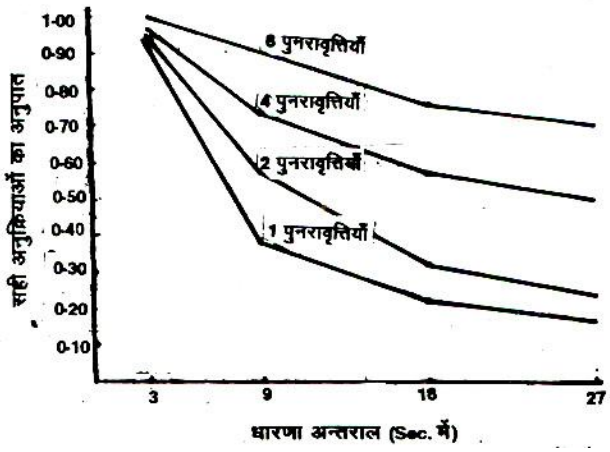

प्रयोग से निष्कर्ष यह प्राप्त हआ कि धारण की मात्रा में ह्रास पुनरावृत्ति या अभ्यास से प्रभावित होता है। अभ्यास बढ़ने के साथ-साथ धारण की मात्रा में ह्रास की मात्रा कम होती जाती है। हेलयर के इस प्रयोग में अभ्यास प्रकट प्रकार काथा। किसी भी अधिगम के लिए अभ्यास दो प्रकार का होता है (1) प्रकट (2) अप्रकट। हेलयर के प्रयोग में प्रयोज्यों ने विषय-सामग्री की पुनरावृत्ति जोर-जोर से दुहरा कर किया। ब्राउन ने अप्रकट अभ्यास की सहायता से STM पर अधिगम मात्रा के प्रभाव से यदि अधिगम कराया जाता है तो भी अभ्यासों से ही यही परिणाम प्राप्त हुए है कि मौन मौन अभ्यास से यदि अधिगम कराया जाता है तो भी अभ्यासों की वृद्धि के साथ-साथ धारणा में हास कम और कम होता जाता है। इस दिशा में अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी लगभग इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त किये हैं

3. अल्पकालिक स्मृति तथा अग्रोन्मुख और पृष्ठोन्मुख व्यक्तिकरण

अग्रोन्मुख व्यक्तिकरण का अर्थ है कि जब एक अधिगम सामग्री सीखने के बाद दूसरी अधिगम सामग्री सीखी जाये तो दूसरी अधिगम की सामग्री के सीखने में अधिगम सामग्री का ऐसा प्रभाव पडक्रे कि दूसरी अधिगम सामग्री सीखना कठिन हो जाय तो यह अग्रोन्मुख व्यक्तिकरण या बाधा है। इसी प्रकार जब क और ख दो अधिगम सामग्री बारी-बारी से सीख ली जाय और फिर क अधिगम सामग्री का पुन:स्मरण कराया जाय और यह क अधिगम सामग्री का पुन:स्मरण ख के कारण कम हो जाय तो इस प्रकार की बाधा को पृष्ठोन्मुख व्यक्किरण कहेंगे। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने

अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किय कि अग्रोन्मुख व्यक्तिकरण से विस्तृति या धारण प्रभावित होती है। हाउस्टन ने अपने प्रयोग कें के आधार पर STM व्यक्तिकरण के प्रभाव का सत्यापन किया है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया कि STM पर पृष्ठोन्मुख व्यक्तिकरण के प्रभाव का अध्ययन अधिगम मात्रा का नियंत्रक अधिक आवश्यक है।

अल्पकालिक स्मृति में कूटसंकेतन

अल्पकालिक स्मृति से सम्बन्धित कूटसंकेतन को स्पष्ट करने के लिए एक छोआ सा उदाहरण दिया जा सकता है। एक व्यक्ति को 567325 टेलीफोन नम्बर बताया जाता है वह व्यक्ति इस टेलीफोन नम्बर को सहचरित कर शब्दार्थ के रूप में इस प्रकार भण्डारित कर सकता है 56 अपनी पत्नी की आयु 73 अपने पिताजी की आयु और 25 अपने भाई के बेटे की आयु के रूप में कूटसंकेतन कर याद रख सकता है।

अल्पकालिक स्मृति के क्षेत्र में कोनार्ड और विकलग्रेन द्वारा किये गये प्रयोगात्मक अध्ययनों से जो निष्कर्ष निकाले हैं उनसे यह स्पष्ट हआ है कि अल्पकालिक स्मृति में श्रवणात्मक कूटसंकेतों का भण्डार होता है। पोजनर एवं कीले ने एक प्रयोगात्मक अध्ययन दृश्यात्मक कूटसंकेतन पर किया है। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हुआ है कि अल्पकालिक स्मृति में कूटसंकेतन दृश्यात्मक होता है और दृश्यात्मक कूटसंकेतन से सम्बन्धित स्मृति की अवधि एक मिनट तक होती है। डीजोस विकेन्स और उनके सहयोगियों के अनुसार, अल्पकालिक स्मृति में कूटसंकेत सम्बन्धी जो प्रयोगात्मक अध्ययन हुए हैं उनसे यह स्पष्ट हुआ है कि अल्पकालिक स्मृति का कुछ भाग शब्दार्थ कूटसंकेतन पर भी आधारित होता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि अल्पकालिक स्मृति में दृश्यात्मक, श्रवणात्मक और शब्दार्थ कूटसंकेतन होता है। लेकिन इन अध्ययनों से यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि कौन-सा कूटसंकेतन किन-किन अवस्थाओं में कितना-कितना होता है।

अल्पकालिक स्मृति में भंडारण

अल्पकालिक स्मृति की भण्डारण क्षमता अधिक नही होती है। ऐबिंगहॉस (1985) ने अपने स्वयं के ऊपर किये गय प्रयोगों के आधार पर बताया कि अल्पकालिक स्मृति की भण्डारण क्षमता मात्र 7 पद होती है। इसी प्रकार मिलर (1956) ने अपने अध्ययनों तक होता है। हेब (1949) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह प्रमाणित किया कि अल्पकालिक स्मृति का आधार प्राणी के मस्तिष्क् के स्नायुकोषों का वह जाल है जिसमें एक सक्रिय स्नायुकोष दूसरे स्नायुकोष को सक्रिय करता है। जब प्रयोज्य अभ्यास नहीं करता है तो स्नायुकोषों की क्रियायें मन्द पड़ जाती हे और कुछ समय बाद समाप्त हो जाती है। फलस्वरूप अल्पकालिक स्मृति क्रियाहीन होने के कारण कम और फिर समाप्त हो जाती है। हेब ने इन परिणामों की पुष्टि ब्राउन, पीटरसन और पीटरसन और राइटमैन के प्रायोगिक अध्ययनों से होती है।

14.4.3 दीर्घकालीन स्मृति - अधिक से अधिक कितने समय के लिए किसी सूचना को यहां संचित रखा जा सकता है, इसकी कोई निश्चित समय सीमा नहीं हैं संभव है कि किसी सूचना को पूरे जीवन काल तर्कसंचित रखा जा सकता हो या किसी को मात्र एक घंटा तक ही संचित रख जा सकता है। तजब कोई छात्र कल शिक्षक द्वारा वर्ग में दिये गये व्याख्यान का प्रत्याह्रान कर सकने में सफल हो पाता है, तो यह कहा जाता है कि व्याख्यान का विषय दीर्घकालीन स्मृति में संचित था।

इसे अन्य नामों जैसे - असक्रिय दीर्घकालीन स्मृति की एक विशेषता यह भी है कि इसमें नाना प्रकार की सूचनाओं को संचित किय जाता है तथा इसका स्वरूप कुछ अस्थायी होता है।

धारण के दो प्रमुख प्रकारों में पहला STM है तथा दूसरा LTM है। दीर्घकालिक स्मृति में धारण का ह्रास कम अथवा विस्मृति कम होती है। इनमें अधिगम की हुई विषय-सामग्री का मस्तिष्क में संचय जीव-रसायन प्रतिमानों पर आधारित होता है। LTM के Neurophysiological पहलू से स्पष्ट है कि स्मृति सेरीवरल कॉर्टेक्स के भूरे पदार्थ के गैगलिकओनिक कोषों से सम्बन्धित है। इसका सम्बन्ध सेरीब्रम के कुछ श्वेत तन्तओं से भी है। अनेक मॉलीक्यूलर, जैविक तथ्ज्ञा जीव रसायन सम्बन्धी अध्यनों से पता चा हे कि प्रोटीन संश्लेषण, पेप्टाइड्स, लिपाइट्स तथा में RNA परिवर्तन LTM की स्टोरेज में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। टुलविंग (1972) ने दीर्घकालिक स्मृति के मुख्यत: दो प्रकार बताये हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। पहले प्रकार की स्मृति वृत्तात्मकता स्मृति है। वृत्तात्मकता स्मृति में घटनाओं एवं वृत्तात्मकता का विवरण समय या स्थान के आधार पर भण्डारित होता है।दूसरे प्रकार की स्मृति शब्दार्थ विषयक स्मृति हैं इस पकार की स्मृति में भाषा सम्बन्धी भण्डार होता है। भाषा सम्बनधी भण्डार में शब्दों, उनके अर्थ, पारस्परिक सम्बन्ध तथा सम्बन्धित नियमों आदि का ज्ञान संचित होता है। टुलविंगने अपने अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट किया कि यह दो प्रकार की स्मृतियाँ एक-दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होती हैं और एक-दूसरे के पूरक के रूप में भी कार्यरत रहती है। फिर भी इन दोनों प्रकार की स्मृतियों में निम्न प्रकार से अन्तर होता है -

1. शब्दार्थ विषयक स्मृति और वृत्तात्मकता स्मृतिक संरचना की दृष्टि से अलग-अलग होती है। शब्दार्थ विषयक स्मृति में शब्दों और प्रतीकों से सम्बनिधत ज्ञान भण्डारित होता है, जबकि वृत्तात्मकता स्मृति में किसी अनुभव विशेष से सम्बन्धित घटनायें आदि भण्डारित होती हैं। यह अनुभव देशकाल और समय से जुड़े हुए होते है।
2. शब्दार्थ विषयक स्मृति और वृत्तात्मकता स्मृति में विस्मरण के स्वप आधार पर भी अन्तर है। इस दिशा में हुए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि शब्दार्थ विषयक स्मृति की अपेक्ष वृत्तात्मकता स्मृति का विस्मरण अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है।
3. शब्दार्थ विषयक स्मृति से सम्बन्धित सूने और पढ़े गये शब्दों का प्रत्याह्रान अपेक्षाकृत शीघ्रता से होता है जबकि दूसरी और वृत्तात्मकता स्मृति में प्रत्याह्रान अपेक्षाकृत कम दक्षतापूर्ण ढंग से होता है।
4. शब्दार्थ विषयक स्मृति और वृत्तात्मकता यद्यपि एक-दूसरे से उपरोक्त बिन्दुओं की दृष्टि से भिन्न है फिर भी इन दोनों प्रकार की स्मृतियों में अन्त:क्रिया होती है। एलिजाबेथ और उनके साथियों ने अपने प्रयोगों के आधार पर स्पष्ट किया कि यह दोनों प्रकार की स्मृतियाँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं।

दीर्घकालिक स्मृति में कूटसंकेतन और भंडारण

दीर्घकालिक स्मृति भण्डार में मुख्यत: दो प्रकार की स्मृतियों से सम्बन्धित कूटसंकेत होते है यह दो प्रकार की स्मृतियाँ हैं - (1) शब्दार्थ विषयक स्मृतिक (2) वृत्तात्मकता स्मृति। दीर्घकालिक स्मृति भण्डार में व्यक्ति के अभ्यास, अनुभवन, साहचर्य निर्माण औश्र प्रतिमा निर्माण से सम्बन्धित सूचनायें सचित होती है। मूर्त और अमूर्त पदार्थो में से सम्बन्धित तथा घटनाओं और भाषा से सम्बन्धित पद

इसी स्मृति भण्डार में होते है। एक व्यक्ति की दीर्घकालिक स्मृति सम्बन्धित पद भी इसीस्मृति भण्डार में संचित होते है। बेन्जामिन होर्फ (1955) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह प्रतिपादित किया है कि स्मृति और प्रत्यक्षीकरण का कुट संकेतन वाचिक प्रकार का होता है और यह भाषा से महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित होताहै। दीर्घकालिक स्मृति भण्डार में भी कूटसंकेत वाचिक साहचर्यों पर ही निर्भर होते हैं।

द्वैत कूटसकेंतन परिकल्पना -पैवियों ने दीर्घकालिक स्मृति भण्डार के सम्बंध में द्वौत कूटसंकेतन परिकल्पना का प्रतिपादन किया। द्वौत कूटसंकेतन परिकल्पना के अनुसार, स्मृति की मुख्यत: दो व्यवस्थायें है। जिनके आधार पर कूटसंकेतन होता है - 14. दृश्यात्मक स्थानिक कूटसंकेतन - इस प्रकार के कूटसंकेतन मेंदृश्यात्मक और स्थान सम्बन्धी कूट संकेत होते है। (2) वंचित प्रतीकात्मक कूटसंकेतन जैसा नाम से स्पष्ट है इसमें वंचित प्रतीकात्मक कूटसंकेत होते है। पैवियों के अनुसार कूटसंकेतन की दोनों व्यवस्थायें स्नायुविक आधार पर एक-दूसरे से पारस्परिक रूप से जुड़ी हुई है। बहुत से उद्दीपकों से सम्बन्धित होते है। मूर्त उद्दीपकों से सम्बन्धित वाचिक प्रतीकों के कूटसंकत और साथ-साथ मूर्त उद्दीपकों की प्रतिमाओं से सम्बन्धित कूटसंकेत दोनों ही दीर्घकालिक स्मृति में होते है। दीर्घकालिक स्मृति में वह उद्दीपक जिनकी चित्रात्मक प्रतिमायें इस स्मृति के भण्डार में होती है। इन चित्रात्मक प्रतिमाओं से सम्बन्धित वाचिक सूचनाओं भी होती हैं। अध्ययनों में देखा गया है कि जनउद्दीपकों के कूटसंकेत दोनों प्रकार के होते हैं - उनके पुनरूद्धार प्रत्याह्रान और पहचान में सुविधा होती है। दूसरी और जिन उद्दीपकों से सम्बधित सूचनायें द्वैत कूटसंकेतन परिकल्पना के अनुसार एक ही प्रकार की होती है। उनके प्रत्याह्रान और पहचान अधिक सरल नहीं होती है। पैवियों ने अपने अध्ययनों में यह देखा कि अमूर्त शब्दों की तुलना में मूर्त शब्दों का प्रत्याह्रान प्रयोज्य अधिक करते हैं। उसने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में यह भी देखा कि मूर्त शब्दों की मानसिक प्रतिमायें जल्दी और अमूर्त शब्दों की मानसिक प्रतिमायें अपेक्षाकृत देर से बनती है।

बाबर एवं विन्शेन्ज (1970) के एक प्रयोग में चार दशायें थी। प्रयोज्यों का कार्य मूर्त युग्मिक सहचर शब्दों का प्रत्याह्रान करता था। प्रयोग की पहली दशा में समूह के प्रयोजयों को युग्मित सहचर शब्दों को रटा कर प्रत्याह्रान कराया गया। प्रयोग की दूसरी दशा में समूह के प्रयोज्यों को इनसहचरों को कुछ वाकयों के साथ पढ़ा। प्रयोग की तीसरी दशा में समूह के प्रयोज्यों को युग्मित सहचर शब्दों का वाक्य बनाकर बोलना था। प्रयोग की चौथी दशा में समूह के प्रयोज्यों से कहा गया कि वह युग्मित सहचर शब्दों की मानसिक प्रतिमायें बनायें। इन अध्ययनकर्ताओं ने अपने इस प्रयोग के द्वारा यह सिद्ध किया कि युग्मित सहचर शब्दों की मानसिक प्रतिमायें बनाकर प्रत्याह्रान जिन प्रयोजयों ने रट कर अभ्यास किया था उनका प्रत्याह्रान सबसे कम था। रिचार्डस्न ने भी अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किय कि मानसिक प्रतिमायें बनकर स्मृति भंडारण सबसे अधिक प्रभावशाली होती है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक यह स्वीकार करते है कि जब उद्दीपक से सम्बन्धित चित्र और मानसिक प्रतिमाओं के रूप में कूटसंकेतन सूचनाओं का होता है तब यह अधिक प्रभावशाली होता है अर्थात् उसका प्रत्याह्रान सरल होता है।

14.4.3.1 प्रांसगिक स्मृति

प्रासंगिक स्मृति से तात्पर्य वैसे स्मृति से होता हे जो सामायिक रूप् से व्यवस्थित या दिनांकित घटनाओं एवं प्रसंग से संबंधितसूचनाओं को संचित करता है। दूसरे शब्दों में प्रासंगिक स्मृति में वैसी सूचनाएँ संचित होती है जो यह बतलाती है कि घटनाएँ कब घंटी। प्रासंगिक स्मृति में संचित होने वाले सूचनाओं का कुछ नमुना इस प्रकार है -

1. मुझे याद है कि मेरे जीवन का आरंभिक वर्ष बहुत कष्ट से बीता है।
2. कुल 10 बजे सुबह तक हमें ऑफिस में पहुंच जाना चाहिए।
3. मुझे कल ट्रेन में एक विचित्र आदमी से मुलाकात हुई।

स्पष्ट हुआ कि प्रासंगिक स्मृति में संचित होने वाली सूचनाओं का संबंधघटनाओं के सामयिक पहलू से होता है। व्यक्ति की व्यक्तिगत या आत्मचरित अनुभूतियाँ प्रासंगिक स्मृति में ही होता है। यही कारण है कि प्रासंगिक स्मृति को आत्मचरित स्मृति भी कहा जाता है।

प्रासंगिक स्मृति की विशेषताएँ

1. प्रासंगिक स्मृति में संचित सूचनाओं का संबंध 'कब' से होता है।
2. प्रासंगिक स्मृति से सूचनाओं की पुन: प्राप्ति तभी ही संभव है जब व्यक्ति के सामने घटनाओं के होने के बारे में ही संकेत उपलब्ध कराया जाए।
3. प्रासंगिक स्मृति में संचित सूचनाओं कीसंरचना चूँकि इतनी अधिक मजबूत नहीं होती, इसलिए वे बाहरी सूचनाओं से उत्पन्न बाधा से अपने आप को बचा नहीं पाते हैं। अत: कहा जा सकता है कि अर्थगत स्मृति स्थिर प्रकृति की होती है। प्रासंगिक स्मृति की प्रकृति में तुलनात्मक रूप् से स्थिरता कम होती है।

प्रयोगात्मक सत्याग अंडरवुड, वोरूक एवं मालमी के प्रयोग से होता है। इस अध्ययन में 200 कॉलेज छात्रों के प्रासंगिक स्मृति सहचर सीखना तथा अनुक्रमिक सीखना आदि भी सम्मिलित था।

वाइकेलग्रेन का मत है कि किसी भी व्यक्ति के लिए किसी घटना का अर्थ उसका अर्थ समझे तथा अन्य सूचनाओं से उसका संबंध जोड़े प्रत्याह्वान करना मुश्किल है। कहने का मतलब है कि जिसे प्रासंगिक स्मृति तथा अर्थगत स्मृति या सामान्य स्मृति कहा जा रहा है, वे दो चीज नहीं है बल्कि एक ही चीज है।

14.4.3.2 अर्थगत स्मृति

अर्थगत स्मृति वैसे स्मृति को कहा जाता है जिसमें संसार के वस्तुओं एवं भाषाओं के बारे में एक संगठित ज्ञान संचित होता है। इसलिए इसे सामान्य ज्ञान की संगठित स्मृति भी कहा जाता हैं यही कारण है कि इसे सामान्य स्मृति भी कहा जाता है।

14.4.4 अर्थगत स्मृति का सिद्धान्त

अर्थगत स्मृति जो LTM का एक पकार है, के संगठनात्मक स्वरूप की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों के कई तरह के सिद्धान्त या मॉडल् का वर्णन किया है जिनमें निम्नांकित चार प्रमुख है -

- अनुक्रमिक नेटवर्क मॉडल
- सेट सैद्धान्ति मॉडल
- विशेषता तुलना मॉडल
- विस्तरण उत्तेजन मॉडल

14.4.4.1 अनुक्रमिक नेटवर्क मॉडल - इस सिद्धान्त का प्रतिपदन मौलिक रूप से क्विलियन द्वारा किया गया तथा इसका नवीनत संशोधित प्रारूप कोल्यिन्स एवं लौफट्स द्वारा तैयार किया गया। इस सिद्धान्त का सारतत्व यह है कि अर्थगत स्मृति में सूचनाएँ तार्किक अनुक्रम में जो सामान्य श्रेणी से विशिष्ट श्रेणी की और होते है।

यह कहा जा सकता हे कि पदानुक्रमिक नेटवर्क मॉडल के अनुसार शब्दों या वाक्यों के अर्थ को एक खास ढंग से संगठित कर संचित किया जाता हैं इस मॉडल के कुछ जांचनीय पूर्वकथन है जिनसे इसकी लोकप्रियता काफी बढ गयी है। दूसरे वाक्य की प्रतिक्रिया समय से छोटी होगी, ऐसा कहना सर्वथा उचित नहीं है। वास्तव में ऐसा इसलिए होता है कि 'Canary' एवं 'Singing' में 'Canacry' एवं 'Fly' की तुलना में साहचर्यात्म्क शक्ति अधिक है। जब कोनरेड ने इस साहचर्यात्मक शक्ति को नियत्रित कर दिया तो उन्होंने एक स्पष्टत: पाया कि प्रतिक्रिया समय एवं पदानुक्रमिक दूरी में कोई संबंध नहीं था। इसमें स्वत5 यह अर्थ निकलता है कि सां ानात्म्क मितव्यय प्राक्कल्पना की पूर्वकलपना गलत है।

पदानुक्रमिक नेटवर्क मॉडल् गलत अनुक्रियाओं के कुछ गलत पहलुओं जैसे प्रतिलोमिल दूरी प्रभाव की व्याख्या करने में असमर्थ है। मान लिया जाए कि दो वाक्य हैं जिनकी सत्य की जांच प्रयोज्य करनी है 'A Canary is a fish' तथा 'A canary is an ostrich' दोनों ही गलत वाकय हैं अत: इसके प्रति प्रयोजय 'गलत' की अनुक्रिया करेगा। मॉडल के अनुसार पदानुक्रम में 'canary' (पीतचटकी एवं 'ostrich' अन्य दो शब्द अर्थात 'canary' एवं 'fish' की तुलना में एक-दूसरे से नजदीक है। अत: मॉडल यह पूर्वकथन करता है कि पहली परस्थिति में गलत की अनुक्रिया कर में प्रयोज्य कोदूसरी परिस्थिति की तुलना में कम समय लगेगा। परंतु इस बिन्दु पर लैडांऊर एवं फ्रीडमेन द्वारा किये गये अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि प्रतिक्रिया काल में ऐसी परिस्थिति मं जो अन्तर होता हे, वह ठीक इस पूर्वकथन के विपरीत होता है। अर्थात् दूसरी परिस्थिति में पहली परिस्थिति की तुलना में अनुक्रिया करने में कम समय लगता है। इससे सामान्य दूरी प्रभाव का उलटाव पता चलता है।

पदानुक्रमिक नेअवर्क मॉडल द्वारा विशेषता सूचक प्रभाव की व्याख्या नहीं होत है। इस प्रभाव के अनुसार यदि संप्रत्यय या एकांश किसी वर्ग का एक प्रतिनिधिक सदस्य है तो उसके बारे में तुरंत निर्णय व्यक्ति ले लेता है परंतु यदि एकांश उसी वर्ग का असाधारण सदस्य हे, तो उसके बारे में वह देरी से निर्णय लेता है।

14.4.4.2 सेट सैद्धान्तिक मॉडल - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मेयर द्वारा किया गया जिसे बाद में मेयर एवं स्कवैनबेल्डन द्वारा संशोधित एवं परिवर्तित किया गया। इस मॉडल के अनुसार अर्थगत स्मृति की विशेषताओं के सेट या समूह के रूप में व्याख्या की जाती है। प्रत्येक संप्रत्यय या श्रेणी की कुछ विशेषताएँ के सेट या समूह के रूप में व्याख्या की जाती है। प्रतयेक संप्रत्यय या श्रेणी की कुछ

विशेषताएं होती हैं उन विशेषताओं के सेट या समूह के रूप में व्यक्ति संप्रत्यय को अर्थगत स्मृति में संचित रखता है।

उच्चसेट संबंध - इस तरह के संबंध में उद्देश्य श्रेणी वाले शब्द में ही विधेय वाले शब्द की विशेषताएँ निहित होती है। जैसे, यदि कहा जाता है कि पत्थर माणिक होते है तो उइसमें उद्देश्य (Objective) श्रेणी के शब्द अर्थात पत्थर में विधेय श्रेणी के शब्द अर्थात माणिक के गुण सम्मिलित है।

परस्परव्यापी संबंधी- इस तरह के सबंध वाले वाक्य में उद्देश्य तथा विधेय वाले श्रेणी के कुछ सदस्य उभयनिष्ठ होते है परंतु प्रत्येक श्रेणी के कुछ ऐसे सदस्य होते हे जो दूसरे श्रेणी के नहीं होते है।

विसंगठित संबंध- इस तरह के संबंधवाले वाक्य में उद्देश्य श्रेणी तथा विधेय श्रेणी का कोई भी सदस्य उभयनिष्ठ नहीं होता है।

मेयर ने इन चार तरह के संबंधोंपर आधारित दोनों श्रेणियों के वाक्यों अर्थात् स्वीकारात्मक वाक्य तथा विशेष स्वीकारात्म्क वाक्य का उपयोग अपने प्रयोग में किया। सार्विक स्वीकारात्मक वाकय को सत्य होने के लिए यह आवश्यक है कि उद्देश्य श्रेणी के सभी सदस्य विधेय श्रेणी के भी सदस्य हो अन्यथा यह गलत होगा।

इस मॉडल द्वारा भी पदानुक्रमिक नेटवर्क मॉडल के ही समान विशेषतासूचक प्रभाव की व्याख्या नहीं होती है।

14.4.4.3 विशेषता तुलना मॉडल - पदानुक्रमिक नेटवर्क मॉडल तथा सेट सैद्धान्तिक मॉडल के तथ्यों पर यदि हम ध्यान दें तो यह स्पष्ट होगा कि व्यक्ति वैसे सही वाक्यों का जिसमें अर्थ के ख्याल से समान एकांश होते है, को वैसे सही वाक्यों की तुलना में जिसमें अर्थ के ख्याल से असमान पद या एकांश होते है, का जल्दी मूल्यांकन कर लेता है।उसी तरह से वैसे गलत वाक्यों जिन्में अर्थ के ख्याल से समान पद या एकांश होते है, का मुल्यांकन वैसे गलत वाक्यों की तुलना में जिनमें अर्थ के ख्याल से असमान एकांश होते हे, थोड़ी देरी से होता है। एक दूसरे प्रकार के तथ्य जिससे यह पता चलता है कि अर्थगत समानता यह निर्णय लेने में बाधक होता है कि दो एकांश एक दूसरे से संबंधितनहीं है, का स्पष्ट मतलब यह हुआ कि वे सारे विशेषताएँ जो तार्किक रूप से निर्णय की प्रक्रिया के लिए यथार्थ होते हे, वे निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित रहते है। इस तथ्य की गंभीरता ही कुछ मनोवैज्ञानिकों का अर्थगत स्मृति के संगठन की व्याख्या के बारे में नये ढंग से सोचने के लिए बाध्य किया है और ये लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि अर्थगत स्मृति के पाठों तथा वाक्यों की सत्यता की जांच के लिए वाक्य के सभी महत्वपूर्ण शब्दों की विशेषताओं का एक समग्र तुलना आवश्यक है। इस तरह के एक मॉडल का प्रतिपादन स्मित एवं उनके सहयोगियों तथा रिप्स, शोबेन एवं स्मिथ, स्मिथ शोबेन एवं रिप्स द्वारा किया गया जिसे विशेषता तुलना मॉडल की संज्ञा दी गयी है।

विशेषता तुलना मॉडल के अनुसार अर्थगत स्मृति में स्रपत्ययों की विशेषताओं की सूची के रूप में संचित किया जाता हैं इन संप्रत्ययों के बारे में अंतिम निर्णय पर पहुंचने के पहले दो स्तरीय प्रक्रिया से व्यक्ति का गुजरना पडता है।

पहली अवस्था में वाक्य के उद्देश्य एवं विधेय के सभी विशेषताओं का एक पूर्ण रूप से तुलना किया जाता है। अगर इस आतंरिक्तुलना से यह पता चलता है कि उद्देश्य तथा विधेय की विशेषताओं में बहुत कम उभयनिष्ठता है, तो वह तुरंत गलत की अनुक्रिया करता है। जेसे, यदि वाक्य यह है कि क्या

ऑस्ट्रीच एक मछली है तो यहाँ उद्देश्य तथा विधेय की विशेषताओं में समानता नहीं है और वह तुरंत इसके प्रति गलत होने की अनुक्रिया करता है। उसी तरह से यदि आरंभिक तुलना से यह पता चलता है कि वाक्य का उद्देश्य तथा विधेय में काफी अधिक उभयनिष्ठता है तो व्यक्ति उसके प्रति तुरंत सही होने की अनुक्रिया करता है। जैसे यदि वाक्य है क्या बिल्ली एक पशु है।

दूसरी अवस्था की शुरूआत तब होती है जब व्यक्ति यह देखता है कि वाक्य के उद्देश्य तथा विधेय की विशेषता में बीचो-बीच की उभयनिष्इता है। जैसे, मान लिया जाए कि वाक्य है कि क्या मुर्गी एक पक्षी है? तो इसमें 'मुगी' एवं 'पक्षी' की विशेषताओं में चूंकि उभयनिष्ठता न तो बहुत अधिक और न बहुत कम ही हे, फलत: इसके प्रति अनुक्रिया करने में व्यक्ति की प्रतिक्रिया काल अधिक होगा।

विशेषता तुलना मॉडल का तब सारांश इस प्रकार है - जब वाक्य के उद्देश्य एवं विधेय की विशेषताओं में उभयनिष्ठता काफी अधिक या काफी कम होता है, तो उसकी प्रतिक्रिया काल कम होती है। (क्यों इसमें पहली अवस्था का निर्णय से ही काम चल जाता है।) परंतु जब किसी वाक्य के उद्देश्य एवं विधेय की विशेषताओं में उभयनिष्ठता बीचो-बीच की होती है तो इसकी प्रतिक्रिया काल बड़ी होती है क्योंकि इसमें दोनों अवस्थाओं पर के निर्णय प्रक्रिया की जरूरत होती है।

14.4.4. विस्तरण उत्तेजन मॉडल

इस मॉडल का प्रतिपादन कोल्लिनस एवं लोफ्टस द्वारा पदानुक्रमिक मॉडल तथा विशेषता तुलना मॉडल की कुछ कठिनाइयों को दूर को दूर करने के ख्याल से किय गया। इस मॉडल के अनुसार विभिन्न संप्रत्ययों या शब्दों का संबंध पदानुक्रम ढंग से संरचित नहीं होता है बल्कि यह अर्थगत संबंधतापर निर्भर करता है। जब दो संप्रत्यय एक दूसरे से अर्थगत रूप से अधिक संबंधितहोते है, तो उनमें संबंधमजबूत होता है।

जब दो शब्द एक दूसरे से अर्थ के ख्याल से संबंधितहोते है तो उनमें आपस में दूरी कम होती है और जब दूरी कम होती है तो स्मृति में खोज बीन के दौरान सक्रियता से दूसरे शब्द का प्रत्याह्वान अपने आप हो जाता है। जैसे 'सेव' तथा 'केला' एक दूसरे से अर्थ के ख्याल से काफी नजदीक है। अत: स्मृति संचन में खोज-बीन के दौरान बहुत उम्मीद इस बात की है कि 'सेव' शब्द से अपने आप ही व्यक्ति 'केला' शब्द का भी प्रत्याह्वान कर ले। ऐसा इसलिए हो पाता है कि 'सेव' शब्द की उत्तेजना अपने आप विस्तरित होकर 'केला' शब्द को सक्रिय बना देता है।

इस मॉडल की एक अन्य पूर्वकल्पना यह है कि दो शब्दों के बीच की कड़ी की शक्ति उपयोग के अनुसार परिवर्तित होती है। जैसे 'कोयल' का संबंध 'पक्षी' से ज्यादा है। (अर्थात :'कोयल एवं 'पक्षी' का उपयोग एक संदर्भ में अधिक होता है।) परंतु ऑस्ट्रीच तथा 'पक्षी' के बीच से अधिक मजबूत है। यही कारण है कि 'कोयल एक पक्षी' वाक्य के शब्दों की जांच करने में प्रयोज्य को 'ऑस्ट्रीच एक पक्षी है' के वाक्य के शब्दों की जांच कम प्रतिक्रिया समय लगता है।

इस मॉडल की एक खास विशेषता यह है कि इसके द्वारा कुछ ऐसी घटनाओं की भी व्याख्या हो पाती है जिसकी व्याख्या अन्य मॉडल से करना संभव नहीं है। एक ऐसी ही घटना है जिसे अर्थगत प्राईमिंग प्रभाव कहा जाता है।

अर्थगत स्मृति के क्षेत्र में जो उक्त चार प्रमुख मॉडल की चर्चा की गयी है, उनसे इस क्षेत्र में शोध कार्य में काफी वृद्धि हो गयी। परंतु फिर भी मनोवैज्ञानिक इस क्षेत्र के शोध को अभी इतना अधिक परिपक्व नहीं मानते हैं कि उसके आधार पर कोई ठोस निष्कर्ष पर पहुँचा जाय।

14.5 सारांश (Summary)

स्मृति के दो पहलू होते है - धनात्मक एवं ऋणात्मक। स्मृति के तीन तत्व होते है कूट संकेत संचयन तथा पुन: प्राप्ति। स्मृति तीन प्रकार की होती है - संवेदी स्मृति, लघुकालिक स्मृति तथा दीर्घकालिक स्मृति लघुकालिक स्मृति जिसकी अधिकतम अवधि 20-30 सेकेण्ड होती है। दीर्घकालिक स्मृति जिसकी अधिकतम अवधि अनिश्चित होती है। दीर्घकालिक स्मृति की दो प्रमुख प्रकारों अर्थात् प्रासंगिक स्मृति तथा अर्थगत स्मृति है। अर्थगृत स्मृति के चार प्रमुख मॉडलों अर्थात आनुक्रमिक नेटवर्क मॉडल सेट सैधान्तिक मॉडल, विशेषता तुलना मॉडल तथा विस्तरण उत्तेजन मॉडल के आधार पर अर्थगत स्मृति को व्याख्या मित किया गया है।

14.6 मूल्यांकनप्रश्न

निम्नलिखित कथन में सही एवं गलत का निशान लगाये।

1. प्रारम्भिक स्मृति दीर्घकालिक का एक प्रकार है। ( )
2. दीर्घकालिक स्मृति में 5 से 10 सेकेण्ड तक याद रखा जा सकता है। ( )
3. दीर्घकालिक स्मृति या अभ्यास का प्रभाव पड़ता है। ( )
4. अर्थगत स्मृति लघुकालिक स्मृति का एक प्रकार है। ( )

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. दीर्घकालिक स्मृति की क्या विशेषता है?
2. प्रासंगिक स्मृति क्या है?
3. प्रासंगिक एवं अर्थगत स्मृति में अन्तर बताओ।
4. संवेदी स्मृति का क्या मतलब है?

निबन्धात्म्क प्रश्न

अर्थगत स्मृति के सिद्धान्त की व्याख्या करो।

14.7 संदर्भ ग्रन्थ

- प्रो. त्रिपाठी, लाल, बच्चन, गोरखपुर, विश्वविद्यालय, अधिगम का मनोविज्ञान, आटा मेक्ग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली
- प्रो. सिंह अरूण कुमार (पटना) विश्वविद्यालय/उच्चतर मनोविज्ञान पब्लिशिंग मोतीलाल बनारसी दास
- Chifford Morgan, Richard a King, Johnrweis Publishing House, Tata macrohill, New Delhi
- वर्मा प्रीति, डॉ. श्री वास्तव डी.एन., आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

इकाई - 15

पृष्ठोन्मुख अवरोध स्वरूप एवं सिद्धान्त

Retroactive inhibition and its theories

ईकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 परिभाषा

15.3 पृष्ठोन्मुख बाधा पर पुन: प्राप्ति संकेतों के प्रभाव दिखाने वाले प्रयोग

15.4 पृष्ठोन्मुख व्यक्तिकरण के निर्धारक तत्व

15.5 पृष्ठोन्मुख सिद्धान्त

15.6 बोध प्रश्न

15.7 सारांश

15.8 अभ्यास प्रश्न

15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.0 प्रस्तावना (Introduction)

पृष्ठोन्मुख अवरोध अधिगम सामग्री में पाये जाने वाला वो अवरोध है। जो एकसामग्री के अधिगम के तुरन्त बाद दूसरी सामग्री याद की जाती है। पुन: प्रत्यावाह के समय प्रथम सामग्री को याद करने में बाधा उत्पन्न होती है। पृष्ठोन्मुख अवरोध को सिद्ध करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक ने आने का निरर्थक सामग्री की सूची तैयार की गयी। यह विस्मरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सामग्री के उत्तेजक पदों में जितनी समानता होती है। RL की मात्रा उतनी ही अधिक होती है। युक्ति साहचर्य सामग्री की प्रतिक्रिया पदों में अधिक समानता जब होती है तब RL की मात्रा समानता बढ़ने के साथ-साथ घटती जाती है। वूस, आसगुड, युंग ने भी अपने प्रयोगात्मक अध्ययन के आधार पर इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त किये। इसके तत्वों में अधिगम की मात्राधारण विश्राम अवधि कार्य प्रस्तुत करने का समय है। इसके सिद्धान्त में द्विकारक सिद्धान्त अनुक्रिया स्वत: पुर्नप्राप्ति की क्रियाओं को व्याख्याभित किया गया है।

15.1 उद्देश्य (Objective)

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी -

- पृष्ठोन्मुख अवरोध का अर्थ समझ सकेंगें।
- पृष्ठोन्मुख अवरोध के स्वरूप को जान सकेंगे।

- पृष्ठोन्मुख अवरोध की प्रायोगिक प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- पृष्ठोन्मुख व्यक्तिकरण के निर्धारक तत्व को जान सकेंगे।
- पृष्ठोन्मुख सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

15.2 परिभाषा (Defination)

व्5यक्तिकरण - विस्मरण में व्यक्तिकरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। विस्मरण के लक्षण की व्याख्या के रूप में यह सिद्धान्त व्यवहार के साहचर्यवाद नामक अधिक विस्तृत दृष्टिकोण के एक विशिष्ट पक्ष से उद्धुत है। व्यक्तिकरण सिद्धान्त में विश्लेषण थी तात्विक इकाई विस्मरण अवरोधक अंतक्रिया की अभिव्यक्ति है। किसी उद्दीपक विशेष और किसी अनुक्रिया विशेष के बीच पाया जाने वाला गठबंधन है। एक बार जब उद्दीपक और अनुक्रिया साहचर्य परस्पर अनुक्रिया कर ऐसे व्यवहारपरक परिवर्तन उत्पन्न करते हैं जो या तो अवरोधात्मक या सौकर्यात्मक होते हैं। विस्मरण अवरोधात्मक अंतक्रिया की अभिव्यक्ति है।

15.3 पृष्ठोन्मुख बाधा पर पुन: प्राप्ति संकेतों के प्रभाव दिखाने वाले प्रयोग

इस सिद्धान्त के अनुसार विस्मरण का कारण उपयुक्त पुन: प्राप्ति संकतों की अनपुस्थिति होती हैं इसका मतलब यह हुआ कि यदि उपयुक्त पुन: प्राप्ति संकेत प्रतयाह्रान के समय उपस्थिति में किये जाए तो विस्मरण नहीं होगा या बहुत ही कम होगा। इस तथ्य की जांच टुलभिंग एवं पटोसका ने एक प्रयोग करके किया है। इन लोगों ने इस प्रयोग में पृष्ठोन्मुख बाधा उत्पन्न करनेवाले डिजाइन के सहारे प्रयोग किया। इस प्रयोग में 24-24 शब्दों की कई सूचियाँ तैयार की गयी। 24 शब्द 6 विभिन्न श्रेणियों (प्रत्येक श्रेणी से चार चार) के जैसे सैनिक के नाम, बिल्डिंग क प्रकार, धातु के नाम, कीड़े-मकोड़े के नाम आदि के थे। प्रयोजयों के कई समूहों ने इस प्रयोग में भाग लिया। प्रत्येक समूह ने इन सूचियों को एक-एक करके सीखा। प्रत्येक सूची को तीन-तीन बार दिखलाया गया था। उसके तुरंत बाद उनका एक तात्कालिक स्वतंत्र प्रत्याह्रान करवाया गया जिसमें सूची केदेखे गये शब्दों का उन्हें क्रमरहित प्रत्याह्रान करना था। सभी 6 सूची का इस तरह से एक के बाद एक करके प्रत्येक समूह को दिखा देने और उनका तात्कालिक स्वतंत्र प्रत्याह्रान कर लेने के बाद उन सभी 6 सूचियों के सभी शब्दों का प्रत्याह्रान करवाया गया। इसे असंकेतिक अन्तिम प्रत्याह्रान कहा गया है। इसके बाद अन्तवैर्शित कार्य में कुछ देर तक उन्हें लगाया गया और उसके बाद एक बार पुन: सभी सूचियों के सभी शब्दों का प्रत्याह्रान करने के लिए कहा गया परंतु इस बार उन्हें संकेत के रूप में श्रेणियों के नाम बतला दिये गये थे। इस संकेतिक अंतिम प्रत्याह्मान कहा गया। प्रयोग के परिणाम काफी स्पष्ट थे। परिणाम में यह देखा गया कि सांकेतिक अंतिम प्रत्याह्रान से काफी श्रेष्ठ थे। सचमुच में संकेतिक अंतिम प्रत्याह्रान की मात्रा लगभग तात्कालिक स्वतंत्र प्रत्याह्रान के बराबर थी। प्रयोग में पृष्ठोन्मुख बाधा के भी सबुत पाये गये क्योंकि असंकेतिक प्रत्याह्रान की मात्रा सूचियों की संख्या में वृद्धि के साथ ही साथ कमती गयी।

पृष्ठोन्मुखता के अध्ययन के लिए प्रायोगिक प्रक्रिया

समूह	सोपान 1	सोपान 2	सोपान 3
प्रायोगिक	अ को सीखता है	ब को सीखता है	अ का संचय परीक्षण
नियंत्रित	अ को सीखता है	विश्राम करता है	अ का संचय परीक्षण

संकृत्य अ के संचय में भिन्नता प्रायोगिक समूह द्वारा संकृत्य 'ब' को सीख लेने के प्रभाव को प्रतिबिंबित करती है। पुनश्च, सोपानों के बीच के अंतराल की अवधि को छोटा बड़ा बनाया जा सकता है।

नियंत्रण दशा के लिए विश्राम की आवश्यकता के तात्पर्य पर कुछ टिप्पणी आवश्यक है। किसी आदर्श प्रयोग में नियंत्रण दशा के प्रयोज्यों को निलंबित की दशा में रखना आवश्यक है। जैनकिंस एवं डेलेनबाग का प्रयोग, जिसमें निश्चित संचय अंतरालों की अवधि में प्रयोज्यों को सुला दिया गया, आदर्श के अधिकतम निकट है। किंतु सामान्य व्यवहार में नियंत्रण-प्रयोज्यों पर निष्क्रियता की इतनी माता नहीं दी जा सकती। पृष्ठोन्मुखता अभिकल्प में यह समस्या सर्वाधिक गंभीर है, क्योंकि जिस समय प्रायोगिक प्रयोज्य अंतरावेशित संकृत्य का अधिगम कर रहे हैं उस समय नियंत्रण प्रयोज्य मूत्र संकृत्य का अभ्यास कर सकते हैं। पशु वयवहारों के अध्ययन में यह गंभीर चिंता का विषय नहीं क्योंकि, विश्राम-दशा के अंतर्गत पशु प्रयोज्य संकृत्य के लिए उपयुक्त कोई कार्य नहीं कर सकते, किंतु मानव प्रयोज्य कर सकते हैं।

15.4 पृष्ठोन्मुख व्यक्तिकरण के निर्धारक तत्त्व

1- **मूल अधिगम और अन्तदैशी अधिगम सामग्री में समानता -** इन दो प्रकारों की अधिगम सामग्री की समानता और असमानता भी RI को प्रभावित करती है। अनेक ध्ययनों में देखा गया है कि इन दों प्रकारों की अधिगम सामग्री में समानता जितनी अधिक होती है प्रयोज्य को दो प्रकार की अधिगम सामग्री को अलग करने में उतनी अधिक कठिनाई होती हैं इस अवस्था में RI की मात्रा अधिक होती है। इन दो अधिगम सामग्री मेंसमानता जितनी ही कम होती है। मैक्गों तथा मैक्डूनॉल्ड के अनुसार यदि मूल अधिगम और अन्तवैशी अधिगम सामग्री युग्मित सहचर प्रकार की हैं इस प्रकार की सामग्री में उत्तेजक पदों में समानता जितनी ही अधिक होती है, RI की मात्रा उतनी ही अधिक होती है। युग्मित सहचर सामग्री की प्रतिक्रिया पदों में अधिक समानता जब होती है तब RI की मात्रा समानता बढ़ने के साथ-साथ घटती जाती है। ब्रूस, आसगुड, युंग ने भी अपने प्रयोगात्मक अध्ययन के आधार पर इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त किए है। पोस्टमैन तथा राइली ने उपर्युक्त से भिन्न परिणाम अपने अध्ययन में प्राप्त किये। इन मनोवैज्ञानिकों को विपरीत परिणाम प्राप्त होने के एकमात्र कारण यह दिखाई देता है कि मूल अधिगम और अन्तवैशी अधिगम प्रयासों की संख्या असमान थी।

मूल अधिगम और अन्तवैशी अधिगम में जब समानता कम होती है तब RI की वृद्धि होती है। एक सीमा से अधिक समानता में वृद्धि का प्रभाव अभ्यास के सामने हो जाता है। अत: धारण बढ़ जाता है और RI कम हो जाता है। समानता के इस स्वभाव का अध्ययन स्कैग्गस तथा रॉबिन्सन ने किया है, इन मनोवैज्ञानिकों के निष्कर्ष स्कैग्गस और रॉबिन्सन उपकल्पना के नाम से जाने जाते हैं। इन परिणमा चित्र द्वारा स्पष्ट किए जा सकते है -

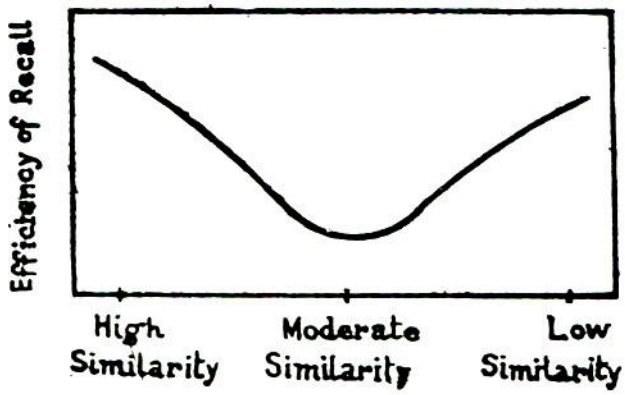

चित्र में दी गई स्कैग्गस रॉबिन्सन उपकल्पना वक्र को देखने से स्पष्ट है कि जब दोनों क्रियाएँ अधिक समान होती हैं तब धारण की मात्रा अधिकतम होती है, RI के स्थान पर धनात्म्क स्थानान्तरण होता है। जब दोनों क्रियाओं में समानता घटने लगती है तो प्रत्याह्वान कम होने लगता है तथा साथ-साथ RI घटित होने लगता है। समानता के माध्यमिक स्तर के बाद समानता घटते-घटते असमानता का रूप धारण कर लेती है, इस अवस्था में धारण पुन: बढ़ने लगता है। नागी के अनुसार RI की मात्रा उस समय अधिक होती हे जब दो प्रकार के अधिगम की क्रियाओं में प्रयोजय क मनोवृति समान न होकर भिन्न-भिन्न होती है। जेन्किन्स और पोस्टमैन के अनुसार RI की मात्रा उस समय अधिक होती है जब दोप्रकार की अधिगम सामग्री का धारण परीक्षण समान विधि द्वारा होता हैं इसी प्रकार से एक अन्य अध्ययन के अनुसार RI की मात्रा उस समय अधिक होती है जब दो प्रकार की अधिगम क्रियाओं का अभ्यास समान अवस्थाओं में कराया जाय। जब मूल अधिगम और अन्तवैशी अधिगम भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में कराया जाता है जब RI की मात्रा घट जाती है। जब दो प्रकार के अधिगम की सूचियों में अनुक्रिया पद समान होते है, तब RI की मात्रा अधिक है।

2- **अन्तवैशी अधिगम की मात्रा** - मेल्टन तथा इरविन के अनुसार अन्तवेशी अधिगम की मात्रा के बढ़ने के साथ-साथ RI की मात्रा भी बढ़ती जाती है। इन मनोवैज्ञानिकों के 18 निरर्थक की सूची की सहायता से प्रयोज्यों के विभिन्न समूहों को 0, 5, 10, 20 व 40 अभ्यास कराये। इनके प्रयोग से स्पष्ट हुआ कि 20 प्रयासों तक RI की मात्रा बढ़ती हैं।

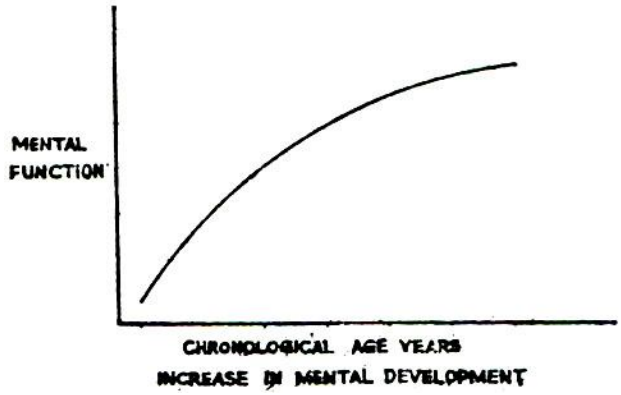

प्रयासों के बढ़ने के साथ-साथ 40 प्रयास तक RI की मात्रा में बहुत थोड़ी सी कमी आती जाती है। पोस्टमैन तथा राइली के अनुसार युग्मित सहचर अधिगम में अधिगम की मात्रा के बढ़ने के साथ-साथ RI में नकारात्म्क रूप से उत्तरोतर वृद्धि होती है। बानेर्स तथा अण्डरवुड ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि जब मूल अधिगम स्थिर रखा जाता है तथा अन्तवैशी अधिगम की मात्रा अधिक होती है तब RI के कारण विस्मरण अधिक होता है।

3- **अन्तवैशी अधिगम सामग्री की मात्रा -** यहाँ सामग्री की मात्रा का अर्थ सूचियों की संख्या, सूची की लम्बाई या सूची में पदों की संख्या से है। अनेक प्रयोगात्म्क अध्ययनों के आधार पर यह स्थ्रि किया जा चुका है कि अन्तवैशी अधिगम सामग्री की मात्रा बढ़ने सेप्रयोजय का अन्तवैशी कार्य पर समय का व्यय बढ़ जाता है साथ ही साथ अवरोधित साहचर्य की मात्रा बढ़ जाती है जिससे RI की मात्रा बढ़ जाती है। ट्यूनिंग ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में निरर्थक पदों की क्रमिक सूचियों का प्रयोग किया। कुछ मनोवैज्ञानिक ने यह स्थिर किया है कि अन्तर्वेशी अधिगम सामग्री की मात्रा उस अवस्था में ही एक महत्वपूर्ण चर है जबकि प्रयोज्य का अंतरदर्शिय अधिगम पर व्यतीत समय का महत्त्व दिया जाता है।

4- **अन्तर्वेशी कार्य को प्रस्तुत करने का समय** - यद्यपि मूल अधिगम के बाद धारण अन्तराल में किसी भी समय अन्तवैशी कार्य को प्रस्तुत किया जा सकता है। अनेक अध्ययनों में यह देखा गया है कि मूल अधिगम के बाद धारण अन्तराल में भिन्न-भिन्न समय बिन्दुओं परअन्तर्वेशी कार्य को प्रस्तुत करने से RI की मात्रा बढ़ जाती है। RI की मात्रा उस समय भी बढ़ जाती है जब अन्तवे्रशी कार्य धारण परीक्षण से केवल कुछ ही देर पहले दिया जाता है। अण्डरबुड तथा कीप्पल के अनुसार अन्तवैशी कार्य और धारण परीक्षण के बीच समय अन्तराल जेसे-जेसे बढ़ता जाता है RI की मात्रा उसी रूप में घटती जाती है। RI के घटने के कारण दो पकार की सूचियों में विभेदीकरण करने का समय प्रयोज्य में मिल जाता है।

5- **धारण विश्राम अवधि में क्रियाशीलता** स्तर - धारण् विश्राम अवधि में प्रयोज्य क्या करता है? इस चर का भी प्रभाव व्यक्तिकरण पर महत्त्वपूर्ण ढंग से पड़ता है। धारण विश्राम अवधि में प्रयोज्य क्रियाशील, व्यस्त, विराम, नींद आदि किसी अवस्था में हैं इस बात का प्रभाव RI पर पड़ता है। जेन्किन्स तथा डेलेनबैक ने नींद और जाग्रत अवस्था में धारण की तुलना की है। यद्यपि दोनों ही अवस्थाओं में विस्मरण होता है फिर भी जाग्रत अवस्था की अपेक्षा नींद के पश्चात्

विस्मरण की मात्रा कम होती है। नीचे के चित्र में जाग्रत तथा निद्रा अवस्था के बाद धारण अथवा पुन:स्मरण को प्रदर्शित किया गया है।

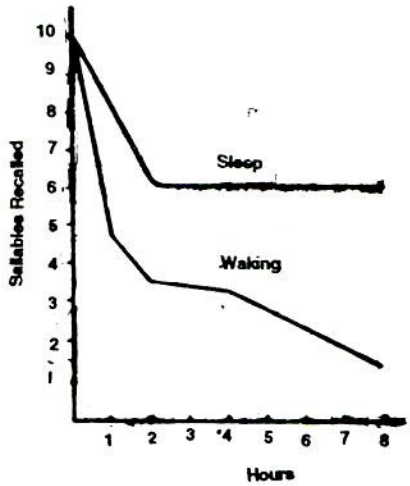

एक्सट्रेण्ड ने भी उपर्युक्त परिणमों की पुष्टि प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर की है। इनके प्रयोग में युग्मित साहचर्य विधि से अधिगम कराया गया तथा जाग्रत अवस्था में 8 घंटे के बाद धारण परीक्षण किया गया तथा 8 घंटों की निद्रावस्था के बाद धारण परीक्षण करके देखा गया कि निद्रावस्था के पश्चात् धारण 84.6 प्रतिशत पुन: स्मरण तथा जाग्रतावस्था में 73.3 प्रतिशत ही था। इस प्रयोग में यह भी देखा गया कि जाग्रत अवस्था वाले प्रयोज्यों का विस्मरण प्रतिशत दुगुना था। स्पष्ट है कि क्रियाशीलता स्तर अधिक होने से RI की मात्रा में वृद्धि होती है।

15.5 पृष्ठोन्मुखता सिद्धान्त

मैगाश (1932) ने व्यक्तिकरण सिद्धांत के मूलरूप का प्रतिपादन किया था। उसके अनुसार मूल साहचर्य उस समयज्यों के त्यों बनो रहते हैं जब अंतरावेशित अधिगम की अवधि में नए साहचर्यो का अधिगम हो जाता है। इसे स्वातंत्रय परिकल्पना का नाम दिया गया है, क्योंकि इससे यह पता लगता है कि संबंधितसाहचर्यो के दो समुच्चय बिना पारस्परिक व्यक्तिकरण के ही स्मृति में रह सकते हैं।

द्वि-कारक सिद्धांत - मेल्टन एवं इरविन (1940) के एक प्रयोग के प्रकाश में स्वातंत्रय परिकल्पना विनष्ट हो गई। इन प्रयोगकर्ताओं ने एक पृष्ठोन्मुखता प्रयोग में प्रथम संकृत्य के संचय पर अंतरावेशित संकृत्य के अभ्यास की मात्रा के प्रभाव का निर्धारण किया। प्रयोज्यों द्वारा सीखी जाने वाली सामग्री में निरर्थक पद सम्मिलित थे और क्रमिक प्रत्याशा-विधि द्वारा उनका अधिगम किया गया। सभी प्रयोज्यों ने मूल सूची का अभ्यास पांच बार किया। इसके बाद उन्हें आराम करने दिया गया, अथवा उनसे अंतरावेशित संकृत्य पर 5, 10, 20 या 40 प्रयास कराए गए। आराम अथवा इन प्रयासों के 30 मिनट के बाद सभी प्रयोज्यों से मूल सूची का पुन: अधिगम दो त्रुटिहीन वाचन के निकष तक कराया गया। प्रत्येक प्रायोगिक दशा के लिए प्रथम पुन:अधिगम प्रयास पर घटित होने वाले पृष्ठोन्मुख व्यक्तिकरण की मात्रा का निर्धारण विश्राम दशा के प्रत्याहान से प्रत्येक परीक्षणा दशा के प्रत्याहान को घटा कर किया गया।

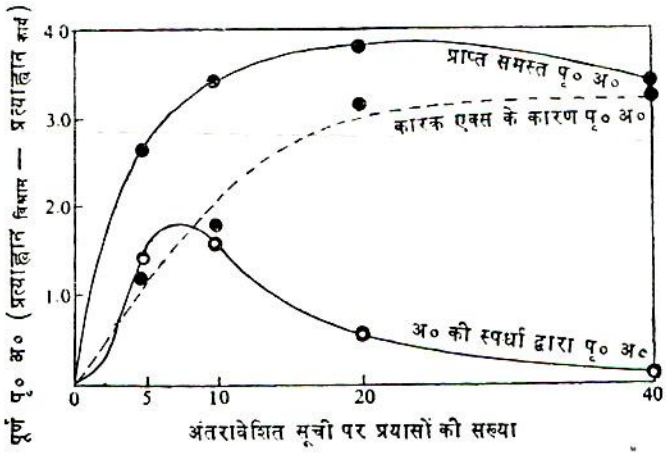

चित्र 12.5 में परिणामों को प्रदर्शित किया गया है। जैसे-जैसे अंतरावेशित संकृत्य पर अभ्यास की मात्रा 0 से बढ़कर कुछ प्रयासों तक होती कई, कुल पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण की मात्रा भी बढ़ती गई। किंतु कुल पृष्ठोन्मुख अवरोध लगभग 20 अंतरावेशित प्रयासों में अपने उच्चतम बिंदु पर पहुंच गया। यह भी संभव है कि 20 प्रयासों के बाद अंतरावेशित प्रयासों की संख्या में वृद्धि होने पर व्यतिकरण की मात्रा में कमी हुई। मेल्टन और इरविन ने इन परिणामों के कारण प्रस्तुत करते समय कुछ अतिरिक्त प्रदत्तों का भी सहारा लिया है। इन लोगों ने प्रथम सूची के प्रत्याहान की अवधि में होने वाली बाह्य त्रुटियों की गणना की। विशेषत: इन लोगों की रुचि उन त्रुटियों में थी जो वस्तुत: दूसरी सूची के सही पद थे। इन दो सूचियों का पारस्परिक हस्तक्षेप प्रथम सूची के प्रत्याहान होने की ऐसी असफलता है जिनका स्रोत निश्चय ही दूसरी सूची पर अभ्यास की अवधि में सीखे गए पदों की प्रतियोगिता है। ऐसी त्रुटियों की आवृतित को अंतरावेशित सूची की पुनरावृत्ति की संख्या के प्रकार्य रूप में रेखांकित किया गया है। चित्र 12.5 में इस वक्र को ''पृष्ठोन्मुख व्यक्तिकरण के कारण अनुक्रियाओं की प्रकट प्रतियोगिता'' का नाम दिया गया है। अंतरावेशित सूची पर अभ्यास के प्रारंभिक प्रयासों की अवधि में ये त्रुटियां बहुधा होती हैं। किंतु प्रयासों की संख्या बढ़ जाने के बाद इनमें कमी होने लगती है। मैल्टन और इरविन के तर्क के अनुसार ऐसा इसलिए होता है कि जब अंतरावेशित सूची अच्छी तरह सीख ली जाती है तब यह मूल सूची से अधिक आसानी के साथ प्रभेदित हो जाती है। फलत: मूल सूची के प्रत्याहान की अवधि में दूसरी सूची द्वारा हस्तक्षेप की संभावना भी कम हो जाती है।

जैसे समस्या इस तथ्य की व्याख्या करना है कि प्रकट रूप से प्रतियोगात्मक हस्तक्षेपों के कम हो जाने के बाद भी अत्यधिक पृष्ठोन्मुख अवरोधक बना रहता है। परंतु हम इस प्रचुर मात्रा वाली पष्ठोन्मुखता की व्याख्या कैसे करें? मेल्टन एवं इरविन ने इस प्रकट प्रतियोगिता के कारण उत्पन्न पृष्ठोन्मुख अवरोधक और समग्र अवरोधक की भिन्नता को एक्स कारक का नाम दिया। एक्स कारक अंतरावेशित संकृत्य पर अतिरिक्त अभ्यास करने के परिणामस्वरूप बढ़ता जाता है।

एक्स कारक क्या है? मेल्टन एवं इरविन ने बताया कि यह कारक प्रथम सूची की सामग्री को अनसीखा करना हो सकता है। इन लोगों ने इसके लिए नैमित्तिक अनुक्रियाओं के प्रायोगिक विलोप का उपमान प्रस्तुत किया। जब प्रयोज्य दूसरी सूची सीखते हैं तब प्रथम सूची के पद कभी कभी हस्तक्षेप करते हैं। अर्थात् लोग अंतरावेशित सूची का अभ्यास करते समय मूल पदों के बारे में सोचते अथवा उन पदों को प्रकट रूप में व्यक्त भी कर देते हैं। दूसरी सूची सीखने की अवधि में ये अनुक्रियाएं गलत होती हैं, इसलिए उनका प्रबलन नहीं होता तथा वे दंडित भी हो सकती हैं। अतएव,

दूसरी सूची सीखते समय पहली सूची के पदों को देने की प्रवृत्ति क्षीण हो सकती है। दूसरी सूची पर अभ्यास की मात्रा जितनी बढ़ेगी प्रथम सूची का संचयात्मक रूप से अनसीखा होना उतना ही बढ़ता जाएगा।

यदि अनसीखा करना विलोप के समान है, तो प्रत्याशा की जा सकती है कि उसकी स्वत: पुनप्राप्ति भी होगी। अतएव, दूसरी सूची के कुछ अवरोधात्मक प्रभाव अदृश्य हो जाएंगे बशर्ते पहली सूची से सामग्री की स्वत: पुनप्राप्ति के लिए वांछित समयांतराल दिया जाता है। अंडरवुड ने ऐसे ही उपमान का उपयोग इस तथ्य की व्याख्या करने के लिए किया कि दूसरी सूची के अधिगम और प्रथम सूची के संचय परीक्षण के बीच वाले समयांतराल को जितना ही बढ़ाया जाता है, पृष्ठोन्मुख अवरोध उतना ही कम हो जाता है।

ऐसे सभी प्रमाण अप्रत्यक्ष हैं। आवृत्ति अधिगम की प्रामाणिक तकनीकों में यह जान पाना बहुत कठिन है कि जब प्रयोज्यय दी हुई सामग्री का अधिगम करता है, उस समय उसकी अन्य अनुक्रियाओं की क्या नियति होती है। अनेक प्रयोगों में एक परिवर्तित मुक्त प्रत्याहान तकनीक का उपयोग कर युग्मित सहचर अधिगम का विश्लेषण किया गया है। इस तकनीक से दूसरी सूची के अधिगम करने की अवधि में प्रथम सूची की अनुक्रियाओं के भाग्य का निर्धारण करना अधिक आसान होता है। इसमें अ-ब, अ-द प्रयोग प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है, और दूसरी सूची के अधिगम करने की अवधि में, विशेष रूप से अभिकल्पित प्रत्याहान संकृत्यों को डाल दिया जाता है। उद्दीपकों (अ, पद) को प्रस्तुत किया जाता है और प्रत्येक के प्रति प्रयोज्य एकल अनुक्रिया करता है। इन परीक्षणों से ज्ञात होता है कि जैसे-जैसे दूसरी सूची के पदों का सीखना बढ़ता है, पहली सूची की अनुक्रियाओं के दिए जाने की संभावना घटती जाती हैं। इसके अतिरिक्त, प्रथम सूची की सामग्री की स्वत: पुन:प्राप्ति होती है, बशर्ते दूसरी सूची के अभ्यास और प्रत्याहान परीक्षण के बीच एक समयांतराल हो। अतएव, विलोप का सादृश्य केवल परिस्थितिजन्य न हो कर कुछ और ही लगता है।

ऐसे प्रयोगों से यह पता चलता है कि पृष्ठोन्मुख अवरोध प्रयोगों में दो कारक और अग्रोन्मुख अवरोध में केवल एक कारक कार्य करते हैं। पृष्ठोन्मुख अवरोध प्रयोगों में प्रथम संकृत्य की सीखी हुई अनुक्रियाएं, द्वितीय संकृत्य को सीखने की अवधि में अनुपलबध हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त द्वितीय संकृत्य ऐसी सीखी हुई अनुक्रियाएं उत्पन्न कर देता है जो प्रथम संकृत्य के संचय परीक्षण के समय प्रथम संकृत्य की अनुक्रियाओं के साथ प्रतियोगिता करने लगती हैं। विशेषत: उस समय ऐसा होता है जब संकृत्य की अनुक्रियाओं को प्रभेदित करने वाले संकेत एक दूसरे के अत्यंत समान होते हैं। प्रत्याहान करते समय दोनों संकृत्यों की सामग्रियों के बीच भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

अग्रोन्मुखता प्रयोगों में मात्र प्रतियोगिता ही कार्य करती है। चूंकि व्यक्तिकरणकारी संकृतय पहले ही सीख लिया जाता है अत: संचय परीक्षण के पहले कोई अतिरिक्त अंतरावेशित अधिगम नहीं होता जो दूसरी सूची की सही अनुक्रियाओं को अनसीखा कर सके। अगा्रेन्मुखता में अ-द साहचर्यो के साथ सक्षम प्रतियोगियों के रूप में कार्य करने वाले अ-ब साहचर्यो को अवसर देने वाला क्रियातंत्र स्वत: पुन:प्राप्ति है।

परिवर्धित मुक्त प्रत्याहान तकनीक के साथ समस्या यह है कि यह प्रत्येक उद्दीपक के लिए केवल एक अनुक्रिया का अवसर देती है। अतएव, इससे इतना ही प्रदर्शित हो पाता है कि किसी निश्चित समय पर सूची 1 की या सूची 2 की अनुक्रियाओं की तुलना में कम प्रबल होती हैं। यह निर्धारित करने के

लिए की सूची 1 की अनुक्रियाएं पूर्णत: दुर्बल हो जाती हैं अथवा सूची 1 की अनुक्रियाओं की तुलना में कम प्रबल होती है, दोनों अनुक्रियाओं को एक ऐसी स्थिति में घटित होने का अवसर मिलना चाहिए जिसमें अनुक्रिया प्रतियोगिता का अवसर न्यूनतम हो जाता है। बार्नेस एवं अंडरवुड (1959) ने प्रथम सूची के साहचर्यो के भाग्य निर्धारण हेतु एक ऐसे प्रयोग की अभिकल्पना की। प्रयोज्यों को युग्मित सहचरों की ऐसी सूचियां सिखायी गई जिनमें निरर्थक पद उद्दीपक थे और असंबद्ध द्विपदीय विशेषण अनुक्रियाएं थीं। सूचियों में 8 युग्म थे, और प्रत्येक प्रयोज्य ने दो सूचियों का अधिगम किया। प्रयोग की महत्वपूर्ण दशा में दोनों सूचियों के लिए निरर्थक पद (उद्दीपक) तादात्मिक थे, किन्तु अनुक्रियाएं भिन्न-भिन्न थीं। अत: प्रयोज्यों को एक शीघ्रता से घटित होने वाले अनुक्रम में एक ही तरह के उद्दीपकों के प्रति दो अनुक्रियाएं सीखनी पड़ी।

दूसरी सूची के अधिगम की अवधि में अनेक बिंदुओं पर विशिष्ट प्रत्याहान परीक्षणों में प्रयोज्यों से दोनों सूचियों, प्रथम और द्वितीय, से उपर्युक्त पदों को बताने के लिए कहा गया। प्रयोज्यों को ऐसा प्रत्याहान करने के लिए पूरे दो मिनट का समय दिया गया। यह तकनीक परिवर्धित मुक्त प्रत्याहान विधि का भी और अधिक परिवर्धित रूप है। इसलिए इसको परिवर्धित-परिवर्धित-मुक्त-प्रत्याहान की विधि के नाम से भी जाना जाता है। इन प्रत्याहान परीक्षणों के आवश्यक परिणाम चित्र 12.6 में देखे जा सकते हैं। चित्र से ज्ञात होता है कि प्रथम सूची की उपर्युक्त अनुक्रियाएं द्वितीय सूची के अधिगम की अवधि में कम होती जाती हैं। इस परिणाम का पुन: प्रदर्शन बार्नेस तथा अंडरवुड के प्रयोग जैसे एक अन्य प्रयोग (गागिन, 1963) से किया गया है। किंतु गागिन ने प्रत्याहान परीक्षणों में वह नहीं किया जो बार्नेस एवं अंडरवुड ने किया था।

अत: यह कहना उचित नहीं है कि लोग प्राचीन उद्दीपकों के प्रति केवल नई अनुक्रियाएं करना सीखते हैं, और ये अनुक्रियाएं प्राचीन अनुक्रियाओं की तुलना में अधिक प्रायिकता से घटित होती हैं। ऐसा लगता है कि मूल उद्दीपक अनुक्रिया साहचर्य दुर्बल हो जाते हैं, जिसके कारण उनका प्रत्याहान कठिन हो जाता है।

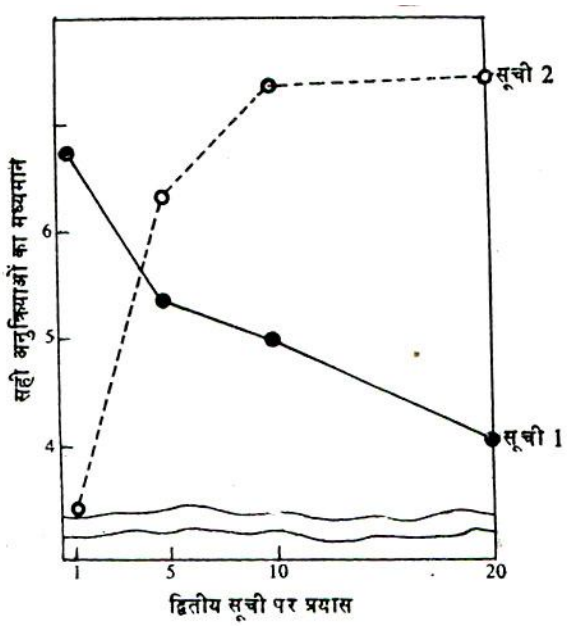

अनुक्रिया सेट व्यक्तिकरण - अपने विवेचन के इस बिन्दु पर पहुंच कर यह प्रतीत होता है कि मैगाश की स्वतंत्रता परिकल्पना त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि पहली सूची के साहचर्य दूसरी सूची के साहचर्य को

सीखते समय दुर्बल होते जाते है। किंतुउपलब्ध प्रमाण अभी पूर्ण रूप से ऐसा विश्वास नहीं उत्पन्न करते है। उदाहरण के लिए मान, लीजिए कि अनसीखा करने का प्रक्रम साहचर्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि इसके बदले एक ऐसी सामान्यीकृत प्रवृति को जन्म देता है जो द्वितीय सूची के अधिगम की अवधि में एक अनुक्रिया सेट के रूप में अर्जित होती है और प्रथम सूची की अनुक्रियाओं का दमन अथवा परिहार करती है। यह भी कल्पना करें कि चयनकारी क्रियातंत्र, जो इस दमन के लिए उत्तरदायी है, 'अकर्मण्यता' का शिकार हो जाता हे, जिसके फलस्वरूप यह दूसरी सूची की प्रशिक्षण समाप्ति के बाद दूसरी सूची की अनुक्रियाओं को चुनने का कार्य कुछ देर के लिए करता रहता है,और इस तरह परिवर्तित मुक्त प्रत्याह्रान परीक्षणों तथा पंरपरागत प्रत्याह्रान-परीक्षणों में प्रथम सूची की अनुक्रियाओं के प्रत्याह्रान को कम कर देता है।ऐसी परिकल्पना का प्रस्ताव सबसे पहले न्यूटन एवं विकेंस ने रखा था और पोस्टमैन, स्टार्क एवं फ्रेजर (1968) ने इसे विशद रूप दिया।

अनुक्रिया-सेट-प्रतियोगिक परिकल्पना को मैकगवर्न (1964) तथा पोस्टमैन एवं स्टार्क (1969) के अध्ययनों से समर्थन मिला है। युग्मित-सहचर-अधिगम के इन दोनों अध्ययनों में दो प्रकार के संचय परीक्षण किये गए। एक तो सामान्य प्रत्याहान परीक्षण था और दूसरा अनुक्रिया प्रत्याहान की आवश्यकता को समाप्त करने के लिए बनाया गया था। यह एक सादृश्यमूलक अथवा चयन परीक्षण था। विविध प्रकार की प्रयोगिक दशाओं में प्रत्याहान और सुमेलन संकृत्यों के बीच तुलना की गई, और ऐसी अधिकांश तुलनाओं में प्रत्याहान और सुमेलन संकृत्यों के बीच तुलना की गई, और ऐसी अधिकांश तुलनाओं में प्रत्याहान परीक्षण की अपेक्षा सादृश्य परीक्षण में पृष्ठोन्मुख अवरोध की मात्रा बहुत थोड़ी पायी गई। वास्तव में कुछ दशाओं में पृष्ठोन्मुख अवरोधक की मात्रा सांख्यिकीय रीति से सार्थक हुई ही नहीं। यदि उद्दीपक अनुक्रिया साहचर्य अनसीखा हो गया है तो सादृश्य संकृत्य निष्पादित ही नहीं हो सकता। अत: परिणामों के प्राप्त प्रतिरूपों से स्पष्ट होता है कि उद्दीपकों और अनुक्रियाओं के संबंध अनसीखे नहीं हुए थे, बल्कि किसी कारण से प्रमाणिक प्रत्याहान दशा में प्रथम सूची की अनुक्रियाएं अनुपलब्ध हो गई थीं।

अनुक्रिया सेट प्रतियोगिता अथवा दमन का लक्षण महत्वपूर्ण होते हुए भी संपूर्ण पृष्ठोन्मुखता की व्याख्या नहीं कर सकता। इसका सर्वोत्म प्रमाण यह है कि अ-ब, अ-ब बार प्रयोग प्रक्रिया में प्रबल पृष्ठोन्मुखता पाई जार्ती है, हालांकि प्रथम और द्वितीय सूचियों के अनुक्रिया सेट बिल्कुल एक रूप होते हैं इस प्रकार अनुक्रिया सेट बिल्कुल एक रूप होते हैं इस प्रकार अनुक्रिया सेट प्रतियोगिता को द्विकारक सिद्धांत का विस्तृत रूप माना जा सकता है, न कि उसका विकल्प।

अंडरवुड (1945) ने बताया है कि एक प्रयोज्य अनुक्रमिक रीति से दो सूचियों का अधिगम करता है, और प्रथम सूची का परीक्षण किया जाता है। प्रयोज्य प्रथम सूची का उपर्युक्त प्रत्याहान जिस सीमा तक कर लेता है, वह सीमा प्रयोज्य द्वारा यह बता सकने की दक्षता का प्रकार्य है कि कौन सी अनुक्रियाएं किस सूची की हैं (यद्यपि सभी आश्यक अनुक्रियाएं बहुत अच्छी तरह उपलब्ध ही क्यों न हो)।

अंडरवुड ने मान लिया कि दोनों सूचियों के प्रभेदन की मात्रा प्रतियोगिता साहचर्यो की पूर्ण अथवा सापेक्षिक प्रबलताओं, और सूची 1 के अधिगम की समाप्ति और संचय-परीक्षण के आरंभ के बीच वाले अंतराल की लंबाई पर निर्भर करेगी। इनमें से अंतिम कारक का अध्ययन डीज एवं मार्डर (1957) द्वारा किया गया है। इस अध्ययन में प्रयोज्यों ने एक अनुक्रम में 12 विशेषणों वाली दो

सचियों का क्रमिक अधिगम किया। इसके बाद 4 मिनट से लेकर 48 घंटे के विलंब के बाद उनका प्रत्याहान परीक्षण किया गया। प्राप्त प्रदत्तों से ज्ञात हुआ कि विलंब अंतराल में वृद्धि हो जाने पर सूचियों में अधिक हस्तक्षेप होता है। संपूर्ण और सापेक्षिक प्रबलता की परिकल्पनाओं का परीक्षण वीनोग्राड (1968) ने किया। 25 शब्दों में बनी अलग-अलग दो सूचियों का अधिगम कर लेने के बाद प्रयोज्यों को सूचियों के 50 शब्दों को मिश्रित क्रम में प्रस्तुत किया गया और प्रयोज्यों को यह बताना पड़ा कि प्रत्येक शब्द किस सूची से लिया गया है। जब सूची 1 और सूची 2 का अभ्यास सामान्य आवृत्ति के साथ किया गया और इस तरह दोनों सूचियों की सापेक्षिक प्रबलताएं लगभग बराबर रहीं तब अभ्यास की मात्रा में वृद्धि होने पर विभेदन की मात्रा में असमानता उत्पन्न कर दी गई (जैसे सूची 1 की एक आवृत्ति, और सूची 2 की तीन पूरावृत्तियां), तब सूचियों के बीच अभ्यास की आवृत्ति में असंतुलन की मात्रा जितनी अधिक थी उतनी ही अधिक मात्रा में विभेदन पाया गया। ये प्रयोग विस्मरण में योगदान देने वाले कारक के रूप में सूची प्रभेदन के महत्व की पुष्टि करते हैं। जैसा कि अनुक्रिया-सेट-दमन के साथ पाया गया। सूची प्रभेद भी व्यक्तिकरण के पारंपरिक द्विकारक सिद्धांत का विशद रूप से प्रस्तुत करता है।

स्वत: पुन:प्राप्ति - अनसीखा कर दिये गए साहचर्यो की स्वत: पुर्नप्राप्ति के घटित होने का अभिग्रह व्यक्तिकरण सिद्धांत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। फलत: अनेक शोधकर्ताओं ने ऐसी पुर्नप्राप्ति के प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त करने की कोशिश की। इस समस्या का एक अन्वेषण कोपेनाल (1963) ने किया। प्रयोज्यों ने अ-ब, अ-द प्रारूप वाले जुड़े सहचरों की दो सूचियों को सीखा। परंतु दूसरी सूची के अधिगम की समाप्ति के बाद संचय-अंतराल की अवधि में अ-द प्रत्याहान का क्या हो जाता है? माना जा सकता है कि अ-द अधिगम के कारण अ-ब के साहचर्य अनोखे हो जाते हैं। इसलिए, यदि स्वत: पुन:प्राप्ति का घटित होना सही है तो संचय अंतराल की अवधि में वृद्धि कर देने पर अ-ब के प्रत्याहान की मात्रा भी बढ़ जानी चाहिए। इस धारणा का परीक्षण करने के लिए बार्नेस एवं अंडरवुड की परिवर्धित मुक्त प्रत्याहान तकनीक का उपयोग किया गया। ब और द अनुक्रियाओं के प्रत्याहान के लिए प्रयोज्यों का परीक्षण किया गया। ये परीक्षण विधि संचय अंतरालों के बाद किये गए। ये संचय अंतराल 1 मिनट से लेकर 1 सप्ताह की अवधि वाले थे।

ऐसी आंशका है कि स्वत: पुन:प्राप्ति की परिकल्पना के सत्य होने पर भी निष्पादन को क्षीण करने वाले दूसरे कारकों के द्वारा स्वत: पुन:प्राप्ति आच्छादित हो सकती है। इन कारकों में एक यह हो सकता है कि संचय की अवधि में प्रयोग के बाहर सीख ली जाने वाली बात। इस संभावना को नियंत्रित करने के उद्देश्य से एक दूसरे समूह का भी परीक्षण किया गया। उस समूह ने मात्र अ-ब का अधिगम किया और उसका परीक्षण भी उन्हीं संचय अंतरालों पर किया गया। चित्र 12.7 में प्राप्त प्रदत्तों को दिखाया गया है। ध्यान दें, कि अ-ब साहचर्यो की पूर्ण पुन:प्राप्ति का कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि पहली सूची के पदों का प्रत्याहान समय के साथ ऊपर की ओर नहीं उठ रहा है। इसके विपरीत पहली और दूसरी सूचियों की सापेक्षिक पुन:प्राप्ति पर भी अर्थ में ध्यान दें, कि इन दोनों की प्रत्याहानं वक्रों के विभिन्न ढलान हैं और साथ ही साथ एक दूसरे के उपर नीचे भी हो जाते हैं, किंतु यह सापेक्षिक पुन:प्राप्ति बहुत सैद्धांतिक महत्व की नहीं है। पूर्ण पुन:प्राप्ति की विश्वसनीय मात्राएं पाने में दूसरे अन्वेषक भी असफल रहे हैं। दूसरी और पोस्टमैन, स्टार्क एवं फ्रेजर (1968) ने 2, 8 और 20 मिनट के संचय-अंतरालों का उपयोग कर पूर्ण पुन:प्राप्ति का प्रदर्शन किया है। एल्वस्ट्रैंड (1967) ने भी निद्रा और जागृति की अवधि में संचय के अध्ययन में निद्रा की अवधि में अ-ब अनुक्रियाओं की

पूर्ण पुन:प्राप्ति के लिए साक्ष्य की प्राप्ति की है। इस प्रकार, हालांकि स्वत: पुन:प्राप्ति के प्रमाण पूर्णत: स्पष्ट नहीं हैं, फिर भी ऐसी कुछ स्थितियां प्राप्त होती हैं जिनमें स्वत: पुन:प्राप्ति देखी जा सकती है।

15.6 बोध प्रश्न

1- विस्मरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्या है?

2- मेगाश के व्यक्तिकरण सिद्धान्त के कौनसे रूप का प्रतिपादन किया है?

15.7 सारांश (Summary)

लोग प्राचीन उद्दीपकों के प्रति केवल नई अनुक्रियाएं करना सीखते हैं, और ये अनुक्रियाएं प्राचीन अनुक्रियाओं की तुलना में अधिक प्रायिकता से घटित होती हैं। ऐसा लगता है कि मूल उद्दीपक अनुक्रिया साहचर्य दुर्बल हो जाते हैं, जिसके कारण उनका प्रत्याहान कठिन हो जाता है।

15.7 अभ्यास प्रश्न

1- पृष्ठोन्मुख अवरोध किसे कहते हैं?

2- पृष्ठोन्मुख अवरोध के स्वरूप व सिद्धान्त लिखिए।

3- पृष्ठोन्मुख सिद्धांत में द्वि-कारक सिद्धान्त को बताइए।

15.8 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- प्रो. त्रिपाठी, लाल, बच्चन, गोरखपुर, विश्वविद्यालय, अधिगम का मनोविज्ञान, आटा मेक्ग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली
- प्रो. सिंह अरूण कुमार (पटना) विश्वविद्यालय/उच्चतर मनोविज्ञान पब्लिशिंग मोतीलाल बनारसी दास
- Chifford Morgan, Richard a King, Johnrweis Publishing House, Tata macrohill, New Delhi
- वर्मा प्रीति, डॉ. श्री वास्तव डी.एन., आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

इकाई - 16

चिन्तन की प्रकृति एवं प्रकार, चिन्तन में वृत्ति या तत्परता का महत्व, भाषा एवं चिन्तन

Nature and types of thinking, Role of set in thinking, language and thinking

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 चिन्तन की प्रकृति एवं परिभाषा

16.4 चिन्तन में प्रयत्न एवं त्रुटि का महत्व

16.5 चिन्तन में प्रतिमा का महत्व

16.6 चिन्तन के प्रकार

16.7 चिन्तन में वृत्ति या तत्परता का महत्व

16.9 सारांश

16.10 निबंधात्मक प्रश्न

16.11 संदर्भग्रंथ

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है तो सभी प्राशियों में पायी जाती है। यह संज्ञा में सर्वोच्च स्थान पर है।

प्रस्तुत इकाई में आप चिन्तन की प्रकृति, परिभाषा, प्रकार, चिन्तन में वृत्ति का महत्व, चिन्तन में भाषा का महत्व आदि पर विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्देश्य (Objective)

- संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को किस रूप में परिभाषित किया है।
- चिन्तन का अर्थ जानना।
- चिन्तन के विभिन्न प्रकार जानना।
- चिन्तन में तत्परता के महत्व को जानना।
- चिन्तन में भाषा के महत्व को जानना।

16.3 चिन्तन की प्रकृति एवं परिभाषा (Nature & Defination of Thinking)

चिन्तन वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा विरायि अमृत चिन्तन, तर्क, कल्पना एवं समस्या समाधान आदि जटिल मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त सूचनाओं को परिवर्तित कर नया मानसिक प्रतिधित्व स्थापित किया जाता है। चिन्तन के संबंधमें तीन प्रमुख तथ्य है -

- वह संज्ञानात्मक प्रक्रिया जो मस्तिष्क में आन्तरिक रूप से उत्पन्न होती है किन्तु जिसका अनुमान बाह्य व्यवहार से होता है।
- वातावरण से मिलनेवाली सूचनाओं का मानसिक जोड तोड है।
- चिन्तन, समस्या समाधान की ओर दिशा निर्देशित होता है।

इंग्लिश एवं इंग्लिश English & English के अनुसार - ''चिन्तन एक ऐसी प्रक्रिया का कार्यवाही है, तो मुख्यत: प्रत्याक्षात्मक नहीं है और जिसके माध्यम से व्यक्ति किसकी वस्तु अथवा परिस्थिति के किसी पक्ष को समझता है। 2 चिन्तन का अर्थ समस्या समाधान है जिसमें मुख्यत: विचार निहित है, न कि प्रत्यक्ष क्रिया और प्रकार हस्त व्यापार। 3 तीसरे अर्थ में चिन्तन का अर्थ किसी समस्या के निहित संबंधोंको समझने के लिये मनन और विचार करना है। 4 एक अन्य अर्थ में यह आन्तरिक और यूक काशी व्यवहार है। इस परिभाषा में चिन्तन के सभी पक्षों को सम्मिलित किया गया है।

गैरेट (Garret 1961) ने अपनी पुस्तक, सामान्य मनोविज्ञान में चिन्तन के केवल चौथे अर्थ को लिया है। उनके अनुसार चिन्तन एक ऐसा आन्तरिक व्यवहार है जिसमें वस्तुओं और विचारों के लिये प्रतीत प्रयुक्त होते है।''

वारेन (Warren) के अनुसार चिन्तन एक विचारात्मक क्रिया है जिसका स्वरूप प्रतीकारात्मक है इसका प्रारंभ व्यक्ति के समक्ष उपस्थित किसी समस्या या कार्य से होता है, इसमें कुछ मात्रा में

प्रयत्न सन्निहित होता है। किन्तु यह चिन्तन इस समस्या के प्रत्यक्ष प्रभाव में होता है और यह अन्तिम रूप से समस्या सुलझाने या उसके निष्कष की ओर ले जाता है। कॉलिन्स तथा ड्रीवर ने चिन्तन की परिभाषा परिस्थिति के प्रति प्राशी के चिन्तन अभियोजन के रूप में ही है। वुडवर्थ के अनुसार ''चिन्तन के दो मुख्य लक्ष्य अनुसंधान और आविष्कार हैं। यह सत्य की खोज करता है और कोई अच्छी वस्तु का सूत्रवात करने का प्रयत्न करता है। तर्क का मानसिक, अन्वेषण के रूप में और कल्पना का मानसिक हस्तव्यापार के रूप में बर्शान किया जा सकता है। कागन तथा हैभमैन (Kagan & Hareman, 1976) ने चिन्तन की सर्वोत्तम परिभाषा की है। आपके अनुसार ''प्रतिभाओं, प्रतीकों, संप्रत्ययों नियमों एवं अन्य मध्यस्थ इकाइयों के मानसिक जोड-तोड़ को चिन्तन कहा जाता है। सिलवरमैन (Silerman, 1978) ने चिन्तन को परिभाषित करते हुये लिखा, ''चिन्तन एवं ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो हम लोगों को उद्दीपक तथा घटनाओं के प्रतीकात्मक प्रतिनिधत्व द्वारा किसी समस्या का समाधान करने में मदद करती है। बेरोन (Bar-on, 1992) के अनुसार, ''चिन्तन में संप्रत्ययों प्रतिज्ञाप्ति तथा प्रतिमाओं का मानसिक जोड तोड होता है। उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर चिन्तन प्रक्रिया के संबंधमें निम्न तथ्य प्राप्त होते है -

1 चिन्तन में प्रतिमाओं के प्रतिभाओं आदि का मानसिक जोड तोड होता है अर्थात चिन्तन के वस्तुओं की वास्तविक उपस्थिती आवश्यक नहीं होती। व्यक्ति पूर्व अनुभव के आधार पर मन में वस्तुओं के प्रतीक बनता है, उसी के आधार पर चिन्तन प्रक्रिया होती है। चिन्तन एक प्रकार का अप्रकट व्यवहार है। क्योंकि मानसिक जोड तोड बाहर से दिखाई नही देता है।

2 चिन्तन एक मध्यस्थ प्रक्रिया है अर्थात् चिन्तन एक ऐसी प्रक्रिया जो उद्दीपक तथा उसकेप्रति की गयी अनुक्रिया के मध्य होती है। चिन्तन में किसी न किसी समस्या के समाधान होता है। उपरोक्त वर्णित तथ्य चिन्तन के स्वरूप पर प्रकाश डालते है किन्तु उससे संबंधितनिष्कर्षों पर ध्यान देना आवश्यक है। हम्फ्रे (Hmprey, 1963) ने चिन्तन पर व्यक्त किये गये अनेको मनोवेज्ञानिकों ने विचारों से निम्न निष्कर्ष प्राप्त किये -

1 चिन्तन प्रक्रिया का प्रारंभ उस समय होता है जब मनुष्य या पशु के समक्ष कोई ऐसी समस्या आती है जिसका वह समाधान करना चाहता है। समस्या से अर्थ ऐसी परिस्थिति से है जिसमें जीव को लक्ष्य पर पहुंचने का रास्ता दिखाई नहीं देता।

3 चिन्तन मे पूर्वअनुभूति सम्मिलित होती है।

4 चिन्तन का उद्देश्य समस्या समाधान है।

जीव समस्या समाधान का बार बार प्रयास करता है तथा कुट त्रुटियां करता है। इसमें गलत अनुक्रियाओं को हम छोड़ते है तथा सही अनुक्रियाएं का अपनाते है। अत: चिन्तन भी प्रक्रियया में प्रयत्न एवं भूल की प्रक्रिया होती है।

(iii) चिन्तन में अभिप्रेरणा का भी विशिष्ट महत्व होता है। वास्तविकता में व्यक्ति का व्यवहार एक निश्चित उद्देश्य की ओर होता है। वेटेकर के अनुसार, ''सभी चिन्तन लक्ष्य निर्देशित होते है।

(iv) चिन्तन में भाषा भी महत्वपूर्ण है। चिन्तन करते समय हम भाषा का प्रयोग करते है। मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन में एक प्रकार का आन्तरिक संभाषण कहा है।

(v) चिन्तन में प्रतिमाओं का भी प्रयोग होता है। दृष्टि एवं श्रवशा प्रतिमा चिन्तन में अन्य प्रतिमाओं की तुलना में अधिक होती ह।

हम्फ्रे (Hamphery 1963) द्वारा प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त तथ्यों से चिन्तन का हर पहलू स्पष्ट हो जाता है। चिन्तन में प्रयत्न एवं त्रृटि का महत्व (Role of Trial and error in Thinking) समस्या के समाधान में प्रयत्न एवं त्रृटि का अधिक महत्व है। इस प्रत्यय का सर्वप्रथम प्रयोग लायड मार्गन ने 1894 में किया। इससे उत्पन्न तात्पर्य पशु के उस व्यवहार के या जिसमें पशु कारगार तथा परिणाम संबंधों को बिना समझे ही किसी समस्या का समाधान करने की कोशिश करता था। थार्नडाइक में प्रयोगों से इस अवधारणा को स्पष्ट समर्थन मिलता है। थार्नडाईन के प्रयोग में बिल्ली द्वारा भिन्न भिन्न प्रयायों मं उछल कूद की क्रियाऐं करता प्रयत्न एवं त्रुटि का उदाहरण है। मानव प्रयोज्यों पर किये गये प्रयोगों के परिणाम मार्नडाइन के परिणाम के समाप्त थे। रूजर (Ruser, 1910) ने हृदय एवं धनुष नाम एक पहेली का प्रयोग किया। इसमें धनुष की आकृति में हृदय की आकृति से अलग करता था। प्रयोव्य द्वारा किये गये सभी प्रयासों में की गयी अनुक्रियाओं का विश्लेषण करते हुए रूजर ने कहा कि मनुष्य की समस्या समाधान मे प्रयत्न एवं त्रृटि का व्यवहार करते हैं। कोहलर में सुल्तान नाम वनमानुष पर किये गये प्रयोग का विश्लेषण करते हुये कोलहर ने कहा कि सुल्तान ने प्रयत्न एवं त्रुटि का सहारा न लेकर अन्र्तदृष्टि का सहारा लिया किन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो कोहलर ने सुल्तान द्वारा भी समस्या के समाधान में प्रयत्न से त्रृटि का सहारा लिया गया। अत: मनुष्य या पशु किसी भी समस्या के समाधान में प्रयत्न एवं त्रुटि का सहारा लेते हैं। किन्तु मनुष्यों में प्रयत्न व त्रुटि व्यवहार पशुओं की अपेक्षा कम होता है।

16.5 चिन्तन में प्रतिमा का महत्व (Importance of Model in Thinking)

निरीक्षणावादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चिन्तन में प्रतिभा का होना आवश्यक है। जब हम समस्या का समाधान करते है तो गत अनुभूति प्रतिमा के रूप आकर उस समाधान में सहायता करती है। गत अनुभूतियों की कुछ खास खास विशेषताओं को जब हम मानसिक रूप से अलग करने मे समर्य हो जाते हैं तो इसे प्रतिमा कहते है।

चिन्तन के प्रतिमा के महत्व पर कई प्रयोग किये गये हे प्रतिमा के अभाव में चिन्तन की प्रक्रिया स्पष्ट नहीं हो जाती। कुछ प्रयोगों के विपरित परिणाम भी पाये गये है जिनमें अवलोकित किया गया कि चिन्तन के प्रतिभा का कोई स्थान नहीं होता है। इस विचार को प्रतिमहीना चिन्तन की संज्ञा दी गयी। बुष्ट एवं टिचनर ने अपने प्रयोगों के आधार पर स्पष्ट किया कि चिन्तन के प्रतिभा का काफी महत्व होता है। उन्होंने अन्र्तनिरीक्षण विधि का प्रयोग करते हुये चेतन अनुभूमियों का अवलोकन किया। इससे विपरित कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों में पाया कि चिन्तन की प्रकिया का विश्लेषण करने में प्रतिमा का कोई सबूत नहीं मिला। इसके फलस्वरूप प्रतिमाहीत चिन्तन विवाद का जन्म हुआ। इस विवाद पर उर्जवर्ग सम्प्रदाय के सदस्यों कुल्पे मार्वे, बार, तथा बुहलर ने अध्ययन किया। अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों से उन्होंने स्पष्ट किया कि चिन्तन में न कोई संवेदना होती है और न ही कोई प्रतिमा। इस प्रकार चिन्तन में प्रतिमा के महत्व के संबंधमें कहा जा सकता है कि कभी कभी चिन्तन में प्रतिमा होती है तथा कभी कभी यह प्रतिमाविहीन होता है। पहले प्रकार के चिन्तन को मूर्त व दूसरे प्रकार के चिन्तन को अमूर्त चिन्तन कहा जाता है।

16.6 चिन्तन के प्रकार (Types of Thinking)

मनोवैज्ञानिकों द्वारा चिन्तन को कई मांगों में विभक्त कर अध्ययन किया गया है। जिम्बार्डो तथा रूच (Zimbardh & Ruch, 1977) ने चिन्तन के प्रमुख दो प्रकार बताये है जो निम्न है -

1- स्वली चिन्तन
2- स्वली यर्थाथवादी चिन्तन

इस विवरण इस प्रकार है -

1 स्वली चिन्तन - यह वह चिन्तन है जिसमें व्यक्ति अपने काल्पनिक विचारों एवं इच्छाओं की अभिव्यकित करता है। स्वप्न (dream) स्वप्न चित्र तथा अभिलाषा आदि स्वली चिन्तन के उदाहरण है। एक ग्वाला जिसके पास एक गाय है व एक गाय का दूध बेचकर यह कल्पना करता है कि इस दूध को बेचकर जो पैसे प्राप्त होंगे उनसे वह और गायें खरीदेगा। तब उसकी बहुत बडी डेरी होगी। एक सुन्दर बंगला होगा एक चमचमाती कार होगी तो यह स्वली चिन्तन का उदाहरण होगा। इस चिन्तन में किसी समस्या का समाधान नहीं होता।

2 यर्थाथवादी चिन्तन - यह वह चिन्तन है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है तथा इसकी सहायता से व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करता है। उदाहणार्थ एक व्यक्ति जो कार से सफर कर रहा है और रास्ते में खराब हो जाती है जतब ऐसी समस्या उत्पन्न होने की स्थिति में व्यक्ति तरह तरह की बातें सोचना प्रारंभ कर देता है। जैसे कार में कहीं पट्रोल खत्म न हो गया हो। कार का इंजन खराब न हो आदि। यह चिन्तन यर्थातवादी चिन्तक का उदाहरण है।

यर्थाथवादी चिन्तन के तीन भागों में बांटा गया है -

1 **अभिसारी चिन्तन** - इसको निगमात्मक भी कहते है। इस चिन्तन में व्यक्ति दिये गये तथ्यों के आधार पर सही निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास करता है। यदि यह प्रश्न पूछा जाए कि 5 को 2 से गुणा करने पर क्या उत्तर आयेगा तो इस उत्तर प्रदान करने में निहित चिन्तन अभिचारी चिन्तन है। इस प्रकार इस तरह से चिन्तन में व्यक्ति अपनी जिन्दगी के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में प्राप्त अनुभवों को एक साथ मिलाकर उसके आधार पर एक समाधान खोजता है।

2 **सृजनात्मक चिन्तन -** इस चिन्तन को आगमगात्मक चिन्तन कहा जाता है। इसनमें व्यक्ति दिये गये तथ्यों में नया तथ्य जोड़कर निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है जब तक व्यक्ति इस नये तथ्य का सृजन नहीं करता समस्या का समाधान नहीं होता। यदि व्यक्ति को किसी वस्तु के असाधारण उपयोग ततलाने को कहा जाए तो और वह व्यक्ति चिन्तन करते कुछ अवधारणा बनना उस वस्तु के उपयोग के बारे में आयेगा। इस तरह की चिन्तन को सृजनात्मक चिन्तन कहा जाता है।

3 **आलोचनात्मक चिन्तन** - इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या तथ्य को सच्चाई को स्वीकार करने के पहले उसके गुण दोष की परख कर लेता है। हमारे समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो किसी घटना या वस्तु के बारे में जो कुछ भी कहा जाए उसे सही मान लेते है। तब यह कहा जाता है कि ऐसे व्यक्ति में आलोचनात्मक चिन्तक की शक्ति कम है। इसके विपरित कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो किसी घटना या वस्तु के बारे में कहने पर उसमें गुण दोष परखते है तब उसे सही या गलत मानते हैं। व्यक्ति में इस प्रकार के चिन्तन को आलोचनात्मक चिन्तन कहा जाता है।

उपरोक्त सूभी प्रकारों में अभसारी चिन्तन तथा सृर्जनात्मक चिन्तन पर मनोवैज्ञानिकों ने अधिक बल दिया है।

16.7 चिन्तन में वृत्ति या तत्परता का महत्व

मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन की समस्या समाधान व्यहवहार के मानसिक तत्परता भूमिका का गहन अध्ययन किया है। मानसिक तत्परता से तात्पर्य प्राणी की उस मानसिक स्थिति से है जिसकी सहायता से वह समस्या समाधान करने का प्रयास करता है। व्यक्ति द्वारा समस्या का समाधान करने के लिये की गयी अनुक्रिश्या के पूर्व वह मानसिक तैयारी करता है कि किस प्रकार की अनुक्रिया करेगा। इसे मानसिक तत्परता कहा जाता है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस क्षेत्र में किये गये विभिन्न प्रयोगों से यह स्थापित होता है कि तत्परता से समसया समाधान में सहायता प्राप्त होती है। तथा व्यवहार श्या बाधा भी पहुचती है। अत: इन दोनों प्रभावों का अध्ययन करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोज्यों के तत्परता को दो प्रकार से प्रभावित कर प्रयोग किये। पहले प्रकार के प्रयोगों में प्रयोज्यों को जब खास निर्देश प्रदान करने उसमें तत्परात को प्रभावित करने का प्रयास किया। तथा दूसरे प्रकार के प्रयोगों में प्रयोज्यों की पूर्व अनुभतियों को विभगित कर उसके तत्परता को प्रभावित करने का प्रयास किया। पहले प्रकार में ऐसे प्रयोग किये गये

जिनसे यह अवलोकित किया गया कि तत्परता से किसी समस्या का समाधान में किस प्रकार सहायता मिलती है। तत्परता के इस प्रकार को लाभकारी प्रभाव कहा जाता है। दूसरे प्रकार के प्रयोगों में वे प्रयोग सम्मिलित थे जिनमें तत्परता विशेषकर गलत तत्परता से समस्या समाधान में किस प्रकार बाधा पहुंचती है या समाधान विलम्बित हो जाता है। आदि का अध्ययन किया गया। इसे मनोवैज्ञानिकों ने अगुराकारी प्रभाव भी कहा है। दोनों तरह के प्रभाव इस प्रकार है -

1- **समस्या समाधान में तत्परता का लाभकारी प्रभाव** - जब किसी समस्या में हम सही तत्परता विकसित करते हैं तो इससे उस समस्या का समाधान यह हल जल्दी कर लिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा तत्परता के इस लाभकारी प्रभाव का अध्ययन कई प्रयोगों द्वारा किया गया। मायर का प्रयोग अति महत्वपूर्ण है। मायर द्वारा किये गये प्रयोगों में 3 प्रयोग महत्वपूर्ण है। इन तीन प्रयोगों द्वारा उन्होने यह स्पष्ट किया कि तत्परता को किस प्रकार शब्दिक निर्देश से प्रभावित किया जा सकता है। जिससे व्यक्ति को समस्या समाधान में सहायता प्राप्त होती है उनके प्रयोग इस प्रकार है -

2- **1 पेण्डुलम समस्या पर प्रयोग** - इस प्रयोग को कॉलेज छात्रों पर किया गया। छात्रों को पेण्डुलम बनाना था इसके लिये उन्हें एक एक कमरे में बुलाया जाता है। इस कमरे में बहुत सारी सामग्रियां जैसे छोटी लग्गी, बडी लग्गी, बिजली का तार, शिंकजा , खल्ली, आदि बिखरे थे। इन सभी सामग्रियों की आवश्यकता दो दोलक बनाने में नीं थी, परन्तु प्रयोज्यों को यह बताया नहीं गया था। इस प्रयोग में प्रयाज्य को दो दोलक इस प्रकार बनाने थे कि प्रत्येक दालेक एक निश्चित स्थल पर भूले। इस समस्या के तीन आंशिक प्रदर्शक थे जिन्हें सम्मिलित करने पर समस्या का समाधान सरल हो जाता है। मायर ने प्रयोज्यों को एक निश्चित शाब्दिक निर्देश् भी दिया जो समसया का साधान आसान करने के लिए प्रयोज्यों में तत्परता उत्पन्न करता था। इस प्रयोग के लिए प्रयाज्यों में तत्परता उत्पन्न करता है । इस प्रयोग के पांच समूह इस प्रकार थे -

समूह 1 - सिर्फ समस्या दी गयी।

समूह 2 समस्या के सात अंक्ष प्रदर्शन दिया गया। किन्तु प्रयोज्यों को यह भी बतराया गया कि इस तरह के प्रदर्शन इसे समस्या का समाधान हनीं होगा।

समूह 3 - समस्या के अलावा अंश प्रदर्शन यह बताकर दिया कि इससे समस्या समाधान करने में सहायता प्राप्त होगी।

समूह 4 - इसे समस्या के अलावा निश्चित शाब्दिक निर्देश दिया गया।

समूह 5 - इसे समस्या, शाब्दिक, निर्देश तथा अंश प्रदर्शन यह बताकर दिया गया यदि इन प्रदर्शनों को संयोजित कर लिया जाय तो इसके समस्या के समाधान में बहुत मदद या सहायता मिलेगी।

इस प्रयोग के परिराम इस प्रका थे। प्रथम चार जिसमे ंकुल 62 प्रयोज्य सम्मिलित किये गये थे, केवल एक प्रयोज्य ने समस्या का समाधान निर्धारित समय से किया।

पांचवे समूह में 22 प्रयोज्य सम्मिलित थे तथा 8 ने समस्या का समाधान किया। प्रयोग से प्रात परिणाम के आधार पर मायर ने निष्कर्ष के रूप में स्पष्ट किया कि प्रयोज्य को समस्या के समाधान के लिये सिर्फ अंश प्रदर्शन की ही आवश्यकता नहीं थी। बल्कि एक रगस प्रकार की तत्परता की भी आवश्यकता थी और यह तत्परता प्रयोज्य में एक विशेष निश्चित निर्देश देने से उत्पन्न की गयी। पांचवे समूह के अधिकतर प्रयोज्यों ने समस्या का सही समाधान इसी करण किया। जो प्रयोज्य असफल रहे उनमे ंगलत तत्परता उत्पन्न हो गयी।

2 रस्सी बांधने की समस्या पर प्रयोग - मायर 1930 द्वारा किया गया यह दूसरा प्रयोग था। उन्होंने यह प्रयोग भी कॉलेज छात्रों पर किया। इस प्रयोग द्वारा यह दिखलाया गया कि किसी समस्या का समाधान करते समय, शाब्दिक तथा अशाब्दिक संकेत प्रयोज्य में विशेष तत्परता उत्पन्न करते हैं जिनसे समस्या का समाधान में सहायता मिलती है। प्रयोज्यों को बारी बारी से कमरे में लाया गया जिसकी छत में दो तरह की रस्सी लटक रही थी। रस्सी बहुत छोटी थी व उन्हें काफी दूरी पर लटकाया गया था जिससे प्रयोज्य के लिये एक साथ दोनों रस्सी छूना मुश्किल था। समस्या यह थी कि प्रयोज्य को दोनों रस्सियों को एक दूसरे से बांधना था। कमरे में बहुत सारी सामग्रियां रखे गये थे किन्तु उन सबकी आवश्यकता इस समस्या के समाधान के लिये नहीं थी। इस समस्या के कई समाधान थे परन्तु मायर एक निश्चित समाधान चाहते थे उनकी अपेक्षाकृत प्रयोज्य किसी एक रस्सी के लटकते छोर पर कोई भारी चीज बांधे (जो कमरे में है) और वह दोलक के समान झूलने लगे जिससे झूलते झूलते वह दूसरी रस्सी की ओर अधिकतम दूरी पर पहुंच जाये और प्रयोज्य उसे दूसरी लटकती रस्सी के अन्तिम छोर से बांध दें । प्रत्येक प्रयोज्य को समस्या के समाधान के लिये 10 सैकेण्ड दिये जाते थे। कुछ प्रयोज्यों ने इस समय के भीतर निश्चित समाधान कर लिया परन्तु कुछ प्रयोज्य असफल रहे। असफल रहने पर मायर ने दो तरह के सकेत दिय। परिणाम से ज्ञात होता है कि बिना संकेत के 39 प्रतिशत प्रयोज्यों ने समस्या समाधान किया। संकेत देने के बाद 38 प्रतिशत प्रयोज्यों ने समस्या समाधान किया तथा बचे हुए 23 प्रतिशत प्रयोज्य असल रहे। मायर ने प्राप्त परिणाम के आधार पर यह निष्कर्ष दिया संकेत देने से प्रयोज्य में विशेष तत्परता उत्पन्न होती है। जो समस्या के समाधान में सहायता प्रदान करती है। इसीलिए 38 प्रतिशत प्रयोज्यों पर तत्परता का सकारात्मक प्रभाव पाया जाता है।

3 मायर का तीसरा प्रयोग - मायर का यह तीसरा प्रयोग पहले किये गये दो प्रयोगों में पाये गये विशेष प्रेक्षण पर आधारित था। मायर ने पहले किये गये दो प्रयोगों में पाया कि कुछ प्रयोज्यों द्वारा समस्या का समाधान करने में असफलता का कारण था कि उनमें गलत तत्परता विकसित हुई। तीसरा प्रयोग मायन ने इसी उद्देश्य (Objective) की पूर्ति

के लिये किया। इस प्रयोग में प्रयोज्यों को दो समूहों में विभाजित किया गया। प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह में दोनों समूहों के प्रयोज्यों को अलग अलग तीन समरूप समस्या का समाधान करने के लिए कहा गया। प्रयोगात्मक समूह कोसमस्या का समाधान प्रारंभ करने के पहले 20 मिनट का एक भाषण दिया गया जिसमें इस बात पर विशेष बल दिया गया कि समस्या समाधान में जब गलत तत्परता विकसित हो जाता है तो इसे बदलकर इसकी जगह पर दूसरी तत्परात विकसित की जा सकती है ताकि समस्या का समाधान आसानी से हो सके। परिणाम में यह देखा गया कि प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह द्वारा तीनों समस्याओं के सही समाधान के प्रतिशत में अधिक अन्तर नहीं पाया गया। किन्तु प्रयोगात्मक समूह के सही समाधान का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक था। अत: मायर ने इस निष्कर्ष को कि, यदि गलत तत्पता की जगह सयही तत्परता विकसित हो जाती है, तो इसके समस्या के समाधान मे काफी सहायता मिलती है, बल मिलता है।

मायर ने अतिरिक्त तत्परात के लाभकारी प्रभाव को दर्शाने के लिये हाश्लों, 1951 जॉनसन, 1944 आदि के द्वारा किये गये प्रयोग मायर ने निष्कर्ष की प्रयोगात्मक पुष्टि करते है। अर्थात् इन सभी प्रयोगों के निष्कर्ष समान थे। अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि तत्परता के होने पर समस्या कि सही तत्परता के होने पर समस्या समाधान में सहायता मिलती है।

2 समस्या समाधान में वृत्ति या तत्परता का हानिकारक प्रभाव - तत्परात से समस्या समाधान में कभी कमी बाधा भी पहुंचती है। मायर ने इस संबंधमें प्रयोग किये मायन के प्रयोगों से निष्कर्ष का संकेत मिलता है कि अनुचित तत्परता किसी समस्या के समाधान करने में जब विकसित हो जाता है तो इससे समस्या के समाधान मे बाधा पहुंचती है। वृत्ति के इस हानिकारक प्रभाव का अध्ययन करने के लिये मनोवैज्ञानिकों द्वारा अलग प्रयोग किये गये? जिससे प्रयोज्यों की गत अनुभूतियां को नियंत्रित करके तत्परता के हानिकारक प्रभाव का अध्ययन किया गया। डंकर 1945 ने गलत तत्परता के इस अंध प्रभाव को जिसके कारण व्यक्ति उपस्थित समस्या का समाधान नहीं कर पाता है। क्रियात्मक अटलता या स्थिरता कहा। इसमें व्यक्ति नयी समस्या का समाधान करने में एक तरह से क्रियात्मक रूप से स्थिर हो जाता है। वह बार बार एक ही अनुक्रिया करता रहता है। जिससे वर्तमान समस्या का समाधान नहीं हो पता। वृत्ति के हानिकारक प्रभाव को दिखने के लिये लुचिन्स का प्रयोग महत्वपूर्ण है। लूचिन्स 1942 ने अनेक प्रयोग पानी का घडा समस्या पर किये। उनके एक प्रमुख प्रयोग में प्रयोज्यों को काल्पनिक रूप से तीन पानी के घडे (A, B, C) दिये गये। ये तीनों अलग अलग माप के घड़े है प्रत्येक घड़े में कुछ पानी था तथा इन्हीं तीन घड़ों की सहायता से एक घडे से दूसरे घडे में बदलकर पानी का एक खास स्तर लाना होत है । इस तरह की कुल नौ

समस्याएं है जिन्हें एक एक करके प्रयोज्य को दिया गया। प्रथम अभ्यास समस्या को छोडकर इन सभी समस्याओं का विस्तृत स्वरूप निम्न है -

	A	B	C	घडे में वांछित पानी का स्तर
समस्या सं. 2	21	127	3	100
समस्या सं. 3	14	163	25	99
समस्या सं. 4	18	43	10	5
समस्या सं. 5	9	42	6	21
समस्या सं. 6	20	59	4	31
समस्या सं. 7	23	49	3	20
समस्या सं. 8	15	39	3	18
समस्या सं. 9	289	76	3	25

उर्पयुक्त समस्याओं को देखने से मालूम होता है कि समस्या संख्या 2 से 6 तक समाधान का सूत्र b-a-2cहो सकता है अर्थात घडा को पूर्णात: दी गयी इकाई की मात्रा में भरकर उसमें से aघड़ा से ही cघडा की इकाई बराबर पानी पानी बार निकाल लेने से सबसे बडे घड़े b बराबर पानी बार बार निकाल लेने से सबसे बडे घडे b मे निदिष्ट पानी की मात्रा प्राप्त होगी। इस प्रकार 127(b) – 21(a) – 2x3 (2x) = 100 समस्या संख्या 7 d 8 का समाधान भी इसी सूत्र से किया जा सकता है किन्तु इसमें समाधान का एक आसन तरीका और है जो इस प्रकार a-c अर्थात् इसमें हम b घडा को बिना छोडे वांछित पानी का स्तर प्राप्त कर सकते है। समस्या सं 9 का समाधान सिर्फ एक लघु विधि (अर्थात 28-3) से ही प्राप्त किया जा सकता है अन्य किसी विधि से इस समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता।

इस प्रयोग में प्रयोज्यों के कई समूह थे जिन्हें मल रूप से दो भागों में बांटा गया - नियंत्रित समूह तथा प्रयोगात्मक समूह। पहली समस्या - अभ्यास समस्या थी अत: इसका समाधान दोनों समूहों ने किया। इसके बाद नियंत्रित समूह को हटा दिया गया व प्रयोगात्मक समूह ने

समस्या सं 2 से 6 तक समाधान कया। इसके बाद नियंत्रित समूह को वापिस बुला लिया गया तथा दोनों समूहों को अलग अगल स्थानों, 7,8 व 9 दिया गया।

समस्या 7 व 8 का समाधान पहले से विधि अर्थात जिस विधि से किया था। तथा अन्य विधि द्वारा भी किया ज सकता था। समस्या a का समाधान पहले की विधि समस्या 1 से 6 तक हल करने की विधि से संभव नहीं था। इसका समाधान नई विधि से हो सकता था। परिणाम में यह देखा गया कि प्रयोगात्मक समूों के 70 से 100 प्रयोज्यों ने समस्या संख्या 7 और 8 का समाधान पुरानी विधि से किया। यह इसलिये हुआ क्योंकि समस्या संख्या 1 से 6 तक का समाधान करने से प्रयोगात्मक समूह के प्रयोज्यों में एक खास तत्परता उत्पन्न हो गयी थी। नियंत्रित समूह मे किसी भी प्रयोज्य ने समसया संख्या 7 व 8 के समाधान में पुरानी विधि जिसका अनुभव उन्हें समस्या संख्या 1 के समाधान में हुआं का प्रयोग नहीं किया। समस्या संख्या 9 के समाधान करने में प्रयोगात्मक समूह के अधिकतर प्रयोज्य नियंत्रित समूह की तुलना में असफल रहे जबकि इस समस्या का समाधान कम समय में आसानी से किया जा सकता था। लूचिन्स के इस परिणाम से स्पष्ट है कि समस्या का समाधान करने से उत्पन्न तत्परता हमेशा बाद की समस्या के समाधान में सहाता नहीं होती। इसी कारण प्रयोगात्मक समूह के अधिकतर सदस्य समस्या संख्या a का समाधान करने में असफल रहे। इन सदस्यों में समस्या 1 से 8 तक एक ही विधि से समाधान करने की तत्परता उत्पन्न हो गयी थी। जो समस्या संख्या 9 के समाधान के लिये अनुपयोगी थी। इस प्रकार लुचिन्स ने इस तथा का प्रयोगिक प्रदर्शन किया कि सेट के प्रभाव के कारण व्यक्ति समस्या समाधान में किस प्रकार प्रत्यक्षपरक स्थिरता उत्पन्न कर लेता है।

रीज तथा इजेरेल 1935 के प्रयोग ने भी तत्परता के अंध प्रभाव पर प्रकाश डाला। समस्या समाधान में तत्परता के प्रभाव को दिखाने के लिये उन्होंने एनाग्रास का प्रयोग कियय। EAGLE से LEEAGE बन सकता हे या और कोई अर्थहीन शब्द बन सकता है। इसे एनाग्रास कहा जाता है। इसमें अर्थपूर्ण शब्दों के अक्षरों के क्रम को बदल दिया जाता है। प्रयोगकर्ता ने 30 एनाग्रास की सूची बनाई जिसमें से प्रथम 15 को एक निश्चित सीमा से समाधान करने पर अर्थपूर्ण शब्द बन जाता था अंतिम 15 एनाग्रास से अन्य वैकल्पिक समाधान भी संभव था। परिणाम में यह पाया गया कि अधिकतर प्रयोज्यों ने प्रथम 15 एनाग्रास के समाधान में जिस नियम का उपयोग किया, उसी नियम द्वारा अंतिम 15 एनाग्रास का समाधान करने का प्रयास किया। इस प्रकार प्रथम 15 एनाग्रास के समाधान में उत्पन्न तत्परता ने प्रयोज्यों को अंतिम 15 एनाग्रास के वैकल्पित समाधान ढूंढने में इस तरह से वांछित किया क्यों प्रयोज्य उस तत्परता के द्वारा वैकल्पिक समाधान सोच नहीं पाये।

लूचिन्स तथा रीस व इजरेल के प्रयोग के परिणामों से यह परिलक्षित होता है कि तत्परता के अनुचित तथा गलत होने पर उसके समसया के समाधान में काफी बाधा पहुंचती है। इसके अतिरिक्त केन्डलर ग्रीववर्ग तथ रिचमेन 1952 रोकीच प्रभाव को दिखलाया।

अत: समस्या के समाधान में अर्थात चिन्तन में किसी तत्परता का प्रभाव सहायक भी होता है तथा बाधक भी।

16.8 चिन्तन में भाषा का महत्व (Importance of Language in Thinking)

भाषा स्वं चितंन के पारस्परिक संबंधोंपर प्रश्न अति जटिल है। यह एक विवादग्रपद विषय है। मित्र मित्र मनोवैज्ञानिकों ने अलग अलग विचार दिये हैं जिन्हं निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है।

कुछ मनोवैज्ञानिक चिन्तन के लिये भाषा को आवश्यक मानते हैं उनके अनुसार भाषा के अभाव में चिन्तन के लिये भाषा को आवश्यक मानते है। उनके अनुसार भाषा के अभव में चिन्तन नहीं हो पाता । चिन्तन भाषा द्वारा प्रभवित व निर्धारित है। इस प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले मनोवैज्ञानिकों ने सापिर तथा उनके शिष्य वुल्फ 1956 बुनर 1964 वर्नस्टीन 1958 आदि सम्मिलित है।

सापिर ने यह प्राकल्पना दी भाषा चिन्तन की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। ब्रूनर 1964 के प्रयोगात्मक परिणामों से इस प्रकल्पनाओं को समर्थन मिलता है। ब्रूनर के प्रयोग में प्रयोज्य शिशु एवं पूर्व स्कूली छात्र थे। अपने प्रयोग मे उन्होंने पाया कि इन बच्चों के चिन्तन की प्रक्रिया संज्ञानात्मक विकास सीमित होता है क्योंकि इनकी भाषा पूर्ण रूप से विकसित नहीं होती।

चिन्तन प्रक्रिया पर भाषा के प्रमुख प्रभाव को देखने के लिये पशुओं पर भी अध्ययन किये गये। प्रीमैक 1983 ने 'सराह' नामक नवमानुष पर यह प्रभाव देखने के लिये अध्ययन किया। वनमानुष को विभिन्न आकार की रंगीन वस्तुओं से कई शब्दों को सिखाया गया। प्लास्टिक से बनी प्रत्येक वस्तु का खास अर्थ होता था। ढाई वर्ष के प्रशिक्षण के बाद सेहाह ने 100 शब्दों को सीख लिया तथा इसकी सहायता से वह अपनी आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति कर लेता है बाद में प्रीमेक ने अन्य ग्रामतुषा के साथ 'सरहा' नामक इनमानुष को विभिन्न आकार भी आकार भी रंगीन वस्तुओं से कई शब्दों को सिखाया गया। प्लास्टिक से बनी प्रत्येक वस्तु का एक खास अर्थ होता था। 1 प्लास्टिक से बनी प्रत्येक वस्तु का सराह ने 100 शब्दों को सीख लिया तथा इनकी सहायता से वह अपनी आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति कर लेता था। बाद में प्रीमकेक ने अन्य इनमानुषों के साथ सरहा को कठिन समस्याओं का समाधान ढूंढने को दिया। समस्या समाधान में उच्च चिन्तन का समाधान ढूंढने को दिया। समस्या समाधान में उच्च चिन्तन का साधान ढूंढने की आवश्यकता होती है। सराह ने अन्य वनमालनुषों की अपेक्षा समस्या का समाधान शीघ्र कर लिया। प्रीमैक के अनुसार ऐसा भाषा प्रशिक्षण के कारण हुआ। अत: इस अध्याय से यह निष्कर्ष निकलता है कि भाषा चिन्तन की प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

मोर्फ 1956 ने सुपिर के कथन कि भाषा चिन्तन को प्रभावित करती है को ओर अधिक समर्थन देते हुय कहा कि भाषा चिन्तन को प्रभावित ही नहीं करती बल्कि निर्धारित की जाती है। मोर्फ की पकरकल्पना थी कि भाषा का विकास चिन्तन की प्रक्रिया से पहले होता है तथा चिन्तन की प्रक्रिया

को निर्धारित पूर्ण रूप से भाषा से होता है। इसे मोर्फ प्राकल्पना तथा भाषायी नियतिवाद कहा गयो। इस प्रकल्पना के अनुसार सभी उच्च स्तरीय चिन्तन भाषा द्वारा ही निर्धारित होता है। सभी उच्चस्तरीय चिन्तन भाषा द्वारा ही निर्धारित होता है। All igher events of thanking are determined by language

भिन्न भाषा का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों के प्रत्यक्षणात्मक तथा संवेगात्मक अन्तर से संबंधित अध्ययन ओर्फ प्रकल्पना के समर्थन में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ओर्फ प्राकल्पना के समर्थन में प्रस्तुत किये जा सकते है। ओर्फ 1956 ने गीग्लैंड ने एस्किमों तथा अंगे्रजी भाषा बोलने वाले व्यक्तियों के प्रत्यक्षीकरण एवं चिन्तन की प्रक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया। 1 एस्कीयां की भाषा में बर्फ के लिये कम से कम 12 शब्द है जबकि अंग्रेजी भाषा में एक या दो शब्द है । आर्फ तो पाया कि भिन्न भिनन प्रकार की बर्फ का प्रत्यक्षीरकरण और उसके बारे में चिन्तन चेतना स्पष्टम एस्कीमों द्वारा किया जाता है। उतना स्पष्ट अंग्रेजी एस्कीमों द्वारा किया जाता है उतना स्पष्ट अंग्रेजी भाषा बोलने वालों द्वारा नहीं किया जाता है। अत: इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भाषा विकसित होने पर प्रत्यक्षीकरण सं चिन्तन भी स्पष्ट होते है। न्यूगगतिया दार्नी प्रजाती पर बर्लिन एवं ने 1969 ने प्रयोग किये। दानी जाति में एवं अंग्रेजी भाषा बोलने वाले कुछ व्यक्तियों को जिन्हें भिन्न भिन्न रंगों के लिये अलग अलग शब्द प्रयोग करने की आदत है। भिन्न भिन्न प्रकार के रंगों का प्रत्यक्षीकरण तथा उनके बारे में सोचकर कुछ बताने के लिये कहा। दानी प्रजाती के प्रयोज्यों में ऐसा करने में असमर्थता पायी जाती गयी। जबकि अंगेजी भाषा भाषी प्रयोज्यों ने अच्छा प्रदर्शन किया। प्रयोगकर्ताओं ने इसका कारण दानी भाषा में भिन्न भिन्न रंगों के लिये दो ही शब्द होना तथा अंग्रेजी भाषा में भिन्न भिन्न रंगों के लिए ग्यारह अलग अलग शब्द होना बताया। क्योंकि प्रयोगकर्ता के अनुसार स्वाभाविक भाषा में जो शब्द उपलब्ध होंगे, मध्यस्थता प्रक्रम मे वे ही घटित होंगे।

मनोवैज्ञानिक ने मोर्फ प्रकल्पना की आलोचना निम्न आधारों पर किया -

1 ओर्फ प्राकल्पना के अनुसार - भाषा के विभिन्नता होने पर चिन्तन क्षमता में भी विभिन्नता परिलक्षित होती है। इस परिकल्पना की आलोचना डेल 1976 ने की । उनके अनुसार भाषाएं एक दूसरे से भिन्न होती है किन्तु इसके आधार पर बिना किसी स्वतंत्र है किन्तु इसके आधार पर बिना किसी स्वतंत्र मान के यह नहीं किया जा सकता है इसके कारण चिन्तन क्षमता में भी अन्तर होता है।

2 ओर्फ प्राकल्पना की दूसरी आलचना इस तथा के आधार पर हुयी कि भाषाओं में विभिन्नता होते हुये भी समानता पायी जाती है। जैसे प्रत्येक भाषा में संज्ञा व क्रिया होता है। प्रत्येक भाषा में कुछ नियत होते है जो शब्द क्रम को निर्धारित करते हैं। इस प्राकल्पना की आलोचना करते हुसे ब्राउन तथा कुक 1986 ने कहा कि ऐसी परिस्थिति में भिन्न भिन्न भाषा बोलने वाला एक उम्र के सभी बच्चों की चिन्तन क्षमता एक समान होनपी चाहिये थी किन्तु ऐसा नहीं होता। भाषा समान होने पर भी चिन्तन क्षमता समान नही होती।

2 पियोज 1963 तथा क्लाई 1973 के अनुसार चिन्तन प्रक्रिया व्यक्ति में पहले होती ह। और उससे संबंधित शब्दों भाषा का विकास बाद में होता है। अर्थात चिन्तन क लिये भाष आवश्यक नही है।

3 कुछ मनोवैज्ञानिक इसके मध्य के विचार रखते हैं। वे मानते है कि भाषा एवं चिन्तन प्रक्रियाएं प्रारंभ में अलग अलग विकसित होता है। बाइगोटस्काई 1962 का विचार हे कि दो साल की अवस्था तक चिन्तन तथा भाषा का विकास बिना एक दूसरे को प्रभावित किये हुये होता है किन्तु बाद में चिन्तन की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है भाषा एवं चिन्तन एवं निर्धारित होती है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भाषा में अभाव में प्रत्यक्षपरक प्रभेदन ओर चिन्तन के प्रक्रम नहीं घटित होते।

16.9 सारांश (Summary)

मानव के व्यवहार में चिन्तन का बहुत महत्व है। पशुओं में भी चिन्तन प्रक्रिया होती है किन्तु सूक्ष्म व जटिल रूप में यह प्रक्रिया मानव मे ही पायी जाती है। यह संप्रत्ययों प्रप्ति तथा प्रतिभाओं का मानसिक जोड तोड है। यह एक प्रकार व्यवहार है चिन्तन स्वली और यथार्तवादी दो प्रकार का होता है। यर्थातवादी चिन्तन के तीन प्रकार है जो क्रमश: अभिसारी चिन्तन, सर्जनात्मक चिंतन तथा आलोचनात्मक चिंतन है। चिन्तन में प्रतिभा, तत्परात एवं भाक्षा का विशेष महत्व है। इस पाठ में हमने चिन्तन का अर्थ, परिभाषा, प्रकार तथा चिन्तन प्रतिभा, प्रयत्न एवं त्रुटि, भाषा एवं तत्परता के महत्व का अध्ययन किया।

16.10 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1- चिन्तन को परिभाषित करते हुये चिन्तन के प्रकार बताइये।
2- चिन्तन मे भाषा के महत्व की व्याख्या कीजिए।
3- चिन्तन में वृद्धि अथवा तत्परता की भूमिका का वर्णन कीजिए।
4- चिन्तन के प्रतिमा के महत्व पर प्रकाश डालिये।

16.11 संदर्भ ग्रंथ

- त्रिपाठी, लाल बच्चन 1944, आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, हर प्रसाद भार्गव, आगरा
- अग्रवाल एवं माखिजा 2000, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
- सिंह अरूण कुमार 2006 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
- Edward & Stephen (2011)] cognitine psychology,. PH. Learding pravete ltd. New Delhi.

इकाई - 17

चिन्तन के सिद्धान्त

Theories of Thinking

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 चिन्तन के सिद्धान्त

17.3.1 केन्द्रीय सिद्धान्त

17.3.2 परिधीय सिद्धान्त

17.4 सामान्य निष्कर्ष

17.5 समस्या समाधान की सैद्धान्तिक व्याख्या

17.5.1 समस्या समाधान की गेस्टाल्टरवादी व्याख्या

17.5.2 समस्या समाधान की व्यवहारवादी व्याख्या

17.6 सूचना संसाधन सिद्धान्त

17.7 सारांश (Summary)

17.8 संदर्भ ग्रन्थ

17.9 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

चिन्तन का प्रारम्भ तब होता है जब व्यक्ति के सामने कोई समस्या होती है तथा अन्त समस्या के समाधान से होता है। अत: चिन्तन की इस पूर्ण प्रक्रिया में अर्थात् समस्या के उपस्थित होने से लेकर समस्यात्मक समाधान होने तक अैन-कैन सी प्रतिक्रियाऐं होती है, उनकी व्याख्या किस प्रकार की जाय इसके लिये मनोवैज्ञानिकों द्वारा चिन्तन के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।यह सिद्धान्त यह व्याख्या करते है कि चिन्तन की प्रक्रिया किस प्रकार सम्पन्न होती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा दो

सिद्धान्तों - केन्द्रीय सिद्धान्त व परिधीय सिद्धान्त की व्याख्या की गयी है। इसके अतिरिक्ति समस्या समाधान के सिद्धान्त भी चिन्तन प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं। अत: इस पाठ में चिन्तन के दो सिद्धान्तों के साथ साथ समस्या समाधान के सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला गया है।

17.2 उद्देश्य (Objective)

इस ईकाई के निम्न उद्देश्य हैं:

- चिन्तन के केन्द्रीय सिद्धान्त का वर्णन करना।
- चिन्तन के परिधीय सिद्धान्त का वर्णन करना
- समस्या समाधान के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालना

17.3 चिन्तन के सिद्धान्त (Theories of Thinking)

समस्या के उत्पन्न होने से समस्या के समाधान तक चिन्तन प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रकार इस बीच कौन-कौन सी प्रक्रियाएं जन्म लेती है तथा उनकी व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है इसके लिये मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन के सिद्धान्तों की व्याख्य की है। ये सिद्धान्त चिन्तन के आधार का वण्रन करते हैं। चिन्तन के प्रमुख दो सिद्धान्त इस प्रकार हैं -

1- केन्द्रीय सिद्धान्त (Central Theory)
2- परिधीय सिद्धान्त (Peripheral theory or Motor theory)

इस सिद्धान्तों का वर्णन निम्न प्रकार है

17.3.1 केन्द्रीय सिद्धान्त - चिन्तन का आधार इस सिद्धान्त में केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (Central nervous) को माना गया है। समस्या का समाधान करते समय व्यक्ति के मस्तिष्क में अर्थात् केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र अन्तर्क्रियाएं (interiors) चलती रहती है। इस सिद्धान्त के अनुसार चिन्तन की प्रक्रिया में पेशीय अंगों (motor organs) या प्रभावक (effectors) द्वारा की गयी क्रियाओं को महत्त्व नहीं दिया जाता। अत: यह सिद्धान्त मानता है कि चिन्तन के समय केवल मस्तिष्क में क्रियाएं होती हैं अन्य शारीरिक क्रियाओं को यह चिन्तन के लिये अस्वीकार करता है।

औसगुड (Osgood) के अनुसार यह स्पष्ट किया गया है कि चिन्तन के अध्ययन में दी गयी समस्या एक का प्रकार उद्दीपक (stimulus) होता है। यह उद्दीपक व्यक्ति का उत्तेजित (stimulate) करता है जिसके फलस्वरूप संवेदी तंत्रिका (sensory nervous) द्वारा तंत्रिका आवेग मस्तिष्क के एक विशिष्ट क्षेत्र साहचर्य क्षेत्र में पहुँचता है (reaches association area) परिणामस्वरूप व्यक्ति के मस्तिष्क में भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिमाएं (images) और विचार उत्पन्न होते हैं जिनके सहारे

व्यक्ति समस्या का समाधान करता है। इस सिद्धान्त की व्याख्या का समर्थन कुछ संरचनावादियों (structuralism) तथा गेस्टाल्प मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों से मिलता है।

केन्द्रीय सिद्धान्त की आलोचना (criticism of Central theory) -

1- यह बहुत पुराना सिद्धान्त है जिसके समर्थन में प्रयोगात्मक प्रमाण (experimental evidences) प्राप्त नहीं है। यह एक कार्यवाहक सिद्धान्त है जिसकी व्याख्या के आधार पर सामान्यीकरण (Generalization) नहीं किया जा सकता। यह सिर्फ एक बोध का समर्थन करता है कि चिन्तन मस्तिष्क में होने वाली एक क्रिया है।
2- चिन्तन की प्रक्रिया में यह सिद्धान्त पेशीय अंगों द्वारा की गयी क्रियाओं (activities) को स्वीकृति नहीं देता। चिन्तन प्रक्रिया में पेशीय क्रियाओं (motor orgons) के महत्त्व पर प्रयोगात्मक प्रमाण (experimental evidences) प्राप्त है फिर भी यह सिद्धान्त पेशीय क्रियाओं के महत्त्व को स्वीकार नहीं करता।

17-3-2 **परिधीय सिद्धान्त** (Peripheral theory or Motor theory) -इस सिद्धान्त को व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक (Behaviorist) वाटसन (Watson) ने उपस्थित किया है। इस सिद्धान्त में मस्तिष्क क्रियाओं के स्थान पर विभिन्न शारीरिक क्रियाओं को महत्त्व दिया गया। वाटसन व्यवहारवाद (Behaviorism) के जनक (Father) हैं। उनके अनुसार चिन्तन एक प्रकार की उपवाचिक (sub-vocal) बातचीत है। व्यक्ति धीरे धीरे अपने आप से बातचीत करता है। अत: चिन्तन में ज्ञानेन्द्रियों (vocal orgons) में पेशीय क्रियाएं (muscular activity) होती है और व्यक्ति अपने आप से बातचीत आरम्भ कर देता है। वाटसन ने चिंतन में स्वर यंत्र (larynx) की क्रियाओं पर विशेष जोर दिया। वे भाषा को चिन्तन का अभिन्न अंग मानते थे। बाद में वाटसन ने इसे स्पष्ट किया कि सभी तरह के चिन्तन में ज्ञानेन्द्रियों की ही मांसपेशीयों में क्रियाएं नीं होती बल्कि अन्य अंग जैसे हाथ एवं पैर की मांसपेशियों में भी क्रियाएं होती है। गूंगे व बहरे व्यक्ति के चिन्तन में हाथ की अंगुलियों की मांसपेशीयों में अधिक क्रियाएं होती पायी गयी। अत: वाटसन (1914) के शब्दों में - ''हम पूरे शरीर के सहारे चिन्तन क्रिया करते हैं।'' (we think with our whole body) इस प्रकार वाटसन के विचारों से समर्थित होकर अन्य व्यवहारवादियों ने चिन्तन के गति अथवा परिधीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार जब व्यक्ति के सामने कोई उद्दीपक अर्थात् समाचार दिया जाता है, तो उससे उत्पन्न स्नायु प्रवाह मस्तिष्क में पहुँचता है जो एक रिले स्टेशन (relay station) के समान कार्य करता है। यहां से स्नायु प्रवाह को तुरंत उपयुक्त (appropriate) प्रभावक (effector) यानि मांसपेशियों में भेज दिया जाता है। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति कोई अनुक्रिया करता है। मांसपेशियों की इस अनुक्रिया से पुन: एक स्नायु प्रवाह उत्पन्न होता है जो मस्तिष्क में वापस जाता है। अत: यह पूरी प्रक्रिया जिसमें वापसी की प्रक्रिया भी सम्मिलित है। तब तक होती रहती है जब तक कि समस्या का समाधान नहीं हो जाता। इस वापसी प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिकों ने पुनर्निवेश (feedback) कहा। अत: परिधीय सिद्धान्त में मस्तिष्क में होने वाली

अन्त: क्रियाओं को महत्त्व दिय गया। इस प्रकार परिधीय सिद्धान्त पेशीय क्रियाओं को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है।

परिधीय सिद्धान्त या गति सिद्धान्त की पुष्टि के लिये किये गये प्रयोग इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। जैकोवसन (Jaconbson,1932) ने अपने प्रयोग में प्रयोज्य (subject) को कभी बाँए (left) तो कभी दांये (right) हाथ से 10 पौण्ड वजन उठाने की कल्पना (चिंतन) करने को कहा। साथ ही साथ प्रयोज्य में पर एक विशेष उपकरण (instrument) लगाकर उसकी पेशीय क्रियाओं को रेकार्ड (record) किया गया। परिणाम से यह परिलक्षित हुआ कि यदि प्रयोज्य दांये हाथ से 10 पौंड वजन उठाने की सोचता था तो उसके दांये हाथ की पेशीय क्रियाएं पहले की तुलना में बढ़ जाती थी। इस अध्ययन ने चिंतन की प्रक्रिया में पेशीय क्रियाओं के होने की पुष्टि की। टौटेन (Totten,1935) ने इसी प्रकार का एक अध्ययन किया। इस प्रयोग में प्रयोज्य को कुछ जयामितीय (geometrical designs) के बारे में सोचना था। परिणाम में यह देखा गया कि प्रयोज्य की आँख व पलकों की माँसपेशियों की क्रियाऐं पहले से तीव्र हो गयी। गति सिद्धान्त की जाँच के लिये किया गया (Max1937) का प्रयोग एक प्रकार था। उन्होंने 18 बहरे (deaf) तथा 16 सामान्य (अच्छी तरह सुनने वाले) प्रयोज्य लिये। दोनों तरह के प्रयोज्यों को कुछ ऐसी बात सोचनी थी मानों वे अपने हाथ से कुछ भारी वजन उठा रहे हों। ऐसा सोचते समय सभी प्रयोज्यों की बाहों की माँसपेशियों की क्रियाओं का रेकाड तैयार किया गया। परिणाम से ज्ञात हुआ कि बहरे प्रयोज्यों की बांह की माँसपेशियों की क्रियाऐं, सामान्य प्रयोज्यों की बाँह की माँसपेशियों की क्रियाओं के लगभग बराबर थीं। अत: इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सामान्य व्यक्ति के समान बहरे व्यक्ति के चिन्तन में भी माँसपेशीय क्रियाएं होती हैं। अमूर्त चिन्तन करते समय जैसे मन में जोड़, घटाना, गुणा, भाग आदि की क्रियाएं करते समय बहरों में उनकी बाँह की माँसपेशिये क्रियाएं 84: हुयी जबकि इस परिस्थिति में सामान्य व्यक्ति में ऐसी मांसपेशीय क्रियाऐं 31: हुई। अत: इससे साबित होता है कि अमूर्त चिन्तन करते समय बहरे व्यक्तियों में सामान्य की अपेक्षाकृत और अधिक पेशीय क्रियाएं होती है।

ऊपर वर्णित सभी प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि चिन्तन करते समय व्यक्ति में मांसपेशीय क्रियाएं होती है। मनोवैज्ञानियों ने प्रयोगों से यह भी स्पष्ट किया कि इस तरह से होने वाले मांसपेशीय क्रियाओं का पुनर्निवेश द्वारा व्यक्ति को ज्ञान होता है। यही कारण है कि चिन्तन में मांसपेशीय क्रियाओं का एक क्रम पाया जाता है। परन्तु इस तरह का पुनर्निवेश आन्तरिक होता है अत: व्यक्ति को इसका प्रत्यक्ष बोध नहीं होता अर्थात् व्यक्ति इससे सीधे अवगत नहीं हो पाता। जिम्बार्डो तथा रूच (Zimbardo & Ruch, 1977) ने इस पुनर्निवेश प्रक्रम (feedback mechnism) को सर्वो मैकेनिज्म (Servo-mechanism) की संज्ञा दी जिसे नीचे चित्र में दर्शाया गया है।

INPUT THROUGHPUT OUTPUT

FEEDBACK

सर्वो मैकेनिज्म के चार भाग होते हैं जिसके द्वारा चिन्तन में किये गये मांसपेशीय क्रियाओं का ज्ञान व्यक्ति को होता है और इसके फलस्वरूप इन क्रियों में एक क्रमबद्धता भी आती है। ये चार भाग इस प्रकार हैं -

1- संसाधक निवेश (Processiong input) - संसाधक निवेश से तात्पर्य वैसे उद्दीपक से होता है जो व्यक्ति में आवेग (impulse) उत्पन्न करते हैं।
2- थ्रुपुट (throughput) उद्दीपक से आवेग उत्पन्न होकर थ्रुपुट में पहुँचता है जिसे तंत्रिका तंत्र कहते हैं। इन आवेगों को तंत्रिका तंत्र में संगठित (organise) किया जाता है।
3- निर्गत (output) तंत्रिका आवेग थ्रुपुट या तंत्रिका तंत्र में संगठित होने के बाद मांसपेशियों को उत्तेजित करते हैं जिसके फलस्वरूप व्यक्ति मांसपेशीय क्रियाओं को करता है।
4- पुनर्निवेश (feedback) की गयी मांसपेशीय क्रियाओं का क्रमबद्धता (systematization) का निर्धारण उन सूचनाओं के आधार पर होता है जिसका पुनर्निवेश व्यक्ति को पुन: होता है।

यह चारों प्रक्रियाऐं चिन्तन के प्रमुख चरण हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि इन चारों कदमों में अन्तर करना हमेशा संभव नहीं है क्योंकि उनमें अतिव्यक्ति (overlapping) का गुण होता है।

चिन्तन के परिधीय सिद्धान्त की आलोचना भी की गयी है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस सिद्धान्त में संवेदी क्रियाओं एवं मस्तिष्क की मांसपेशीय क्रियाओं को अपेक्षाकृत कम महत्त्व दिया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी क्रियाएं होती है जैसे स्वचलित क्रियाएं (automatized activities) जिनमें मांसपेशीय क्रियाएं करने का समय नहीं होता।

इस आलोचना के पश्चात् भी परिधीय सिद्धान्त को केन्द्रीय सिद्धान्त से बेहतर माना गया है। क्योंकि इसके समर्थन में प्रयोगात्मक पुष्टि होती है।

17.4 सामान्य निष्कर्ष (General Conclusion)

इस प्रकार प्रयोगात्मक पुष्टि (experimental evidences) के आधार पर परिधीय सिद्धान्त (peripheral theory) केन्द्रीय सिद्धान्त (central theory) से श्रेष्ठ (superior) माना गया। विभिन्न प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि चिन्तन में शरीर के अनेक अंगों में स्नायुओं में क्रिया होती है। परन्तु इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि यह क्रिया सभी प्रकार के चिन्तन के लिये अनिवार्य है। अत: परिधीय सिद्धान्त से सभी प्रकार के चिन्तन की व्याख्या नहीं की जा सकती। इसके विपरीत चिन्तन का केन्द्रीय सिद्धान्त की प्रयोगात्मक पुष्टि नही हुई किन्तु यह सिद्धान्त खण्डित (reject) भी नहीं हुआ। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि केन्द्रीय सिद्धान्त अनुपयुक्त है या परिधीय सिद्धान्त पूर्णरूप से उपयुक्त है। अत: सबसे उपयुक्त व तर्कपूर्ण निष्कर्ष यही हो सकता है जैसा ऑसगुड (Os-

good,1953) ने कहा कि वह होगा जो इन दोनों सिद्धान्तों के बीच एक प्रकार का मध्यमार्ग तैयार करता है। अत: ऑसगुड के अनुसार दोनों सिद्धान्त अपनी जगह सही है क्योंकि चिन्तन में संवेदी और पेशीय दोनो प्रकार की क्रियाएं होती है। बच्चे के चिन्तन में पेशीय क्रियाऐं अधिक तथा संवेदी क्रियाऐं या केन्द्रीय केन्द्रीय क्रियाऐं कम होती है। किन्तु व्यस्क के चिन्तन में इसके विपरीत संवेदी क्रियाएं अधिक तथा पेशीय क्रियाऐं कम होती है। इसी प्रकार तीव्र बुद्धि के व्यक्ति के चिन्तन में संवेदी क्रियाऐं तथा मस्तिष्क की क्रियाऐं (brain activities) अधिक होती है। तथा कम बुद्धि के व्यक्ति के चिन्तन में पेशीय क्रियाऐं (motor activities) अधिक होती है। अत: औसगुड ने निम्न विचार व्यक्त किये -

''शायद सबसे तर्कपूर्ण विचार एक मध्यमवर्ग (compromise) है। प्रतिकात्मक प्रक्रियाओं के विकास में परिधीय मध्यस्थता आवश्यकता है जो किसी परिपक्व व्यक्ति के केन्द्रीय प्रतिनिधित्व (central representation) में घुसा होता है।'' ("Perhaps the most reasonable view is compromise. The development of symbolic processes may require peripheral mediation which becomes telescoped to a largely central representation in the nature individual" – Osgood Method, theory excremental psychology)

17.5 समस्या समाधान की सैद्धान्तिक व्याख्या (Theoritical interpretation of problem solving)

समस्या के उत्पन्न होने से समस्या के समाधान तक चिन्तन प्रक्रिया का अध्ययन ऊपर दिये गये दो सिद्धान्तों में किया गया। समस्या समाधान की प्रक्रिया किस प्रकार घटित होती है इसकी व्याख्या निम्न सिद्धान्तों द्वारा की गई है -

17.5.1 समस्या समाधान की गैस्टाल्वादी व्याख्या (Gestalt interpretation of problem solving) - गैस्टाल्टवादी जिसमें प्रमुख रूप से Kohler,1925, कोफका (Koffka) एवं वर्दीमर (Werthimer) आदि के नाम आते हैं, के अनुसार समस्या समस्या प्रत्यक्षपरक पुनर्संगठन (Perceptional reorganization) का परिणाम है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति समायात्मक स्थिति का प्रत्यक्षीकरण सही ढंग से करने में असफल होता है। समस्यात्मक स्थिति के सही प्रत्यक्षीकरण ही समस्या समाधान है। समास्यात्मक स्थिति के सही प्रत्यक्षीकरण को गैस्टाल्टवादियों ने 'अंतदृष्टि'' का नाम दिया जिस पर कोहलर ने प्रयोग किये। कोहलर के अनुसार समस्या समाधान से संबंधितदो चर हैं -

1- लक्ष्य वस्तु की संवाहक शक्ति जीव के लक्ष्य से मनोवैज्ञानिक निकटता के साथ बढ़ती है।
2- संवाहक (Destructive Force) और अवरोधक शक्तियों का समस्य प्रारूप जीव की भौगोलिक क्षेत्र में स्थिति के साथ परिवर्तित होता है।

समस्या समाधान की व्याख्या गेस्टाल्टवादियों के अनुसार निम्न प्रकार है -

1- जीव लक्ष्य तक सबसे सीधे मार्ग से पहुँचने की चेष्टा करता है।
2- जब भी लक्ष्य की प्राप्ति में रूकावट आती है व्यक्ति को तनाव का अनुभव होता है।
3- असंतुष्ट तनाव के कारण व्यक्ति स्थिति का प्रत्यक्षपरक संगठन व पुनर्संगठन करता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक प्राणी को लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग स्पष्ट नहीं हो जाता।
4- तनाव का अस्थिर विचलन अनायास पुनर्संगठन द्वारा कम होने लगता है। इसमें नवीन मागोर्ं का प्रत्यक्षीकरण सम्मिलित होता है।
5- लक्ष्य प्राप्त करने वाले समाधान का स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण ही सूझ या अन्तदर्ृष्टि है।

समस्या के माध्यम के रूप में अंतदृष्टि'की विशेषताएं (The characteristics of insight as a mode of problem solving) - गैस्टाल्ट वादियों के अनुसार अंतदृष्टि' सूचक व्यवहार को विभिन्न लक्ष्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1- **आकस्मिकता (Suddenness)** - अंतदृष्टि' द्वारा प्राप्त समस्या का समाधान नाटकीय रूप से अचानक प्राप्त होता है और एक बार अंतदृष्टि' प्राप्त हो जाने पर हल प्राय: स्थायी रूप से ग्रहण कर लिया जाता है।
2- **सुगमता (Smoothness)** - अंतदृष्टि' द्वारा प्राप्त समस्या का समाधान की यह द्वितीय विशेषता है। इसमें समाधान क्रम का निर्धारण सुगमता के साथ होता है।
3- अंतदृष्टि' सर्वथा अपेक्षाकृत नवीन परिस्थितियों में उत्पन्न होती है।
4- अंतदृष्टि' अनुक्रिया की कड़ी में वह बिन्दु है जहाँ व्यक्ति सरलता, सहजता एवं बिना संशय लक्ष्य की प्राप्ति करता है।
5- भिन्न भिन्न जाति के प्राणियों में अंतदृष्टि'की मात्रा भिन्न भिन्न होती है। किसी समस्यात्मक स्थिति में प्राणी कितनी और किस प्रकार अंतदृष्टि' से समस्या समाधान करेगा, यह मुख्यत: इस बार पर निर्भर करता है कि प्राणी किस जाति का है।

17.5.2 समस्या समाधान की व्यवहारवादी व्याख्या (Behavioristic Interpretation of problem solving) - समस्या समाधान की व्यवहारवादी व्याख्या निम्न पाँच बिन्दुओं द्वारा की जा सकती है -

1- लक्ष्य प्रवणता (Goal Gradient)
2- अनुक्रिया पदानुक्रम (Response Hierarchy)
3- अव्यक्त प्रयत्न से भूल (Inplicit trial & error)
4- मध्यस्थकारी सामान्यीकरण (Mediated generalization)

5- व्यवहार खण्डों का स्मीकरण (Intigration of behavior segments)

1- **लक्ष्य प्रवणता (Goal Gradient)** - इस प्रत्यय का विकास हल (Hull, 1932) ने भूलभुलैया या अधिगम का अध्ययन करते हुए किया। लेविन (Lewin,1938) ने भी क्षेत्र शक्ति (Field Force) की समस्याओं का का बच्चों पर अध्ययन करते हुये लक्ष्य प्रवणता प्रत्यय का उपयोग किया। लेविन ने यह निष्कर्ष निकाला कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिये दो मार्गों में से सदैव छोटे मार्ग का चयन करता है। लक्ष्य प्रवणता का प्रत्यय कोहलर के उस प्रत्यय के समान है जिसमें पशु सदैव सीधे मार्ग से लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयास करता है। दोनों मनोवैज्ञानिकों के अनुसार समस्या का उदय तब होता है जब लक्ष्य तक सीधे पहुंचने वाला मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। यदि पशु छोटे मार्ग से लक्ष्य तक पहुंचने में असफल रहता है तो वह लम्बे मार्ग से लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयास करता है अर्थात् विकल्प मार्ग का चयन करता है। अत: जितना अधिक प्रयोज्य लक्ष्य तक पहुंचने के लिये प्रेरित होगा उतना ही अधि कवह लक्ष्य के नजदीक होगा।

2- **अनुक्रिया पदानुक्रम (Response Hierarchy)** - समस्या समाधान की इस मैकेनिज्म का अर्थ है कि प्रयोज्य की अनेक अनुक्रियाएं एक उद्दीपक परिस्थिति से अनुबन्धित होती है। इन अनुक्रियाओं में कोई अनुक्रिया एक ही उद्दीपक स्थिति से अधिक मात्रा में और कोई अनुक्रिया कम मात्रा में अनुबन्धित होती है। अर्थात् प्रयोज्य की अनेक अनुक्रियाऐ एक ही उद्दीपक स्थिति के साथ भिन्न भिन्न साहचर्य प्रबलता स्तर पर सम्बन्धित हो सकती है। अत: इन अनुक्रियाओं के लिये माना जा सकता है कि ये अनुक्रियाएं पदानुक्रम (Hierarchy) में व्यवस्थित होती है। इन अनुक्रियाओं को Habit Family Hierarchy भी कहा जाता है। अध्ययनों से ज्ञात होता है कि उद्दीपन से सम्बन्धित वे अनुक्रियाएं समस्या समाधान के समय शीघ्र उत्पन्न होती है जिनका उद्दीपक स्थिति के साथ प्रबल साहचर्य रहा है। प्रयोज्य उद्दीपक के उपस्थित होने पर बहुधा समस्या के लिये उस अनुक्रिया को दोहराता है जिस अनुक्रिया और उद्दीपक के बीच साहयर्च अधिक प्रबल है।

3- **अव्यक्त प्रयत्न से भूल (Inplicit trial & error)** - समस्या समाधान सम्बन्धी प्रयोगों में यह देखा गया है कि मानव प्रयोज्य भी अप्रकट प्रयत्न और भूल अनुक्रियाएं करते हैं, परन्तु इनकी अनुक्रियाएं बहुधा प्रतीकात्मक (Symbolic) स्तर पर होती है। जैसे प्रयोज्य के सामने यदि यह समस्या है कि डिब्बे व टेप की सहायता से किस प्रकार दीवार पर मोमबत्ती लगा कर जलायें कि दीवार और फर्श पर जलती हुयी मोमबत्ती का मोम न गिरे। सर्वप्रथम प्रयोज्य कल्पना और चिन्तन के स्तर पर बहुत से उपाय सोचेगा और प्रत्येक उपाय त्रुटिपूर्ण लगेगा वह उसे छोड़ देगा। अन्त में अप्रकट प्रयत्न और भूल के आधार पर वह चिन्तन करते करते समस्या समाधान में अन्तिम उपाय पर पहुँच सकता है।

4- **मध्यस्थकारी सामान्यीकरण (Mediated generalization)** - मध्यस्थकारी सामान्यीकरण समस्या समाधान भी एक प्रत्यक्षात्मक प्रक्रिया है। इसमें प्राणी भौतिकरूप से

भिन्न उद्दीपकों को समान रूप से प्रत्यक्षीकृत करता है। भौतिक उद्दीपक एक दूसरे से भिन्न होते हैं परन्तु इनमें कुछ न कुछ मात्रा में अथवा किसी न किसी प्रकार की सामान्यता (generalization) पायी जाती है। उदाहरणार्थ विभिन्न सब्जियों आकृति व रंग में एक दूसरे से भिन्न हैं फिर भी हम उनका प्रत्यक्षीकरण सब्जी के रूप में करते हैं। यदि इन सब्जियों में से एक सब्जी व्यक्ति के सामने उपस्थित होती है तो इस सब्जी से सम्बन्धित अप्रकट अनुक्रिया दूसरी सब्जी के लिये उद्दीपक संकेत उपस्थि करती है। और दूसरी सब्जी के प्रति अनुक्रिया उद्दीपक हो सकती है।

5- **व्यवहार खण्डों का स्मीकरण (Intigration of behavior segments)** - समस्या समाधान के इस मैकेनिज्म में बताया गया है कि प्रयोज्य समस्या का समाधान विभिन्न अनुक्रियाओं को समन्वित करके भी करता है। समस्या समाधान की स्थिति में प्रयोज्य विभिन्न प्रकार के व्यवहार खण्डों का स्मीकरण करता है जो कि किसी निश्चित क्रम से होते हैं। समस्या तब उत्पन्न होती है जब प्राणी ने ऐसे व्यवहार खण्डों का एकीकरण पूर्व में न किया हो। व्यवहार वादियों के अनुसार समस्या की स्थिति में प्राणी अनेक प्रकार की अनुक्रियाएं करता है और उद्दीपकों, संकेतों एवं अनुक्रियाओं के मध्य साहचर्य स्थापित क रवह लक्ष्य तक पहुँचता है। हल (Hull,1955) के अनुसार समस्यात्मक स्थिति में प्राणी आरम्भ से ही उन उद्दीपक संकेतों के प्रति साहचर्य स्थापित करता है जिससे उन्हें प्रवलन की प्राप्ति होती है। हल तथा औसगुड (Hull,1955 & Osgood,1953) ने इस मैकेनिज्म (Mechanism) की व्याख्या Mediating Assoriature Mechanism के आधार पर की है।

17.6 सूचना संसाधन सिद्धान्त (Information processing theory)

इस सिद्धान्त का मूल आधार व्यक्ति का स्नायुतंत्र है जो व्यक्ति की समस्त क्रियाओं का नियंत्रक है। यह इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर के समान कार्य करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार समस्या का उदय उस समय होता है जब प्राणी के समक्ष समस्या तक पहुँचने के अनेक विकल्पों में से किसी एक का चयन करना होता है। यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करता है कि किस प्रकार प्राणी विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करता है और ऐसा करने में किस प्रकार की कठिनाई का अनुभव करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्राणी वातावरण से सभी सूचना ग्रहण करता है और इसी आधार पर संक्रिया (Operation) करता है।

17.7 सारांश (Summary)

यह पाठ चिन्तन के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालता है। इस पाठ में चिन्तन की प्रक्रिया से सम्बन्धित दो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों केन्द्रीय सिद्धान्त व परिधीय सिद्धान्तों का वर्णन किया गया। ये दोनों सिद्धान्त

चिन्तन के प्रारम्भ से समस्या के समाधान तक या चिन्तन की पूर्ण प्रक्रिया में सम्मिलित विभिन्न प्रक्रियाओं की व्याख्या करते हैं। केन्द्रीय सिद्धान्त चिन्तन में होने वाली मस्तिष्कीय क्रियाओं पर प्रकाश डालता है तथा परिधीय सिद्धान्त मस्तिष्कीय क्रियाओं के स्थान पर चिन्तन में होने वाली शारीरिक क्रियाओं को स्थान दिया गया है। इसमें अतिरिक्त चिन्तन में समस्या समाधान की विभिन्न सैद्धान्तिक व्याख्याओं को भी इस पाठ में सम्मिलित किया गया है। इससे आप यह जान सकेगें कि विभिन्न विचारधाराओं द्वारा समस्या समाधान की व्याख्या किस प्रकार की गयी है।

17.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1- चिन्तन के केन्द्रीय सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2- चिन्तन के परिधीय सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3- समस्या समाधान की सैद्धान्तिक व्याख्या कीजिए।

17.9 संदर्भ ग्रन्थ

- अग्रवाल एवं माखीजा (2000) ''प्रयोगात्मक मनोविज्ञान'' - लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
- सिंह अरूण कुमार (2006) ''संज्ञानात्मक मनोविज्ञान'' - मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- वर्मा एवं श्रीवास्तव, (2000) ''आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- Edward, stepher (2011) "cognitive psychology" PHI Learing Private Limited, New Delhi.

इकाई - 18

निगमनात्मक एवं आगमनात्मक तर्कण, समस्या समाधान के उपाय, कक्षाकक्ष समस्या समाधान, समस्या समाधान के चरण

Deductive and inductive reasoning, approaches of problem solving, classroom problems solving, steps in problem Solving

इकाई की रूप रेखा

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 तर्कण का अर्थ एवं स्वरूप

18.4 निगमनात्मक एवं आगमनात्मक तर्कण

18.5 समस्या समाधान का अर्थ एवं स्वरूप

18.6 समस्या समाधान के उपाय

18.7 कक्षाकक्ष समस्या समाधान

18.8 समस्या समाधान के चरण

18.9 सारांश

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

18.11 संदर्भग्रन्थ

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

तर्क चिन्तन को क्रमबद्ध करता है। यह एक प्रकार का समस्या समाधान व्यवहार है जहां परिकल्पना की जांच होती है तथा समाधान तार्किक रूप से निगमित होता है। कक्षाकक्ष समस्या समाधान व्यवहार से विद्यार्थी के संगठानात्मक सामाजिक विकास में वृद्धि होती है।

प्रस्तुत ईकाई में आप आगमनात्मक व निगमनात्मक तर्कना, समस्या समाधान का अर्थ, समस्या समाधान के उपाय, कक्षाकक्ष समस्या समाधान तथा समस्या समाधान के चरण का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

18.2 उद्देश्य (Objective)

- निगमनात्मक एवं आगमनात्मक तर्क का अर्थ ज्ञात करना।
- समस्या समधान के उपाय जानना
- कक्षाकक्ष के समस्या समाधान कौशल का विकास सीखना।
- समस्या समाधान के चरण बताना।

18.3 तर्कण का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Nature of Reasoning)

तर्कणा वास्तविक चिन्तन (realistic thinking) है तर्कणा द्वारा व्यक्ति अपने चिंतन को क्रमबद्ध (Dystematic) बनाता है तथा तर्क-वितर्क कर निश्चित निष्कर्ष को प्राप्त करता है। रेबर (Reber,1985) के अनुसर ‘‘ तकणा एक प्रकार का चिन्तन है। जिसकी प्रक्रिया तार्किक (logical) होती है तथा संगत (coherent) होती है। विशिष्ट क्रम (more specifically) में तर्कणा समस्या समाधान व्यवहार है जहां अच्छी तरह से निर्मित प्राकल्पनाओं को क्रमबद्ध रूप से जांच की जाती है तथा समाधानर तार्किक ढंग से निगमित किया जाता है(deduce) ।’’ इस प्रकार तर्कणा में व्यक्ति किसी घटना या विषय पर पक्ष अथवा विपक्ष में तर्क करते हुए परिणाम पर पहुँचता है। संगठनात्मक मनोविज्ञान चिन्तन को तर्कणा या चिन्तन के रूप में स्वीकार करता है। तर्कणा के स्वरूप (nature) से संबंधितनिम्न तथ्य प्राप्त होते हैं:-

- तर्कणा चिन्तन की प्रक्रिया है।
- तर्कणा क्रमबद्ध होती है।
- तर्कणा में व्यक्ति पक्ष और विपक्ष में तर्क करते हुए निश्चित निष्कर्ष को प्राप्त करता है।

18.4 निगमनात्मक एवं आगमनात्मक तर्कण (Deductive and inductive Reasoning)

निगमनात्मक तर्कण (Deductive Reasoning) चिन्तन की उच्चस्तरीय रीति से संचालित प्रारूप निगमनात्मक तर्कण है। निगमनात्मक तर्कण वैसी तर्कण को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति पहले ज्ञात नियमों एवं तथ्यों के आधार पर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करता है। निगमन का प्रतिपदान अरस्तू ने किया। समस्या से विशेष निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया निगमनात्मक अनुमान है। यह सामान्य से विरोध की ओर होता है। इस तर्कण में आधार वाक्यों को सत्य मान लिया जाता है और निष्कर्ष सदैव आधार वाक्यों से नियंत्रित होता है। अत: निष्कर्ष आधार वाक्य से अधिक व्यापक नहीं हो सकता। निगमनात्मक अनुमान में 'उचित' व 'अनुचित' के स्थान पर तार्किक शब्द 'वैध' (Valid) और 'अवैध' (Invalid) का प्रयोग किया जाता है। कोई भी निगमनात्मक अनुमान उस समय वैध हो सकता है जब आधार वाक्य सत्य हो और निष्कर्ष के लिये निश्चित साक्ष्य प्रदान करता हो। निगमनात्मक तर्कण विश्लेषणात्मक (analytical) होता है क्योंकि विधेय पद उद्देश्य के बारे में कोई नई जानकारी नहीं देता। केवल अर्थ विश्लेषण करता है। इसमें निष्कर्ष निश्चित होता है।

निगमनात्मक तर्कण में तीन प्रकार के तार्किक चिन्तन पर अध्ययन किया जाता है जो निम्नप्रकार है:

1- **संवर्गात्मक न्यायगव्य** (Categorical Sylogism) इस प्रकार के निगमनात्मक तर्कण के अन्तर्गत संवर्गात्मक न्याय वाक्य को लेकर मनोवैज्ञानियों ने यह निर्धारित करने का प्रयास किया कि इस प्रकार की तर्कण में सामान्यत: लोग किस प्रकार की त्रुटियां करते हैं। संवर्गात्मक न्यायगव्यों में उस प्रकार की तर्कना निहित होती है जो वर्गों से सम्बन्धित तर्कों का विवेचन करते हैं। किसी भी न्याय वाक्य में तीन प्रस्ताव वाक्य होते हैं, जिनमें से प्रथम दो को आधार वाक्य में किसी निश्चित संवर्ग जैसें मनुष्य के बारे में कोई कथन किया जाता है। तथा स्पष्ट किया जाता है कि उससंर्व के सदस्य किसी दूसरे संवर्ग जैसे जीव या जड़ में सम्मिलित है या नहीं। दूसरे आधार वाक्य में दूसरे संवर्ग के सदस्यों के तीसरे संवर्ग के साथ किसी सम्बन्ध का कथन किया जाता है। इन दो आधार वाक्यों के आधार पर प्रथम संवर्ग और तीसरे संवर्ग के पारस्परिक संबंधको निष्कर्ष रूप में कहा जाता है। इस प्रकार के न्याय वाक्य का उदाहरण निम्न है :

   प्रथम आधार वाक्य : राम मरणशील है।

   द्वितीय आधार वाक्य : राम एक मनुष्य है।

   न्याय वाक्यों में चार प्रकार के आधार वाक्यों को लेकर एक युक्ति क निर्माण होता है। दो प्रकार के आधार वाक्य सार्वभौम 'सभी' या विशिष्ट मुद्दे का लेकर बनाये जाते हैं। इनमें से

प्रत्येक या तो स्वीकारात्मक होता है अथवा निषेधात्मक होता है। इन चारों प्रकारों का उदाहरण इस प्रकार है:

आधार गम्य	उदाहरण
1 सार्वभौम स्वीकारात्मक (Universal Affirmative)	सभी गायें पशु हैं।
2 विशिष्ट स्वीकारात्मक (Particular affirmative)	कुछ पशु गायें हैं।
3 सार्वभौम निषेधात्मक (Universal negative)	सभी पशु गाये नही है।
4. विशिष्ट निषेधात्मक (Particular negative)	कुछ पशु गायें नहीं है।

प्रत्येक कथन एक प्रस्ताव वाक्य होता है। प्रत्येक कथन का एक कर्ता (subject) और विधेय (predicate) होता है। संवर्गात्मक न्याय वाक्य में तीन पद होते हैं जो न्याय वाक्य में परस्पर संबंधितहोते हैं। निष्कर्ष में दो पद घटित होते है। नीचे दिये गये उदाहरण के निष्कर्ष में दो पद हैं कर्ता और विधेय। निष्कर्ष वाक्य में राम कर्ता है और मनुष्य विधेय। इसमें कर्ता को अल्पांग (minor) और विधेय को सर्वांग (major) माना गया है।

सभी भारतीय मनुष्य होते हैं

राम भारतीय है।

तीसरा पद दोंनों आधार वाक्यों में घटित होता है जिसे मध्य पद (middle term) कहा जाता है। भारतीय यहां मध्य पद है।

किसी भी न्याय वाक्य में निष्कर्ष वैध या अवैध होता है वैध निष्कर्ष वह होता है जो आववश्यक रूप से सत्य होता अथवा सभी दशाओं के आधार वाक्यों से अनुसरित होता है। यह अवैध निष्कर्ष एक ऐसी दशा की घोषणा करता है जिसमें निष्कर्ष आधार वाक्यों से अनुसरित नहीं होता है।

न्यायपरक तर्कण में त्रुटियां (error in syllogistic reasoning) - शिक्षित व अशिक्षित सभी प्रकार के लोग तर्कण करते है और इसमें त्रुटियां करते हैं। प्रायोगिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस प्रकार की तर्कग में होने वाली त्रुटियों के स्त्रोतों का अध्ययन किया गया। न्यायवाक्य के तीनों पदो के बीच सभी संभव संबंधों को एक साथ प्राथमिक स्मृति में रखना अत्यन्त कठिन कार्य है। इत: आधार वाक्यों से वैध निष्कर्ष पर पहुचने में त्रुटिया घटित होती है।

कई परिस्थितियों में आधार वाक्य में दी गयी सामग्री और उसमें पारस्परिक सम्बन्धों को प्राथमिक स्मृति में क्रियाशील रखना अत्यन्त सरल प्रतीत होता है। जैसे यदि दो आधार वाक्य सभी कौए काले होते हैं और वह पक्षी काला है। हो और इन से निगमित निष्कर्ष सभी पक्षी कौआ है हो तो यह निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण एवं अवैध है। यह निष्कर्ष अवैध इसलिए है कि

यह आधार वाक्यों का तार्किक रीति से अनुसरण नहीं करता है। इस प्रकार की त्रुटि को विधेय त्रुटि (predicate error) कहते है। ऊपर दिये गये उदाहरण में दोनों आधार वाक्यों में कर्ता (subject) का विधेय (predicate) काला होने के कारण प्रयोज्य अवैध रूप से यह निष्कर्ष निकाल लेता है। दोनों कर्ताओं (कौआ और पक्षी) में विधेय (काला) को लेकर समानता है। अत: प्रयोज्य यह त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष निकाल लेता है कि वह पक्षी कौआ है।

न्यायवाक्य परक समस्याओं के समाधान में प्रयोज्य द्वारा की जाने वाली त्रुटि का एक अन्य कारण परिवेश प्रभाव (atmosphere effect) है। इस पर बुडवर्ड एवं सेल्स (1935) ने अध्ययन किये। परिवेश प्रभाव से सम्बन्धित त्रुटि प्रयोज्य तब करता है जब वह आधार वाक्य द्वारा उत्पन्न एक सामान्य प्रकार के प्रभाव के अन्तर्गत निष्कर्ष निकालता है। यदि आधार वाक्य अस्तिवाचक (affermative) है तो प्रयोज्य सकारात्मक प्रकार का निष्कर्ष निकालता है। चैपमेन (1959) द्वारा किये गये अध्ययनों से परिवेश प्रभाव सिद्धान्त की पुष्टि होती है। कुछ दशाओं में इसके अपवाद भी प्राप्त हुए हैं।

पदों को प्रतिको के माध्यम से व्यक्त करना संवर्गात्मक न्यायगव्य परक तर्कण में त्रुटि को एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इस स्रोत का जानसन लेयर्ड एवं स्टीडमैन (1978) तथा गुमोट एवं स्टेनवर्ग (1981) ने विवेचन किया है। उदाहरण निम्न है

सभी क च होते हैं

कुछ च ट होते हैं

इस न्यायवाक्य को पढ़कर प्रयोज्यन कल्पना करता है कि उसकी कक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वाले 10 छात्र अच्छे वक्ता हैं। कुछ अच्छे वक्ता कवि है। अत: प्रयोज्य इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कुछ प्रथम श्रेणी पाने वाले छात्र कवि होते हैं। अत: निष्कर्ष वैध है। किन्तु तार्किक दृष्टिकोण से यह निष्कर्ष अवैध है।

त्रिपद क्रम समस्या (Three Term Series Problem) : त्रिपद क्रम समस्या निगमनात्मक तर्कण विशिष्ट प्रारूप है। इसमें तीन पदों को लिया जाता है। और एक साथ दो पदों के सम्बन्ध को बताया जाता है। इस प्रकार की समस्याओं के अध्ययन से निगमनात्मक चिन्तन में घटित होने वाले मध्यस्थकारी प्रक्रमों की जानकारी होती है। त्रिपद अनुक्रम समस्याओं के समाधान ने लिये प्रयोज्यों द्वारा किये गये व्यवहार की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा कुछ प्रतिरूपों (models) को विकसित किया गया है।

हण्टर द्वारा प्रस्तुत संक्रियात्मक प्रतिरूप (operational model) इस नियम पर आधारित है कि प्रयोज्य त्रिपद अनुक्रम में मध्यवर्ती पदों (middle term) पर विचार न करने के बाद भी समस्या का समाधान कर सकता है। डी सोटो, लन्डन एवं हैंडले (1965) ने एक प्रतिरूप (model) विकसित किया जिसे प्रतिभा प्रतिरूप (Image model) कहा जाता है। इनके द्वारा यह प्रस्तावित किया गया कि त्रिपद क्रम समस्याओं के समाधान में प्रयोज्य मध्यस्थकारी प्रक्रमों के रूप में स्थानिक प्रतिमा (spatial image) का उपयोग करता है।

हटेनलाकर (1968) ने यह प्रस्तावित किया कि त्रिपद क्रम समस्याओं की सापेक्षिक कठिनाई अन्य कारणों के अतिरिक्त आधार वाक्यों की गहन संरचना (deep structure) से संबंधित होती है। क्लार्क (1969) ने हटेनलाकर द्वारा की गई गहन संरचना पर आधारित व्याख्या को आगे बढ़ाते हुए अधिक प्रतिरूप (linguistic model) का प्रतिपादन किया। फिलिप-जानसन लेयर्ड (1972) के अनुसार प्रयोज्य त्रिपद क्रम समस्याओं के समाधान में विभिन्न प्रयासों पर अपने व्यपदेशों (strategy) में परिमार्जन करता है। अत: उनके अनुसार त्रिपद क्रम समस्याओं का समाधान प्रयोज्य द्वारा विभिन्न प्रयासों पर उपयोग में लाये जाने वाले व्यपदेशों से प्रभावित होता है।

परिकल्पना परीक्षण (Hypothesis Testing) - निगमनात्मक तर्कण में निहित मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों का निर्धारण करने में लिये परिकल्पना परीक्षण से सम्बन्धित अध्ययन किये जाते हैं। इस प्रकार के अध्ययनों को सामान्य परिकल्पना दे दी जाती है और बहुत से उद्दीपकों के समुच्य से उसे उस परिकल्पना को सिद्ध करने वाले उद्दीपक उदाहरणों को चुनकर पृथक करने को कहा जाता है। दूसरे प्रकार के अध्ययनों में उदाहरण दे दिये जाते हैं और प्रयोज्य से उन उदाहरणों की योजना के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले सामान्य नियम के बारे में परिकल्पनाएं प्रस्तुत करने के लिये कहा जाता है। इस योजना को परिकल्पना अनुमान (hypothesis guesing) कहा जाता है।

2- **आगमनात्मक तर्कण (Inductive reasoning)** - इस अनुमान के प्रवर्तक फ्रांसिस बेकन हैं। यह तर्कण की दूसरी पद्धति है। इसमें निरोध तथ्यों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकाला जाता है। आगमनात्मक अनुमान के आधार समय विशेष होते हैं जो अनुभव से प्राप्त होते हैं। निष्कर्ष सामान्य तर्क वाक्य होता है। जिसमें केवल आकस्मिक सत्यता ही नहीं वरन् वास्तविक सत्यता भी होती है। निष्कर्ष आधार समयों से अधिक व्यापक होता है। जैसे

राम मरणाशील है

श्याम मरणाशील है

राधा मरणाशील है

सभी मनुष्य मरणाशील है

वैज्ञानिक आगमन वह जिसमें हम प्राकृतिक एकरूपता (Uniformity of nature) और कार्य कारण (causation) में नियमों के बल पर ही कुछ निरीक्षित उदाहरण - विशेषों से सामान्य वास्तवकि वाक्य की रचना करते हैं। जैसे - राम, श्याम, राधा आदि कुछ मनुष्यों को मरने निरीक्षण कर हम कह सकते है - ''सभी मनुष्य मरणाशील हैं।'' आगमन का गुण है कि कुछ (some) के आधार पर 'सब' All के बारे में कहा जाना अर्थात् अंशव्यापी से पूर्णव्यापी (Particular to uni-

versal) की ओर जाना। वैज्ञानिक आगमन के आधार वाक्य निष्कर्ष के लिये प्राकल्पना के रूप में कार्य करता है। यह संश्लेषात्मक चिन्तन है क्योंकि यह उद्देश्य (Objective) के बारे में नई जानकारी देकर ज्ञान में वृद्धि करता है। जब दिये गये तथ्यों में व्यक्ति अपनी ओर से कुछ नये तथ्य जोड़कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है तो वह भावनात्मक तर्कण है। जब व्यक्ति अपनी ओर से नये तथ्य जोड़ता है तो वह इन तथ्यों का सृजन (create) करता है। फलस्वरूप समस्याका समाधान हो पाता है। रुक (Ruch, 1968) ने आगमनात्मक चिन्तन की परिभाषा इस प्रकार की है - ''आगमनात्मक चिन्तन में चिन्तक अपनी कल्पना के आधार पर कुछ ऐसी नयी चीजों को जोड़ता है जो प्रस्तुत आँकड़ों से सीधे ज्ञात नहीं किये जा सकते थे।'' इस प्रकार की तर्कण सुजनात्मक चिन्तक (creative thinkes) द्वारा अधिक प्रयोग में लायी जाती है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संप्रत्यो की संप्राप्ति को आगमनात्मक तर्कना प्रक्रम का परिणाम माना जाता है। संप्रत्य संप्रस्ति (concept learning) में जब प्रयोज्य किसी उद्दीपक को देखता है तो उसके लक्षण का आभास उसे होता है और वह उस नियम का अनुमान (infeence) करता है जिसके आधार पर कोई उद्दीपक संप्रत्यय का उदाहरण होता है प्रयोगकर्ता द्वारा दी गयी सूचना प्रतिपूर्ति (information feedback) के आधार प रवह अपनी परिकल्पना का परीक्षण करता है। प्रयोज्य की परिकल्पना (hypothesis) तब नियम का रूप ले लेती है जब उसके आधार पर प्रयोज्य उद्दीपकों के संप्रत्यय का उदाहरण होने और न होने की पहचान में कोई त्रुटि नहीं करता। संप्रत्यय संप्रस्ति के लिये निर्मित किये गये उद्दीपकों से निश्चित प्रकार के सूचना संकेत प्राप्त होते हैं। ये संकेत वस्तुत: उद्दीपकों में लक्षण मूल्य है। जिन लक्षण मूल्यों के होने पर धनात्मक प्रतिपूर्ति मिलती है, प्रयोज्य के लिये व मूल्य संप्रत्यय का संकेतार्थ बन जाता है।

18.5 समस्या समाधान का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and nature of problem solving)

समस्या समाधान संज्ञानात्मक व्यवहार (cognitive behaviour) है। समस्या समाधान व्यवहार से तात्पर्य व्यक्ति के उन प्रयत्नों से हे जिनके माध्यम से वह समस्या की मूलभूत स्थिति को लक्ष्य स्थिति में सफलतापूर्वक परिवर्तित करने के लिये उपयुक्त साधनों (means) एवं तरीकों (ways) को पाने का व्यवहार करता है। समस्या का समाधान (problem solving) एक ऐसी परिस्थिति होती है जिसमें लक्ष्य तक पहुँचने में कुछ चीजे बाधा उत्पन्न् करती है। बेरान (Baran, 1992) ने समस्या समाधान को परिभाषित करते हुए कहा, ''समस्या समाधान में विभिन्न अनुक्रियाओं को करने या उनमें से चुनने का प्रयास सम्मिलित होता है ताकि वांछित लक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकें।'' मार्गरेट मैटलिन (1983) ने समस्या समाधान का विश्लेषण करते हुए इसके तीन पक्षों को प्रमुख कहा है। पहले पक्ष में समस्या अपनी मौलिक अवस्था (original stake) में उत्पन्न होती है। यह समस्या की प्रारम्भिक अवस्था है। इसका दूसरा पक्ष लक्ष्य अवस्था (goal stake) है। यह समस्या समाधान की अवस्था है। लक्ष्य प्राप्त हो जाने पर यह स्थिति उत्पन्न होती है। इन दो स्थितियों के बीच का पक्ष

नियम (rule) है। नियम वह कार्य विधि (procedure) है जिसे व्यक्ति समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य अवस्था तक पहुँचने में अपनाता है।

18.6 समस्या समाधान के उपाय (Approaches to probles solving)

समस्या समाधान के लिये नीचे दी गयी दो विधियाँ महत्त्वपूर्ण है।

1- यादृच्छिक अन्वेषण विधि (Rendom search method)
2- स्वत: शोध अन्वेषण विधि (Weuristic search method)

1- यादृच्छिक अन्वेषण विधि (Rendom search method) - इस विधि में व्यक्ति समस्या के समाधान के लिये प्रयत्न एवं त्रुटि विधि को अपनाता है। यादृच्छिक रीति से उस पथ का अन्वेषण करता है। यह यादृच्छिक अन्वेषण दो प्रकार का होता है - अक्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण (unestimatice random search) तथा क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण (systematic random search) । अक्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण में व्यक्ति समस्या का समाधान बिना किसी योजना के करता है। वह समाधान के लिये सभी तरह की संभावित अनुक्रियाओं को करता है पर किसी निश्चित क्रम (sequesnce) में नहीं करता। जबकि क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि में व्यक्ति संभावित अनुक्रियाएं योजनानुसार निश्चित क्रम में करता है तथा पूर्व में की गयी गलत अनुक्रियाओं का रिकार्ड रखते हुए उनको नहीं दोहराता। क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण, अक्रमबद्ध अन्वेषण की तुलना में अधिक प्रभावशील है। किन्तु इसमें समय व श्रम अधिक लगता है। यादृच्छिक अन्वेषण विधि एल्गोरिदम (algorithim) का उदाहरण है। समाधान के अन्वेषण में जब व्यक्ति चाहता है कि वह सरलतम मार्ग से लक्ष्य को प्राप्त कर ले, तो वह एक पथ का दूसरे पथ के विपरीत मूल्यांकन करता है। सबसे पहले व्यक्ति अपने लक्ष्य को अवलक्ष्यों (subgoal) में विभक्त कर लेता है और निर्णय करता है कि किस प्रकार के अवलक्ष्यों को प्राप्त करते हुए अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करे। ऐसे अन्वेषण एल्गोरिदम के उदाहरण है। अल्गोरिदम गणित में वर्णित यांत्रिक नियम हैं। इनके अन्तर्गत जोड़ने घटाने गुणा करने तथा भाग देने तथा बीजगणित के एकीकरण सम्बन्धी नियम सम्मिलित है। ऐसे नियमों से समस्या के समाधान की निश्चयात्मकता रहती है।

2 **स्वत: शोध अन्वेषण विधि (Weuristic search method) -** इस विधि में व्यक्ति समस्या समाधान के लिये सिर्फ संगत (revelant) विकल्पों का ही चयन करता है। इस विधि में व्यक्ति पहले समस्या में निहित सूचनाओं के आधार पर समस्या को छोटी-छोटी समस्याओं के अनुक्रम में व्यवस्थित कर लेता है। ये छोटी-छोटी समस्याएं समस्या की मूलभूत स्थिति एवं लक्ष्य स्थिति के मध्य व्यवस्थित हो जाती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति एक छोटी समस्या के हल होने पर लक्ष्य स्थिति के कुछ और निकट आ जाता है। एल्गोरिदम में समस्या के समाधान की गारंटी होती है किंतु स्वत: शोध विधि में समस्या के समाधान की गारंटी नहीं होती। इसे अपनाने से समस्या प्राप्त

करने की संभावना में वृद्धि हो जाती है। स्वत: शोध अन्वेषण विधि वास्तव में उच्च मूल्य वाले पथ होते हैं जिनमें अनेक प्रक्रम या उपाय निहित होते हैं।

स्वत: शोध अन्वेषण विधि में आने वाली प्रविधियाँ निम्न हैं:

I. **साधन साध्य विश्लेषण (means-ends analyses) -** इस विधि में व्यक्ति समस्या को छोटी-छोटी उपसमस्याओं में विभक्त करता है। इनमें से प्रत्येक उपसमस्या का समाधान करके लक्ष्य की दूरी को कम करता है इस विधि को कई क्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के लिये प्रयुक्त किया जाता है जैसे शतरंज, गणितीय समस्याओं के समाधान में एक कम्प्यूटर द्वारा किसी समस्या के समाधान में आदि।

II. **पश्चगामी अन्वेषण (Backward search) -** यह एक ऐसा स्वत: शोध अन्वेषण है जिसका उपयोग करने में व्यक्ति समस्या की लक्ष्य स्थिति से क्रमश: पीछे की ओर बढ़ता हुआ समस्या की प्रारम्भिक स्थिति तक आता है। पश्चगामी अन्वेषण शैविक समस्याओं ओर मनोरंजन समस्याओं आदि के समाधान में अक्सर किया जाता है।

III. **योजना विधि (Planning Method) -** इस विधि द्वारा समस्या का समाधान करनते समय व्यक्ति समस्या को दो भागों में विभक्त कर देता है - पहला साधारण पहलू व दूसरा जटिल पहलू। पहले वह साधारण पहलू का समाधान करता है फिर जटिल पहले का। योजना विधि का एक सामान्य प्रकार सदृश्यता (analogy) है। सदृश्यता में पहले की समस्या के समाधान को वर्तमान समस्या के समाधान में प्रयुक्त करता है। वह अपने अनुभव में समस्या की संरचनात्मक लक्षणों की तुलना तात्कालिक समस्या की संरचनात्मक विशेषताओं के साथ करता है। दोनों समस्याओं की संरचनात्मक विशेषताओंमें समानता होने पर व्यक्ति पुराने प्रकार से समस्या को हल करने का प्रयास करता है।

इस प्रकार समस्या के समाधान के लिए कई दृष्टिकोण है जिनका उपयोग करके व्यक्ति समस्या का समाधान करता है। तथा समस्या की मौलिक अवस्था तथा लक्ष्य अवस्था के बीच की दूरी को कम करने का प्रयास करता है।

18.7 कक्षाकक्ष समस्या समाधान (Classroom problem solving)

समस्या का समाधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें हम जो नहीं जानते उसे खोजने की गतिविधि चलती रहती है। इसमें हम परिकल्पनाओं द्वारा बाधाओं पर नियंत्रण, भविष्यवाणी का परीक्षण तथा संतोषजनक समाधान तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। समस्या के समाधान के लिये तीन बुनियादी कार्य आवश्यक है -

I. जानकारी की मांग

II. नया ज्ञान सृजन

III. निर्णय लेना

कक्षा व वास्तविक जीवन स्थितियों में समस्याओं को हल करने के कौशल जीवन के सभी क्षेत्रों में आवश्यक है। यह कौशल सीखने का एक उत्तम तरीका कक्षा के समस्या सुलझाने की गतिविधि है। कक्षा में समस्या समाधान कौशल सीखने से या इस क्षमता का विकास करने से विद्यार्थी अपने वास्तविक जीवन में या सामाजिक रिश्तों में आने वाली वास्तविक समस्याओं के समाधान करने में सक्षम होते हैं। यह कौशल कक्षा में समस्या सुलझाने की गतिविधि से विकसित किया जा सकता है। ऐसे प्रयासों से विद्यार्थी के संज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास में भी वृद्धि होती है। विद्यार्थी इससे वास्तविक जीवन की गतिविधियों में अपने नये अधिग्रहित ज्ञान का उपयोग करने के अवसर के साथ साथ अन्य स्तरीय चिन्तन भी प्राप्त करता है। अत: कक्षा कक्ष समस्या समाधान पाठ्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण भाग है।

पाठ्यक्रम के क्षेत्रों के साथ दैनिक जीवन भी समस्या के समाधान के लिये अपनाया जाने वाला पाँच चरण मॉडल निम्न हैं -

1- **समस्या को समझना** - विद्यार्थी पहले समस्या की प्रकृति एवं लक्ष्य को समझे। कक्षा में विद्यार्थी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वह समस्या को अपने शब्दों व्यक्त करे और समझे।

2- **बाधाओं का वर्णन** - विद्यार्थी समस्या को समझने के पश्चात् उसमें निहित बाधाओं की पहचान करे।

3- **विभिन्न समाधान की पहचान** - विद्यार्थी समस्या सुलझाने के लिए एक या एक से अधिक युक्ति अपना कार्यनीति को चुने। कुछ समस्याओं को कक्षा में सुलझाने की विभिन्न कार्यनीतियाँ इस प्रकार है -

   a) दृश्य चित्र बनाये - विद्यार्थी कक्षा में समस्या को सुलझाने से पहले समस्या को मन में कल्पना करे और उसमें सम्भावित समाधान भी सोचे।

   b) अटकल - कक्षा में प्रयास एवं त्रुटि संलग्न करके विद्यार्थी को समस्या को सुलझाने का अवसर अवसर दिया जाय। यह समस्या को सुलझाने का विलक्षण दृष्टिकोण नहीं अपितु प्रारंभिक आँकड़ों को एकत्रित करने का प्रयास है।

   c) तालिका बनाऐं - तालिका के माध्यम से विद्यार्थी समस्या से सम्बन्धित आँकड़ों का समूहन या आँकड़ों को व्यवस्थित करना सीखते हैं।

   d) एक पैटर्न के रूप में देखना - कई समस्याएं समान होती है। समान समस्याओं के समाधान के लिये समान कार्यनीति का चुनाव विद्यार्थी को करना सिखाया जाना चाहिए।

   e) व्यवस्थित सूची बनाना - विद्यार्थी समस्या समाधान के विभिन्न उपखण्डों की व्यवस्थित सूची बनायें।

4- **हल निकालने का प्रयास** - जब विद्यार्थी किसी कार्यनीति के संयोजन से हल निकालने का प्रयास करता है तो उसके लिये निम्न बातें आवश्यक हैं -

a) विद्यार्थी द्वारा की गयी कार्यवाही और प्रक्रियाओं का रिकार्ड स्थापित करें।

b) विद्यार्थी तब तक एक ही कार्यनीति से समस्या को सुलझाने का प्रयास करे जब तक यह स्थापित नहीं हो जावे कि वह कार्ययुक्ति समस्या को सुलझाने में मदद नहीं कर रही।

5- **परिणामों का मूल्यांकन-** विद्यार्थियों के कक्षा प्रदर्शन का मूल्यांकन आमतौर पर शिक्षक द्वारा किया जाता है। छात्र को कक्षा में आत्ममूल्यांकन के लिये भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिऐ शिक्षक द्वारा छात्रों से कुछ प्रश्न पूछकर उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ शिक्षक विद्यार्थी से इस प्रकार के प्रश्न पूछ सकते हैं - ''तुम्हें अब तक की प्रगति पर कैसा महसूस हो रहा है। क्या तुम अपने परिणामों से सन्तुष्ट हो। तुम्हें क्या विश्वास है कि यही समाधान तुम्हारी समस्या का उपयुक्त समाधान है।''

इस प्रकार इस पाँच चरण मॉडल को अपना कर कक्षा में समस्या समाधान को सरल बनाया जा सकता है।

कक्षा समस्या समाधान कौशल विद्यार्थी को वास्तविक जीवन की समस्याओं को हल करने में सहायता प्रदान करता है। यदि विद्यार्थी समस्या पर तार्किक चिन्तन करता है, इसके सम्पूर्ण तत्वों का नक्शा बुनता है और यदि कार्यवाहक समाधान प्रस्तुत करता है तो यह उसके जीवन का महत्त्वपूर्ण कौशल है जिसे वह अपने विद्यार्थी जीवन में सीखता है। अपने सम्पूर्ण जीवन में विद्यार्थी इस कौशल के प्रयोग से लाभान्वित होता है। नीचे दी गयी कक्षा समस्या समाधान गतिविधियां विद्यार्थी के लिये कक्षा में यह कौशल सीखने में अत्यन्त प्रभावी है :

1- **मस्तिष्क मन्थन (Brainstorm Bonanza)** - जो कुछ विद्यार्थी कक्षा में अध्ययन कर रहे हैं उससे सम्बन्धित सूची बनाने से विद्यार्थी की समझ में वृद्धि होती है। जैसे यदि कक्षा में विद्यार्थी ऐतिहासिक, वर्तमान या काल्पनिक घटना का अध्ययन कर रहे हैं तो वे एक कागज पर व्यक्तिगत रूप से या बोर्ड पर चॉक से मंथन करें।

2- **समूह के रूप में समस्या सुलझाना (Problem solving as a group)** - कक्षा में एक समस्या बॉक्स रखें। इस पर लिखें ''समस्या सुलझाने का बॉक्स''। विद्यार्थियों को यह निर्देशित करें कि वे अपनी किसी भी प्रकार की समस्या एक कागज पर लिखकर इस बॉक्स में डाल सकते हैं। सप्ताह में एक या दो बार किसी भी विद्यार्थी से एक समस्या इस बॉक्स में से निकलवायें व पूरी कक्षा को साथ मिलकर उस समस्या का समाधान खोजने के लिये कहें। इस प्रकार विद्यार्थी समूह में इस समस्या का समाधान खोजने का प्रयास करें।

3- **सुराग या संकेत (Clue me in)** - यह खेल के माध्यम से समस्या समाधान, तार्किक चिन्तन व संज्ञानात्मक विकास में वृद्धि करने में सहायक तरीका है। बहुत सारे पद (items) स्थगित करें, जो जैसे - सामाजिक प्रवृत्ति, स्थान, सार्वजनिक आंकड़े या ऐतिहासिक घटना आदि से संबंधितहो या पद संकेत के रूप में हों। इन पदों को एक बैग में डालें व छात्रों द्वारा एक एक पद को निकलवाये। छात्र दिये गए पद या संकेत से विवरण दें। इस प्रक्रिया से विद्यार्थी अतिशीघ्र समस्या का समाधान करना सीख लेगें।

4- **अस्तित्व के काल्पनिक परिदृश्य (Sursiror Scenarious)** - विद्यार्थी द्वारा कुछ ऐसे दृश्यों या स्थितियों की कल्पना करवायें जिसमे वे एक समास्यात्मक स्थिति में है और उसके समाधान की भी कल्पना करवाएं। जैसे विद्यार्थी यह कल्पना कर सकता है कि वह एक ऐसे आईलैण्ड पर पहुँच गया है जो वीरान है। वहां कोई सहायता नहीं है अब सहायता मिलने तक वह किस प्रकार अपनी स्वसहायता करेगा या परिस्थिति का सामना करेगा। इस काल्पनिक दृश्य का समाधान कक्षा में समूह में मिलकर करने से विद्यार्थी जीवन की वास्तविक समस्याओं के समाधान के लिये कार्यमुक्ति सीखता है।

5- **नैतिक असमंजस्य (Moral dilemma)** - विद्यार्थी अधिक से अधिक जीवन में आने वाली दुविधा स्थितियां की कल्पना करे। इससे विद्यार्थी जीवन में दुविधा की परिस्थितियों से निपटना सीखते हैं। विद्यार्थी उदाहरणार्थ यह कल्पना कर सकते हैं कि ''मैंने अपने दोस्त को दुकान पर चोरी करते हुए देखा, अब मैं क्या करू।'' इस प्रकार की समस्याओं का समाधान करने से विद्यार्थी वास्तविक जीवन की बड़ी बड़ी समस्याओं का समाधान करना सीखते हैं। इस प्रकार कक्षा कक्ष समस्या समाधान, जीवन में समस्या समाधान कौशल सीखने के लिए अत्यन्त लाभदायी है। इस प्रकार विद्यार्थी इस कौशल का प्रयोग नयी परिस्थितियों में करना सीखता है।

18.8 समस्या समाधान के चरण (Steps in Problem solving)

मनोवैज्ञानियों द्वारा समस्या समाधान के विभिन्न कदमों में विचित्रता रही है। एण्ड्रीयाज (Andreas) के अनुसार -

1- समस्यात्मक स्थिति में व्यक्ति के समक्ष एक या एक से अधिक निश्चित लक्ष्य होते हैं।
2- समस्यात्मक स्थिति में प्राणी को समस्या समाधान के लिये अनेक उद्दीपक संकेत प्राप्त होते हैं।
3- समस्या समाधान की स्थिति में प्राणी उद्दीपन संकेतों के प्रति अनेक अनुक्रियाएं करता है।
4- समस्या समाधान की स्थिति में विभिन्न अनुक्रियाएं भिन्न भिन्न तीव्रता के साथ उद्दीपक से संबंधस्थापित कर लेती है। इस प्रकार का अनुबन्धन प्राय: पूर्व अनुभवों के कारण होता है।
5- इस स्थिति में प्राणी को सही या गलत अनुक्रियाओं की सूचना प्राप्त होती रहती है।

जॉनसन (Johnson) के अनुसार -

1- समस्यात्मक स्थिति में प्राणी का व्यवहार लक्ष्योन्मुख होता है और इस व्यवहार में निरन्तरता पायी जाती है।
2- प्राणी की अनुक्रियाओं में निरन्तरता की समाप्ति उस समय होती है जब व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।
3- व्यक्ति एक ही समस्या का समाधान अलग अलग ढंग से करता है।
4- प्रथम बार समस्या समाधान में समय अधिक लगता है।

वालयस (Wallas,1926) के अनुसार समस्या समाधान की चार अवस्थाएं निम्न है :

1- **तैयारी (Preparation)** - यह पहली अवस्था है इसमें प्राणी समस्या से वास्तविक स्वरूप के विषय में चिन्तन करता है एवं समस्या समाधान से संबंधित सभी तथ्य व सामग्री का संकलन करता है।
2- **उद्भव काल (Incubation Period)** - यह वह अवस्था है जब व्यक्ति कई घण्टे व कई दिनों तक समस्या से जूझने के पश्चात् भी समाधान करने में असमर्थ रहता है। और भावी सफलता के प्रति आशान्वित होकर कुछ समय के लिये परेशान होकर उसे ज्यों का त्यों छोड़ देता है। कुछ समय बाद पुन: समस्या पर ध्यान देता है तथा कभी कभी दूसरी बार उसे समस्या का समाधान मिल जाता है।
3- **प्रदीप्तन (Illumination) या अंतदृष्टि (Insight)** - इस अवस्था में प्राणी को अकस्मात् समस्या का समाधान करने का ढंग समझ में आता है। इस स्थिति में उसे पूर्ण रूप से नवीन विचार प्राप्त होते हैं।
4- **मूल्यांकन (Evaluation) -** इस समस्या में प्राणी प्राप्त अंतदृष्टि के अनुसार समस्या का समाधान करता है और अपने विचारों का सत्यापन करता है। कभी कभी वह असफल भी हो जाता है और त बवह प्रारम्भ से पुन: समस्या समाधान पर मनन करता है और पुनरावृत्ति कर समस्या का समाधान करता है।

सभी मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्त किये गये तथ्यों का ध्यान में रखते हुए समस्या समाधान के निम्न पाँच कदम हैं -

1- **समस्या के स्वरूप को समझना (Understanding the nature of problem)** - समस्या के समाधान के लिए यह प्रथम चरण हैं। सबसे पहले यह समझा जाना चाहिए कि समस्या स्पष्ट (well defind) है अथवा अस्पष्ट (ill-defined)। समस्या समाधान के लिये किन पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार व्यक्ति सर्वप्रथम समस्या के विभिन्न पहलुओं की पहचान करता है और उनके स्वरूप पर ध्यान देता है जिससे वह उसके समाधान की विभिन्न कार्यनीतियों पर विचार कर सके।
2- **समाधान के बारे में सोचना (Generating solutions) -** यह समस्या समाधान का दूसरा चरण है जिसमें समाधान कर्ता (probles solver) समस्या के स्वरूप को निश्चित कर

लेने के पश्चात् उसके संभावित समाधान पर विचार करता है। इसके लिए वह गत अनुभवों (past experiences) तथा वर्तमान संभावनाओं का सहारा लेता है। वह समस्या समाधान के विभिन्न स्त्रोतों का अवलोकन करता है एवं विभिन्न उपायों तथा कार्ययुक्तियों को सूचीवद्ध करता है।

3- **समस्या समाधान के विभिन्न उपायों में से उत्तम उपाय का चयन करना (Including the best among available solutions)** - द्वितीय चरण में अवलोकित विभिन्न समस्या समाधान उपायों एवं कार्ययुक्तियों से वह सर्वोत्तम उपाय का चयन तीसरे चरण में करता है। वह यह निश्चित करता है कि कौनसे उपाय के द्वारा वह कम से कम समय में बिना त्रुटि के सफलता पूर्वक समस्या का समाधान कर पायेगा। इस निर्णय के लिये वह दूसरी अवस्था में अवलोकित एवं चयनित प्रत्येक उपाय का मूल्यांकन एवं तुलनात्मक अध्ययन करता है तथा एक स्पष्ट निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उसे किस उपाय को अपनाना चाहिए।

4- **उत्तम उपाय को कार्यान्वित करना (Carrying out the best solution)** - इस चरण में व्यक्ति चयनित उपाय को कार्यरूप प्रदान करता है अर्थात् चयनित उपाय के माध्यम से समस्या का समाधान करता है। यदि चयनित उपाय सरल है तो समस्या समाधान शीघ्र हो जाता है और उसमें कई चरण सम्मिलित हैं तो समस्या का समाधान थोड़ा कठिन हो जाता है।

5- **कार्यान्वित समाधान का मूल्यांकन करना (eveluation of solution)** - इस अवस्था में व्यक्ति समाधान की श्रेष्ठता एवं उपयुक्तता का मूल्यांकन करता है। वह समस्या समाधान में सम्मिलित विभिन्न अवस्थाओं के गुण-दोष का अवलोकन करता है तथा महत्त्वपूर्ण तथ्यों को पुन: प्राप्ति संकेतों के रूप में स्मृति में संचित करता है। इसका उपयोग वह अन्य समान समस्याओं के समाधान में करता है।

इस प्रकार समस्या समाधान के कई चरण हैं जिन्हें अपनाते हुए व्यक्ति सफलता पूर्वक समस्या का समाधान करता है।

18.9 सारांश (Summary)

तर्क चिन्तन को क्रमबद्ध करने की प्रक्रिया है। निगमनात्मक तर्कण में पहले से ज्ञात तथ्यों और नियमों के आधार पर निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। जबकि आगमनात्मक तर्कण में व्यक्ति दिये गये तथ्यों में अपनी ओर से नया तथ्य जोड़कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। निगमनात्मक तर्कण का निष्कर्ष आधार वाक्यों की अपेक्षा अधिक व्यापक नहीं हो सकता। जबकि आगमनात्मक तर्कण में निष्कर्ष आधार वाक्यों से हमेशा अधिक व्यापक होता है। समस्या समाधान एक संज्ञानात्मक व्यवहार है जिसमें व्यक्ति अपने प्रयत्नों से समस्या की मूलभूत स्थिति को लक्ष्य स्थिति में सफलतापूर्वक परिवर्तित करने के लिए उपयुक्त साधनों व तरीकों को अपनाता है। समस्या समाधान

की प्रमुख विधियां यादृच्छिकृत अन्वेषण विधि व स्वत: शोध अन्वेषण विधि है। कक्षा कक्ष समस्या समाधान कौशल सीखने से विद्यार्थी वास्तविक जीवन की समस्याओं का सफलतापूर्वक समाधान प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। इससे विद्यार्थी का संज्ञानात्मक व सामाजिक विकास होता है। वह उच्च स्तरीय चिन्तन को प्राप्त करता है। समस्या समाधान के विभिन्न चरण या अवस्थाओं को सही क्रम में अपनाकर व्यक्ति समस्या का सफलतापूर्वक समाधान प्राप्त करता है। इस पाठ में हमने तर्कण, आगमनात्मक व निगमनात्मक तर्कण, समस्या समाधान के उपाय, कक्षा कक्ष समस्या समाधान व समस्या समाधान के विभिन्न चरण या अवस्थाओं का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया।

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1- तर्कण से आप क्या समझते हैं? निगमनात्मक व आगमनात्मक तर्कण पर प्रकाश डालिये।
2- समस्या समाधान क्या है? इसमें विभिन्न उपायों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
3- कक्षा कक्ष समस्या समाधान पर टिप्पणी कीजिए।
4- समस्या समाधान के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिये।

18.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

- तिवारी, अविनाश (2004) ''प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र एक अध्ययन'', सरस्वती प्रकाशन इलाहाबाद।
- सिंह एवं सिंह (1998) ''आगमन तर्कशास्त्र'', सानद प्रकाशन दिल्ली
- त्रिपाठी, लाल बच्चनए (1994) 'आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान', हर प्रसाद भार्गव आगरा।
- अग्रवाल एवं माखीजा (2000) ''प्रयोगात्मक मनोविज्ञान'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- सिंह अरूण कुमार (2006) '' संज्ञानात्मक मनोविज्ञान'', मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
- Edward & Stephen (2011), "Congnitive Psychology, PHI Learning Private Limited, New Delhi
- Robert A Baron (2004) " Psychology, Fifth Edition, Pearson Education, New Delhi
- Robert L. Solser (2205) " Cognitive Psychology, Sixth Edition, Pearson Education Delhi

इकाई - 19

बुद्धि की प्रकृति और सिद्धान्त, मानसिक आयु का संप्रत्यय और बुद्धि लब्धि

Nature and Theories of Intelligence, Concept of Mental Age and Intelligence Quotient

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 बुद्धि का अर्थ एवं प्रकृति

19.4 बुद्धि के प्रकार

19.5 बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक

19.6 बुद्धि के सिद्धान्त

19.7 मानसिक आयु

19.8 बुद्धि लब्धि

19.9 विचलन बुद्धि लब्धि

19.10 सारांश

19.11 शब्दावली

19.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

19.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

19.1 प्रस्तावना (Introduction)

वास्तव में संसार कोई भी दो व्यक्ति पूर्ण रूपेण एक दूसरे के समान नहीं होते है। रंग रूप, कद काठी, शारीरिक संरचना, धन सम्पति, ज्ञान स्वभाव, धर्म, जाति वंश तथा अन्य अनेक गुणों में व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते है । यही कारण है कि विभिन्न शारीरिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक गुणों तथा क्षमताओं की दृष्टि से व्यक्तियों में अंतर देखे जा सकते हैं। शारीरिक गुणों के अन्तर तो प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं जबकि सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक गुणों के अन्तर व्यक्तियों के विभिन्न व्यवहार तथा क्रियाकलापों में परिलक्षित होते हैं। व्यक्ति के व्यवहार के अध्ययन की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक गुणों में अन्तरों का विशेष महत्व है। इस प्रकार की विभिन्नता होने के अनेक कारण हो सकते हैं।

व्यक्तिगत प्रयास के परिणामस्वरूप भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। जन्म के समय ही बालकों में शारीरिक अन्तर दखाई देने लगते हैं। तथा जैसे जैसे वे बड़े होते जाते हैं ये अंतर अधिक स्पष्ट होते जाते हैं तथा संसार में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो इस प्रकार के विभेदों को स्वीकार करने में कोई आपत्ति करें। जिस प्रकार से बालक रंग रूप, कद काठी, भार, स्वास्थ्य आदि शारीरिक गुणों में एक दूसरे से भिन्न होते हैं, ठीक उसी प्रकार वे मानसिक गुणों में भी भिन्न होते हैं। एक ही आयु या कक्षा के कुछ बालक मानसिक क्रियाओं को करने में तेज होते हैं, कुछ बालक औसत स्तर के तथा कुछ बालक कमजोर होत है। बच्चों के बड़े होने पर उनकी बौद्धिक विभिन्नतायें भी स्पष्ट होती चली जाती है। कुछ बालक एक ही बार बतलाने पर शब्दों का उच्चारण, वस्तुओं या व्यक्तियों के नाम आदि सीख जाते हैं, जबकि कुछ बालकों को अनेक बार बतलाना पड़ता है। बालकों में इस प्रकार के अंतर प्राय: बुद्धि के कारण होते है।

19.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- बुद्धि का अर्थ समझ पायेंगे।
- बुद्धि की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- बुद्धि की दृष्टि से वैयक्तिक विभिन्नताओं को समझ सकेंगे।
- बुद्धि की विभिन्न सिद्धान्तों का अर्थ एवं उपयोग समझ पायेंगे।
- मानसिक आयु का अर्थ समझ सकेंगे।
- बुद्धि लब्धि का अर्थ समझ सकेंगे।
- बुद्धि लब्धि क सूत्र का उपयोग कर विभिन्न व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि ज्ञात कर सकेंगे।
- बुद्धि लब्धि सूत्र की सहायता से बुद्धि लब्धि वर्गीकरण समझ सकेंगे।
- बुद्धि के विभिनन प्रकारों को समझ सकेंगे।

19.3 बुद्धि का अर्थ एवं प्रकृति (Meaning & Nature of Intelligence)

बुद्धि के अध्ययन को तीन पक्षों में बांटा जा सकता है। कार्यात्मक पक्ष, संरचनात्मक पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष में बांटा जा सकता है। कार्यात्मक पक्ष के अन्तर्गत बुद्धि के कार्यों का अध्ययन आता है। बुद्धि क्या है? इस प्रश्न का उत्तर भी इसी पक्ष में आ जाता है। संरचनात्मक पक्ष में बुद्धि की संरचना आती है। बुद्धि के सिद्धान्त तथा इसे प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा भी इसी शीर्षक के अंतर्गत की जायेगी। क्रियात्मक पक्ष में बुद्धि का मापन आता है। बुद्धि मापन की तकनीकों तथा बुद्धि परीक्षणों का वर्णन इसी पक्ष के अंतर्गत किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में बुद्धि के अर्थ, प्रकृति तथा सिद्धान्तों की चर्चा की गई है।

फ्रीमैन ने बुद्धि की अनेक परिभाषाओं का विश्लेषण किया तथा कहा कि इन सभी परिभाषाओं को निम्नांकित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है।

1. बुद्धि क्या है ?

यह बात सभी मनोंवैज्ञानिक मानते है कि शरीरधारियों में मनुष्य सबसे अधिक बुद्धिमान प्राणी है। मानव शिशु अपनी जन्मजात बुद्धि श्रेष्ठता के कारण ही अन्य पषुओं की अपेक्षा अधिक सीक सकता है। परन्तु बुद्धि का स्वरूप क्या है। बुद्धि किन तत्वों से मिलकर बनी है। अथवा बुद्धि में कौन से कारक कार्य करते है। इसके बारे में मनोंवैज्ञानिकों में मतभेद है। कई बार मनों- वैज्ञानिक परिशदो में बुद्धि के स्वरूप पर विचार विमर्श किया गया , परन्तु विष्व के मनोंवैज्ञानिक भी किसी सर्वमान्य निश्कर्श पर नही पहुच सके । संक्षेप में विभिन्न मनों-वैज्ञानिकों द्वारा की गई बुद्धि की व्यांख्याओं और दी गई परिभाषाओं के आधार बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्यों के चार प्रमुख (लक्षण) माने जाते है :

(1) बुद्धिमत्त समायोजन या अनुकूलन करने की योग्यता है-मनोवैज्ञानिकों का एक समुदाय बुद्धि की परिभाषा करते समय व्यक्ति द्वारा अपने परिवेषके साथ अनुकूलन या समायोजना पर अधिक बल देता है। स्टन के अनुसार '' बुद्धि जीवन की नवीन समस्याओं और परिस्थितियों के साथ अनुकूल करने की सामान्य योग्यता है। ''1

मैक्डूगल के अनुसार ''बुद्धिमत्ता अनिवार्य रूप से नवीन अभियोजन करने की क्षमता है। ''

2 काल्विन भी बुद्धिमत्ता को अपने वातावरण के अभियोजन की योग्यता मानता है । '

3 उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है। कि इन विद्वानों के अनुसार बुद्धिमत्ता व्यक्ति द्वारा जीवन से समायोजन करने की समान्य शक्ति है, जिसकी सहायता से वह जीवन में नवीन परिस्थितियों का सामना करता है और और पारिवेशिक आवश्यकताओं के अनुसार व्यवहार को पुनर्गठित करता है। जबकि अल्पबुद्धियुक्त व्यक्ति सीमीत प्रतिक्रियाएँ ही करता है। और उसका भी अल्प-रचनात्मक होता है ।

(2) बुद्धि सीखने की योग्यता है- मनोंवैज्ञानिकों का दूसरा समुदाय सीखने की योग्यता को ही बुद्धिमत्ता मानता है अर्थात् बुद्धिमान व्यक्ति अल्पकाल में ही सीखता और उसके सीखने का क्षेत्र भी विस्तृत होता है। कॉल्विन के अनुसार -बुद्धि सीखने और अभियोजन करने की योगयता हैं। कॉल्विन के शब्दों में ''एक व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान हैं जितना कि उसने नवीन परिस्थितयों समायोजन करना सीख लिया हैं अथवा सीख सकता है। ''1 वुड़रो के अनुसार ''बुद्धि ज्ञान अर्जन करने कि क्षमता ।

2 इसी प्रकार ड़ीयरबांन के अनुसार , बुद्धि सीखने अथवा अनुभव से लाभ करने की क्षमता है। ''3 जो सीख सकता है वही बुद्धिमान एवं कुषाग्र - बुद्धि समझा जाता है। विद्वत्ता का बुद्धिमत्ता में सदैव से घनिश्ठ सम्बन्ध रहा है। बकिवम के शब्दों में : सीखने की योग्यता ही बुद्धिमत्ता है।

(3) अुद्धि अर्मत चिन्तन करने की क्षमता - मनोंवैज्ञानिक का तीसरा समुदाय अर्मूत करने की क्षमता को ही बुद्धिमता है। टरमैन अनुसार ''बुद्धि अर्मूत चिन्तन की योग्यता है। ''

5 स्वयं बिने जिसने पहली बुद्धि -परिक्षा का निर्माण किया था , बुद्धि में अर्मत चिन्तन अर्थात् ज्ञानार्जन, आविष्कार , निर्देश और आलोचना अदि मानसिक तत्वों पर विशेष बल देता हे। विले के शब्दो में ''समझ, आविष्कार , लक्ष्य एवं आलोचना -इन्ही चार शब्दों में वृद्धि निहित है। ''

6 जीवन की घटनाओं, परिस्थितियों और समस्याओं का सफलातार पूर्वक सामना करने के लिए बद्धिमान व्यक्ति प्रत्यय, शब्दिक प्रतीक एवं अंक प्रतिक आदि की सहायता से अमूत विचार - प्रक्रिया चलाता है।

(4) बुद्धि समस्या - समाधान की योग्यता है - मनोंवैज्ञानिकों का चौथा समूह बुद्धि को समस्यां-समाधान की योगयता मानता है। उदाहरणार्थ, बट के अनुसार , ''बुद्धि सचिंत रूप से पिर्णय करने, समझने तथा तर्क करने की योग्यता है। ''7

बिना चिन्तन के किसी सम्या का समाधान नही होता और किसी भी समस्या को हल करने के लिए कुछ-न-कुछ अमूर्त चिन्तन आवश्यक करना पड़ता है। स्पीयर भी बुद्धिमता का प्रकाशन अर्मूत चिन्तन में मानता है। रायबर्न के अनुसार बुद्धि वह शक्ति हैजो हमको समस्याओं कार समाधान करने और अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करती है ।1

वास्तव में इन विचारों प्रकार की परिभाषाओं में कोई विशेष अन्तर नही है। जिस व्यक्ति में सीखने की योग्यता होगी, वह परिवर्तित परिस्थितियों के साथ अपने व्यवहार का उचित समायोजन भी कर सकता है । जिन नवीन परिस्थितियों में अपने व्ययहार का परिवर्तित करता हैं, उनसे ही वह नवीन अनुभव और भी सीखता है। तीसरे प्रकार की परिभाषा भी पहली और दूसरी परिभाषा पृथक नही होती है। कोई भी व्यक्ति अर्मूत विचार अनेक घटनाओं, वस्तुओं दषाओं गुणों सम्बन्धों के प्रतिक होते है चिन्हों और प्रतीको की सहायता से ही बुद्धिमान मानव अपने पिछले अनुभवों पर मनन कर सकता हैं और उनके परिणामों को परिस्थियों में प्रयुक्त कर सकता है। पिछले अनुभवों में प्रकाश में ही नवीन परिस्थितियों और समस्याओं को सुफलतापूर्वक समझ लेता है और उन्हें ठिक प्रकार से समझर उचित प्रतिक्रिया भी करता संक्षेप में, अर्मूत विचार करने की आवश्यकता से व्यक्ति को नवीन समायोजन करने में सहायता मिलती है। और उसके व्यवहार के समायोंजन का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाता है।

आधुनिक मनोंविज्ञान ने बुद्धि सम्बधी चारों प्रकार की परिभाषाओं को मिलाकर नवीन परिभाषाएँ भी प्रस्तुत ही हैं जिनमें से दां परिभाषाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ड़ी0 वैशलर द्वारा की गई बुद्धि की परिभाषा का आशय इस प्रकार हैं : ''बुद्धि व्यक्ति की उन सब व्यापक योग्यताओं और क्षमताओं का एकीकरण है। जो उसकी क्रियाओं को उददेश्यमय बनाती है। , उसकी विचार प्रक्रिया को तर्कहीन बनाती है। तथा परिवेष का सामना करने में उसके व्यवहार को प्रभावशाली बनाती है।''2

अतएव स्पष्ट है। कि वैषलर ने अपनी परिभाषा में तीन बातों पर बल दिया है : (क) उददेष्य, (ख) विचार-प्रक्रिया, (ग) वातावरणको प्रभावित करना ।
स्टोडार्ड के अनुसार बुद्धि उन कायोर्ं को करने की शक्ति है। जिनमें कठिनाई हो, (ख) जटिलता हो, (ग) अमूर्तता तथा मितवययता हो, (घ) उददेश्य प्राप्त करने की क्षमता हो, (ड़) जिसका सामाजिक मूल्य हो, (च) जिसको करने में मौलिकतास की अपेक्षा हो, (छ) विशिष्ट परिस्थितियों में भी शक्ति का केन्द्रीयकरण करके (ज) संवेगों पर नियन्त्रक करके किसी कार्य को पुरा करने की योग्यता हो ।

ऊपर से वर्णन से स्पष्ट है कि बुद्धि को स्वरूप कुछ ऐसा होता है जिसे किसी एक कारक या क्षमता के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इसमें भिन्न भिन्न प्रकार की क्षमताएं होती है। थर्सटन **138** ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि बुद्धि के कुल **7** ऐसी क्षमताएं होती हैं। जिन्हें प्रधान मानसिक क्षमताएं कहा जाता है। गिलफोर्ड **1967** ने हाल ही में बताया है कि बुद्धि में कुल **150** ऐसी क्षमताएं होती है।

बाद में बर्नन **(P.E. Vernon, 1969)** ने बुद्धि संप्रत्यय के तीन अर्थ बतलाये हैं जो लोकप्रिय होने के साथ आकर्षक भी दिखता है। उनके द्वारा बतलाए गए बुद्धि के तीन अर्थ इस प्रकार है **-**

1 जननिक क्षमता के रूप में बुद्धि - इस अर्थ में बुद्धि पूर्णत: वंशागंतहोता है। इसे हेब **1979** ने बुद्धि 'ए' कहा है जो स्पष्टत: बुद्धि का एक जीनोटाइपिक प्रकार है तथा इसमें बुद्धि को व्यक्ति का एक आनुवंशिक गुण माना जाता है।

2 प्रक्षित व्यवहार के रूप में बुद्धि - इस अर्थ में बुद्धि व्यक्ति के जीन्स एवं वातावरण की अन्त:क्रिया का परिणाम होता है तथा जिन सीमा तक व्यक्ति बुद्धिमतापूर्ण ढंग से व्यवहार करता है, उस सीमा तक उसे बुद्धिमान समझा जाता है। बुद्धि का यह अर्थ फेनोटाइपिक प्रारूप का है। उसे हेब ने बुद्धि बी कहा है।

3 परीक्षण प्राप्तांक के रूप में बुद्धि - इस अर्थ में बुद्धि की एक क्रियात्मक परिभाषा दी गई । इस अर्थ में बुद्धि यही है जो बुद्धि परीक्षण मापता है। इसे हेब ने बुद्धि सी की संज्ञा दी है।

सैटलर **1974** के अनुसार **A, B** तथा **C** में से बुद्धि **C** के साथ कइर्् तरह की समस्याएं संबंधित होती है, क्योकि बहुत से ऐसे कारक है जो परीक्षार्थी के परीक्षण निष्पादन को कम कर सकता है। इसमें परीक्षार्थी में अभिप्रेरण की कमी, परीक्षण के स्वरूप से अनभिज्ञ होना, परीक्षण के निर्देश को ठीक से न समझना, परीक्षण का अविश्वास आदि प्रमुख हैं। जब परीक्षार्थी के परीक्षण निष्पादन इन कारणों से कभी हो जाती है, तो उसे भी बुद्धि **C** के अर्थ के अनुसार कम बुद्धि का समझा जाएगा जबकि सच्चाई यह है कि इन कारणों के न होने पर उसका निष्पादन अच्छा हो सकता था।

19.3.1 बुद्धिमतापूर्णव्यवहार के सामान्य लक्ष्य

1 बुद्धिममत्तापूर्ण व्यवहार समायोजनात्मक अथवा वातावरण के साथ अनुकूलनात्मक होता है।

2 इसके द्वारा व्यवहार के सभी क्षेत्रों में मानसिक कुशलता प्राप्त होती है। रर्ट के अनुसार बुद्धि जन्मजात सार्वभौमिक मानसिक क्षमता है।

3 इसका सहज प्रकाशन सीखने के कार्यों में होता है। वह व्यक्ति की सीखने, ग्रहण करने और अनुकरण करने की क्षमता है।

4 मानव व्यवहार में बुद्धि का सर्वोच्च विकास, विशेषकर, अर्मूत, चिन्तन, तर्क और रचनात्मक कल्पनाओं में देखा जा सकता है।

5 बुद्धिमान व्यक्ति के व्यवहार में अथवा प्रतिक्रियाओं में उत्तरोत्तर सुधार होता रहता है।

6 बुद्धिमतापूर्ण व्यवहार उद्देश्य मय होता है। बुद्धि का सामान्य उद्देश्यजीवन की समस्याओं को हल करना है।

7 बुद्धि का सहज विकास सामाजिक वातावरण में होता है।

8 बुद्धिमतापूर्ण व्यवहार संवेगों से बहुत कम प्रभावित होता है।

9 बुद्धि पर लिग - भेद का कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता । हां वंशनुक्रम अथवा वातावरण का प्रभाव पड़ सकता है।

10 शिक्षा बुद्धि का प्रखर बनाती है।

19.4 बुद्धि के प्रकार (Types of Inelligence)

ई.एल. थार्नडाइक (E.L. Thorndike) ने बुद्धि के तीन प्रकार बतलाये हैं -

1 सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence)

2 अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence)

3 मूर्त बुद्धि (Concrete Intelligence)

इन तीनों का वितरण इस प्रकार है -

1 **सामाजिक बुद्धि -** सामाजिक बुद्धि से तात्पय्र वैसी सामान्य मानसिक क्षमता से होत है जिसके सहारे व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को ठीक ढंग से समझता है तथा व्यवहारकुशलता भी दिखाता है। ऐसे लोगों को सामाजिक संबंध काफी अच्छा होता है तथा समाज में इसकी प्रतिष्ठा काफी होती है। इसमें सामाजिक कौशलता काफी होता है। जिन व्यक्तियों में सामाजिक बुद्धि होती है, उनमें अन्य लोगों के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की क्षमता, अथवा अच्छा आचरण करने की क्षमता एवं समाज के अन्य लोगों से मिल जुलकर सामाजिक कार्यों में हाथ बांटने की क्षमता अधिक होती है। ऐसी बुद्धि व्यक्ति को जीवन में व्यावहारिक सफलता दिलाने में काफी सहायक होती है। इसके अभाव में व्यक्ति में अन्य तरह की बुद्धि होने के बावजूद वह अपने सामाजिक जीवन को सफल बनाने में सहायक नहीं हो पाता है, क्योंकि वह इसके अभाव में समाज में प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि सामाजिक बुद्धि एक ऐसी बुद्धि है जो व्यक्ति को सामाजिक परिस्थितियों में समायोजित होने में मदद करती है। इसी अर्थ में ड्रीवर एवं बालरस्टीन 1984 ने सामाजिक बुद्धि को परिभाषित करते हुए कहा है, ''सामाजिक बुद्धि बुद्धि का एक प्रकार है जो किसी व्यक्ति में अन्य व्यक्तियों एवं सामाजिक संबंधों के प्रति व्यवहार निहित होता है।''

सामाजिक बुद्धि को मापने का प्रयास भारतीय मनोवैज्ञानिकों तथा विदेशी मनोवैज्ञानिकों दोनों ही द्वारा किया गया है। भारत में घोष 1959 ने बंगाली भाषा में सामाजिक बुद्धि मापने के लिए एक परीक्षण का निर्माण किया है तथा गांगोपाध्याय 1974 ने भी सामाजिक बुद्धि मापने के लिए एक परीक्षण का निर्माण किया है। उसी तरह अमरीका के गिल्फोर्ड तथा डर्क 1926 तथा कॉनबैक 1979 ने भी सामाजिक बुद्धि को मापने का एक परीक्षण विकसित किया है।

2 **अमूर्त बुद्धि -** अमूर्त विषयों के बारे में चिन्तन करने की क्षमता को ही अर्मूत बुद्धि कहा जाता है। ऐसी बुद्धि में व्यक्ति शब्द, प्रतीक तथा अन्य अर्मूत चीजों के सहार अच्छा से चिन्तन कर लेता है। इस ढंग की क्षमता दार्शनिकों, कलाकारों, कहानीकारों आदि में अधिक होती है। ऐसे लोग प्राय: अपे विचारों, कल्पनाओं एवं मानसिक प्रतिमाओं के सहारे बड़ी बड़ी समस्याओं का समाधान कर लेते हैं। जिन छात्रों में अमूर्त बुद्धि अधिक होती है, उनकी शैक्षिक उपलब्धियां अधिक श्रेष्ठ होती है। जिन व्यक्तियों में अमूर्त बुद्धि अधिक होती है, वे सफल कलाकार, पेण्टर, गणितज्ञ एवं कहानीकार आदि बनते हैं। टरमैन 1937 के

अनुसार अमूर्त बुद्धि का महत्व छात्रों के लिए अन्य दूसरे तरह की बुद्धि से अधिक होता है। अमूर्त बुद्धि का कुछ लोगों ने सैद्धान्तिक बुद्धि भी कहा है।

3 **मूर्त बुद्धि** - मूर्त बुद्धि से तात्पर्य वैसी मानसिक क्षमता से होता है जिसके सहारे व्यक्ति मूर्त या ठोस वस्तुओं के महत्व को समझता है, उनके बारे में सोचता है तथा अपनी इच्छा एवं आवश्यकतानुसा उनमें परिवर्तन लाकर उन्हें उपयोगी बनाता है। इसे व्यवहारिक बुद्धि भी कहा जाता है। जिन बालकों में मूर्त बुद्धि अधिक होती है उनमें हस्तकलाओं की क्षमता अधिक होती है तथा वे आगे चलकर एक सफल इंजीनियर या कुशल कारीगर बनने में सफलता प्राप्त करते हैं।

19.5 बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Intelligence)

बुद्धि एक जन्मजात योग्यता है अथवा अर्जित योग्यता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। मनोवैज्ञानिक इस बात पर एकमत नहीं हो पाए हैं कि बुद्धि को निर्धारित करने वाला मुख्य कारक वंशानुक्रम है या वातावरण से, इस प्रश्न के संबंधमें सदैव ही दो मत रहे हैं। एक मत के अनुयायी मनौवैज्ञानिकों का कहना है कि बुद्धि मुख्य रूप से वंशानुक्रम से निर्धारित होती है तथा वातावरण की इसमें गौण भूमिका रहती है। इसके विपरीत दूसरे मत के मानने वाले मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि का निर्धारण मुख्य रूप से वातावरण के द्वारा होता है तथा वंशानुक्रम का इससे कोई विशेष महत्व नहीं है। बुद्धि के संबंधमें इस प्रकार के मतभेद को मनोविज्ञान में प्रकृति पोषण विवाद भी कहा जाता है।

वंशानुक्रम - व्यक्तिगत भिन्नता के कारकों को ज्ञात करने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारं हो गए थे। ब्रिटिश वैज्ञानिक पर फ्रांसिस माल्टन ने अनेक महान व्यक्तियों के पारिवारिक इतिहास का अध्ययन किया तथा पाया कि उनमें से अनेक व्यक्ति परस्पर रक्त संबंधीथे। इस परिणाम के आधार पर उसने कहा कि उच्च कोटि की बुद्धि प्राय: कुछ विशिष्ट कुलों में ही दृष्टिगोचर होती है। तब उन्होंने व्यक्तिगत भिन्नता की वंशानुक्रमी प्रकृति की मान्यता का प्रतिपादन किया। गाल्टन ने 1866 में प्रकाशित अपनी पुस्तक में बुद्धि की विभिन्न्ता का एक मात्र कारक जैवकीय

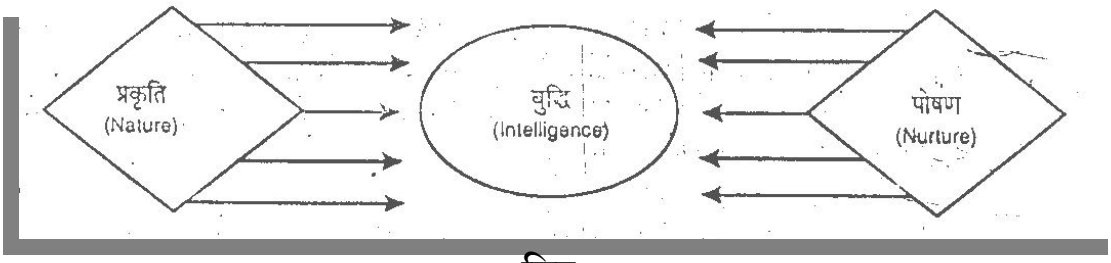

चित्र

बुद्धि पर प्रकृति पोषण प्रभाव

वंशानूक्रम को बताया। उस समय के अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने गाल्टन के इस विचार को एक स्वीकृत तथ्य के रूप् में ग्रहण कर लिया। बाद में टरमैन तथा गोडाई आदि मनोवैज्ञानिकों में भी अनेक व्यक्तियों के पारिवारिक इतिहास का अध्ययन करके बुद्धि के वंशानुक्रमणीय होने की मान्यता की पुष्टि की। जुड़वा बच्चों तथा भाई बहिनों पर किये गए अध्ययनों के आधार पर भी इस मान्यता

की पुष्टि अनेक मनोवैज्ञानिकों के द्वारा की गई है। सन् 1966 में आर्थर जेनसेन ने बुद्धिलब्धि पर किए गए अनुसंधानों का सर्वेक्षण करके निष्कर्ष निकाला कि बुद्धि मुख्यत: वंशानुक्रम से निर्धारित होती है। उसने कहा कि बुद्धि के लगभग 75 से 80 प्रतिशत भाग का निर्धारण, जेनेटिक विभिन्नताओं से होता है, जबकि शेष 20 से 25 प्रतिशत का निर्धारण वातावरणीय प्रभावों से होता है।

वातावरण - बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में आयोवा विश्वविद्यालय में किए गए अनुसंधान कार्यों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर बुद्धि तथा वातावरण में संबंध स्थापित किया जाने लगा। अनेक समाजशास्त्रियों तथा मानव व्यवहारवादियों ने भी अपने अपने अध्ययनों से वातावरण की महत्ता की सिद्ध करने का प्रयास किया। इन लोगों ने बताया कि अनुकूल वातावरण में ही मानसिक योग्यता का विकास होता है तथा अनुप्रयुक्त वातावरण में रहने से बुद्धि कुंठित हो जाती है। इस प्रकार से इन मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक योग्यता तथा बुद्धि को वातावरण के द्वारा निर्धारित होने वाला गुण बताया तथा वंशानुक्रम के महत्व को अस्वीकार कर दिया। बैंजामिन क्लूम, (Benjamin Bloom, 1964) कार्य ब्राइटर व सिगफ्रैड एंजिलमैन (Carl Beriter and siegfriend Engelmann, 1966) तथा क्लार्क व क्लार्क (Clark and Clark, 1959) आदि वातावरण बादियों ने बुद्धिलब्धि पर किए गए अनुसंधानों के आधार पर बुद्धि का वातावरण से प्रभावित होने वाला गुण बताया। उनके अनुसार जन्म से लेकर चार वर्ष आयु तक की अवधि में उत्तम वातावरण प्रदान करके बुद्धिलब्धि को बढ़ाया जा सकता है।

वंशानुक्रम तथा वातावरण की अन्तक्रिया - वंशानुक्रमवादियों तथा वातावरण के द्वारा बुद्धि के संबंध में अपने अपने पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत किए जाने की होड के फलस्वरूप इस प्रकरण पर एक विवाद या उत्पन्न हो गया। वंशानुक्रमणवादी मनोवैज्ञानिक वातावरण के प्रभाव को तथा वातावारणवादी मनोवैज्ञानिक वंशानुक्रम में या वातावरण से निर्धारित होने से संबंधमें कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं प्राप्त हो सका है। कुछ अनुसंणानों से बुद्धि के वंशानुक्रम से निर्धारित होने के परिणाम प्राप्त होते है, जबकि कुछ अनुसंधान बुद्धि को वातावरण से निर्धारित होने के परिणाम देते है। बुद्धिलब्धि परीक्षणों के निर्माण में संग्रह अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को वातावरण से प्रभावित होने की धारणा को स्वीकार किया। जैव रसायन, प्रजजनशास्त्र, विकास, मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों में विकास प्रक्रिया का ग्रहण अध्ययन किया गया तथा इसके निष्कर्षों के आधार पर वंशानुक्रम व वातावरण की अन्तक्रिया के दृष्टिकोण विचार प्रतिपादन किया गया। वर्तमान समय में यह मत अधिक मान्य है। इस मत के अनुसार वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों की समान रूप से महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। सभी प्रकार के विकास इन दोनों का प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम पर हमारा नियंत्रण लगभव नहीं के बराबर होता है, जबकि वातावरण को हम इच्छानुसार परिवर्तित कर सकते है। स्वस्थ, प्रेररणादायक तथा उत्तेजनापूर्ण वातावरण प्रदान करके बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास अधिकतम स्तर तक किया जा सका है । शैशवावस्था में बालक को प्राप्त अच्छे वातावरण के फलस्वरूप उनकी बुद्धिलब्धि को बढ़ाने के अनेक सफल प्रयोग हो चुके हैं।

19.6 बुद्धि के सिद्धान्त (Theories of Intelligence)

बुद्धि के सिद्धान्त

बुद्धि के सिद्धान्त से अभिप्राय बुद्धि की प्रकृति तथा संरचा के क्रमबद्ध स्पष्टीकरण से है। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की प्रकृति तथा संरचना को जानने के लिए अनेक विश्लेषाणत्मक अध्ययन

किये है। इस प्रकार के अध्ययनों का मुख्य उद्देश्य बुद्धि के तत्वों या कारकों को ज्ञान करना था जिससे बुद्धि की जटिल प्रक्रिया को अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सके। बुद्धि के सिद्धान्तों को प्राय: उनके द्वारा प्रतिपादित कारकों की संख्या के आधार पर वगीकृत किया जाता है। इन्हें बुद्धि के कारकीय सिद्धान्त कहा जाता है। इन कारकीय सिद्धान्तों के प्रतिपादन मनोवैज्ञानिकों को दो वर्गों पिण्डक तथा विभाजन में बांटा जाता है। पिण्डक वर्ग के मनोवैज्ञानिक बुद्धि को एक सामान्य या संगठित पिण्ड रूपी क्षमता के रूप में स्वीकार करते हैं जबकि विभाजन वर्ग के मनोवैज्ञानिक पृथक पृथक अनेक योग्यताओं के रूप में बुद्धि को देखते हैं। बुद्धि के प्रमुख कारकीय सिद्धान्त निम्नवत सूचीबद्ध किये जा सकते हैं -

1- एक कारक सिद्धान्त
2- द्वि-कारक सिद्धान्त
3- बहु कारक सिद्धान्त
4- समूह कारक सिद्धान्त
5- पदानुक्रमिक सिद्धान्त
6- वृद्धि संरचना
7- तरल ठोस सिद्धान्त
8- बहु वृद्धि संरचना

विगत शती से साठ के दशक तक बुद्धि के स्वरूप का स्पष्टीकरण कारकीय सिद्धान्तों के द्वारा ही किया जाता रहा है। परन्तु बाद में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक के द्वारा संज्ञान, बोध, तथा तर्क आदि पर अधिक ध्यान दिये जाने के फलस्वरूप वृद्धि को भी संज्ञानात्मक व्यवहार के रूप में देखा जाने लगा एवं बुद्धि के जिन सिद्धान्तों में बौद्धिक प्रक्रिया के रूप में बुद्धि को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है उन्हें प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त कहते हैं। ऐसे ही दो प्रमुख सिद्धान्त जीन पियाजे तथा स्टैनवर्ग के द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं, जो निम्नवत है -

1- संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त
2- त्रितन्त्र सिद्धान्त

बुद्धि के सिद्धान्त (Theories of Intelligence)

हेल्स्टीड के अनुसार बुद्धि के सिद्धान्तो का बर्गीकरण उनके अस्वीकृत आधारभूत तत्वों की संख्या के उपर किया गया हैं। इस आधार पर हम बुद्धि के चार सिद्धान्तों, जिन्हें सुप्रसिद्ध मनोंवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है, यहाँ पर वर्णन करगें । वे इस प्रकार है - 1. एक - खण्ड़ सिद्धान्त, 2. द्वि-खण्ड़ सिद्धान्त[5], 3. त्रि-खण्ड़ सिद्धान्त, 4. बहु-खण्ड़सिद्धान्त[7] (1) एक-खण्ड़ सिद्धान्त -इस सिद्धान्त का प्रतिपादन बिने टरमैन और स्टर्न महोदय ने किया है। बिने का मत है कि बुद्धि अपने में एक पूर्ण खण्ड है। एक इकाई है वह अविभाज्य है। बिने की दृष्टि से सम्यंक् निर्णय की योगयता[8] ही बुद्धि है। टरमैन भी इसे एक पूर्ण खण्ड़ मानते है। उनके विचार से सम्बोधना के अनुसार सोचने की शक्ति ही बुद्धि है। एर्बिगहॉस के अनुसार, संष्लेशण की योंग्यता ही बुद्धि हैं निश्कर्श यह निकलता हैं कि विविध स्वतन्त्र प्रभावों को एक पूर्ण इकाई के रूप में अभिव्यक्त करने की योग्यता ही बुद्धि हैं अथवा विभिन्न भागों को पूर्ण बताने की योग्यता ही बुद्धि है। एक खण्ड़ सिद्धान्त के समर्थक बुद्धि को एक इकाई मानते है।

इस सिद्वान्त के अनुसार सम्पूर्ण बुद्वि एक समय में सक्रिय होकर एक ही प्रकार का कार्य सम्पन्न् करती है। किन्तु इस सिद्वान्त की आलोचना इस तथ्य के आधार पर की गई है। कि योग्यता की विभिन्न परिक्षाओं में कोई भी पूर्ण आपसी सम्बन्ध् नही होता । अत: कोई एक ऐसी योग्यता -खण्ड नही हो सकता जिसे हम बुद्वि कह सकें, क्योकि अलग-अलग प्रकार की मानसिक योग्यताओं के लिए अलग प्रकार की बुद्वि परिक्षाएँ की जाती है।

(2) दि-खण्ड सिद्वन्त **-** इस के सर्वप्रथम प्रतिपादक - स्पीयरमैन महोदय थे। सन् **1904** ई**0** में ही इस सिद्वान्त पर बल दिया । इस सिद्वान्त के अनुसार 'बुद्वि' दो भागों से मिलकर बनी होती है।-पहला - सामान्य बौदिक खण्ड **(G)** दूसरा विशिष्ट खण्ड़ **(s)**। बुद्वि का सामान्य खण्ड़ **''G''**मानव-जीवन के सभी कार्यो में भाग लेता है। विज्ञान दर्षन और अन्य इसी प्रकार के विशयों एवं कायोर्ं में सफलता सामान्य खण्ड़ के उपर ही निर्भर रहती है। किंन्तु कुल विशिष्ट कायोर्ं में जिनमें विषेशित बुद्वि की आवश्यकता पड़ती है। 'विशिष्ट खण्ड़ ' **'s'** द्वारा ही सहायता ली जाती है। जैसे कोई कौसल**,** कला या शिल्प की सिद्वहस्तता विशिष्ट बुद्वि खण्ड़ **'s'** द्वारा ही प्राप्त होती है। इसमे सामान्य खण्ड़ **'G'**की कोई विशेष आवश्यकता नही पड़ती प्रत्येंक व्यक्ति में एक सामान्य खण्ड़ **'G'**और बहुत से विशिष्ट नैपुण्य अथवा विशिष्ट खण्ड़ **'s'**होते है। सभी प्रकार के कार्यो में तत्सम्बन्धी**,** एक विशिष्ट खण्ड़ **'s'** की आवश्यकता पड़ती है। जबकि सभी कार्यो में सामान्य खण्ड़ **'G'** की उपेक्षा होती है। बहुत से ऐसे कार्य भी होते है**,** जिनमें **'G'**ख्ण्ड़ का अधिक महत्व होता है और बुहुत ऐसे भी जिनमें **'G'** खण्ड़ की आवश्यकता **'s'** खण्ड़ या खण्ड़ों की उपेक्षा गौण होती है। **'G'** खण्ड़ को प्रत्येक्ष रूप से कभी नापा नही सकता है। इसकी माप अप्रत्येक्ष रूप से उन कार्यो के आपसी सम्बन्ध के द्वारा की जाती जिनमें **'G'** की आवश्यकता होती है।

स्पीयरमैन नें आगे चलकर **'G'** और **'S'** खण्ड़ के साथ एक समूह खण्ड़ को और जोड़ दिया । बुद्वि के समूह खण्ड़ स उसका तात्पर्य कुछ ऐसे खण्ड़ों से था जो **'G'** खण्ड की अपेक्षा कम सामान्य अध्कि विस्तृत एवं सजातीय तथा **'S'** खण्ड़ की अपेक्षा अधिक सामान्य**,** सुदूर विस्तृत एवं सजातीय होते है। उदाहरण के लिए**,** विशिष्ट योग्यता (**'S'** खण्ड़ अपेक्षित) और सामान्य बुद्वि (**'G'** खण्ड़ अपेक्षित) के बचि में एक सर्वतोमुखी योग्यता (समूह खण्ड़ अपेक्षित) की आवश्यकता होती है। जो सामान्य और विशिष्ट **,** दोनो योग्यताओं के बीच की खाई को पाट कर देती है।

(3) त्रि-खण्ड़ सिद्वान्त-इस सिद्वान्त के अनुसार बुद्वि तीन भागों से मिलकर बनी होती है। स्पीयरमैन महोदय ने ही जो दूसरे सिद्वान्त में ही आस्था रखते थे बाद में **'G'** और **'S'** खण्ड़ के साथ सामूहिक खण्ड़' **1** को जोड़ा । जैसे की उपर वर्णन कीया जा चुका है**,** यही **'G' 'S'** और समूह खण्ड़' मिलकर तीन खण्ड हो जाते है। जिनके आधार पर ही यह 'त्रि-खण्ड़ सिद्वान्त' विकसित हुआ।

थॉर्नडाइक महोदय ने इस सिद्वान्त का खण्डन किया और कहा की एक सामान्य **'G'** खण्ड को मानना तथ्यों का बहुत अधिक सरलीकरण करना है। उनका मत था कि बौद्विक कार्य एक जटिल तन्तुं सस्थान द्वारा सम्पन्न होते है। जो विभिन्न शैलियों में सम्पादित होते है। वर्णन की दृद्वि से ये शैलियाँ अत्यन्त जटिल और एक दूसरे से भिन्न होती है। एवं एक **'G'** खण्ड़ और बहुत से **'S'** खण्ड़ों के मिश्रण अथवा एवं एक **'G'** खण्ड़ और 'समुह' तथा **'S'** खण्ड़ के सहयोग द्वारा स्पष्ट नही होती है।

(4) यह -खण्ड़ सिद्वान्त -यह सिद्वान्त विस्तृत सांख्यिकीय विष्लेशण के उपर आधारित है। थस्टोन ने अपने षिश्यों की सहायता से गणित के आधार पर व्यक्ति के सहस्त्र गुणों का पृथक्करण और मापने की विधि निकाली, जो खण्ड़ विष्लेशण विधि कहलाती है। थस्त्रओन के अनुसार बुद्वि प्रारम्भिक मानसिक योग्यताओं से मिलकर बनी होती है। वे इस प्रकार है- **(1)** दृष्य अथवा वरिम योग्यता **(2)** प्रायक्षिक योग्यता **(3)** संख्यात्मक योग्यता **(4)** तर्क विशयक अथवा मौखिक योग्यता **(5)** शब्दों के प्रयोग में धाराप्रवाहिता **(6)** स्मृति **(7)** आगमन योग्यता **(8)** निगमन अथवा सिद्वान्तात्मक योग्यता और **(9)** समस्या के हल पर नियन्त्रक की योग्यता।

थरर्टान का मत है । कि किसी विशेष कार्य करने में, जैसे - गणित के एक कठिन प्रष्न को समझना साहित्य का अध्यन करना विशाद रसारवादन करना अदि में उपर्युक्त **9** मानसिक योग्यताओं के सयोंजन की आवश्यकता होती है। इनमें से कुछ ऐसी योग्यताएँ है। जिनकी उपयोगिता किन्ही विशिष्ट कार्यो में दूसरो की अपेक्षा अधिक होती है। जैसे - गणित के अध्यन के लिए संख्यात्मक योग्यता परीक्षात्मक एवं सिद्वान्तात्मक या निगमन योग्यता अदि की अन्य योग्यताओं की अपेक्षा अधिक मात्रा में आवश्यकता है।

थर्टान का 'बहु-खण्ड़' सिद्वान्त इस अवधारणा पर आधारित हैं कि ये मानसिक योग्यताएँ प्रारम्भिक और सामान्य है। कयोंकि उनकी आवश्यकता किसी न किसी मात्रा में सभी जटिल बौद्विक कायोर्ं में पड़ती है। थस्टान का दृष्टिकोण स्पीयरमैन से सर्वथा भिन्न है। क्योंकि उसके द्वारा मानय **9** मानसिक योग्यताँए स्पीयरमैन द्वारा मानी हुई शक्तियों के समान नही है।

अब हम एक ओर बुद्वि सम्बिन्ध्त सिद्वान्त का वर्णन करेगें, जिसका प्रतिपादन गिल्फोर्ड महोदय ने किया ।

गिल्फोडर्् का बुद्वि-संरचना सम्बन्धी सिद्वान्त**1**

स्पीयरमैन तथा थस्टोन महोदय ने जो बुद्वि को समझाने सम्बन्धी पहल की थी, उसी का अनुसरण करते हुए गिल्फोर्ड महोदय तथा उनके सहयोंगियों ने बुद्वि सम्बन्धी एक सिद्वान्त का प्रतिपादन किया है। यह सिद्वान्त प्राथमिक बौद्विक योग्यताओं को एक बुद्वि की सरचना के रूप में संगठित करता है। वह एक बुद्वि के खण्ड़ की परिभाषा इस प्रकार देते है। कि यह एक अनन्य योग्यता है। जो कि निश्चित कार्यो या परीक्षणों को अच्छें ढ़ग से करने के लिए आवष्यक है। यद्यपि प्रत्येक खण्ड़ की अपनी पर्याप्त अनन्यता है। जिसके कारण उसकी माप अलग से होनी चाहिए । फिर भी इन खण्ड़ो को उनकी समानताओं के कारण समूहों में रख सकते है।

तीन प्रकार का वर्गीकरण सम्भव है। -

1- प्रक्रिया अथवा संक्रिया - जिसके अन्तर्गत पाँच प्रमुख मानसिक योग्यताओं के समूह आते है -

2- (अ) संज्ञान जिससे तात्पर्य है-खोज पुन: खोज अथवा पहचान।

(ब) स्मृति जिसमें जो संज्ञान किया गया उसका धारण सम्मिलित है।

(स) अभिबिन्दुता चिन्तन जो इस प्रकार का चिन्तन है जिसका की परिणाम सही या उत्तम उत्तर है।

(द) अपबिन्दुता चिन्तन जो विभिन्न दषाओं में चिन्तन है।

(य) मूल्यांकन जो सूचना की परिषुद्रता अथवा उपयुक्ता के सम्बन्ध में निर्णय पर पहँचाना होता है।

3- पदार्थ या अन्तर्वस्तु जिनमें चार खण्ड़ होते है :

(अ) आकृति अन्तर्वस्तु वह पदार्थ जो ज्ञानेंन्द्रियों द्वारा प्रत्येक्ष किया जाता है

(ब)प्रतीकात्मक अन्तर्वस्तु जो शब्दों अकों एवं दुसरे प्रतीको से बना होता है तो बहुधा सामान्य संस्थाओं में संगठित होते है (जैसे, वर्णमाला, नम्यर' इत्यादि)।

(स) शब्दार्थ-संम्बन्धी अन्तर्वस्तु जो विचारो या मौखिक अर्थो का रूप ले लेती है।

(द) व्यवहारिक अन्तर्वस्तु जो सामाजिक बुद्वि या ज्ञान एवं अपने तथा दूसरो के सम्बन्ध में समझा का संकेत देती है।

4- **3.** परिणाम **-** जो सक्रिय अन्तर्वस्तु के साथ के साथ प्रयोग करने से प्राप्त होती है। छ सामान्य प्रकारो के परिणाम है।

(अ) इकाईयाँ **-** दृष्य**,** श्रवण एवं प्रतीकात्मक इकाईयों का अवबोधन करना तथा शब्दो के अर्थो का ज्ञान।

(ब) वर्ग- इकाईयों को (शब्द अथवा विचारो को) वर्गीकृत करने की योग्यता।

(स) सम्बंध- पदार्थो के गिच सम्बंधो का प्रत्यक्षीकरण करने की योग्यता**,** उनकी आकृति सम्बधी गुणों के कारण एवं प्रत्ययात्मक पदार्थो में सम्बंध की खोज की योग्यता।

1- (**द**) **संस्थान**-स्थान में पदार्थो की संरचना करने की योग्यता प्रतीकात्मक पदार्थो की संरचना करना एवं समस्याओं के हल की तैयारी करनें में समस्याओं की संरचना करने की योग्यता।
(य) रूपान्तरण - यह प्रत्येक्ष कर लेने की योग्यता कि पदार्थो को क्या होगा यदि उनमें परिवर्तन ले आया जाए, अथवा प्रस्तुत दशाओं में परिवर्तन के लिए सुझाव देना।
(र) आशय - आशाओं को विस्तृत करने की योग्यता तथा वर्तमान सूचनाको भविष्य में प्रक्षेपण करने की योग्यता।

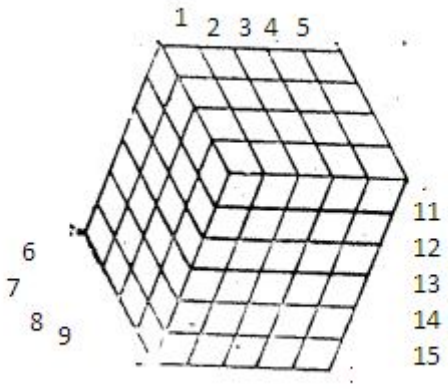

1 Cognition 2 Memory

3	Convergent Thinking	4	Divergent Thinking
5	Evaluation	6	Figural
7	Symbolic	8	Verbal
9	Behaviour	10	Units
11	Classes	12	Relation
13	Systems	14	Transformations
15	Implications		

ऊपर जो वर्णन किया गया हैं उससे स्पष्ट है कि पांच प्रकार की सक्रिया है। चार प्रकार की अन्तर्वस्तु है। तथा छ: प्रकार के परिणाम है। इस प्रकार हमारे पास 5x4x6=120 कोष्ठिका है।

इसके पश्चात अनुसंधानों द्वारा विषय वस्तु विमा में 4 के स्थान पर पांच घटक हो गये है। (a) visual दृश्यात्मक (b) Autitoty श्रवणात्मक (c) Symolic सांकेतिक (d) semantic € Behavioural व्यावहारिक

इस प्रकार (5 x 5x 6 = 30) भिन्न भिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताएं हो सकती है। आधुनिक अनुसंधानों में संक्रिया विमा में भी 5 के स्थान पर 6 घटकों की चर्चा चल रही है। इस प्रकार (5 x 6x 6 = 180) विभिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताएं हो सकती है। जो 180 भिन्न भिन्न संक्षम होती है।

वरनन का श्रेणीबद्व या पदानुक्रमिक सिद्वान्त - फिलिप वरनन ने एक पैड की आकृति के मॉड़ल को गिलफोडर् के बहुखण्ड़ के सिद्वांन्त के विकल्प में प्रस्तुत किया। इस सिद्वान्त के अनुसार एक सामान्य बौद्विक खण्ड़ (G) सबसे उँचे स्तर पर होता है। और दो मुख्य खण्ड़ इसके साथ अगले स्तर पर होते है यह मुख्य खण्ड़ है - शाब्दिक – शैक्षिक तथा व्यवहारिक यांत्रिक स्थानिक (k:m)। V : ED तथा k:m खण्ड फिर आगे विभाजित हो जाते है। अनेक गौण सामूहिक खण्ड़ में (आगे चित्र में यह विभाजन दिखाया गया है।) यह देखा जा सकता है कि V:ED ऐसी योग्यताओं से बना होता है। जैसे कि शाब्दिक वाक्यपटुता संख्यात्मक एवं शायद सृजनात्मक। k:m के अन्तर्गत जो गौण सामूहिक खण्ड़ आते वह है- यांत्रिक ज्ञान, गतिगामी योग्यता तथा स्थानीय योग्यता[11]। वरनन की श्रेणी बद्वता में सबसे नीचे स्तर पर जो विशिष्ट खण्ड आते हैं वह कुछ परीक्षणों में निजी[12] रूप में होते है।

वरनन का बौद्विक योग्यताओं का श्रेणीबद्व मॉड़ल

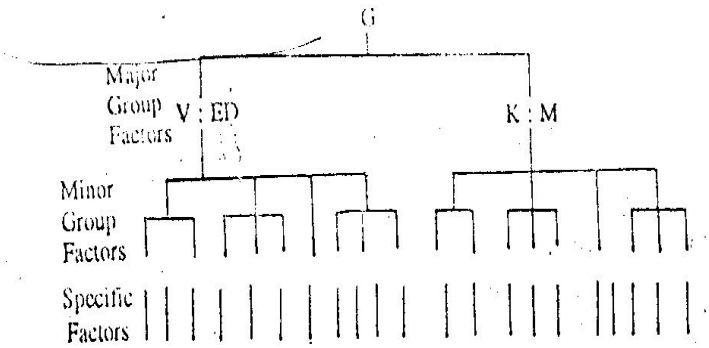

ऊपर दिये बुद्वि सम्बन्धी मॉड़ल में जीतनी पैड़ की उँचाई पर एक खण्ड़ होता है। उतनेही व्यवहारो की विस्तृत श्रेणी को वह अपने में संजोये रखता है। इस प्रकार से इस सिद्वान्त में स्पीयरमैन का सामान्य

बौद्विक खण्ड़ शामिल रखा गया है। जबकि थर्सटन की प्राथमिक मानसिक योग्यताओं और गिल्फोर्ड के बौद्विक तत्वों की संरचना को निम्न स्तर दिया गया है। वरनन का सिद्वान्त इस कारण जनप्रिय है। क्योंकि यह अनेक खण्ड़ विशेषण संम्बन्धी अनुसंधानों के परिणामों एवं व्याख्याओं को एक सिद्वान्त में मिलानें का मार्ग प्रस्तुत करता है।

केटल का अनिश्चित तथा निश्चित बुद्वि का सिद्वान्त या तरल-ठोस बुद्वि सिद्वान्त -वरनन ने एक विभेद किया जिसे वह बुद्वि A और B का विभेद कहता है। उसके अनुसार बुद्वि A तमाम बुद्वि का वह भाग है। जो वंशानुक्रम क कारण है। तथा बुद्वि B वह भाग है। जो वातावरण के कारण है। यह विभेद केटल के दृष्टिकोण के समान ही है। जो विश्वास करता है। बुद्वि दो तत्वों से बनी है। - अनिश्चित बुद्वि (Gf) तथा निश्चित बुद्वि (Gc)। केटल इन दोनो तत्वों को एक दूसरे से अलग तो समझता है, किन्तु इनमें सह-सम्बन्ध मानता है । दोनो तत्व सम्बन्धों का प्रत्यक्षीकरण करने की योग्यता रखते है, किन्तु अनिश्चित बुद्वि अनेक क्षेत्रों में सामान्य है। जबकि निश्चित बुद्वि कुछ क्षेत्रों जैसे विद्यालयी सीखना मे विशिष्ट है। केटल यह भी सुझाव देता है कि अनिश्चित बुद्वि ऐसे कार्यो में सहायक है। जिनमें नवीन स्थिति में अनुकूलन प्राप्त करना है जबकि निश्चित बुद्वि अधिक अपयोगी ऐसे कार्यो में है। जिनमें आदते स्थापित हो चुकी है। अनिश्चित बुद्वि वरनन की बुद्वि A की भाँति वंषानुक्रम पर अधिक निर्भर है। जबकी निश्चित बुद्वि वरनन की बुद्वि B की भाँति वातावरण पर अधिक निर्भर है। एक व्यक्ति की अनिश्चित बुद्वि 14या 15 वर्ष की आयु पर अपनी चरम सीमा को पहुँच जाती है। निश्चित बुद्वि 25 या 30 वर्ष तक विकसित होती रहती है।

गार्डनर का बहुबुद्वि का सिद्वान्त गार्डनर आठ मुख्य एवं अपेक्षित रूप से स्वतन्त्र बुद्वि विमाओं का वर्णन करता है। उसने अपने बहुबुद्वि के सिद्वान्त का विकास दो आधार पर किया । यह है -(अ) उन व्यक्तियों पर किये गये अनुसन्धानों के फलस्वरूप जिनके मस्तिष्क को हानी पहुँचती थी जिससे यह संकेत मिले की स्नायुक कृत्य स्थानीय हैं और एक क्षेत्र के लिए विशिष्ट है। जैसे की वाणी या सौदर्यानुभूति की योग्यता एवं (ब) आधुनिक समाज में अनेक प्रकार की कलाओं का मिलना । हमें आधुनिक समाज में ऐसे व्यक्ति मिलते है जो कि शाब्दिक या तार्किक क्षेत्रों में तो प्रवीण नही होते किन्तु दूसरे क्षेत्रों में जैसे स्थानिक योग्यता में बहुत योग्यता रखतें है, जैसे -कलाकार या मूर्तिकार इत्यादि ।

निम्नलिखित गार्डनर द्वारा प्रस्तावित विमाये हैं-

(i) **भाषयी बुद्वि**- उन व्यक्तियों में होती है जिनमें अर्थ के सम्बन्ध में एवं शब्दों के क्रम के सम्बन्ध में तथा भाशा के विभिन्न प्रयोग के सम्बन्ध में संवेंदनशीलता होती हैं । (उदाहरण - कवि,पत्रकार)

(ii) तार्किक - गणितीय अुद्वि - तर्क की लम्बी श्रृखलाओं को उपयोग करने की योग्यता तथा संसार में व्यवस्था तथा प्रतिमानों की पहचान कर सकना । (उदाहरण -वैज्ञानिक, गणितज्ञ)

(iii) गायन बुद्वि-लय, ताल तथा गायनके उतार चढ़ाव के प्रति संवेदनषीलता (उदाहरण -वायलन वादक-गायक)

(iv) स्थानिक बुद्वि-दृष्टिमय संसार को सही ढ़ग से प्रत्यक्षीकरण करने की योग्यता एवं अपने प्रत्याक्षीकरण के आधार पर संसार के पक्षों का पुर्ननिर्माण करना, परिवर्तन करना अथवा रूपान्तरित करना। (उदाहरण- मूर्तिकार, जहाज चालक)

(v) शारीरिक -मतिमानी बुद्धि –शरीर का उपयोग करने तथा वस्तुओं के साथ कार्य करने की उत्तम लयमय योग्यता। (उदाहरण - नृतक खिलाड़ी)

(vi) अन्त : व्यक्तिगत बुद्धि -दूसरो की अनुमति तथा विभेद करने सम्बन्धी योग्यता । (उदाहरण- चिकित्सक विक्रेता)

(vii) अन्तर व्यक्तिगत योग्यता - अपने भावात्मकजीवन की और पहुँच । (उदाहरण--आत्म चेतन्य व्यक्ति)

(viii) प्राकृतिक बुद्धि भौतिक संसार में समानताओं और विभिन्नताओं के पहचान की योग्यता । (उदाहरण -प्रकृतिवादी, जीव विज्ञानी, मानववादी) शिक्षा में प्रयोंग - गार्डनर के विचारों का प्रयोग दोनो क्षेत्रों पाठ्यक्रम तथा शिक्षा में किया गया। पाठ्यक्रम के क्षेत्र में उन क्षेत्रों के लिये पाठ्य-सामग्री बनाने का प्रयास किया गया जिनका अब तक पाठ्यक्रम में बहुत कम प्रतिनिधित्व था। ऐसे क्षेत्रों में जैसे विचारशील लेखन, दृष्टिमय कला एव स्वर लिपि इत्यादि की कलाओं को विकसित करने के लिए मॉड्यूल(modules) तैयार किये गये । इनका पूर्व परीक्षण प्राथमिक दोनो प्रकार के विद्यालयों में किया जा रहा है। शिक्षण के क्षेत्र में षिक्षको को प्रोत्साहित किया जाता है। कि वह अपने कार्य की योजना ऐसी बनाये जिसके द्वारा ऐसे ज्ञान और कलाओं का प्रवेष हो सके और वह पनप सके जिन पर विभिन्न बुद्धियों द्वारा बल दिया जाता है।

स्टर्नवर्ग का बुद्धि का त्रितांत्रिक सिद्वान्त स्टर्नबर्ग भी बुद्धि का सिद्वान्त एक बहुयोग्यता दृष्टि कोण से देता है । उसका सिद्वान्त त्रितात्रिक बुद्धि का सिद्वान्त है जो तीन घटक में बनी हुई है।यह घटक है -

(a) संसाधित करने वाले घटक - यह उन कौषल का संकेत देता है। जो समस्या हल में प्रयोग किये जाते ह।

(b) प्रसंगाश्रित घटक यह घटक बुद्धि और वातावरण के सम्बन्धों पर बल देते है।

(c) अनुभवजन्य घटक यह वह यंत्रीकरण है। जो बुद्धि में रूपान्तर अनुभव के द्वारा लाते है।

स्टर्नबर्ग का विश्वास है कि बुद्धि को ऐसी प्रक्रियाओं में विलग किया जा सकता है जो कि उन मार्गो को प्रभावित करते है। जिनके द्वारा व्यक्ति संसार के सम्बन्ध में चिन्तन करते हैं और समस्यायेंह ल करते है। अब हम स्टर्नबर्ग का बुद्धि का त्रितपंत्रिक सिद्वान्त का मॉड़ल प्रस्तुत कर रहे है-

स्टर्नबर्ग का बुद्धि का त्रितांत्रिक मॉडल

(a) **संसाधितकरने वाले घटक**- यह स्टर्नबर्ग के मॉडल का मूल भाग है। जिसका उपयोग सीखने वाले समस्या हल करने में करते है। जैसे की उपर चित्र में दिखाया है। इसमें सम्मिलित है- एक ज्ञान प्राप्त करने का घटक, एक निष्पादन का घटक तथा एक मेटा घटक । स्टर्नबर्ग के अनुसार यह घटक सदृश है। एक कार्पोरेशन में प्रशिक्षा थी, मजदूर और प्रशासन के। ज्ञान प्राप्त करना घटक जो प्रशिक्षा थीं के सदृश है। वह व्यक्तियों को नवीन सूचना को सीखने की ओर ले जाता हैं । निष्पादन घटक को मजदूर के सदृश है। वास्तव में समस्याओं के साथ कार्य करने का है और मेटा घटक जो प्रशासन के दृश्य है। बुद्वि के दूसरे पक्षो को प्रशासित करते है। हम बुद्विमानी से उस समय व्यवहार करते है जबकि हम प्रभावशाली हल की युक्तियों को अपनातें है, प्रगती की परिवीक्षक करते है और अपनी पहुँच में उस समय परिर्वतन लाते है। जबकि युक्ति असफल होती है। स्टर्नबर्ग का कहना हैकि यह घटक उस समय आपस में अन्तक्रिया करते है। जबकि व्यक्ति बुद्वि का प्रयोग एक पूर्ण कार्य करने में करते है, जैसे परिक्षा के लिए प्रपत्र तैयार करना । मेटा घटक एक प्रकरण का चुनाव करते है, प्रपत्र की योजना बनाते है। तथा प्रगतिका परिवीक्षक करते रहते है। जैसे-जैसे उसे लिखते जाते है । ज्ञान प्राप्त करने वाले घटक प्रकरण अनुसंधान करते है और तथ्यो को समन्वयिक विचारो में सयुक्त करते है। और निश्पादन घटक वास्तविक लेखन का कार्य करते है। तीनो घटक मिलकर कार्यकरते है ताकि एक अन्तिम उत्पादन प्राप्त हो सके।

(b) **प्रसंगाश्रित घटक: बुद्वि तथा वातावरण** -यह घटक यह व्याख्यां करने की चेश्ठा करते है। कि कैसे बुद्वि कार्य सम्पादन के साथ प्रतिवेदन के वातावरण में सम्बन्धित होती है। बुद्विमान व्यक्ति इसका प्रयोग अपने उद्देश्यों तक पहुँने के लिए करते है। वह वातावरण के साथ अनुकूलन प्राप्त करते है। या इसमें परिवर्तन करते है। या इससे बाहर निकलने का फैसला उस समय लेते है। जब यह आवष्यक हो जाता है।

(c) **अनुभवजन्य घटक : बुद्धि में अनुभव द्वारा रूपान्तर लाना** -यह इस बात की व्याख्यां करता हैं कि बुद्धि किस प्रकार से अनुभव द्वारा रूपान्तरित होती है। ।स्टर्नबर्ग यह विचार करता है। कि बौद्धिक व्यवहार की दो विशेषताये है। (i) नवीन अनुभवों के साथ प्रभावशाली ढंग से कार्यकरने की योग्यता (ii) समस्याअें को कुशलतापूर्वक अैर स्वत : हल करने की योग्यता । एक बुद्धिमान व्यक्ति नवीन अनुभवों को पुरानो से सम्बन्धित करके एवं इस सूचना को प्रतिमानों में बदलकर जिनका प्रयोग स्वत : एवं कुशलता से किया जा सकता है। एक बुद्धिमान बालक प्रतिमानोंको शीघ्रता से पहचान लेता है। एव नियमों का प्रयोग स्वचालित ढ़गं से करता है। यह आयु के साथ कि प्रदत्त सामग्री के विश्लेषण करने और प्रतिमानो को जानने की योग्यता बडती है। और इस कारण ही अधिक आयु के बालक अधिक कुषल समस्या हल में पाए जातें है। स्टर्नबर्ग का कहना हैकि यह सूचना को कुषलता से संसाधित करने की योग्यता बौद्धिक कृत्य की बढ़ोत्तरी की आधारषिला है। **स्टर्नबर्ग के सिद्वान्त का शैक्षिक निहितार्थ** स्टर्नबर्ग के सिद्वान्त में निहित है। कि सीखने वाले को ऐसे अनुभवों को प्रधान किया जाये जो नवीन विचारों को पुराने विचारों से सम्बन्धित कर दे । हमारा ध्यान दोहराने और मूल कुषलताओं के अभ्यास पर नही होना चाहिए । स्टर्नबर्ग का दृष्टि कोण है कि बुद्धि में हेरफेर हो सकता है। और इसमें सुधार लाया जा सकता है। इस दृष्टि कोण का षिक्षण में महत्व है। स्टर्नबर्ग बुद्धि को एक जटिल प्रक्रिया कहता है।

19.7 मानसिक आयु (Mental Age)

मनोवैज्ञानिकों में व्यक्ति की आयु को दो भागों में बांटकर अध्ययन किया है -

1 तैथिक आयु (Chronological Age)

2 मानसिक आयु (Mental Age)

तैथिक आयु से तात्पर्य व्यक्ति के जन्म से आज तक के समय से होता है। जैसे मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को जन्म लिए 15 वर्ष 3 महीना 7 दिन आज तक हुआ है, तो उसकी तैथिक आयु 15 वर्ष 3 महीना 7 दिन की हुई । इस तरह तैथिक आयु व्यक्ति की वास्तविक आयु होती है जिसे जन्म के दिन से प्रारंभ माना जाता है।

मानसिक आयु (Mental age or MA) एक दूसरे तरह की आयु है जिसका प्रयोग बुद्धि मापने में मनोवैज्ञानिकों ने काफी किया है। इस संप्रत्यय का प्रतिपादन बिने तथा साइमन द्वारा किया गया है। टुकमैन 1975 ने मानसिक आयु को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह एक ऐसा प्राप्तांक है। जिसका निर्धारण अपनी ही उम्र या अपने से कम या अधिक उम्र के बच्चों के औसत निष्पादन के साथ तुलना करके किया जाता है। एक उदाहरण लीजिए - मान लिया जाए कि कोई बच्चा जिसकी तैथिक आयु या वास्तविक आयु 6 साल की है, 8 साल के बच्चों के लिए बने बुद्धि परीक्षण पर सफल हो जाता है, तो उस बच्चा की मानसिक आयु 8 साल की होगी जबकि वास्तविक आयु 6 साल की है। उसी तरह यह भी संभव है कि 6 साल का बच्चा 4 साल के बच्चों के लिए बने बुद्धि परीक्षण पर सफल हो परन्तु 6 साल का बच्चा 4 साल के बच्चों के लिए बने बुद्धि परीक्षण पर सफल हो परन्तु 6 साल के बच्चों के लिए बने बुद्धि परीक्षण पर सफल न हो । ऐसी अवस्था में उस बच्चे की तैथिक आयु तो 6 साल की अवश्य है, परन्तु उसकी मानसिक उम्र 4 साल की ही है। यदि 6 साल का बच्चा सिर्फ अपने ही उम्र के बच्चों के लिए बने बुद्धि परीक्षण पर सफल होता है, तो

ऐसा कहा जाता है कि इस बच्चे की तैथिक आयु तथा मानसिक आयु समान है, यानी बराबर बराबर है।

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि मानसिक आयु वास्तविक आयु या तैथिक आयु से कम, अधिक या बराबर हो सकती है। जब मानसिक आयु तैथिक आयु से कम होती है, तो व्यक्ति मंद बुद्धि का समझा जाता है। जब मानसिक आयु तैथिक आयु से अधिक होती है, तो व्यक्ति तीव्र बुद्धि का समझा जाता है और जब मानसिक आयु तथा तैथिक आयु एक दूसरे के बराबर होती है, तो व्यक्ति को सामान्य बुद्धि का समझा जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि मानसिक आयु के आधार पर व्यक्ति को बुद्धि के बारे में अंदाज लगाया जा सकता है।

19.8 बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient)

मानसिक आयु वास्तव में बुद्धि या मानसिक विकास की स्थिति का कोई निरपेक्ष मान न होकर सापेक्ष मान है। मानसिक आयु की सहायता से बुद्धि के संबंधमें कोई निर्णय लेने के लिए वास्तविक आयु के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। इस परेशानी को देखते हुए स्टर्न ने सन 1912 में बुद्धि लब्धि जिसे पेक्षेप में आई.क्यू. कहते हैं, का प्रयोग करने का सुझाव दिया, परन्तु इसका प्रयोग सन् 1916 में टरमैन के द्वारा स्टनफोर्ड बिने परीक्षण के प्रकाशन के उपरान्त ही प्रचलित हो पाया था। बुद्धि लब्धि व्यक्तियों में बालकों के मानसिक विकास के प्रकाशन के उपरान्त ही प्रचलित हो पाया था। बद्धि लब्धि व्यक्तियों या बालकों के मानसिक विकास या वुद्धि को व्यक्त करने वाला एक ऐसा निरपेक्ष मान है, जिसका सहायता से बालक या व्यक्ति के कुशाग्र, सामान्य या मन्द बुद्धि होने का पता तो चलता ही है, साथ ही साथ उसकी तुला अन्य बालकों या व्यक्तियों से सरलता से की जा सकती है। बुद्धि लब्धि मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु का अनुपात है, जिसमें दशमलव बिन्दु हटाने के लिए 100 से गुणा कर देते हैं। अत:

बुद्धि लब्धि मानसिक आयु/वास्तविक आयु 100

स्पष्ट है कि यदि मानसिक आयु के बराबर होती है तो बुद्धिलब्धि 100 के बराबर होती है। मानसिक आयु के शारीरिक आयु से अधिक होने पर यह गुणांक 100 से अधिक होता है। मानसिक आयु वास्तविक आयु से जितना अधिक होती है, बुद्धि लब्धि का मान 100 से उतना ही अधिक होता है। इसके विपरित मानसिक आयु के वास्तविक आयु से कम होने पर बुद्धि लब्धि का मान 100 से कम प्राप्त होता है तथा मानसिक आयु जितनी कम होती है, इस गुणांक का मान भी उतनी ही कम होता है। सोलह वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों के लिए बुद्धि लब्धि की गणना करते समय सूत्र में वास्तविक आयु का मान सोलह वर्ष ही रखते है।

टरमैन ने सन 1916 के स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण के साथ बुद्धि लब्धि के वितरण की तालिकायें भी तैयार की थी, जिनमें विभिन्न बुद्धिलब्धि वर्गों के लिए बालकों व व्यक्तियों की प्रतिशत संख्याएं भी दी गई थी। सामान्य तौर पर किसी बड़े समूह के लिए बुद्धि लब्धि का वितरण सामान्य प्रायिकता वक्र (N.P.C.) का अनुगमन करता है।

सारणी

बुद्धिलब्धि का वितरण

बुद्धिलब्धि सीमाएं	**प्रतिशत**	**वर्ग**
130 से अधिक	2	प्रतिभाशाली
121-130	7	प्रखर बुद्धि
111-120	16	तीव्र बुद्धि
91-110	50	सामान्य बुद्धि
81-90	16	मन्द बुद्धि
71-80	7	अल्प बुद्धि
72 से कम	2	जड़ बुद्धि

बुद्धि लब्धि - मानसिक आयु वास्तव में बुद्धि या मानसिक विकास की स्थिति का कोई निरपेक्ष मान न होकर सापेक्ष मान है। मानसिक आयु की सहायता से बुद्धि का संबंधमें कोई निर्णय लेने के लिए व्यक्ति की तिथिक घटताजाताहै।

तालिका **1** बुद्धिलब्धि के मान तथा उनके अर्थ

बुद्धिलब्धि के मान **(Value of IQ)**	अर्थ **(meaning)**
140 या इससे अधिक	प्रभावशाली **(Genius)**
120 से **139** तक	अतिश्रेष्ठ **(Very superior)**
110 से **119** तक	श्रेष्ठ **(superior)**
90 से **107** तक	सामान्य **(Normal)**
80 से **98** तक	मन्द **(Dull)**
70 से **79** तक	सामान्य मन्द बुद्धि
60 से **69** तक	मूढ़ बुद्धि **(moron)**
20 से **59** तक	हीन बुद्धि **(Imbecile)**
20 या इससे कम बुद्धि	जड़ बुद्धि **(Idito)**

बुद्धि लब्धि का वितरण का उदाहरण

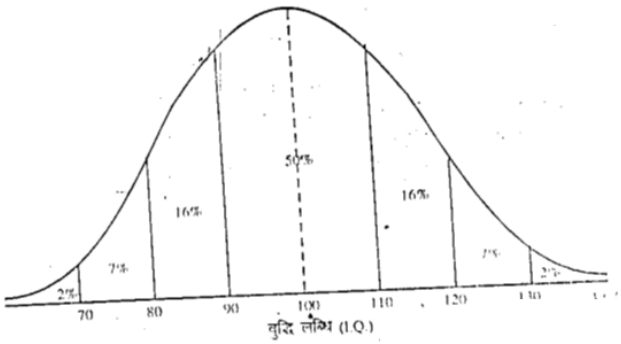

बुद्धि लब्धि (I.Q) के उपरोक्त वितरण के अवलोकन से स्पष्ट है कि अधिकांश व्यक्ति बालक औसत बुद्धि के होते एवं औसत से कम बुद्धि वाले तथा औसत से अधिक आयु वाले व्यक्तियों /बालकों का प्रतिशत क्रमश: घटता जाता है।

19.9 विचलन बुद्धि लब्धि (Deviation Intelligence quotient)

पीछे वर्णित किये गये बुद्धि लब्धि के प्रत्येक का प्रयोग लभग सन 1960 तब बहुयातायत से होता रहा, परन्तु बाद में इसे बुद्धि लब्धि की कुछ कमियों के कारण विचलन बुद्धि लब्धि का प्रचलन बढ़ने लगा। विचलन बुद्धि लब्धि वास्तव में एक प्रकार का मानक प्राप्तांक है, जिसका मध्यमान तथा मानक विद्यमान पूर्व निश्चित रहता है।

बुद्धि लब्धि, जिसे आनुपातिक आई.क्यू. भी कहते है, की दो सीमायें है। प्रथम, मानसिक आयु व वास्तविक आयु के अनुपात के रूप में ज्ञात की गई बुद्धि लब्धि में प्रसरण या मानक विचलन पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। यद्यपि प्राय: बुद्धि लब्धि के मानक विचलन को 16 मान लिया जाता है, परन्तु बुद्धि लब्धि के वितरणों के मानक विचलनों में पर्याप्त भिन्नता, 12 से लेकर 20 तक पाई जाती है। भिन्न भिन्न आयुवर्गों के लिए भी एक ही परीक्षण पर बुद्धि लब्धि के वितरण का मानक विचलन प्राय: प्राप्त होता है। इससे बुद्धि लब्धि की सिथरता प्रभावित होती है। दूसरे प्राय: भिन्न भिन्न आयु वर्गों के लिए भी एक ही परीक्षण पर बुद्धि लब्धि के वितरण का मानक विचलन प्राय: भिन्न भिन्न प्राप्त होता है। इससे बुद्धि लब्धि की स्थिरता को प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में यदि किसी बालक की विभिन्न आयु पर अपने समूह में स्थिति समान रहती है, तो भी वह भिन्न भिन्न आयु पर भिन्न भिन्न बुद्धि लब्धि प्राप्त करेगा। उदाहरण के लिए यदि किसी बालक की स्थिति 5 वर्ष, 8 वर्ष व 12 वर्ष की आयु में अपने समूहों में एक समान बनी रहती है तथा बुद्धि उदाहरणार्थ यह भी मान लिया जाये कि तीनों आयु वर्षों में उसका शतांक 92 या अर्थात वह 5, 8, व 12 वर्ष की आयु वर्गों के बुद्धि लब्धि के वितरणों का मानक विचल क्रमश: 14, 16 व 20 हो तथा बुद्धि लब्धि के वितरण को सामान्य वितरण, जिसका मध्यमान 100 हो, के अनुरूप मान लिया जाये तो उसकी बुद्धि लब्धि 5 वर्ष की आयु में 120, 8 वर्ष की आयु में 121 तथा 12 वर्ष क आयु में 128 होगी। स्पष्ट है कि इस बालक का अपने समूह में मानसिक योग्यता के आधार पर स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है, परन्तु विभिन्न आयु वर्गों के बुद्धि लब्धि वितरणों के मानक विचलनों में अन्तर होने के कारण बुद्धि लब्धि में अन्तर आ रहा है, जो बुद्धि लब्धि की व्याख्या करते समय अनावश्यक की व्याख्यात्मिक त्रुटियां उत्पन्न कर सकता है।

बुद्धि लब्धि गुणांक के साथ दूसरी समस्या, हर में वास्तविक आयु या तिथिक आयु को लेकर होती है। बौद्धिक विकास के लगभग पूर्ण हो जाने के बावजूद भी वास्तविक आयु बढ़ती जाती है। यदि इस वास्तविक आयु को हर के रूप में सूत्र में रखेंगे तब प्रौढों के लिए बुद्धि लब्धि के मान अत्यन्त कम प्राप्त होंगे। जैसे 40 वर्ष की आयु के व्यक्ति की मानसिक आयु 20 वर्ष है तो वृद्धि लब्धि का मान 50 आयेगा। इस प्रकार त्रुटिपूर्ण परिणामों में बचने के लिए यह निश्चित करना अवश्यक होगा किस आयु में मानसिक विकास पूर्ण हो जाता है। अर्थात किस आयु पर मानसिक विकास पूर्ण परिपथ्यता को प्राप्त कर लेता है तथा उसी आयु को अधिकतम वास्तविक आयु के रूप में बुद्धि लब्धि ज्ञात करने के सूत्र में रखना होगा । अधिकांश 16 वर्ष को सूत्र हेतु अधिकतम वास्तविक आयु के रूप में स्वीकार किया जाता है। अधिकतम वास्तविक आयु यदि कम निर्धारित की जायेगी तो प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि अधिक आयेगी, जबकि अधिकतम वास्तविक आयु के अधिक होने पर प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि का मान प्रभावित हो सकता है।

उपरोक्त वर्णित दोनों कमियों के कारण आनुपातिक बुद्धि लब्धि के स्थान पर विचलन बुद्धि लब्धि गुणांक के प्रयोग को बढ़ावा मिला। वस्तुत: बुद्धि लब्धि गुणोंकों के मानक विचलन को स्थिर बनाने के उद्देश्य से विचलन बुद्धि लब्धि का गुणांक का प्रत्यय प्रस्तुत किया गया। विचलन बुद्धि लब्धि गुणांक वास्तव में एक प्रकार का मानक प्राप्तांक है, जिनका मध्यमान 100 तथामानक विचलन 16 होता है। विचलन बुद्धि लब्धि गुणांक भिन्न भिन्न आयु पर एक समान सीमा तक सापेक्षक बौद्धिक क्षमता को अभिव्यक्त करते है। अत: बुद्धि परीक्षण से प्राप्त परिणामों की व्याख्या करते समय यह देख लेना चाहिए कि परीक्षण में आनुपातिक बुद्धि लब्धि का प्रयोग हो रहा है या विचलन बुद्धि लब्धि का प्रयोग हो रहा है। यदि आनुपातिक बुद्धि लब्धि का प्रयोग हो राह है तो विभिन्न आयु के मानक विचलन को ध्यान में रखकर ही प्राप्त परिणामें की व्याख्या की जायेगी।

19.10 सारांश (Summary)

मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि शब्द के विभिन्न अर्थ बतायें है। कुछ के अनुकूलन क्षमता, कुछ के अधिगम क्षमता तथा कुछ ने अमूर्त चिन्तन क्षमता के रूप में बुद्धि को परिभाषित करने का प्रयास किया है जबकि संज्ञानवादी विकासवादी मनोवैज्ञानिक पियाजे तथा स्टेनवर्ग ने बुद्धि की प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया है थार्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार सामजिक स्थूल तथा अमूर्त बुद्धि बताये है। बुद्धि प्रमुख सिद्धान्तों में से 7 कारकीय सिद्धान्त है एवं 2 प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त ही बुद्धि के ये विभिन्न सिद्धान्त अपने अपने ढंग से बुद्धि के प्रत्यक्ष व प्रकृति को स्पष्ट करते है। बुद्धि मापन के लिए विभिन्न मानसिक कार्यों को मापन किया जाता है जिससे मानसिक आयु ज्ञात की जाती है जिसका तेथिक आयु से अनुपात ज्ञात कर बुद्धिलब्धि ज्ञात की जाती है। सर्वप्रथम टर्मनबुद्धिलब्धि का वर्गीरकण दूनिया के सामने किया इसके पश्चात डॉ. कामथ ने इसका विस्तार से वर्गीकरण दिया है।

19.11 शब्दावली (Glossary)

बुद्धि-बुद्धि किसी व्यक्ति के द्वारा उद्देश्य पूर्ण ढंग से कार्य करने, तार्किक चिन्तन करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से क्रिया करने की सामूहिक योग्यता है।

मानसिक आयु - बिने के अनुसार मानसिक आयु किसी व्यक्ति के मानसिक विकास की वह अभिव्यक्ति है जो उसके द्वारा किये जा सकने वाले मानसिक कार्यों से ज्ञात की जा सकती है तथा जिनकी आयु विशेष के सामान्य बालाकों से सफलतापूर्वक करने की अपेक्षा रहती है।

बुद्धि लब्धि -बुद्धि लब्धि मानसिक आयु तथा तिथिक आयु का अनुपात है।

19.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

अतिलघुरात्मक प्रश्न

1- बुद्धि क्या ह।
2- बुद्धि के कितने प्रकार है।
3- बुद्धि के कारकीय सिद्धान्त कितने है।
4- बुद्धि के प्रक्रिया सिद्धान्त कितने है।
5- मानसिक आयु किसे कहते है।
6- मानसिक आयु का संप्रत्यय सबसे पहले किसने दिया।
7- बुद्धि लब्धि गुणांक क्या है।
8- एक कारक सिद्धान्त के प्रवर्तक कौन है।
9- त्रितंत्र सिद्धान्त के प्रवर्तक कौन है।
10- त्रिआयामी सिद्धान्त के प्रवर्तक कौन है।

लघुरात्मक प्रश्न

1- निम्नलिखित बुद्धि सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन करो।
अ एक कारक ब द्विकारक स त्रिकारक द बहुकारक
2- समूह कारक सिद्धान्त के विभिन्न कारकों की व्याख्या कीजिए।
3- बुद्धि के तीनों प्रकारों को उदाहरण से समझाइये।
4- बुद्धि का बहुकारक सिद्धान्त क्या है। संक्षेप में वर्णन कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1- गिलफर्ड के त्रिआयामी सिद्धान्त का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2- बुद्धि लब्धि क्या है? बुद्धि लब्धि के वर्गीकरण को सविस्तार व्याख्या कीजिए।

19.13 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- अनास्तरी, ए : साइकोलॉजिकल टेस्टिंग, एन.वाई. मेकमिलन, 1952
- ईगलपाल एवं काउचेक डी: एजूकेशनल साइकोलॉजी, एन. वाई. मैरिल, 1994
- Cronback, (L.J.), Educational Psychology, New York, American Book Company, 1948
- अरूण कुमार सिह, उच्चतर मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1994
- एस.पी. गुप्ता, अलका गुप्ता, उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1992
- आर. एन.सिहं : आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा -2

इकाई - 20

संवेग का स्वरूप एवं सिद्धांत, संवेग में शारीरिक परिवर्तन, संवेगात्मक बुद्धि

Nature and Theories of Emotion, Bodily Changes in Emotion, Emotional Intelligence

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 संवेग

20.3 संवेग का अर्थ

20.4 संवेग का स्वरुप एवं विशेषताएँ

20.5 संवेग के सिद्धांत

- 20.5.1 जेम्स - लैंजे संवेग सिद्धांत
- 20.5.2 कैनन-बोर्ड सिद्धांत
- 20.5.3 स्केटर - सिंगर सिद्धांत
- 20.5.4 संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत
- 20.5.5 लिंडस्ले का सक्रियण सिद्धांत

20.6 संवेग का वर्गीकरण

20.7 संवेग में होने वाले शारीरिक परिवर्तन

- 20.7.1 बाह्य शारीरिक परिवर्तन
- 20.7.2 आतंरिक शारीरिक परिवर्तन

20.8 सांवेगिक बुद्धि

- 20.8.1 सांवेगिक बुद्धि की परिभाषा
- 20.8.2 गोलमैन का सांवेगिक बुद्धि

20.9 सारांश

20.10 शब्दावली

20.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

20.12 निबंधात्मक प्रश्न

20.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

20.1 प्रस्तावना (Introduction)

संवेगों की प्रकृति भावात्मक होती है जो व्यक्ति को क्षणिक उत्तेजना प्रदान करती है। आनन्द, क्रोध, भय, हर्ष, प्रेम, उत्सुकता, इत्यादि अनुभूतियाँ को संवेग कहते हैं |

प्रस्तुत इकाई में आप संवेग का अर्थ, इसके स्वरुप, संवेग के विभिन्न सिद्धांत, संवेग में होने वाले शारीरिक परिवर्तन तथा सांवेगिक बुद्धि के विषय में अध्ययन करेंगे|

20.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- संवेग का अर्थ एवं परिभाषा बता सकेंगे|
- संवेग का स्वरुप एवं विशेषताओं को बता सकेंगे|
- संवेग के विभिन्न सिद्धांतों को बता सकेंगे|
- विभिन्न प्रकार के संवेगों को बता सकेंगे |
- संवेग की अवस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को बता सकेंगे|
- सांवेगिक बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषा बता सकेंगे|
- गोलमैन के सांवेगिक बुद्धि के तत्वों को बता सकेंगे|

20.3 संवेग (Emotion)

मानव जीवन में संवेगों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है | हर मनुष्य अपने जीवन में कई तरह के संवेगों का अनुभव करता है जैसे क्रोध, भय, हर्ष, प्रेम, उत्सुकता, इत्यादि I ये सभी अनुभूतियाँ संवेग की अवस्था है| अतः संवेग एक उत्तेजित अवस्था है| संवेगों की प्रकृति भावात्मक होती है जो व्यक्ति को क्षणिक उत्तेजना प्रदान करती है | संवेग में दैहिक तत्व, संज्ञानात्मक तत्त्व तथा व्यवहारपरक तत्त्व सम्मिलित हैं |संवेग में प्राणी का व्यवहार किसी खास लक्ष्य की ओर होता है| वह किसी खास दिशा में ही व्यवहार करता है | मोटे तौर पर संवेग की दो दिशायें होती हैं - सुख और दुःख | प्राणी सुख प्राप्ति की दिशा में व्यवहार करता है तथा दुःख वाले दिशा से बचने का प्रयास करता है | व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार केवल उसकी शारीरिक वृद्धि और विकास को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक और सौन्दर्यबोधक के विकास पर भी यथेष्ट प्रभाव डालता है I अतः संवेग के विषय में अध्ययन करना आवश्यक है |

20.3.1 संवेग का अर्थ (Meaning of Emotion)

' संवेग ' पद का अंग्रेजी रूपांतर 'emotion' है जो लैटिन शब्द 'emovere' से बना है और जिसका अर्थ है उत्तेजित करना |

गेलडार्ड (Geldard,1963) के अनुसार, " संवेग क्रियायों का उत्तेजक है |

पी.टी.यंग (P.T.Young,1943,1973) के अनुसार, " संवेग सम्पूर्ण व्यक्ति में तीव्र उपद्रव मचाने वाली स्थिति है, जिसका उद्गम मनोवैज्ञानिक होता है |"

बेरोन, बर्न तथा कैंटोविज (Baron, Byrne & Kantowitz,1980) के अनुसार, " संवेग से तात्पर्य एक ऐसे आत्मनिष्ठ भाव की अवस्था से होता है जिसमें कुछ शारीरिक उत्तेजना पैदा होता है और फिर जिसमें कुछ खास-खास व्यवहार होते हैं|"

क्रो व क्रो (Crow and Crow,1973) के अनुसार, "संवेग वह भावात्मक अनुभूति है जो व्यक्ति की मानसिक तथा शारीरिक उत्तेजनापूर्ण अवस्था सामान्यीकृत आतंरिक समायोजन के साथ जुड़ी होती है और जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित बाह्य व्यवहार द्वारा होता है|"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संवेग एक जटिल अवस्था है जिसमें कुछ आंगिक प्रक्रियाएं, अभिव्यंजक व्यवहार तथा कुछ आत्मनिष्ठ भाव सम्मिलित होते हैंसंवेग के अर्थ को समझने के लिए इसके विभिन्न पहलुओं को समझना आवश्यक है जिसका वर्णन निम्नलिखित है:

i. संवेग एक जटिल अवस्था होती है: संवेग की अवस्था में बहुत तरह के शारीरिक परिवर्तन, भाव आदि सम्मिलित होते हैंI व्यक्ति की उत्तेजनशीलता का स्तर काफी बढ़ जाता है और शरीर में एक उपद्रव महसूस होता है |
ii. संवेग में कई तरह की आंगिक प्रतिक्रियाएं होती हैं जैसे रक्तचाप (blood pressure) में परिवर्तन, साँस की गति में परिवर्तन, ह्रदय गति में परिवर्तन इत्यादि |
iii. संवेग में कुछ अभिव्यंजक व्यवहार(expressive movements) भी होते हैंI संवेग में सिर्फ भीतरी अंगों में ही नहीं बल्कि बाहरी अंगों जैसे हाथ, पैर, आँख, चेहरा आदि में भी कुछ परिवर्तन होते हैं |
iv. संवेग में किसी-न-किसी तरह का आत्मनिष्ठ भाव अवश्य होता हैI सामान्यतः संवेग में सुखद या दुःखद भाव की अनुभूति पाई जाती है |

20.4 संवेग की स्वरुप एवं विशेषताएँ(Nature and Characteristics of Emotion)

मनोवैज्ञानिकों ने संवेग के कुछ ऐसे गुणों का वर्णन किया है जिसके आधार पर संवेगों को समझा व अध्ययन किया जा सकता है I ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

i. **तीव्र उपद्रव** : संवेग की स्थिति में व्यक्ति में तीव्र उथल-पुथल घटित होती है और वह उत्तेजित हो जाता है |इस स्थिति में वह कठिन कार्य करने में अपने आपको शक्तिमान मानता है जो सामान्य अवस्था में संभव नहीं होता|

ii. आंगिक प्रतिक्रियाएँ : संवेगावस्था में विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यवहार अभिव्यक्त होते हैं, जैसे आनन् (मुखाकृति) अभिव्यक्ति में परिवर्तन, शरीर की मुद्रा में परिवर्तन तथा स्वर अभिव्यक्ति में परिवर्तन |

iii. अंतरावयव (Visceral) सम्बंधित क्रियाएँ : संवेग की अवस्था में बाह्य आंगिक प्रतिक्रियाओं के अलावा भीतरी अंगों जैसे हृदय, फेफड़ा, ग्रंथियाँ आदि में कुछ विशेष प्रतिक्रियाएँ होती हैं जैसे क्रोध में रक्तचाप (Blood Pressure) का बढ़ जाना, साँस की गति तेज हो जाना इत्यादि|

iv. मनोवैज्ञानिक उद्गम : संवेगों का उद्गम मनोवैज्ञानिक होता हैI वातावरण से किसी उत्तेजना के कारण व्यक्ति उत्तेजित होता हैI नाड़ी आवेग के रूप में मस्तिष्क में पहुँचता है और संवेदना और प्रत्यक्षीकरण की उत्पत्ति होती है सिल्वरमैन (Silverman, 1978) ने संवेग की चार विशेषताएँ बताई हैं :

i. संवेग विकीर्ण (diffused) होते हैं – संवेग की अवस्था में पूरे शरीर में एक तरह का तनाव फैल जाता है | अलग-अलग संवेगों में तनाव की विकीर्णता का स्वरुप अलग-अलग होता है | विकीर्णता का स्वरुप व्यक्ति विशेष पर भी निर्भर करता है |

ii. संवेग सतत (persistent) होता है – जब भी कोई संवेग उत्पन्न होता है, उद्दीपक के हट जाने के बाद भी कुछ देर तक व्यक्ति में संवेग बना रहता है|

iii. संवेग संचयी (cumulative) होता है – जब भी कोई संवेग एक बार उत्पन्न होता है तो थोड़ी देर के लिए वह अपने आप ही बढ़ता चला जाता है |

iv. प्रायः संवेग का स्वरुप अभिप्रेरणात्मक (motivational) होता है – जब व्यक्ति में तीव्र संवेग होता है तो उसका व्यवहार किसी खास लक्ष्य की ओर तेजी से अग्रसित होता है अर्थात संवेग में व्यक्ति कोई-न-कोई व्यवहार अवश्य ही ऐसा करता है जो किसी खास लक्ष्य की ओर निदेशित होता है |

अभ्यास प्रश्न 1 :

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

i. संवेग का अर्थ .....होना है |

ii. संवेग की अवस्था में रक्तचाप में ..... होता है|

20.5 संवेग के सिद्धांत (Theories of Emotion)

संवेग के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों तथा शरीरशास्त्रियों (physiologists) द्वारा समय - समय पर किया गया ताकि संवेग का स्वरुप भली - भांति स्पष्ट हो सके | संवेग के कई सिद्धांत हैं| कुछ प्रमुख सिद्धांतों का विवरण निम्न हैं:

20.5.1 जेम्स - लैंजे संवेग सिद्धांत (James- Lange Theory of Emotion)

इस सिद्धांत का प्रतिपादन दो वैज्ञानिक विलियम जेम्स तथा कार्ल लांजे द्वारा स्वतंत्र रूप में 1880 में किया गया | आमतौर पर हम यह समझते हैं कि जब हम कोई सांवेगिक उद्दीपक जैसे कोई बाघ को देखते हैं तो डर जाते हैं और इसलिए हम भाग जाते हैं | इसका मतलब यह हुआ कि पहले संवेगात्मक अनुभूति (डर) होती है और उसके बाद संवेगात्मक व्यवहार (भाग जाना) होता है |

लेकिन जेम्स - लैंजे सिद्धांत के अनुसार पहले संवेगात्मक व्यवहार होता है और उसके बाद संवेगात्मक अनुभूति होती है |

जेम्स का यह सिद्धांत परिधीय शारीरिक परिवर्तन संवेग सिद्धांत (Peripheral Theory of Emotion) है | इस सिद्धांत के अनुसार संवेगों की उत्पत्ति उद्दीपक की उपस्थिति में होता है जिसके कारण शारीरिक प्रतिक्रिया होती है, जैसे मांस-पेशियों में तनाव, हृदय गति में वृद्धि, पसीना एवं मूँह का सुखना | यह शारीरिक उत्तेजना किसी भी व्यक्ति में विशिष्ट संवेग की भावना उत्पन्न करता है| जेम्स ने संवेग के उत्पन्न होने में शामिल विशिष्ट मार्ग का भी वर्णन किया है| उन्होंने कहा कि किसी भी वस्तु (उद्दीपक) का प्रभाव ज्ञानेन्द्रियों पर पड़ता है, ज्ञानेन्द्रियाँ इन सूचनाओं को सेरिब्रल प्रमस्तिष्क कार्टेक्स में भेज देता है| सेरिब्रल कार्टेक्स फिर इन सूचनाओं को मांसपेशियों तथा अन्तरांग (visceral organs) में भेज देता है जिसके कारण वे प्रतिक्रिया करते हैं| अंत में मांसपेशियों तथा अंतरान्गों में उत्पन्न आवेग को फिर से कार्टेक्स (cortex) में भेजा जाता है और संवेगात्मक अनुभूति होती है| इस प्रकार जेम्स-लैन्जे संवेग में कार्टेक्स के महत्व को स्वीकारते हैं|

20.5.2 कैनन-बोर्ड सिद्धांत : इस सिद्धांत का प्रतिपादन वाल्टर कैनन (Walter Cannon, 1927) ने किया तथा उनके शिष्य फिलिप बार्ड (Philip Bard, 1934) ने अपने शोधों एवं प्रयोगों के आधार पर इस सिद्धांत का समर्थन किया I इस सिद्धांत को केन्द्रिय सिद्धांत (Central Theory), हाइपोथैलेमिक सिद्धांत (Hypothalamic Theory), थैलोमिक सिद्धांत (Thalamic Theory) तथा आपात सिद्धांत (Emergency Theory) के नामों से भी जाना जाता है | इस सिद्धांत में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का महत्व है | कैनन-बोर्ड सिद्धांत के अनुसार संवेगानुभूती और आतंरिक परिवर्तन हाईपोथैलेमस के द्वारा नियंत्रित होते हैं| संवेगानुभूती तथा आन्तरावयव परिवर्तन दोनों ही उत्तेजक से उत्तेजित होकर स्नायु प्रवाह के साथ हाईपोथैलेमस में पहुँचते हैं तथा यहाँ से स्नायु -प्रवाह एक ओर तो कार्टेक्स को जाता है जहाँ सम्वेगानुभूति होती है तथा दूसरी ओर प्रभावकों की ओर आता है जहाँ से शरीर में आन्तरिक तथा शारीरिक परिवर्तन होते हैं| इस सिद्धांत के अनुसार संवेगात्मक अनुभूति तथा शारीरिक प्रतिक्रियाएं एक साथ होती हैं और इन दोनों का प्रारंभ मस्तिष्क के नीचे के केन्द्रों से होता है| अत: यह सिद्धांत जेम्स-लैन्जे सिद्धांत के बिलकुल विरोधाभासी है|

20.5.3 स्केटर - सिंगर सिद्धांत : इस सिद्धांत का प्रतिपादन दो मनोवैज्ञानिकों स्केटर तथा सिंगर द्वारा किया गया | इस सिद्धांत को संज्ञानात्मक सिद्धांत (Cognitive Theory) या संज्ञानात्मक-शारीरिक सिद्धांत (Cognitive-physiological theory) भी कहा जाता है |

इस सिद्धांत के अनुसार संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक का पहले प्रत्यक्षण होता है और उसके बाद शारीरिक परिवर्तन होता है| प्रत्येक संवेग में लगभग एक ही तरह का शारीरिक परिवर्तन होता है जो इतना स्पष्ट नहीं होता कि व्यक्ति यह बता पाए कि कौन सा संवेग हो रहा है| लेकिन इस क्रिया के बाद व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों के सन्दर्भ में उन शारीरिक परिवर्तनों की विवेचना करता है जो पूर्णतया संज्ञानात्मक प्रक्रिया है| व्याख्या के बाद वह व्यक्ति यह समझ पाता है कि उसे किस तरह का संवेग हो रहा है |

स्केटर-सिंगर सिद्धांत से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति दैहिक उत्तेजन (physiological arousal) की व्याख्या करने के लिए बाह्य संकेतों का उपयोग करता है और तब संवेगात्मक स्थिति का नामकरण करता है| इस तरह के दैहिक उत्तेजन का एक प्रमुख स्रोत वास्तविक तथा प्रत्याशित घटनाओं का

अंतर है, जिसे मनोवैज्ञानिकों ने अंतर मूल्यांकन प्रकल्पना (discrepancy-evaluation hypothesis) कहा है | मैंडलर (1990) के अनुसार, किसी भी दी गई परिस्थिति में जो घटना वास्तव में घटित होती है और जिसकी हमें उम्मीद होती है, में जितना ही अधिक अंतर होगा उससे दैहिक उत्तेजन उतना ही अधिक होगा| इस तरह के दैहिक उत्तेजन का संज्ञानात्मक मूल्यांकन करने के बाद हमें संवेगात्मक अनुभूति का ज्ञान होता है |

20.5.4 संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत (Cognitive-Appraisal Theory):इस सिद्धांत के प्रतिपादक रिचार्ड लेजारस (Richard Lazarus, 1970) हैं | इस सिद्धांत के अनुसार वातावरण के भिन्न –भिन्न वस्तुओं तथा शरीर के भीतर से मिलने वाली सूचनाओं का जब व्यक्ति सही-सही मूल्यांकन करता है, तो उसे संवेग की अनुभूति होती है, इसलिए उसे संज्ञानात्मक सिद्धांत कहा जाता है |

लेजारस के अनुसार मूल्यांकन दो तरह के होते हैं –

i. प्राथमिक मूल्यांकन (Primary appraisal)
ii. गौड मूल्यांकन (secondary appraisal)

प्राथमिक मूल्यांकन में व्यक्ति परिस्थिति या घटना की गंभीरता का मूल्यांकन करता है| वह इस बात का मूल्यांकन करता है कि परिस्थिति में जो घटना घट रही है, उससे वह कहाँ तक प्रभावित हो रहा है| प्राथमिक मूल्यांकन की प्रक्रिया के बाद गौण मूल्यांकन की प्रक्रिया प्रारंभ होती है जिसमे व्यक्ति उस घटना या परिस्थिति से निपटने के लिए अपनी क्षमताओं एवं साधनों का मूल्यांकन करता है| व्यक्ति में अनुभव किया गया संवेग प्राथमिक मूल्यांकन एवं गौण मूल्यांकन के बीच संतुलन का परिणाम होता है | जब परिस्थिति की गंभीरता कम होती है (प्राथमिक मूल्यांकन) तथा उससे निपटने के अपने साधन तथा क्षमता कम है, तो संवेग की तीव्रता अधिक होती है |

20.5.5 लिंडस्ले का सक्रियण सिद्धांत (Lindsley's Activation Theory):

इस सिद्धांत का प्रतिपादन लिंडस्ले ने1951 में किया| इस सिद्धांत को सक्रियण सिद्धांत(Activation Theory) कहा जाता है क्योंकि इन्होंने अपने सिद्धांत में कार्टेक्स की सक्रियता को संवेग का आधार माना है| लिंडस्ले के सिद्धांत के अनुसार जब किसी संवेगात्मक उद्दीपक को ग्रहण करने से ज्ञानेन्द्रिय में तंत्रिका आवेग (nerve impulse) उत्पन्न होता है तो वह प्रमस्तिष्क (cerebral cortex) में जाने से पहले पूर्व मस्तिष्क के निचले भागों से गुज़रता है| मस्तिष्क के निचले भागों में तंतुओं (nerves) का एक जालिय आकार (reticular formation) है जो तंत्रिका आवेग के कारण सक्रिय हो जाता है जो सेरिब्रल कार्टेक्स में होने वाले मस्तिष्क तरंगों को प्रभावित करता है| तरंगों का ज्ञान इलेक्ट्रोएनसेफलोग्राम (Electroencephalogram or EEG) से होता है| EEG को देखने से पता चलता है कि मस्तिष्क तरंगें दो प्रकार की होती हैं–

(1) अल्फा मस्तिष्क तरंग (Alpha Brain Wave)
(2) बीटा मस्तिष्क तरंग (Beta Brain Wave)

जब व्यक्ति आराम की अवस्था में होता है तो मस्तिष्क में अल्फा तरंगें बनती हैं जिसकी ऊँचाई अधिक एवं नियमित होती है जो प्रति सेकंड 8 से 12 चक्र की दर से उत्पन्न होता है| जब व्यक्ति में सक्रियण का स्तर (बहुत चिंता, भय या उत्तेजना की स्थिति में) बढ़ता है तो अल्फा तरंगों का बनना बंद हो जाता है और उसकी जगह पर बीटा तरंगें बनती हैं | बीटा तरंग छोटी ऊँचाई की तरंगें होती हैं जो प्रति सेकंड 18 से 30 चक्र तक की होती है |

लिंडस्ले के अनुसार, अल्फा और बीटा तरंगें संक्रियण स्तर पर निर्भर करता है | व्यक्ति में सक्रियण स्तर चार प्रकार की होती हैं – शून्य स्तर, निम्न स्तर, मध्य स्तर तथा उच्च स्तर| शून्य स्तर मृत्यु के बाद होता है | नींद के समय निम्न स्तर होता है | सामान्य क्रियाओं जैसे पढ़ने-लिखने, खाने-पीने के समय मध्यम स्तर का होता है| तीव्र संवेग जैसे क्रोध, डर के समय सक्रियण स्तर उच्च स्तर का हो जाता है|

लिंडस्ले का यह सिद्धांत इलेक्ट्रोएनसेफलोग्राम (EEG) पर उनके तथा बर्जर (Berger, 1929) के अध्ययनों पर आधारित है | यह सिद्धांत संवेगों की उत्पत्ति में प्रमस्तिष्क वल्क (Cerebral Cortex), हाइपोथैलमस तथा Reticular formation को महत्वपूर्ण मानता है |

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

i. संवेगात्मक अवस्था में मस्तिष्क से ..... तरंगें निकलती हैं|

ii. ..... सिद्धांत को हाइपोथैलेमिक (Hypothalamic) सिद्धांत कहते हैं I

20.6 संवेग का वर्गीकरण (Classification of Emotion)

संवेग के वर्गीकरण के सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकों का अलग-अलग मत है | कुछ संवेग ऐसे होते हैं जो नैसर्गिक होते हैं - जैसे भय, क्रोध, आश्चर्य, शोक, आदि | कुछ संवेग ऐसे होते हैं जो धीरे-धीरे विकसित होते हैं - जैसे ईर्ष्या, प्रेम, स्नेह, घृणा आदि | जिन संवेगों से व्यक्ति को सुख मिलता है उन्हें सुखद संवेग अथवा धनात्मक संवेग (positive emotions) कहते हैं | जिन संवेगों से व्यक्ति को दुःख मिलता है उन्हें दुःखत संवेग अथवा नकारात्मक संवेग (negative emotions) कहते हैं | दोनों प्रकार के संवेगों के सकारात्मक और नाकारात्मक नामकरण से यह नहीं समझना चाहिए कि सकारात्मक हर अवस्था में अच्छे होते हैं और नकारात्मक संवेग बुरे | मनोवैज्ञानिकों ने संवेगों को प्राथमिक एवं सेकेंडरी संवेगों में भी वर्गीकृत किया है| लिंदज़े, हल तथा थाम्पसन (Lindzey, Hall & Thompson, 1978) ने संवेग को निम्नांकित प्रमुख भागों में बांटा है :

i. **प्रेम (Love or Affection)** : प्रेम एक धनात्मक संवेग है| गैरिसन (Garrisan, 1959) का कहना है की प्रेम एक ऐसा संवेग है जिसकी शुरुआत बचपन में ही होती है| व्यस्क व्यक्तियों में कामुक प्रेम (sexual love) भी होता है|

ii. **आनन्द तथा उल्लास (Joy and Elation)** : आनन्द एक तरह का धनात्मक संवेग है| जब आनन्द की तीव्रता कम होती है तो उसे ख़ुशी (pleasure or happiness) कहा जाता है और जब अधिक होती है तो उल्लास कहते हैं |

iii. **उदासीन तथा विषाद (Sadness and Depression)** : यह एक तरह का दुःखद संवेग है| जब उदासीन संवेग व्यक्ति में चिरकालिक (chronic) हो जाता है तो व्यक्ति को कुछ भी अच्छा नहीं लगता है और जिन्दगी में उसके लिए कोई आशा नहीं रह जाती | इस तरह की सांवेगिक स्थिति को विषाद की संज्ञा दी जाती है|

iv. **ऊब (Boredom)** : यह एक दुःखद संवेग है | जब व्यक्ति के सामने न तो कोई स्पष्ट लक्ष्य होता है और न ही उसे अपनी उपलब्धि से ख़ुशी होती है, वह जो भी कार्य करता है तो उसमें उसकी कोई अभिरुची नहीं होती है और न ही इच्छा, तो ऐसी परिस्थिति को ऊब कहते हैं|

अतः व्यक्ति कुछ रचनात्मक कार्य करके इस तरह की सांवेगिक परिस्थिति से छुटकारा पाना चाहता है|

v. **क्रोध (Anger)** : यह एक नकारात्मक संवेग है| कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार क्रोध में होने वाली अनुक्रियाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है – अवरोधी अनुक्रियायें (inhibited responses) और आवेगात्मक अनुक्रियायें (impulsive responses)| अवरोधी अनुक्रियाओं को 'plotted up' भी कहा जाता है | छोटे बच्चें अधिकतर आवेगात्मक अनुक्रिया ही करते हैं जबकि बड़े बच्चों तथा वयस्कों में दोनों प्रकार की अनुक्रियायें होती हैं

vi. **डर (Fear)** : विभिन्न प्रकार के भय आयु की विभिन्न अवस्थाओं से जुड़ी होती हैं | भय से सम्बंधित कुछ संवेगात्मक प्रतिमान (emotional patterns) हैं जैसे व्याकुलता (worry) तथा दुश्चिंता (anxiety) आदि | पीड़ा पहुँचाने वाली वस्तुएँ तथा अनायास शोर, अँधेरा, अकेलापन आदि से लोग भयभीत हो जाते हैं |

vii. **डाह या ईर्ष्या (Jealousy)** - डाह एक जटिल संवेग है जिसमें भय, क्रोध तथा चिंता दोनों संवेग मिला रहता है| व्यक्ति को हमेशा यह डर लगा रहता है कि उसका स्थान कोई और ना ले ले | वह अपने आप को असुरक्षित महसूस करता है |

20.7 संवेग में होने वाले शारीरिक परिवर्तन

संवेग की अवस्था में व्यक्ति में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को दो भागों में बांटा जासकता है :

(अ) बाह्य शारीरिक परिवर्तन

(ब) आतंरिक शारीरिक परिवर्तन

20.7.1 बाह्य शारीरिक परिवर्तन: मनोवैज्ञानिकों ने बाह्य शारीरिक परिवर्तनों को तीन भागों में बांटा है:

i. आनन (मुखाकृति) अभिव्यक्ति में परिवर्तन
ii. शारीरिक मुद्रा में परिवर्तन
iii. स्वर अभिव्यक्ति में परिवर्तन

i. **आनन (मुखाकृति) अभिव्यक्ति में परिवर्तन**: चेहरे में बहुत ही संवेदनशील एवं छोटी-छोटी पेशियाँ होती हैं जिनमें संवेग के उत्पन्न होने पर फैलाव एवं सिकुरण होता है| चेहरे पर छः प्रमुख संवेगों की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है -- ख़ुशी, उदासी, आश्चर्य, डर, क्रोध, एवं घृणा | स्क्लोस्वर्ग (Schlosberg,1952) ने अपने शोध के आधार पर यह बतलाया कि संवेग में आनन अभिव्यक्ति के तीन पहलु : सुखद - दुखद, अवधान - तिरस्कार तथा नींद - तनाव में आनन अभिव्यक्ति का स्पष्ट प्रत्यक्षण होता है | बेरोन (Baron,1992) ने आनन अभिव्यक्ति को संवेग का एक सार्विक भाषा माना है | आनन अभिव्यक्ति द्वारा संवेग का सही - सही प्रत्यक्षण तीन कारकों द्वारा अवरुद्ध हो जाता है :

पहला - कुछ लोग संवेग के कारण होने वाले आनन अभिव्यक्ति को छुपा लेते हैं| कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो किसी दूसरे व्यक्ति से क्रोधित होने के वावजूद भी उससे मीठी - मीठी बातें करता है| चेहरे पर क्रोध की अभिव्यक्ति को आने नहीं देता है|

दूसरा - कभी कभी व्यक्ति में कई संवेग एक ही साथ दिखता है| ऐसी अवस्था में आनन अभिव्यक्ति मिश्रित एवं अस्पष्ट होता है|

तीसरा - सिर्फ चेहरे की अभिव्यक्ति देखकर संवेग विशेष का निर्णय लेना सही नहीं है| चेहरे की अभिव्यक्ति के साथ-साथ परिस्थितियों का ज्ञान होना भी आवश्यक है|

ii. **शारीरिक मुद्रा में परिवर्तन** : संवेग में शारीरिक मुद्रा में भी परिवर्तन होता है | प्रत्येक संवेग में व्यक्ति का हाथ, पैर, सिर आदि की विशेष मुद्रा होती है | इन मुद्राओं के आधार पर व्यक्ति में होने वाले संवेगों को जान सकते हैं |

iii. **स्वर अभिव्यक्ति में परिवर्तन** : व्यक्ति के आवाज़ की तीव्रता ,बोलने का ढंग, स्वर विराम तथा स्वर आरम्भ आदि से अनुमान लगाया जा सकता है कि व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति क्या है| लेकिन जब स्वर अभिव्यक्ति जटिल होती है तो वैसी परिस्थिति में संवेग की पहचान मुश्किल होती है |

20.7.2 आतंरिक शारीरिक परिवर्तन : संवेग की स्थिति में निम्नांकित आतंरिक परिवर्तन होते हैं:

i. रक्तचाप में परिवर्तन (Changes in blood pressure) : कुछ संवेग जैसे क्रोध, भय तथा हर्ष में रक्त चाप में वृद्धि हो जाती है जबकि कुछ संवेग में जैसे शोक, दुःख में रक्त चाप में कमी हो जाती है होते है |

ii. रक्त में रासायनिक परिवर्तन (Chemical changes in blood): संवेग की अवस्था में शरीर में रासायनिक तत्वों में भी परिवर्तन होता है| रक्त में एड्रेनालीन नामक हार्मोन (जो एड्रीनल ग्रंथि से स्रावित होती है) की मात्रा बढ़ जाती है | खून में ग्लूकोस की मात्रा बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अधिक सक्रिय हो जाता है और परिस्थिति के साथ समायोजन कर लेता है |

iii. साँस की गति में परिवर्तन (Changes in the rate of respiration): कुछ संवेग में साँस की गति में वृद्धि हो जाती है जबकि कुछ संवेग में साँस की गति में कमी हो जाती है होते है| मानसिक कार्य करते समय साँस की गति में तेज हो जाती है| आश्चर्य की स्थिति में साँस की गति तेज परंतु अनियमित हो जाती है जबकि दुःख, मंदता (depression) और मानसिक संघर्ष में साँस की गति धीमी होती पाई गई है|

iv. हृदय की गति तथा नाड़ी की गति में परिवर्तन (Changes in heart beat and pulse rate): हृदय के सिकुड़ने तथा फैलने की क्रिया को हृदय गति कहतें हैं| हृदय से पंप होकर रक्त धमनी में जाती है जहाँ पर नाड़ी की गति को महसूस किया जाता है| नाड़ी की गति हृदय की गति पर निर्भर करती है| कुछ संवेगों में जैसे क्रोध तथा प्यार में हृदय की गति बढ़ जाती है |

v. पाचन क्रिया में परिवर्तन (Changes in gastrointestinal activities): संवेग की अवस्था में शरीर के पाचन क्रिया से सम्बंधित अंगों में भी परिवर्तन होता है| इनकी क्रियाएं या तो बढ़ जाती हैं या कम हो जाती हैं| तेज संवेग जैसे भय, क्रोध, चिंता में पाचन क्रिया धीमी हो जाती है|

vi. ग्रंथिय स्राव में परिवर्तन (Changes in glandular secretions): संवेगात्मक अवस्था में अन्य ग्रंथियों के अलावा दो गंथियाँ एड्रीनल ग्रंथि तथा लार ग्रंथि से निकलने वाले स्राव

महत्वप्पूर्ण हैं| तीव्र संवेग में लार का स्राव कम हो जाता जिससे मुंह के भीतर सुखा-सुखा अनुभव होता है | एड्रीनलीन जो कि एड्रीनल ग्रंथि द्वारा स्रावित होता है शरीर में बहुत सारे शारीरिक परिवर्तन लाता है जैसे - एड्रीनलीन के खून में मिलने से रक्तचाप में वृद्धि हो जाती है, रक्त में ग्लूकोस की मात्रा बढ़ जाती है, लाल रक्त कणों की संख्या बढ़ जाती है, ऐच्छिक मांसपेशियों में खून की आपूर्ति अधिक हो जाती है तथा पाचन संस्थानों में कम हो जाती है| इन सबके कारण व्यक्ति में थकान कम महसूस होता है |

vii. गैल्वेनिक त्वक अनुक्रिया में परिवर्तन (Changes in galvanic skin reaction or GSR): हमारे त्वचा में एक प्रकार की वैधुत चालकत्व (electrical conductance) की क्षमता होती है जो की स्वेद (पसीने) ग्रंथियों के कार्यों पर निर्भर करती है | वैधुत चालकत्व को गल्वानोमीटर (galvanometer) से मापा जाता है | संवेगात्मक अवस्था में त्वचा में चालकत्व तीव्र हो जाती है जिसके कारण त्वचा में निरोध कम हो जाता है |

viii. आँख की पुतली की अनुक्रिया में परिवर्तन (Changes in pupillary responses): आंख की परितारिका स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Autonomous Nervous System) के नियंत्रण में होती है| संवेगात्मक अवस्था में आँख की पुतली तथा परितारिका के कार्यों में कुछ परिवर्तन आता है |

ix. मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन (Changes in brain waves): मस्तिष्क तरंगों का मापन एक विशेष उपकरण जिसे एलेक्ट्रोएंस्फलोग्राम (electroencephalogram) या EEG कहते हैं| सामान्य अवस्था में मस्तिष्क में एक खास तरह का तरंग बनता है जिसे अल्फा तरंग कहते हैं जो अधिक ऊँचाई (high amplitude) वाला होता है | संवेगात्मक अवस्था में दूसरे तरह का तरंग बनता है जिसे बीटा तरंग कहते हैं जो कम ऊँचाई (low amplitude) वाला होता है |

अतः व्यक्ति में विभिन्न शारीरिक परिवर्तनों यानि कि बाह्य एवं आतंरिक शारीरिक परिवर्तनों को एक साथ मिलाकर अध्ययन करने पर ही संवेग की सही पहचान एवं अर्थ समझा जासकता है |

अभ्यास प्रश्न 3 :

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

i. एड्रेनालीन हार्मोन की मात्रा बढ़ने से खून में ..... की मात्रा बढ़ जाती है |
ii. तीव्र संवेग में लार का स्राव ..... हो जाता है |

20.8 सांवेगिक बुद्धि (Emotional Intelligence)

सामान्यतः लोग यह समझते हैं कि अपने बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient या I.Q) के कारण ही किसी को अपने जीवन में सफलताएँ एवं उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं | लेकिन आधुनिक शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्ति को अपने जीवन में जो भी सफलताएँ मिलती हैं, उसका 20% ही बुद्धि लब्धि (I.Q) के कारण होता है और 80% सांवेगिक लब्धि (emotional Quotient या E.Q) के कारण होता है (गोलमैन,1996)| बुद्धि से संज्ञानात्मक योग्यता (cognitive ability) का बोध होता है| काफी समय तक यह माना जाता रहा कि संज्ञान (cognition) तथा संवेग परस्पर विरोधी

मनःस्थितियाँ हैं| लेकिन जीवन में सफल समायोजन करने में संज्ञान तथा संवेग दोनों की आवश्यकता होती है| अतः सांवेगिक बुद्धि को समझना अति आवश्यक है|

'सांवेगिक बुद्धि' पद का प्रतिपादन दो अमेरिकन मनोवैज्ञानिक सैलोवे तथा मेयर (Salovey and Mayor) ने 1990 में दी थी | इनके अनुसार व्यक्ति की जिंदगी के सांवेगिक पहलू से सम्बन्ध क्षमताओं या शीलगुणों के समुच्च्य से होता है | इनलोगों ने सांवेगिक बुद्धि को मूलतः सामाजिक बुद्धि का एक प्रकार माना था | लेकिन इनके बाद कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस क्षेत्र में काफी अध्ययन किया | गोलमैन जो रूटजर्स विश्वविद्यालय में 'कन्सोर्टियम फॉर रिसर्च ओर एमोशनल इंटेलिजेंस' के संस्थापक एवं चेयरमैन हैं ने इस संप्रत्यय की वैज्ञानिक तथा सैद्धांतिक व्याख्या अपने बहुचर्चित पुस्तक "इमोशनल इंटेलिजेंस: व्हाई इट कैन मैटर मोर दैन आई क्यू" (Emotional Intelligence: why it can matter more than IQ ?) में किया |

20.8.1 सांवेगिक बुद्धि की परिभाषा:

मेयर एवं सैलोवे (1977) के अनुसार, " सांवेगिक बुद्धि संवेगों की प्रत्यक्षण करने की क्षमता, संवेग के प्रति पहुँच बनाने एवं उससे उत्पन्न करने की क्षमता, ताकि चिंतन में मदद हो सके तथा संवेग को चिंतनशील ढंग से नियमित किया जा सके ताकि संवेगिक एवं बौद्धिक बर्धन को उन्नत बनाया जा सके, से होता है |"

गोलमैन(1998) के अनुसार, " यह अपने एवं दूसरों के भावों को पहचानने की क्षमता तथा अपने आप को अभिप्रेरित करके एवं अपने एवं अपने संबंधों में संवेग को प्रबंधित करने की क्षमता है| सांवेगिक बुद्धि द्वारा उन क्षमताओं का वर्णन होता है जो शैक्षिक बुद्धि या बुद्धि लब्धि द्वारा मापे जाने वाले पूर्णतः संज्ञानात्मक क्षमताओं से भिन्न परन्तु उसके पूरक होते हैं |"

बार -औन (1997) के अनुसार, " सांवेगिक बुद्धि द्वारा वह क्षमता परावर्तित होता है जिसके माध्यम से दिन-प्रतिदिन के पर्यावरणी चुनौतियों के साथ निपटा जाता है और जो व्यक्ति की जिंदगी में जिसमें पेशेवर तथा व्यक्तिगत धंधा भी सम्मिलित है,सफलता प्राप्त करने में मदद करता है|"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सांवेगिक बुद्धि किसी भी व्यक्ति को अपने जिंदगी में सफल होने के लिए आवश्यक है| लेकिन सांवेगिक बुद्धि काफी जटिल संप्रत्यय है | इनमें अनेक प्रकार के तथ्यों का समावेश है |

20.8.2 गोलमैन का सांवेगिक बुद्धि(Goleman's Emotional Intelligence)

गोलमैन जो रूटजर्स विश्वविद्यालय में 'कन्सोर्टियम फॉर रिसर्च ओर एमोशनल इंटेलिजेंस' के संस्थापक एवं चेयरमैन हैं ने इस संप्रत्यय की वैज्ञानिक तथा सैद्धांतिक व्याख्या अपने बहुचर्चित पुस्तक "इमोशनल इंटेलिजेंस: व्हाई इट कैन मैटर मोर दैन आई क्यू" (Emotional Intelligence: why it can matter more than IQ?) में किया| उनके अनुसार सांवेगिक बुद्धि के कारण व्यक्ति अपने भावों एवं संवेगों को पहचानता एवं समझता है, साथ ही वह दूसरों के भावों और संवेगों को भी भली-भांति समझता है| बुद्धि एवं सांवेगिक बुद्धि एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं| इन्होंने अपने सिद्धांत में सांवेगिक बुद्धि के लिए सांवेगिक क्षमताओं के महत्व को बतलाया है| गोलमैन के अनुसार ऐसी सांवेगिक क्षमताएँ(तत्त्व) पांच हैं जिनका विवरण निम्नांकित है:

i. **आत्म अवगतता(Self-Awareness):** सांवेगिक बुद्धि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि व्यक्ति अपने संवेगों से खुद अवगत होता है | व्यक्ति में जो भी भाव तथा संवेग उत्पन्न

होते हैं उसका ज्ञान उसे रहता है अर्थात् संवेग में वह अपनी मनोदशा से तो अवगत रहता ही है, साथ ही वह अपनी मनोदशा के लिए चिंतन भी करता है| वह अपने भावों तथा संवेगों को अच्छी तरह समझकर उसी के अनुसार काम करता है|

ii. **आत्म-प्रबंधन (Self-Management)**: व्यक्ति को न सिर्फ अपने संवेगों की जानकारी होती है, वह उन संवेगों का प्रबंधन भी करता है| इसका अर्थ यह हुआ कि वह संवेगों को दबाकर नहीं रखता बल्कि उन संवेगों को उचित ढंग से अभिव्यक्त भी करता है| गोलमैन के अनुसार जिन व्यक्तियों में संवेगिक बुद्धि की अधिकता होती है उन्हें यह पता होता है कि अपने संवेगों को कैसे नियंत्रित तथा प्रबंधित किया जाए|

iii. **आत्म अभिप्रेरण Self-Motivation):** आत्म-अभिप्रेरण से तात्पर्य ऐसे साम्वेगिक आत्म-नियंत्रण से होता है जो व्यक्ति को उत्तम लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रखता है, कुंठित रहने पर भी व्यक्ति को कार्यरत रखता है तथा तात्कालिक तुष्टि के लिए प्रलोभन को रोकने में मदद करता है | यह तत्त्व का सम्बन्ध जीवन के विभिन्न क्षेत्र में होने वाले सफलता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है क्योंकि इसमें व्यक्ति किसी कठिन कार्य को मेहनत से करने के लिए प्रेरित रहता है और तात्कालिक तुष्टि को रोकने में भी सफल होता है|

iv. **परानुभूति (Empathy):** यह तत्त्व साम्वेगिक बुद्धि का एक ऐसा पक्ष है जिसमें व्यक्ति दूसरों के अभिप्रेरण एवं संवेगों को समझता है और उनकी पर्याप्त पहचान करता है | परानुभूति का आधार आत्म-बोध होता है | परानुभूति का सबसे प्रमुख सूचक अशाब्दिक व्यवहार |(हाव-भाव, वाक् नमन, आनन अभिव्यक्ति) को समझने एवं व्याख्या करने की क्षमता से होती है |

v. **सामाजिक कौशल (Social Skills):** दूसरों के साथ उत्तम सम्बन्ध बनाये रखना एवं उसे ठीक ढंग से संचालित करके रखना एक ऐसा तत्त्व है जो दो अन्य तत्वों अर्थात अपने संवेगों को प्रबंधित करके रखने की क्षमता तथा परानुभूति का परिणाम होता है| जिन व्यक्तियों में इन दोनों तत्वों की प्रधानता होती है, वे लोग आसानी से दूसरों के साथ उत्तम एवं संतोषजनक सम्बन्ध बनाकर रखते हैं और उसका ठीक ढंग से संचालन भी करते हैं|

अभ्यास प्रश्न 4:

1. इनमें से कौन साम्वेगिक बुद्धि का तत्त्व नहीं है?
   - i. दूसरों के संवेग को पहचानना
   - ii. संवेगों को प्रबंधित करना
   - iii. आत्मा अभिप्रेरण
   - iv. जीवों में भेद करने की क्षमता

2. परानुभूति का क्या अर्थ है?
   - i. अपने संवेगों को नियंत्रित करना
   - ii. अपने संवेगों से अवगत होना
   - iii. दूसरों के संवेगों को पहचानना एवं समझना
   - iv. दूसरों के संवेगों को नियंत्रित करना

20.9 सारांश (Summary)

संवेगों की प्रकृति भावात्मक होती है जो व्यक्ति को क्षणिक उत्तेजना प्रदान करती है| संवेग में दैहिक तत्त्व, संज्ञानात्मक तत्त्व तथा व्यवहारपरक तत्त्व सम्मिलित हैं | संवेग की अवस्था में व्यक्ति में बहुत सारे शारीरिक परिवर्तन होते हैं | संवेग के स्वरुप को समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों तथा शरीरशास्त्रियों (physiologists) द्वारा विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया |

सांवेगिक बुद्धि किसी भी व्यक्ति को अपने जिंदगी में सफल होने के लिए आवश्यक है| यह अपने एवं दूसरों के भावों को पहचानने की क्षमता तथा अपने आप को अभिप्रेरित करके एवं अपने एवं अपने संबंधों में संवेग को प्रबंधित करने की क्षमता है|

20.10 शब्दावली (Glossary)

- **शरीरशास्त्री** : वे वैज्ञानिक जो शरीर विज्ञान का अध्ययन करते हैं |
- **आवेगात्मक अनुक्रियायें** : वैसे अनुक्रियायें जो कि बहुत जल्दी, बिना ज्यादा सोचे-समझे होता है
- **अवरोधी अनुक्रियायें** : वैसे अनुक्रियायें जो कि नियंत्रित होती हैं |
- **गल्वानोमीटर** : निम्न विद्युत् धारा शक्ति मापन यंत्र |
- **इलेक्ट्रोएन्सफलोग्राम (EEG) :** मस्तिष्क के विद्युतीय क्रियाशीलता का ग्राफीय प्रदर्शन जो कि इलेक्ट्रोएन्सफलोग्राफ उपकरण द्वारा लिया जाता है |

20.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1:

1. उत्तेजित 2. परिवर्तन

अभ्यास प्रश्न 2:

1. बीटा 2. कैनन-बोर्ड सिद्धांत

अभ्यास प्रश्न 3:

1. ग्लूकोस 2. कम

अभ्यास प्रश्न 4:

1.जीवों में भेद करने की क्षमता 2. दूसरों के संवेगों को पहचानना एवं समझना

20.12 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. संवेग के स्वरुप एवं विशेषताओं का वर्णन करें|
2. संवेग के जेम्स लैन्जे सिद्धांत एवं कैनन-बोर्ड सिद्धांत का तुलनात्मक वर्णन करें|
3. लिंडस्ले के संवेग के सक्रियण सिद्धांत का वर्णन करें|

4. संवेगावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का वर्णन करें|
5. सांवेगिक बुद्धि की परिभाषा दें| गोलमैन के सांवेगिक बुद्धि सिद्धांत के पांच तत्वों का वर्णन करें|

20.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, ए.के.,(2014), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, आठवाँ संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन,दिल्ली-7 |
- नालन्दा खुला विश्वविद्यालय,(2007),आधारभूत मनोविज्ञान के मूल सिद्धांत,एम्.ए मनोविज्ञान, पटना |
- नालन्दा खुला विश्वविद्यालय,(2007),संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, एम्.ए मनोविज्ञान, पटना |
- सुलैमान, म.,(2011),सामान्य मनोविज्ञान: मूल प्रक्रियायें एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियायें, पुनमुद्रण, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन,दिल्ली-7 |
- मंगल,एस.के.,(2008), शिक्षा मनोविज्ञान ,पी.एच.आई. प्राइवेट लिमिटेड , नई दिल्ली |

इकाई - 21

उत्तेजन और समस्थिति, अन्तर्नोद- न्युनीकरण सिद्धांत; संज्ञानात्मक निस्सहायता

Arousal and homeostasis, drive reduction theory; cognitive view helplessness

इकाई की रूपरेखा

21.0 प्रस्तावना

21.1 उद्देश्य

21.2 प्रेरणा का अर्थ व परिभाषा

21.3 प्रेरणा के तत्व

21.4 प्रेरणा के प्रकार

21.5 प्रेरणा के सिद्धांत

21.6 संज्ञानात्मक निस्सहायता

21.7 सारांश

21.8 अभ्यास प्रश्न

21.9 संदर्भ सूची

21.0 प्रस्तावना (Introduction) (Introduction)

मनोविज्ञान 'व्यवहार का ज्ञान' (science of behaviour) है| इसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार को जानने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति आमुक व्यवहार क्यों करता है| अभी तक मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि व्यक्ति का व्यवहार मूल-प्रवृतियों (instintcs) से परिचालित होता है| किन्तु इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया गया और यह मान लिया गया की हमारे व्यवहार को परिचालित करने वाली शक्तियाँ प्रेरक (motives) है, जो मूल-प्रवृतियों की तरह जन्मजात (innate) होती है तथा कुछ प्रेरक व्यक्ति वातावरण से अर्जित करता है| व्यक्ति के व्यवहार को परिचालित करने वाली शक्ति प्रेरक उत्तेजक तथा उनके प्रति किया गया कार्य अनुक्रिया होता है| उत्तेजक अनुक्रिया में सम्बन्ध व्यक्ति के जैविक आधार के कारण होता है,जिसे स्नायु-तंत्र कहते है|उत्तेजना के परिणामस्वरूप व्यक्ति अनुक्रिया करता है, उन्हें उत्तेजक – व्यक्ति – अनुक्रिया (S –O—R) के सूत्र के आधार पर व्यक्त किया जा सकता है| प्रत्येक व्यक्ति इस जगत में उद्देश्य (Objective) की प्राप्ति के लिए प्रत्यनशील रहता है| व्यक्ति हमेशा अपनी किसी न किसी प्रकार की आवश्यकताओं से घिरा रहता है| सामाजिक एवं मानसिक व्यक्ति होने के नाते वह विभिन्न क्षेत्रों से सम्बंधित

आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है| क्योंकि मनुष्य बुद्धियुक्त व्यक्ति है, अत: वह अपनी आवश्यकताओं के प्रति सजग रहता है तथा स्वयं ही इनकी पूर्ति करने के लिए प्रयत्न तथा उपाय करता है | अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के संदर्भ में व्यक्ति अपने वातावरण के साथ संपर्क स्थापित करता है ,जो भौतिक व सांस्कृतिक दोनों प्रकार का होता है| व्यक्ति शारीरिक अथवा मूल आवश्यकताओं की तृप्ति में निरंतर प्रयत्नशील रहते है| बालक जैसे बड़ा होता है,अनुभव लेता है, उसके साथ-साथ उसकी आवश्कताएँ उतनी जटिल होती जाती है|

उक्त कथन के संदर्भ में प्रश्न यह उठता है – व्यक्ति ऐसा क्यों करता है? व्यक्ति के व्यवहार के पीछे कौन सी शक्ति छिपी रहती है जो व्यक्ति को अनुक्रिया करने के लिए बाध्य कर देती है| अनुक्रिया करने की प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो जाती, संतुष्टि हेतु व निरंतर प्रयत्नशील रहता है| आवश्यकताओं की पूर्ति न होने व संतुष्टि प्राप्त न करने की स्थिति में व्यक्ति तनाव व बैचेनी महसूस करने लगता है| यह स्थिति कष्टदायक होती है, अत: इसे दूर करने हेतु वह प्रयत्न व प्रयास करता है| आवश्कता व उद्देश्य प्राप्त न होने की स्थिति में व्यक्ति अवसाद (depression) से पीड़ित हो जाता है| लम्बे समय तक भग्नाशा में रहने से व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है| अन्तर्नोद, उत्तेजन, समस्थिति इन तीनो कारकों के परस्पर मिलने से तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे व्यक्ति के कार्य निष्पादन व संज्ञान पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है| तनाव बढने से व्यक्ति निराशावादी व निस्सहाय हो जाता है|

21.1 उद्देश्य (Objective)

- प्रेरणा का अर्थ व परिभाषा को समझ सकेंगे|
- प्रेरणा के तत्व व प्रकारों का उल्लेख कर सकेंगे|
- प्रेरणा के सिद्धांतो के नाम बता सकेंगे|
- प्रेरणा के मुख्य सिद्धांतो की व्याख्या कर सकेंगे|
- उत्तेजन व समस्थिति सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे|
- अन्तर्नोद-न्युनीकरण सिद्धांत का वर्णन कर सकेंगे|
- संज्ञानात्मक निस्सहायता सिद्धांत के संप्रत्य को स्पष्ट कर सकेंगे|

21.2 प्रेरणा का अर्थ व परिभाषा

रेल का इंजन चलने के पीछे भाप अथवा विद्युत शक्ति कार्य करती है जिसके आभाव में इंजन का कोई अस्तित्व नहीं| इसी प्रकार व्यक्ति की क्रियाओं के पीछे जो शक्ति है,उसे मनोविज्ञान में प्रेरणा के नाम से जाना जाता है| 'प्रेरणा' के शाब्दिक और मनोवैज्ञानिक अर्थों में अंतर है| प्रेरणा का शाब्दिक अर्थ किसी कार्य को करने का बोध करता है, इस अर्थ में किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कह सकते है है क्योंकी उत्तेजना के आभाव में किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया संभव नै है| यह उत्तेजना आन्तरिक भी हो सकती है और बाह्य भी| अंग्रेजी के motivation शब्द की उत्पति लैटिन भाषा की motum धातु से हुई है जिसका अर्थ है move, motar और motion |

प्रेरणा के मनोवैज्ञानिक अर्थ से अभिप्राय केवल आन्तरिक उत्तेजनाओं से होता है, जिन पर हमारा व्यवहार आधारित होता है अर्थात प्रेरणा एक आन्तरिक शांति है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकती है| यह एक अदृश्य शक्ति है जिसको देखा नहीं जा सकता है| इस पर आधारित व्यवहार को केवल देखकर अनुमानित किया जा सकता है| क्रेच व क्रेचफील्ड (Krech and Crushfield) ने लिखा है कि प्रेरणा का प्रश्न 'क्यों' का प्रश्न है| (The question of motivation is the question of why) जैसे – हम खाना क्यों खाते हैं, प्रेम क्यों करते है, धन क्यों कमाते हैं, काम क्यों करते है, इस प्रकार के सभी प्रश्नों का सम्बन्ध प्रेरणा से है|

परिभाषा :

प्रेरणा का मनोवैज्ञानिक अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ निम्न है-

1. ***गुड के अनुसार-*** प्रेरणा, कार्य को प्रारंभ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है|

"Motivation is the process of arousing, sustaining and regulating activity." **(Good)**

2. ***पी.टी. यंग के अनुसार-*** प्रेरणा, व्यवहार को जाग्रत करके क्रिया के विकास का पोषण करने तथा उसकी विधियों को नियमित करने की प्रक्रिया है|

"Motivation is the process of arousing action sustaining the activities in progress and regulating the pattern of activity." (P.T. Young)

3. ***ब्लेयर, जोन्स व सिम्पसन के अनुसार-*** प्रेरणा एक प्रक्रिया है, जिसमें सीखने वाले की आन्तरिक शक्तियाँ या आवश्यकताएँ उसके वातावरण में विभिन्न लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती है|

"Motivation is a process in which the learner's internal energies or needs are directed towards various goal objects in his achievement."(Blair, Jones and Simpson)

4. ***वुडवर्थ के अनुसार-*** निष्पत्ति (achievement) = योग्यता (ability) + प्रेरणा (motivation) अर्थात योग्यता + प्रेरणा से निष्पत्ति प्राप्त होती है| प्रेरणा से व्यक्ति की योग्यता का विकास होता है| योग्यता तथा प्रेरणा से ही निष्पत्ति संभव है|

5. ***मैक्डूगल के अनुसार-*** प्रेरक वो शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक दशाएँ है, जो किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है|

Motives are conditions physiological and psychological within the organism that dispose it to act in certain ways.

6. ***गिलफोर्ड के अनुसार-*** प्रेरणा एक कोई भी विशेष आंतरिक दशा या कारक है जो क्रिया को आरंभ करने अथवा बनाए रखने को प्रवृत्त होती है|

A motive is any particular internal factor or condition that tends to initiate and to sustain activity.

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर ये तथ्य उभरते है-

i प्रेरणा मनोव्यावहारिक क्रिया है|

ii यह किसी की आवश्यकता से उत्पन्न है|

iii इससे किसी विशेष क्रिया करने के संकेत मिलता है|

iv प्रेरणा द्वारा प्रसूत क्रिया लक्ष्य प्रगति तक रहती है|

बोध प्रश्न

1. प्रेरणा का मनोवैज्ञानिक अर्थ क्या है?

2. मैक्डूगल के अनुसार प्रेरणा को परिभाषित करे?

3. व्यक्ति भग्नाशा से पीड़ित क्यों होता है?

21.3 प्रेरणा के तत्व (Elements of Motivation)

प्रेरणा किसी अवश्यकता से प्रारंभ होती है और उद्देश्य (Objective) प्राप्ति के बाद समाप्त हो जाती है| प्रेरणा की व्याख्या को अधिक स्पष्ट रूप से मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणात्मक चक्र (motivational cycle) के संप्रत्य (concept) का प्रतिपादन किया| इस चक्र के मुख्य तीन तत्व है- आवश्यकता (need), प्रणोद (drive) तथा प्रोत्साहन (incentive)|

i) अवश्यकता (Need):

जब व्यक्ति के शरीर में किसी चीज की कमी (deficency) या अति (excess) की अवस्था किसी कारण से उत्पन्न हो जाती है, तो उसे हम आवश्यकता की संज्ञा देते हैं | आवश्यकता व्यक्ति में किसी कमी की पूर्ति का द्योतक होती है| वुडवर्थ व स्कलौसवर्ग (Woodworth & Scholesberg,1954) ने आवश्यकता को इस संदर्भ में परिभाषित करते हुये कहा- "कमी या अति की शारीरिक अवस्था को आवश्यकता कहा जा सकता है|" जैसे – व्यक्ति को जब प्यास लगती है, तो यह स्पष्ट है कि उसकी शरीर की कोशिकाओं में पानी की कमी हो जाती है| पानी की कमी की पूर्ति के लिए व्यक्ति पानी की आवश्यकता अनुभव करता है| अत: व्यक्ति की आवश्यकताओं को सामान्यत: दो वर्गों में विभाजित किया जाता है-अ) शारीरिक (Physical) अथवा जैविक (Biological) ब) मनो-सामाजिक (Psycho-Social)|

शारीरिक आवश्यकताओं में व्यक्ति की शारीरिक अथवा जैविक आवश्यकताएँ आती है जैसे- भोजन, जल, वायु व मल-मूत्र विसर्जन आदि| मनो-सामाजिक में व्यक्ति में उसके सामाजिक पर्यावरण के कारण उत्पन्न मनोसामाजिक आवश्यकताएँ आती है जैसे- आत्मसम्मान, सामाजिक स्तर एवं अर्थ आदि| ये आवश्यकताएँ व्यक्ति में तनाव (Tension) उत्पन्न करती है और इनकी पूर्ति के लिए व्यक्ति क्रियाशील हो जाता है| व्यक्ति उस समय तक क्रियाशील रहता है जब तक उसकी आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो जाती| जैसे- भूख लगने पे व्यक्ति भोजन की आवश्यकता को अनुभव करता है, यह उसमें तनाव की स्थिति उत्पन्न कर देती है तनाव को कम करने के लिए आवश्यकता की पूर्ति हेतु क्रियाशील हो उठता है| भोजन प्राप्त होने पर तनाव दूर हो जाता है| तनाव की स्थिति उस समय तक बन रहती है जब तक की वह भोजन प्राप्त न कर ले | बोरिंग और लैंगफील्ड ने आवश्यकता को तनाव के रूप में ही परिभाषित किया है- "आवश्यकता प्राणी के अंदर का वह

तनाव है जो उसे उद्देश्य (Objective) लक्षित निश्चित प्रोत्साहनों की ओर प्रवृत करता है और उनकी प्राप्ति हेतु क्रियाओं को उत्पन्न करता है|"

"A need is a tension within an organism which tends to organize the field of organism with respect to certain incentives of goals and initiate activity directed towards their attainment."

ii) प्रणोद या अंतर्नोद या चालक (Drive):

जब व्यक्ति या जीव (organism) में आवश्यकता उत्पन्न होती है, तो इससे स्वत: ही उसमें क्रियाशीलता बढ़ जाती है और वह पहले से अधिक सक्रिय (active) तथा तनावपूर्ण मालूम पड़ता है| आवश्यकता व्यक्ति के अंदर तनाव पैदा करती है, यह तनाव जिस रूप में अनुभव किया जाता है उससे प्रणोद या चालक कहते है| सर्टेन (Sartain ,1973) ने अन्तर्नोद / प्रणोद को परिभाषित करते हुए कहा है- "प्रणोद तनाव या क्रियाशीलता की अवस्था है जो किसी आवश्यकता (ऊतक या निष्कासन) द्वारा उत्पन्न होता है|" जैसे- व्यक्ति में भूक,प्यास, काम (sex) आदि की आवश्यकताएँ प्रमुख आवश्यकताओं में से है| इन आवश्यकताओं से प्रणोद/अन्तर्नोद उत्पन्न होता है| भूक की आवश्यकता से भूख प्रणोद (hunger drive), प्यास की आवश्यकता से प्यास प्रणोद (thirst drive) तथा काम की आवश्यकता से काम प्रणोद (sex drive) उत्पन्न होता है| शारीरिक आवश्यकताओं (physiological needs) के आलावा व्यक्ति में मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ भी होती है| जैसे-जीवन में ऊंचा से ऊंचा उपलब्धि (achievement) प्राप्त करने की आवश्यकता (need), दुसरो पर आधिपत्य जमाने की आवश्यकता (dominance drive) आदि| इन मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से भी मनोवैज्ञानिक प्रणोद/अन्तर्नोद (psychological drive) उत्पन्न होता है| जैसे- उपलब्धि की आवश्यकता (need) से उपलब्धि प्रणोद (achievement drive) तथा आधिपत्य जमाने की आवश्यकता से आधिपत्य प्रणोद (dominance drive) की उत्पत्ति होती है| इसी संदर्भ में शेफर व अन्य ने कहा है- प्रणोद/अन्तर्नोद वह शक्तिशाली एवं सतत उद्दीपक है जो किसी समायोजन की अनुक्रिया की माँग करता है|

A drive is a strong and persistent stimulus that demands an adjustive response.

iii) प्रोत्साहन या लक्ष्य (Incentive or Goal):

प्रोत्साहन को उद्दीपक भी कहते है| प्रोत्साहन बाह्य वातावरण से प्राप्त होने वाली वस्तु है जो व्यक्ति को या पशु को अपनी और आकर्षित कर लेती है तथा जिसकी प्राप्ति से व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति तथा प्रणोद (drive) में कमी हो जाती है| जैसे- भूख की पूर्ति के लिए भोजन, प्यास की पूर्ति के लिए पानी| इसी प्रकार काम चालक (sex drive) का उद्दीपन/प्रोत्साहन है दुसरे लिंग का व्यक्ति , क्योंकि उसी से यह चालक (drive) संतुष्ट होता है| अर्थात किसी वस्तु को प्रोत्साहन/लक्ष्य कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि वह आवश्यकता (need) से सम्बंधित हो| जैसे- प्यासे व्यक्ति के लिए पानी लक्ष्य या प्रोत्साहन होता है, जो व्यक्ति को अपनी और आकर्षित कर लेता है,तथा जिसकी प्राप्ति से प्यास समाप्त हो जाती है व क्रियाशीलता एवं प्रणोद (तनाव की स्थिति) भी कम हो जाती है| परन्तु थोड़ी देर के लिए मान लिया जाये कि प्यासे व्यक्ति को पानी की जगह भोजन (food) दिया जाता है, तो इससे उसकी प्यास नै बुझेगी और न ही प्यास प्रणोद (thirst drive) में कमी आयेगी|

लक्ष्य दो तरह के होते है- घनात्मक (positive) तथा ऋणात्मक (negative)| घनात्मक लक्ष्य (positive goal) उन्हें कहा जाता है जिसे व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि उसे प्राप्त करने से ही उसकी आवश्यकता (need) की पूर्ति हो सकती है| जैसे- भोजन, पानी, लैंगिक क्रिया (sexual activities) आदि| ऋणात्मक लक्ष्य (negative goal)वह लक्ष्य है जिनसे व्यक्ति दूर रहना चाहता है, क्योंकि उनसे दूर रहने से ही उसकी आवश्यकता की पूर्ति होती है| जैसे- दंड (punishment), आँखों पर सीधी पड़ने वाली तीव्र रोशनी, अत्यधिक गर्मी, अत्यधिक ठण्ड आदि|

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है, पशु हो या व्यक्ति, प्रेरणा की स्थिति में सबसे पहले उसमे किसी-न-किसी आवश्यकता की उत्पत्ति होती है, जो व्यक्ति को क्रियाशील बना उसमें तनाव बढ़ा देती है, जिसे प्रणोद (drive) कहा जाता है| प्रणोद की उत्पत्ति से व्यक्ति का व्यवहार उद्देश्य (Objective)पूर्ण (purposeful) हो जाता है, तथा वह अपने लक्ष्य की और अग्रसित होता है|

इनके अनुसार- आवश्यकता (need), अन्तर्नोद (drive) को जन्म देती है| अन्तर्नोद से बड़े तनाव की स्थिति से जो क्रिया (activity)और प्रारंभिक व्यवहार (prepratory behaviour) की और ले जाती है| प्रोत्साहन बाह्य पर्यावरण की और कोई वस्तु होती है जो आवश्यकता की संतुष्टि करती है और संतुष्टि की क्रिया द्वारा अन्तर्नोद को कम करती है|

डेसी (Deci, 1975) ने मानव प्रेरणा (human motivation) को अभिप्रेरणात्मक चक्र (motivational cycle) द्वारा और अधिक स्पष्ट एवं उसकी उपयुक्त व्याख्या करने के लिए इस चक्र में एक चौथा तत्त्व (element) भी जोड़ा है-संज्ञान (cognition) | संज्ञान एक सामान्य मानसिक प्रक्रिया है जिसमें चिंतन (thinking), प्रत्यक्षण (perception), स्मरण (remembering), भाव (feeling), निर्णय (judgement) आदि प्रक्रियाँएं सम्मिलित होती है| मनोवैज्ञानिकों ने इस तरह के प्रेरणात्मक चक्र को संज्ञानात्मक अभिप्रेरणात्मक चक्र (cognitive motivational cycle) की संज्ञा दी है| इस चक्र के अनुसार मानव प्रेरणा की व्याख्या इस प्रकार होती है| किसी बाह्य (external stimulus) या आन्तरिक उद्दीपक (internal stimulus) द्वारा जब व्यक्ति उत्तेजित (stimulate)होता है तो इससे व्यक्ति में क्रियाशीलता बढ़ जाती है और उसमें किसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है साथ ही साथ वह इस बात से भी अवगत हो जाता है की उसे us लक्ष्य पर पहुँचने से कितना संतोष मिलेगा| इस तरह के अनुमान को 'भावी-संतोष-से–अवगत-की स्थिति (state of awareness-of-potential satisfaction) कहा जाता है| इस स्थिति के बाद यह सोचता है कि किसी तरह us लक्ष्य पर पहुँच जाये जिसके बाद उसमें एक संतोष (satisfaction) होगा जिसे वास्तविक संतोष (real satisfaction) कहा जाता है| यदि, वास्तविक संतोष का स्तर 'भावी-संतोष' (potential satisfaction) के स्तर से कम हुआ, तो ऐसी परिस्थिति में अभिप्रेरण (motive) की स्थिति बनी होती है और व्यक्ति नया उपाय सोच कर वास्तविक संतुष्टि का स्तर और अधिक बढ़ाने की कोशिश करता है ताकि वह भावी संतोष (potential satisfaction) के स्तर पर पहुँच जाये|

21.4 प्रेरणा के प्रकार (Types of Motivation)

प्रेरणा की उत्पत्ति दो आधारों पर मानी गई है- अ) शारीरिक आधार तथा ब) सामाजिक आधार | शारीरिक आवश्यकताओं से शारीरिक आधार तथा सामाजिक वातावरण से सामाजिक आधार उत्पन्न करने में सक्षम है|

अ) शारीरिक प्रेरणाएँ (physiological)/ जैविक (biological)/ जन्मजात प्रेरक (inborn motive)

वे प्रेरक जो व्यक्ति में जन्म से मौजूद होते है, जिनके आभाव में व्यक्ति का जीवित रहना संभव नहीं, वह शारीरिक प्रेरक कहलाते है| इन्हें जैविक प्रेरक या जन्मजात प्रेरक भी कहा जाता है| शेरीफ एवं शेरीफ (Sherif & Sherif, 1956) ने कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है जिनके होने पर किसी भी प्रेरक को शारीरिक/ जैविक / जन्मजात प्रेरक की श्रेणी में रखा जा सकता है| विशेषताएँ निम्न है-

i) शारीरिक आवश्यकताओं के प्रति क्रिया उत्पन्न होती है |

ii) व्यक्ति के अंतर्गत शारीरिक उद्वेग / उत्तेजन की अवस्था उत्पन्न हो जाती है|

iii) प्रेरणा की प्रकृति समान जीवों में समान देखी जा सकती है|

iv) प्रेरणा जन्मजात होती है अर्थात प्रेरक अर्जित न हो |

परोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये निम्न प्रेरको को जन्मजात प्रेरक की श्रेणी में रखा जा सकता है – a) भूख (hunger) b) प्यास (thirst) c) कम या यौन (sex), d) नींद (sleep) e) मलमूत्र\त्याग (eliminative motive)

इन सभी जन्मजात प्रेरकों की एक सामान्य विशेषता है की ये सभी शरीर के भीतर एक संतुलित शारीरिक व्यवास्था (balance physiological state) बनाये रखते है, जिन्हें मनोवैज्ञानिक समस्थिति (homostasis) कहा है | जब किसी करक ससे इस समस्थिति में शुब्धता या असंतुलन उत्पन्न होता है, तो इससे व्यक्ति में जैविक प्रेरक (biogenic motive) की उत्पत्ति होती है |

उक्त जैविक प्रेरकों का वर्णन निम्नांकित है –

a) भूख (Hunger) –

मनोवैज्ञानिकों व शारीरीशस्त्रियों द्वारा यह की भूख अग्ने के कई कारण होते है | बाह्य तथा आतंरिक तत्व केंद्रीय स्नायुमंडल से सम्बंध स्था पित स्थापित करने के बाद व्यक्ति की भूख के कारण बनते है | इनमे सबसे प्रमुख आतंरिक तत्व है जो व्यक्ति के अंतर्गत रासायनिक परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होते है और इन्ही को शारीरिक अधर कहा जाता है | जब रक्त में शर्करा की मात्र किसी स्तर से कम हो जाती है तो पेट में संकुचन होने लगता है | इसी संकुचन क्रिया के आधार पर पेट की मांसपेशियों में दर्द का अनुभव होता है | अनुसन्धान कार्य इस तथ्य को प्रमाणित करते है कि भूख का आधार शरीर में किन्ही पदार्थो की कमी है परन्तु यह भी प्रमाणित करते है की भूख का नियंत्रण मस्तिष्क के हाईपोथैलेमस (hypothalamus) भाग से होता है | हाईपोथैलेमस में उत्तेजनात्मक (excitatory) तथा अवरोधात्मक (inhibitory) केंद्र पाये जाते है | पहला केंद्र lateral hypothalamus-LH है, इसमें विद्युत प्रवाहित करने से पशु को भूख अधिक लगती है तथा क्षतिग्रस्त करने पर भूख ख़त्म हो जाती है | इसके कन्दरा को ventro medial hypothalamus –VHM कहते है जिसमें विद्युत प्रवाहित करने पर पशु खाना बंद कर देते है परन्तु क्षतिग्रस्त करने पर पशु की भूख अधिक बढ़ जाती है |

प्रोफेसर डॉ. बी. के. आनंद (भारतीय औषधि विज्ञान संसथान में शरीर विज्ञान के प्रोफेसर है) ने स्नायुविक सम्बन्ध तथा खाना खाने की क्रिया पर प्रयोग कर बताया कि हाईपोथैलेमस में दो परस्पर

विरोधी केंद्र पाए जाते है जो भोजन प्राप्त क्रिया को नियंत्रि व गतिशील बनाते है | | हाईपोथैलेमस के लेटरल भाग में जो केंद्र है उसे खाना प्राप्त करने का केंद्र (feeding center) कहा जाता है और दूसरा मध्य भाग में तृप्ति केंद्र (satiety center) के रूप में पाया जाता है | भूख लगना खाना प्राप्त करने के केंद्र से सम्बंधित है परन्तु खाने के बाद तृप्ति होना तृप्ति केंद्र से सम्बंधित है परन्तु खाने के बाद तृप्ति होना तृप्ति केंद्र से सम्बंधित है | तृप्ति केंद्र, खाना प्राप्त करने के केंद्र से जुड़ा हुआ है | यदि तृप्ति केंद्र को क्रियान्वित कर दिया जाये तो व्यक्ति को भूख नहि लगती तथा खाने की उपस्थिति में भी प्रभाव नहीं डालती क्योंकि तृप्ति केंद्र खाने सम्बंधी पतिक्षेप क्रियाओं पर भी बाधा डालता है | भूख लग्न तथा भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया आन्तरिक अथवा शारीरिक कारणों पर निर्भर करती है परन्तु भूख लगना तथा भोजन प्राप्त करने सम्बन्धी प्रक्रिया बाह्य अथवा वातावरण सम्बन्धी कारणों पर निर्भर करती है |

b) प्यास (Thirst)-

दूसरा मुख्य जन्मजात प्रेरक प्यास है |कुछ प्रयोगो के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने यह बताया की मुँह के भीतर गीलेपन में अत्यधिक कमी यानी मुँह सूखने से हमें प्यास लगती है – इसे प्यास का स्थानीय सिद्धांत (local theory of thirst) कहा गया है जिसका प्रतिपादन कैनन (cannon 1932) में किया था |

प्यास दो तरह की होती है – बहिकोशकीय प्यास (extracellular thirst) व अंतरकोशकीय प्यास (intercellular thirst) | बहिकोशकीय प्यास की उत्पत्ति शरीर की कोशिकाओं के चारो तरफ पाए जाने वाले तरल (fluid) से पानी लुप्त होने के कारण होती है | जेसे – खून निकलना, कै होना (vomiting), पसीना निकलना, अतिसार (diarrhea) होना | पेट्री (petri, 2003) के अनुसार इन अवस्थाओं में शरीर की कोशिकाओं में पानी तथा खनिज की कमी को दूर करने में सादा पानी के जगह नमकीन पानी की भूमिका अहम होती है |

अंतरकोशिकीय प्यास उसे कहा जाता है जो व्यक्ति में तब उत्पन्न होता है जब वह कोई नमकीन चीज़ खाता है एसी अवस्था में व्यक्ति के शरीर में पानी लुप्त नहीं होता परन्तु अत्यधिक नामक खाने से कोशिकाओं का तरल बाहर आ जाता है जैसे ही कोशिकाएँ सिकुड़ती है अंतरकोशिकीय प्यास महसूस होने लगती है जिसे सदा पानी पीकर बुझाया जा सकता है |

शरीर क्रिया मनोवैज्ञानिकों का कथन है की हाईपोथैलेमस (hypothalamus) तथा पियूष ग्रंथि (pituitary gland) से एंटीडाइरेटिक हारमोंस (antidiuretik hormone ADH) निकलता है जो वृक्क (किडनी) द्वारा शरीर से पानी बाहर निकलने की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखता है | इस तरह ADH वृक्क की कार्यवाही पर नियंत्रण रखकर शरीर में पानी का सामान्य स्तर (normal lavel) को बनाये रखता है |

इपस्टीन तथा सहयोगी (epstein,1973) ने डब्ल-डिप्लेसन सिद्धांत(double dipletion theory) का प्रतिपादन किया | इनके अनुसार प्यास दो शारीरिक क्रियाओं का परिणाम है – एक है कोशिकाओं शारीरिक क्रियाओं का परिणाम है –एक है कोशिकाओं में पानी की कमी (cellular dehydration) तथा दुसरा रक्त की मात्रा में कमी हो जाने से कोशिकाओं का भीतरी भाग सूखने लगते है अतः प्यास लगती है | इसका नियंत्रण hypothalamus से होता है |

c) काम (Sex) –

काम या यौन तीसरा प्रमुख जैविक प्रेरक है | कम संबंधी प्रेरणा व्यक्ति में उसके काम सम्बन्धी अवयव पूर्ण रूप से विकसित हो जाने पर उत्पन्न होती है | वृद्धाअवस्था में यह इच्छा शक्तिहीन हो जाती है | काम का मूल प्रारंभ जनन ग्रंथियों (gonads gland) के स्त्राव के कारण होता है | पुरुष की जनन ग्रंथियों का स्त्राव शुक्र (sperm) के रूप के साथ ही endrogens हारमोंस (harmones) के रूप में होता है तथा स्त्री की जनन ग्रंथियों का स्त्राव अंड (ovum) के रूप के साथ साथ एस्ट्रोजन (estrogens) नामक हारमोंस के रूप में | ये हारमोंस काम इच्छा के लिए महत्वपूर्ण होते है | मस्तिष्क में पियूष ग्रंथि के स्त्राव के कारण काम इच्छा उत्पन्न होती है | पियूष तथा जनन ग्रंथियां शरीर में काम सम्बन्धी समायोजन बनाए रखती है | काम सम्बन्धी अंगो के पूर्ण होने से पूर्व यदि काम क्रिया प्रारंभ हो जाती है तो पुरुष में नपुसंकता (impotency) तथा स्त्रियों में कामशैत्य (frigidity) उत्पन्न हो जाती है |

d) नींद (Sleep) –

जब मनुष्य कार्य करते करते थक जाता है तो उसे निंद्रा अथवा आराम की आवश्यकता पड़ती है | अनुसन्धान कार्य इस तथ्य का संकेत देते है कि कार्य करते समय व्यक्ति के रक्त में कुछ रसायनिक परिवर्तन होते है जिनके कारण थकावट का अनुभव होने लगता है | कुछ समय के आराम या निन्द्रा से थकावट दूर हो जाती है और व्यक्ति अपने आप को आगे कार्य करने के लिए तैयार समझता है | नींद दो प्रकार की होती है – i तीव्र आँख गतिक नींद (rapid eye movement sleep or REM sleep) ii अतीव्र गतिक नींद (non-rapid eye movement sleep or non-REM sleep)

अतीव्र गतिक नींद में व्यक्ति गहरी नींद में सोता है तथा व्यक्ति संवेदी प्रक्रियाएँ (sensory process) बहुत कम होती है इस तरह की नींद में श्वसन गति, हृदय गति धीमी हो जाती है तथा रक्त चाप कम हो जाता है तीव्र आँख गतिक नींद में ये साडी प्रक्रियाएँ उलट जाती है | हृदय गति तीव्र हो जाती है, रक्त चाप बढकर जगे हुए अवस्था के समान हो जता है तथा मस्तिष्क में संवेदी उत्तेजनाएं (sensory stimulation) भी अधिक हो जाता है |

मनोवैज्ञानिकों ने हाईथैलेमस (hypothalamus), थैलेमस (thalamus) तथा रेटिकुलर फारमेशन (reticular formation) को नींद का नियंत्रण कक्ष माना है | अनेक अध्ययनों से यह पता चलता है की मस्तिष्क के in केन्द्रों में किसी भी प्रकार की चोट या घाव (lesion) होने से व्यक्तियों की नींद में बाधा पहुँचती है | लेफ्रैनकोइस (lefrancios,1983) के अनुसार यदि व्यक्ति लम्बे समय तक किसी कारण से सो नहीं पता है तो उसमे विभ्रम (hallucination) बौद्धिक अक्षमता (intellectual inability) तथा अन्य असामन्य लक्षण (abnormal system) दिखाई पड़ने लगता है |

e) मल-मूत्र त्याग प्रेरक (Elimitative Motive)-

मल-मूत्र त्याग प्रेरक भी एक जैविक प्रेरक (biological motive) है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति पेशाब या पैखाना करता है जब व्यक्ति की बड़ी आंत में खाए हुए भोजन का सिट्ठी या अवशिष्ट पदार्थ (waste products) अधिक जमा हो जाता है, तो उसमे पैखाना करने का प्रेरक उत्पन्न होता है ठीक उसी तरह से जब व्यक्ति के ब्लाडर (bladder) में मूत्र अत्यधिक जमा हो जाता है तो उसे पेशाब करने की इच्छा होती है | मल-मूत्र त्याग प्रेरक एक एसा प्रेरक है जिसे व्यक्ति अपने अनुभवों के आधार पर कुछ समय के लिए रोक सकता है | फ्रायड (freud 1915-17) प्रथम ऐसे मनोवैज्ञानिक

थे जिन्होंने मल-मूत्र प्रेरक (eliminative motive) के महत्व को व्यक्तित्व के शीलगुणों के निर्माण में काफ़ी महत्वपूर्ण बतलाया है | इनका कहना था कि जिन बच्चों में मल-मूत्र रोकने की प्रवृति अधिक होती है, वैसे बच्चों में व्यस्क होने पर जिद्दी (obstinancy) तथा कंजूसी (stinginess) का गुण अधिक विकसित हो जाता है तथा दूसरी तरफ जिन बच्चों मल - मूत्र नियमित रूप से करने के लिए माता-पिता द्वारा बाध्य किया जाता है, बड़े होने पर उनमें क्रूरता (cruelty) तथा आक्रमणशीलता (aggressiveness) का शील गुण तुलनात्मक रूप से अधिक विकसित होता है|

ब) सामाजिक प्रेरणाएँ (social motive)/अर्जित प्रेरक (acquired motive)

वह प्रेरक जो जन्म से नहीं होते किन्तु जिन्हें व्यक्ति अपने को श्रेष्ठ बनाने के लिए समाज सीखता है,अर्जित प्रेरक कहलाते है| कुछ प्रेरक ऐसे होते है जिसके बिना व्यक्ति जैविक रूप से तो जिन्दा रह सकता है किन्तु सामाजिक रूप से उसका जीना संभव नहीं है जैसे- परिवार, पड़ोसियों, स्कूल, कॉलेज आदि |

a) उपलब्धि की आवश्यकता (Need of Achievement):

उपलब्धि से तात्पर्य एक ऐसे प्रेरक से है जिससे प्रेरित हो कर व्यक्ति अपने कार्य को इस ढंग से करता है की उसमें अधिक से अधिक सफलता मिल सके|

b) संबंधन का आवश्यकता(Need of Affiliation):

सम्बन्ध की आवश्यकता जिसे सामुदायिकता भी कहा जाता है| मनुष्य एवं अधिकतर पशुओं में भी संबंधन की आवश्यकता देखी गई है| समाज में दूसरों के साथ रहने की प्रवृति को सामुदायिकता कहा जाता है| वातावरण की घटनाओं में परिवर्तन होने के साथ साथ संबंधन व्यवहार में भी परिवर्तन आता है|

c) सत्ता की आवश्यकता (Need of Power):

सत्ता की आवश्यकता भी व्यक्ति की एक प्रमुख सामाजिक आवश्यकता है जिसके द्वारा व्यक्ति अन्य व्यक्तियों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखता है| Feldman के अनुसार "दूसरो के व्यवहार को नियंत्रित करने तथा उसे अपने ढंग से मोड़ने की क्षमता को सामाजिक सत्ता कहा जाता है|"

d) आक्रमणशीलता की आवश्यकता (Need of Aggressiveness)

आक्रमणशीलता एक सामाजिक प्रेरक है जिसमें एक व्यक्ति दुसरे व्यक्ति को शाब्दिक रूप से या शारीरिक रूप से चोट पहुँचाने की कोशिश करता है|

e) अनुमोदन आवश्यकता (approval motive or need)

अनुमोदन की आवश्यकता से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा दूसरो से (जिन्हें वह महत्वपूर्ण समझता है) सकारात्मक मूल्यांकन जैसे- प्रतिष्ठा , प्रशंसा, सम्मान आदि पाने की उम्मीद से है|

बोध प्रश्न

4. प्रेरणा के प्यास प्रेरक को समझाए ?

5. प्रेरणा चक्र क्या है?

6. संज्ञान तत्व की विशेषता बताइए?

21.5 प्रेरणा की सिद्धांत (Theory of Motivation)

मनोवैज्ञानिकों ने प्रेरणा की व्याख्या करने के लिए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है जो निम्नांकित है-

i मूलप्रवृति सिद्धांत (Instinct Theory): यह सिद्धांत 1908 में मैकडूगल के द्वारा प्रतिपदित किया गया है| इन्होने मुलप्रवृति को जन्मजात प्रवृति के रूप मर परिभाषित किया जिसमे तीन तत्व प्रधान होते है-सामान्य उत्तेजन पहलू (general energizing aspect), क्रिया पहलू (action aspect) तथा लक्ष्य-निर्धारित पहलू (goal directed aspect) किन्तु इन्होने यह भी स्वीकार किया की मानव स्वाभाव से मूलतः अनैतिक एवं अंहकारी होता है| सिगमंड फ्रायड ने मुलप्रवृति की चार विशेषताएँ बताई है- स्रोत, उद्देश्य (Objective), वाटू व प्रेरक शक्ति|

ii प्रणोद सिद्धांत (drive theory): रोबर्ट वुडवर्थ द्वारा प्रतिपदित किया गया जिसे पूर्ण विकसित रूप में क्लार्क हल ने प्रस्तुत किया|

iii प्रोत्साहन सिद्धांत (Incentive Theory): यह सिद्धांत प्रणोद की अपेक्षा स्वयं लक्ष्य या प्रोत्साहन पर आधारित है| बाँल्स तथा फाफ्फामैनं के अनुसार प्रोत्साहन दो प्रकार के होते है- घनात्मक व ऋणात्मक |

iv विरोधी प्रक्रिया सिद्धांत (opponent process Theory): यह सिद्धांत सोलोमैन तथा कौरर्वित द्वारा दिया गया| इस सिद्धांत के अनुसार सुख देने वाले लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रेरित रहता है किन्तु जिनसे अप्रसन्नता होती है उनसे दूर रहना चाहता है| इस सिद्धांत को संवेग का सिद्धांत के नाम से भी जाना है|

v आदर्श स्तर सिद्धांत (Optimal level Theory)

vi आवश्यकता पदानुक्रमिक सिद्धांत (Need hierarchies Theory): मैसलो प्रथम मनोवैज्ञानिक है जिन्होंने आत्मसिद्धि को महत्पूर्ण प्रेरक बताया तथा वैज्ञानिक अध्ययन कर आवश्यकता पदानुक्रमिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया| निम्न पांच मानव आवश्यकता है- शारीरिक, सुरक्षा, सदस्य होने व स्नेह पाने की, सम्मान व आत्मसिद्धि की आवश्यकता |

vii वेक्टर कर्षण शक्ति सिद्धांत (Vector-Valence Theory): यह सिद्धांत कर्ट लेविन के द्वारा दिया गया जिन्होंने मानव प्रेरणा पर अध्ययन किया |

viii लक्ष्य निर्धारण सिद्धांत (Goal setting Theory): प्रेरणा के इस सिद्धांत का प्रतिपादन लॉके व लाथम ने किया| यह सिद्धांत संज्ञानात्मक कारकों को अधिक महत्तवपूर्ण मानता है, न की उत्तेजना व प्रणोद को|

ix आत्म या स्व निर्धारण सिद्धांत (Self determination Theory): यह सिद्धांत रेयान व डेसी के द्वारा दिया गया जो मैसलो के पदानुक्रमिक सिद्धांत के समान है| सिद्धांत के अनुसार तीन जन्मजात तथा सार्वत्रिक आवश्यकताएँ होती है जो व्यक्ति को अपने स्व को पूर्ण रूप से समझने में मदद करता है तथा दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में| तीन आवश्यकता है- स्वायत्तता, सामर्थ्यता तथा संबंधता |

x आचारशास्त्रीय सिद्धांत (Ethological Theory): आचार शास्त्र प्राणिशास्त्र की शाखा है जिसमे पशुओं के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है | यह मूलतः मूलप्रवृति सिद्धांत पर आधारित है |

इस ईकाई में मुख्य रूप से प्रणोद व आदर्श स्तर सिद्धांत का वर्णन किया गया है |

1) आदर्श-स्तर सिद्धांत या उत्तेजन सिद्धांत या सक्रियकरण सिद्धांत (Optimal Level Theory or Arousal Theory or The optimal arousal theory)

यह सिद्धांत प्रेरणा की व्याख्या उत्तेजन (arousal) के रूप में करता है| उत्तेजन व्यक्ति के मस्तिष्क स्तम्भ (brain stem) के रेटिकुलर फार्मेशन (reticular formation) की क्रियाशीलता की प्रति सामान्य अनुक्रिया का माप होती है| प्रेरणा के इस सिद्धांत की उत्पति कई मिलते जुलते श्रोतों से हुई है| अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है की कुछ संवेग जैसे डर और क्रोध से व्यक्ति को जब किसी खतरनाक परिस्थिति में सामना करना होता है, तो उसे क्रिया करने के लिए उत्तेजित करता है| ऐसी उत्तेजित प्रक्रियाओं (arousal reactions) के साथ साथ मापनीय शारीरिक परिवर्तन (mesaurable bodily change) भी होते है जिसमे मस्तिष्कीय संरचना की क्रियाओं का EEG माप किया जाता है कि मस्तिष्क का उत्तेजन किस तरह से व्यक्ति को उद्धिपकों के प्रति अनुक्रिया करने के लिए प्रेरित करता है| इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के सामने क्रियाशीलता या सचेतता (arousal) का एक ऐसा निश्चित स्तर होता है जिसे आदर्श स्तर (optimal level) कहा जाता है| इस स्तर के व्यवहार से व्यक्ति को काफ़ी प्रसन्नता व ख़ुशी मिलती है| कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति का व्यवहार us आदर्श स्तर से नीचे या कभी काफ़ी ऊँचा होता है, दोनों ही परिस्थिति में उसे उतनी प्रसन्नता या ख़ुशी नहीं मिलती जितनी की वह आदर्श स्तर (optimal level) पर महसूस करता है| अत: यदि उसका व्यवहार आदर्श स्तर से अत्यधिक है, तो वह उसे कमकर आदर्श स्तर पर लेन के लिए प्रेरित रहता है| दूसरी तरफ यदि उसका व्यवहार आदर्श व्यवहार से नीचे है तो वह उसे ऊँचा उठाकर आदर्श स्तर तक लेन के लिए प्रेरित रहता है| इसे प्रेरणा का उत्तेजन सिद्धांत (arousal theory) भी कहा जाता है|

प्रेरणा के उत्तेजन सिद्धांत को कई अध्ययनों का अप्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त है| एंडरसन का मत है कि उत्तेजन सिद्धांत के उक्त मौलिक दावे को कई प्रयोगों में, जिसमे उत्तेजना (arousal) व निष्पादन (performance) के संबंद का अध्ययन किया गया एवं उसे सही ठहराया गया है| अध्ययनों में यह पाया गया है कि उत्तेजन का साधारण स्तर होने पर व्यक्ति का कार्य निष्पादन (work performance) उत्तम होती है जबकि बहुत अधिक या बहुत कम होने पर निष्पादन का ह्रास (decrement)होता है| अर्थात जैसे-जैसे उत्तेजन का स्तर बढता है, कठिन कार्य पर निष्पादन घटता है जबकि आसान कार्यों पर निष्पादन बढता है| परन्तु जब उत्तेजन का स्तर साधारण होता है, तो निष्पादन उत्तम होता है| अत: निष्कर्ष यह हुआ कि प्रेरणा के उच्च या निम्न दोनों छोरों पर निष्पादन ख़राब होता है|

निष्कर्तः उत्तेजन सिद्धांत की परिसीमाएँ अवश्य है फिर भी यह सिद्धांत अभिप्रेरित व्यवहार की उत्पति के स्वरुप पर बहुँत हद तक प्रकाश डालने में समर्थ है|

2) प्रणोद या अन्तर्नोद न्युनीकरण का सिद्धांत (drive reduction theory)

आन्तरिक प्रणोद (drive) को प्रेरणा के संप्रत्य ,जिससे व्यवहार का निर्धारण होता है, को सबसे पहले रोबर्ट वुडवर्थ (Robert Woodworth,1918) के द्वारा प्रतिपदित किया गया| वुडवर्थ ने प्रणोद को जैविक रूप से परिभाषित करते हुए कहा कि यह जीव में उर्जा मुक्ति (energy release) से होता है| इनके अनुसार प्रणोद, क्रिया (action) का इंधन (fuel) होता है जो उद्दीपक को उत्पन्न करता है और लक्ष्य-निर्देशित क्रिया (goal directed activities) के रूप में अभिव्यक्त होता है| इस सिद्धांत के अनुसार प्रेरणा व्यक्ति में विशेष अवस्था अथवा प्रणोद की अवस्था पाई जाती है| व्यक्ति में इस अवस्ता की उत्पति उसके शारीरिक आवश्यकता या बाह्य उद्दीपक से उत्पन्न होता है| इस अवस्था की विशेषता यह है कि व्यक्ति यंहा अधिक क्रियाशील हो, उद्देश्पूर्ण व्यवहार प्रदर्शित कर अपने निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है| इस प्रकार प्रणोद व्यक्ति को एक विशेष लक्ष्य की ओर ढकेलता (push) करता है ,अत: इस मनोवैज्ञानिकों के द्वारा दाब या धक्का का सिद्धांत भी कहा है| लक्ष्य की प्राप्ति से प्रणोद की तीव्रता कम हो, तनाव की स्थिति करीब करीब ख़त्म हो जाती है| प्रणोद के सिद्धांत में प्रेरकों की व्याख्या एक क्रम में होतो है जो निम्न है-

i प्रणोद की अवस्था शारीरिक आवश्यकता या बाह्य उद्दीपक से उत्पन्न होता है|

ii प्रणोद अवस्ता से व्यक्ति क्रियाशील हो व्यवहार लक्ष्य निर्देशित हो जाता है|

iii लक्ष्य निर्देशित व्यवहार के करण लक्ष्य प्राप्ति हो जाती है|

iv लक्ष्य प्राप्ति से व्यक्ति को संतुष्टि मिलती है|

कुछ समय बाद व्यक्ति में पुन:पहली अवस्था उत्पन्न होती है|

प्रणोद न्युनीकरण का सिद्धांत पूर्ण रूप से क्लार्क हल (Clark Hull, 1952) के द्वारा किया गया | इनका मानना है की अधिगम के लिए प्रेरक की आवश्यकता होती है| फ्रायड के समान हल ने बी तनाव को प्रेरक के रूप में महत्व दिया तथा बताया की तनाव में कमी अपने आप में पुनर्बलन का काम करता है| प्रणोद-ह्रास सिद्धांत (drive reduction theory) में समस्थिति (homeostasis) की अहम भूमिका होती है| इस सिद्धांत में यह पूर्वकल्पना की जाती है कि व्यक्ति समस्थिति बनाने के लिए बाध्य हो जाता है| समस्थिति से तात्पर्य ऐसी स्थिति से है जिसमे शरीर के विभिन्न तंत्र तथा प्रक्रियाएँ आपस में मिलकर भीतरी संतुलन बनाती है| जब व्यक्ति में प्राथमिक प्रणोद आवश्यकता (primary drive need) उत्पन्न होती है तो शरीर में असंतुलन (imbalance) उत्पन्न हो जाता है| यह विशेष व्यवहार को उत्तेजित करता है जो शरीर को पुन:एक संतुलित स्थिति में ले जाता है| इस संतुलित अवस्था को समस्थिति (homeostasis) कहते है| अत: प्रणोद सिद्धांत के अनुसार जब समस्थिति में दैहिक क्षुब्धता (physiological disruption) होता है, तो इससे व्यक्ति में प्रणोद उत्पन्न होता है|

21.5 निस्सहायता का सिद्धांत (Theory of helplessness)

इस सिद्धांत के प्रतिपादन का आधार मार्टिन सेलिगमैन (Martin Seligman) द्वारा प्रतिपादित अर्जित निस्सहायताका सिद्धांत (theory of learned helplesness) है| इस सिद्धांत का सार तत्व यह है कि तनाव व्यक्ति में निस्सहायता का भाव उत्पन्न करता है |जब व्यक्ति किसी तनावग्रस्त उद्दीपक या घटना का सामना करता है ,तो उसके साथ निबटने के लिए वह विशेष व्यवहार करता है

परन्तु जब वह व्यवहार से उसे सफलता नहीं मिलती है और ऐसा कई बार हो चुका होता है ,तो वह अपने आप को निस्सहाय (helpless) महसूस करता |इसका मतलब हुआ कि तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति पर नियन्त्रण न करने का अनुभव बार –बार होने से व्यक्ति अपने आप को निस्सहाय रखना सीख लेता है |हिरोटों एवं सेलिगमैन ने अपने प्रयोग के आधार पर किया है |इस तरह के अर्जित निस्सहायतासे तीन तरह की कमियाँउत्पन्न होती है–अभिप्रेरणात्मक कमी (motivational deficit),संज्ञानात्मक कमी (cognitive deficits) तथा सांवेगिक कमी (emotional deficits)| निस्सहाय व्यक्ति कोई ऐसा प्रयास नहीं करता है जिससे उसके परिणाम में परिवर्तन हो सके| यह अभिप्रेरणात्मक कमी का उदाहरण है |निस्सहाय व्यक्ति उन नयी अनुक्रियाओं को नही सीख पाता है जिससे वह तनावपूर्ण उद्दीपकों से अपने आपको छुड़ाकर दिला सके |यह संज्ञानात्मक कमी का उदाहरण है| अर्जित निस्सहायताव्यक्ति में हल्का या तीव्र विषाद भी उत्पन्न कर सकता है यह सांवेगिक कमी है का उदाहरण है| इस सिद्धांत के अनुसार यह स्पष्ट है कि तनाव के नकारात्मक प्रभाव की व्याख्या व्यक्ति में उत्पन्न निस्सहायता के माध्यम से की गयी है |निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि तनाव के कारण नकारात्मक प्रभाव की व्याख्या करने के लिए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है |

बोध प्रश्न

1. आवश्यकता पदानुक्रमिक सिद्धांत की पांच आवश्यकताये कौनसी है ?
2. उत्तेजन सिद्धांत का निष्कर्ष क्या है?
3. समस्थिति का क्या अर्थ है?
4. व्यक्ति में निस्सहायता का भाव क्यों आता है?

21.7 सारांश (Summary)

प्रेरणा के इस अध्याय के अंतर्गत उत्तेजन व समस्थिति, अन्तर्नोद व न्युनीकरण तथा संज्ञानात्मक निस्सहायता सिद्धान्तो की विस्तृत विवेचना की गई है| प्रेरणा व्यक्ति की ऐसी आन्तरिक अवस्था है जो उसमे क्रियाएँ करके व्यवहार को एक सही दिशा में उद्देश्य (Objective) प्राप्ति के और ले जाती है | कुछ संवेग व्यक्ति को किसी खतरनाक परिस्थितियों से सामना करने के लिए उत्तेजित करता है ऐसी उत्तेजित प्रतिक्रियाओं को ही उत्तेजन कहा जाता है| जैसे-जैसे उत्तेजन स्तर बढता जाता है वैसे वैसे कार्य क्षमता में निष्पादन घटता जाता है| घटते निष्पादन के कारण व्यक्ति में अन्तेर्नोद-न्युनीकरण का ह्रास हो जाता है जिससे उसमे तनाव ओर अधिक बढ़ जाता है | तनाव बढने से व्यक्ति की संज्ञान शक्ति निस्सहाय हो जाती है जिस कारण से वह कम सीख पता है |

21.8 अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ट प्रश्न

1. प्रेरित व्यवहार मिलता है-

   अ) मनुष्य ब) पशुओं स) दोनों में द) किसी में नहीं

2. प्रेरणाएँ व्यक्ति में किस आधार पर उत्पन्न होती है-

अ) शारीरिक संतुलन ब) मूलप्रवृति स) ज्ञानिन्द्रियों द) कर्मेंद्रियों

3. मूलप्रवृति सिद्धांत की जन्मदाता है-

अ) बोरिंग ब) मैकडूगल स) थार्नडाइक द) हिलगार्ड

लघूतरात्मक प्रश्न

4. प्रेरणा के तत्वों के नाम बताइए ?

5. प्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतो के नाम लिखिए?

6. उत्तेजन सिद्धांत को स्पष्ट करे?

7. लक्ष्य कितने प्रकार के होते है?

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions))

8. प्रेरणा के घटकों को विस्तार से समझाइये ?

9. प्रणोद सिद्धांत का वर्णन करे?

10. संज्ञानात्मक निसहायता सिद्धांत को बताये?

21.9 संदर्भ सूची

- डॉ. ओझा आर.के .,2005, मनोविज्ञान में समकालीन उपागम एवं विचारधाराएँ , विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- डॉ शर्मा जे.डी, 2005 मनोविज्ञान की पद्धतियों एवं सिद्दांत, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा|
- शर्मा, गणपतराम व व्यास हरिश्चंद्र ,2007 ,अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर|
- डॉ. वर्मा प्रीती व श्रीवास्तव डी . एन . आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान , विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
- डॉ भटनागर सुरेश, 2008 , शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षणशास्त्र विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- भटनागर सुरेश, 2009 , शिक्षा मनोविज्ञान, आर लाल बुक डिपो, मेरठ|
- डॉ सिंह , अरुण कुमार, 2005, मनोविज्ञान , भारती पब्लिकेशन प्रा. लि .
- डॉ सिंह, अरुण कुमार, (2006), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली |
- डॉ.सिंह, अरुण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली |
- डॉ सिंह , अरुण कुमार ,2001 ,शिक्षा मनोविज्ञान , भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर पटना |

- गुप्ता, एस. पी.व अल्का , 2007 , उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भंडार ,इलाहाबाद |
- माथुर,एस .एस ,2004, शिक्षा मनोविज्ञान , विनोद पुस्तक मंदिर , आगरा |
- मंगल,एस. के., 2002 , शिक्षा मनोविज्ञान , प्रेन्टिस हॉल ऑफ़ इंडिया , नई दिल्ली |
- शर्मा एस. एन., शर्मा अंजना, 2003, आधुनिक मनोविज्ञान के आधार,एच.पी . भार्गव बुक हाउस, आगरा|
- डॉ.उपाध्याय कुमार विनोद , डॉ. भार्गव सुनीता, अधिगम का मनोसामाजिक आधार एवं शिक्षण, अरिहंत शिक्षा प्रकाशन, जयपुर |
- Howard D.V., 1983, Cognitive Psychology, New York, McMillan publishing,Co.Inc.
- Chauhan S.S, 1990, Advanced Education Psychology, Vikas Publication House, New Delhi.
- www.wikipedia.com
- www. encyclopedia.com
- www.google.com